प त्र ल ता

लेखक
श्री गुरुदत्त

भारती साहित्य सदन
नई-देहली

प्रकाशक :
भारती साहित्य सदन,
३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

प्रथम संस्करण

मार्च १९५८

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली

आधार-भूमि

यह हर्षवर्द्धन की जीवन-कथा नही है। यह तो उस काल मे प्रचलित विचारधाराओ के सघर्ष और उस संघर्ष से उत्पन्न परिणामो की कहानी है।

महात्मा बुद्ध ससार से भग्नाश हो जीवन-मरण के चक्कर से निकलने के लिए पुत्र-पत्नी, माता-पिता और राजपाट को छोडकर जगल मे चले गये। वहाँ पर पठन-पाठन, त्याग-तपस्या और चिन्तन से एक धारणा बना बैठे। वह धारणा थी—न परमात्मा है, न आत्मा, चेतनता प्रकृति के प्रवाह मे भँवर मात्र है। सासारिक दु खो से छूटने का उपाय, इस भँवर को प्रकृति-रूपी प्रशान्त सागर मे शान्त कर देना है। जब भँवर निश्चल जल में विलीन हो जायगा, तब परम सुख प्राप्त होगा।

वास्तव में यह नास्तिक्य की व्याख्या है। नास्तिक्य मे जो कुछ अयुक्तिसगत प्रतीत होता था, उसको युक्ति से सिद्ध करने का प्रयास है।

इस व्याख्या के सत्य-असत्य होने का निर्णय करना, इस पुस्तक का विषय नही। इस पुस्तक मे तो इस व्याख्या की जन-मन पर उत्पन्न प्रतिक्रिया और साथ ही उस प्रतिक्रिया का देश मे अन्य प्रचलित विचार-धाराओं से सघर्ष का उल्लेख है।

भारत-भूमि पर विचार-भेद कोई आश्चर्य अथवा चिन्ता की बात नही थी। यह चिन्ता की बात तब बनी, जब राज्य की ओर से किसी एक विचार-धारा को समर्थन मिला और अन्य का विरोध हुआ।

सर्वप्रथम यह अशोक के काल मे हुआ। अशोक एक अति क्रूर

प्रकृति का व्यक्ति था और जब वह बौद्ध हुआ तो उसकी क्रूरता का रूप बदल गया। क्रूरता अपने मन की बात को बलपूर्वक मनवाने को कहते हैं। जहाँ पहिले राजा की इच्छा अस्त्र-शस्त्रो के बल से मनाई जाती थी, वहाँ पीछे बौद्ध भिक्षुओ की इच्छा राज्य के ओज और धन से मनाई जाने लगी, अत बौद्ध विचारधारा का प्रभाव राज्य बल से बढाया जाने लगा।

इसमे सन्देह नही कि प्राचीन वैदिक विचारधारा के मानने वालो मे पतन आ गया था। कालान्तर से परिस्थितियाँ बदली और विचार-भेद उत्पन्न हो गया। इससे आचरण में भी अन्तर आ गया।

मनुष्य, स्वभाव से सुगम मार्ग स्वीकार करना चाहता है और प्राय. सुगम मार्ग की खोज मे अपने लक्ष्य को भी भूल, दूसरी ही ओर चल पडता है। उन्नति का मार्ग कठिन और दु खमय देख वह सुगम मार्ग, जो प्राय पतन का मार्ग होता है, स्वीकार कर लेता है।

जीवन मे ब्रह्मचर्य, तपस्या तथा स्वाध्याय, कठिन होने के कारण, सुख, वासना और प्रमाद के सम्मुख त्यज्य हो जाते हैं। यही महात्मा बुद्ध के साथ हुआ। जीवन-मरण की समस्या को न सुलझा सकने पर वे परेशान थे। जो मार्ग उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थो मे वर्णित था, उसका अनुसरण न कर सकने पर, सुगम मार्ग की खोज मे चल पडे। अपनी जीवन-मीमासा को विद्वानो को न समझा सकने पर छोटे स्तर के लोगो को समझाने मे लग गये। सस्कृत भाषा मे अपने मन की बात न कह सकने पर जनसाधारण की भाषा मे ही बात करने लगे। पठन-पाठन तथा स्वाध्याय अति दुस्तर होने पर उपदेशो से कार्य चलाने लगे। इस प्रकार एक पृथक् मत चलाने मे सबल हो गये।

उक्त कथन का प्रमाण यह है कि बौद्ध साहित्य, जो महात्मा बुद्ध के जीवन-काल मे लेकर अशोक के काल तक निर्माण हुआ, वह न के तुल्य ही है। अशोक के काल के पश्चात् बौद्ध साहित्य बनने लगा तो बौद्ध मत का रूप भी बदलने लगा। बौद्ध मत का यह नवीन रूप

महायान कहलाया।

पश्चात् हीन यान, जो महात्मा बुद्ध का मत था और महायान में संघर्ष चल पडा। वास्तव मे महायान उन आक्षेपो के प्रकाश मे, जो ब्राह्मण धर्म ने बौद्ध धर्म पर किये, एक अन्य सुगम मार्ग है। परिणाम मे यह हीनयान से भी अधिक हानिकर सिद्ध हुआ। कोई मार्ग, जिसका केवल मात्र ध्येय सुगमता स्वीकार करना हो, सदैव पतन की ओर ले जाने वाला होता है।

जब बौद्ध धर्म का विस्तार होने लगा और जब यह अनुभव किया गया कि केवल मात्र भिक्षु निर्माण करने से कुछ नही बन सकता, तब महायान की स्थापना हुई। भिक्षु तो बन गये, परन्तु उनके पालन-पोषण के लिए अन्न-अनाज, वस्त्रादि भी चाहिए थे। उनके लिए जन-साधारण, जो जीवन के लिए आवश्यकीय सामग्री उत्पन्न करते हो, की आवश्यकता पड गई और सासारिक कार्य करते हुए भी निर्वाण सम्भव का सिद्धान्त निकाला गया। इसके साथ ही जब गुप्त काल मे ब्राह्मण देवी-देवता और अवतारवाद का प्रचलन हुआ तो बौद्धो ने भी, उन देवी-देवताओ के खण्डन को कठिन मान भगवान् तथागत् को एक अवतार प्रसिद्ध कर लिया। यह महायान हो गया।

यह विचार-परिवर्तन तथा सुगमता की ओर भागने की नीति (Escapism) किसी प्रकार भी जाति के लिए हानिकर न होती, यदि सम्राट् अशोक और हर्षवर्द्धन बौद्ध धर्म के प्रचार मे राज्य-बल प्रयोग न करते। अशोक ने तो केवल यह किया कि राज्य की पूर्ण शक्ति बौद्ध-धर्म के प्रचार मे लगा दी, परन्तु हर्षवर्द्धन ने तो राज्य-बल से न केवल बौद्ध धर्म का प्रचार किया, प्रत्युत अबौद्धो का विरोध भी किया।

भारत मे यह नया प्रचलन था कि विचारधाराएँ विद्वानो की युक्तियो और अनुभवों के आश्रय न रहकर, राज्य-बल का आश्रय पाने लगी।

अशोक के काल का पूर्ण ज्ञान बौद्ध लेखको और अशोक द्वारा

निर्मित स्तूपों तथा शिलालेखो से ही मिल सका है और उनमे अशोक की प्रशसा किसी प्रकार भी अकाट्य प्रमाण नही हो सकती।

इसी प्रकार हर्षवर्द्धन के काल का पूर्ण वृत्तान्त बाण के 'हर्ष चरित्र' और ह्वेनसाग के 'हर्ष जीवन-चरित्र' से मिलता है। बाण तो अपना हर्ष चरित्र समाप्त नही कर सका और ह्वेनसाग हर्ष के मरने से पूर्व ही भारत छोडकर चला गया था। दोनों के कथन अधूरे हैं। बाण हर्ष का वेतनधारी सेवक था और वह जो कुछ हर्ष की प्रशसा मे लिख गया है, पूर्णतया सत्य नही कहा जा सकता। ह्वेनसाग के अपने कथन मे ही परस्पर विरोध है। ह्वेनसाग बौद्ध था और वह बौद्ध सम्राट् की प्रशसा कर बौद्ध धर्म की महिमा बढाना चाहता था।

ह्वेनसांग के लेखो के प्रमाणिक न होने मे प्रमाण तो बहुत हैं। यहाँ केवल दो दिये जाते है।

श्री भगवती प्रसाद पाथरी द्वारा लिखित 'हर्षवर्द्धन शीलादित्य' नामक पुस्तक के पृष्ठ ४७ पर लिखा है—

"ह्वेनसाग ने कन्नौज का वर्णन देते हुए भूल से हर्ष के पूर्वजो—प्रभाकरवर्द्धन और राज्यवर्द्धन को भी कन्नौज का राजा बतलाया है……। ह्वेनसाग के इस भ्रमात्मक विवरण के आधार पर कतिपय विद्वानो ने……।"

डॉक्टर रमाशकर त्रिपाठी द्वारा लिखित 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक पुस्तक के पृष्ठ २२४ पर लिखा है—

"ह्वेनसाग का वक्तव्य है कि हर्ष, जब तक उसने पाँचो भारतो पर अधिकार न कर लिया, छ वर्ष तक निरन्तर युद्ध करता रहा……" सर्वथा अयुक्त (अयुक्तिसगत) है।… …इसी प्रसग मे ह्वेनसाग के दूसरे वक्तव्य का अनुवाद कि,

"हर्ष ने ३० वर्ष तक बिना अस्त्र उठाये शान्तिपूर्वक शासन किया, ठीक नही क्योकि……हर्ष को अपने घटना-बहुल शासन के अन्त तक युद्ध करते रहना पडा।"

भगवती प्रसाद पाथरी अपनी पुस्तक मे 'महात्यागोत्सव' का वर्णन इस प्रकार लिखते है—

"पहले दिन बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई और सम्राट् शीलादित्य ने बहुमूल्य जवाहारात भेट किए। मूर्ति की पूजा के पश्चात् समस्त राजाओ ने बहुमूल्य वस्तुएँ, वस्त्र और भोग सामग्री वितरित की और फूल विखेरे गए।

"दूसरे दिन आदित्य देव की मूर्ति स्थापित की गई और पहले दिन की अपेक्षा आधी वस्तुएँ दान मे वितरित की गई।

"तीसरे दिन ईश्वर देव (महादेव) की मूर्ति स्थापित की गई और दूसरे दिन की तरह ही दान वितरित किया गया।

"चौथे दिन बौद्ध धर्म सघ के १०,००० बौद्ध पण्डितो तथा भिक्षुओ को दान दिया गया। प्रत्येक बौद्ध पण्डित को १०० स्वर्ण मुद्राएँ, एक मोती, एक सूती वस्त्र, विभिन्न प्रकार की पेय और खाद्य सामग्री तथा इत्र और फूल प्राप्त हुए।

"इसके बाद लगातार २० दिन तक ब्राह्मणो को दान दिया गया और दस दिन तक अन्य धर्मावलम्बियो को दान दिया गया।"

यह सब वृतान्त ह्वेनसाग के लेखो से लिया गया है। ह्वेनसाग ने उक्त वृत्तान्त से यह बात स्पष्ट कर दी है कि बौद्धो के साथ अन्य धर्मावलम्बियो से अधिक श्रेष्ठ व्यवहार किया गया था।

ह्वेनसाग ने बहुत-सी बाते लिखी हैं, जिनसे उसकी, तत्कालिक देश की अवस्था से भी अनभिज्ञता प्रकट होती है। इस कारण वह जब लिखता है कि हर्ष पक्षपात रहित था, तो वह अपने अज्ञान का ही प्रदर्शन करता है। वास्तविकता तो उसके 'महात्यागोत्सव' से स्पष्ट होती है।

जो कुछ भी हो यह तो स्पष्ट ही है कि मलाई-मलाई बौद्ध सम्प्रदाय वालो को मिली थी और खुर्चन अन्य धर्मावलम्बियो को।

महाराज हर्ष का पक्षपात पूर्ण व्यवहार महाधर्म सम्मेलन मे और भी स्पष्ट हो जाता है।

श्री पाथरी इस विषय मे लिखते है—

"कन्नौज की सभा मे भाग लेने के लिए हर्ष के आदेशानुसार देश-भर से अट्ठारह-बीस राज्यो के राजा अपने यहाँ से प्रमुख श्रवणो तथा ब्राह्मणो को लेकर पधारे।"

"ह्वेनसाग लिखित 'लाईफ' के अनुसार महायान और हीनयान सम्प्रदाय के ३०० विदग्ध आचार्य, ३००० ब्राह्मण और नालन्दा से लगभग १००० आचार्य अपने शिष्यो सहित वहाँ पधारे थे।"

इसका अर्थ यह हुआ कि निमन्त्रण तो बौद्ध-अबौद्धो, दोनो को दिया गया था, परन्तु उसी पुस्तक मे आगे चलकर लिखा है—

"किन्तु जो बौद्ध धर्म मे आस्था नही रखते थे और जिन्हे भवन मे जाने नही दिया जा सकता था, उन्हे सम्राट् के आदेशानुसार भवन के प्रवेश-द्वार के बाहर बैठने को कहा गया।"

फिर लिखा है, "सभा के मुखिया और प्रमुख वक्ता के रूप मे ह्वेन-साग के लिए सम्राट् के निर्देशानुसार एक बहुमूल्य मच तैयार करा दिया गया।"

'रेकार्ड्स' के अनुसार इस सभा के वादविवाद मे सभिन्न विदग्ध पण्डितो ने गम्भीरतापूर्वक तर्क-वितर्क किया। परन्तु प्रमुख वक्ता ह्वेन-साग थे, जिन्होने महायान धर्म के सिद्धान्तो की व्याख्या की और उसकी महानता पर प्रकाश डाला।'

इस सम्मेलन का आगे विवरण इस प्रकार है—"पाँच दिन सभा होने के पश्चात् हीनयान सम्प्रदाय वालो को जब यह प्रतीत हो गया कि ह्वेन साग ने उनके मत का खण्डन कर दिया है, तो वे रोष से भरकर उसकी हत्या करने का षड्यन्त्र करने लगे। यह बात जब हर्ष को विदित हुई तो उसने एक घोषणा पत्र प्रेषित किया जिसमे कहा गया—

"......चीन के धर्माचार्य, जिनका अध्यात्म ज्ञान विशाल है, जिनकी प्रवचन-शक्ति गुरु गम्भीर है, जो लोगो को सही बात बताने और महान् धर्म के सत्य रूप का दर्शन कराने, व मूर्खों तथा राहभूलो

का उद्धार करने यहाँ आए हुए हैं, किन्तु वचना और असत्य का अनुगमन करने वाले, झूठ का परित्याग करने के स्थान तथा प्रायश्चित् करने के स्थान उनके विरुद्ध घातक षड्यन्त्र रचने का विचार कर रहे हैं ······ अत· यदि कोई धर्माचार्य को क्षति पहुँचाएगा, या छूएगा तो उसका तत्काल सिर उडा दिया जायगा। साथ ही जो कोई उनके विरुद्ध बोलेगा, उसकी जीभ काट ली जाएगी।"

"इस घोषणा के परिणामस्वरूप असत्यवादियो का बल खिसक गया। सभा के अट्ठारह दिन व्यतीत हो गए परन्तु किसी ने वादविवाद मे भाग नही लिया।

"इसके पश्चात् राजाज्ञा से ह्व नसाग का वहुत ही मान किया गया। हर्ष शीलादित्य ने ह्व नसाग को १०,००० स्वर्ण मुद्राएँ, ३०,००० रजत मुद्राए तथा १०० वहुमूल्य सूती वस्त्र उपहार मे दिए······ अन्त मे हर्ष ने धर्मविजेता ह्व नसाग की एक विशाल हाथी पर नगर मे सवारी निकलवाई और सर्वत्र यह घोषणा की गई कि चीनी धर्माचार्य ने धर्म की विजय स्थापित कर असत्यपूर्ण विरोधी सिद्धान्तो का खण्डन किया······ह्व न साग को 'महायान' देव की उपाधि से अलकृत किया गया······।"

इस विवरण से निम्न परिणामो पर ही पहुँचा जा सकता है—

१ यह सभा सर्वधर्म-सम्मेलन नही थी।

२. इसमे केवल महायान और हीनयान पर विवेचना होती रही।

३. अबौद्धो को मडप मे प्रवेश नही दिया गया।

४. हीनयान वालो के विरुद्ध हर्ष ने जली-कटी सुनाई।

५. वोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी की उपस्थिति मे ह्व नसाग की सा की गई और उसका ही सबसे अधिक सम्मान किया गया।

६. यह धर्मचर्चा उस प्रकार की नही थी, जैसी शंकराचार्य और न मिश्र के भीतर हुई थी। यह तो राज्यशक्ति से एक पक्ष का पोषण ही था।

७ जब हीनयान वालो ने देखा होगा कि ह्वेनसाग को बलपूर्वक विजयी बनाया जा रहा है, तो उन्होने ही कदाचित् राजा पर आक्रमण का षड्यन्त्र किया होगा।

८. जब हत्यारे से पूछा गया, कि उसने सम्राट् पर आक्रमण क्यो किया तो उसने विधर्मियो का नाम ले दिया।

९ हत्यारे को जो दण्ड दिया गया, उसका कही वर्णन नही, परन्तु यह वर्णन है कि पाँच सौ ब्राह्मण पकड़ लिये गए और मुख्य नेताओ को प्राणदण्ड देकर शेष को देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी गई।

१० इस घटना का लेखक वही व्यक्ति है, जो स्वय वैमनस्य का कारण था। पूर्ण सभा का संचालन उसने किया था। पूर्ण उत्सव मे, झगडा तथा वादविवाद, हीनयान और महायान वालो मे होता रहा और अन्त मे केवल मात्र हत्यारे के कहने पर ब्राह्मणो को दोषी मान उनको दण्ड दिया गया।

लेखक का मत है कि जैसे पूर्ण सभा की कार्यवाही पक्षपातपूर्ण थी, वैसे ही सम्राट् की हत्या के षड्यन्त्र की बात और ब्राह्मणो पर दोषारोपण की बातें भी पक्षपातपूर्ण ही होगी।

ब्राह्मणो द्वारा सम्राट् की हत्या मे उतना कारण नही हो सकता था, जितना हीनयान वालो द्वारा होने मे।

हीनयान वालो ने पहले ह्वेनसाग की हत्या का षड्यन्त्र किया और कदाचित् पश्चात् सम्राट् की हत्या का षड्यन्त्र भी उन्होने किया होगा।

सम्भव यह है कि हत्यारे ने अपनी जान छुडाने के लिए उनका नाम ले दिया हो, जिन पर सन्देह करना सुगम और भयरहित हो। किसी बौद्ध पर दोषारोपण करना सुगम नही होगा।

हर्ष के जीवन और उसके काल की प्राय घटनाएँ और विशेष रूप मे इस सर्वधर्म सम्मेलन का विवरण ह्वेन साग का लिखा हुआ है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि ह्वेन साग बहुत कुछ भ्रममूलक बाते लिख गया है। इस सभा मे तो वह एक पक्ष का पोषक था। वह बौद्ध-

सम्प्रदाय का समर्थक था। इस कारण, सम्भव है, कि हत्यारे के कथन पर विश्वास करने से बौद्धो का मान बचाने के लिए ब्राह्मणों को दण्ड देना उचित मान लिया गया हो।

कुछ भी हो इस घटना का, विशेष रूप मे ब्राह्मणो को दण्ड देने का एक भयकर परिणाम हुआ। देश मे ब्राह्मण धर्मानुयायी और बौद्ध-धर्मानुयायी परस्पर एक-दूसरे के घोर शत्रु हो गए।

देश मे साम्प्रदायिक बातो की ओर जनता का ध्यान बट जाने के कारण राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दुर्बल पड गई और तब वह आश्चर्य-जनक घटना घटी, जिसकी तुलना इतिहास मे कही नही मिलती।

अशोक राज्य के पचास-साठ वर्ष पश्चात् ही देश की अवस्था इतनी दुर्बल हो गई थी कि शक, पार्थियन इत्यादि विदेशियो ने देश मे घुसकर अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार हर्षवर्द्धन राज्य के कुछ ही काल पश्चात् मुसलमानो के सफल आक्रमण आरम्भ हो गए। आश्चर्यजनक बात यह हुई कि एक विदेशी आक्रमणकारी, गजनी से चलकर सोमनाथ के मन्दिर तक पहुँचा और वहाँ से सहस्रो नर-नारियो को पकडकर दास बना, सही-सलामत गजनी लौट गया। पूर्ण देश के लोग मुख देखते रह गए। यह आक्रमणकारी बार-बार आया और भारत का धन-दौलत, नर-नारी लूटकर ले गया, परन्तु जनता की कान पर जूँ तक नही रेंगी। यह चमत्कार उस फूट, राजनीतिक शैथिल्य और आलस्य प्रमाद के कारण ही सम्भव हो सका, जो बौद्धो और वैष्णवो के कारण देश मे चल रहा था और जिसका बीजारोपण अशोक के काल मे हुआ था तथा जिसकी सिंचाई हर्षवर्द्धन शीलादित्य के काल मे हुई थी।

जब-जब देश मे बौद्ध विचारधारा का प्राबल्य हुआ, देश राजनीतिक विचार से दुर्बल हुआ। सामाजिक शान्ति और भ्रममूलक सुरक्षा के मोह मे जनता मे ससार की दुष्ट-प्रवृत्तियो के विरोध की क्षमता कम हुई।

इसका एक प्रमाण तो भारत मे मुसलमानों के राज्य के समय मिला। मुसलमानो के राज्य मे बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन कराने के

उदाहरण प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। इनमे जहाँ सहस्रो ब्राह्मण धर्मावलम्बी खड्ग की धार के नीचे भी धर्म छोडने को उद्यत नही हुए, वहाँ एक भी बौद्ध धर्मावलम्बी का ऐसा उदाहरण नही मिलता, जिसने मरना स्वीकार किया हो परन्तु धर्म त्याग करना स्वीकार न किया हो।

इस्लाम का विरोध कैसे हुआ, किन विचार के व्यक्तियो ने किन साधनो से किया, यह इस पुस्तक का विषय नही। भारत के इतिहास के पृष्ठो पर सन् ६०० से १८०० की घटनाएँ लिखी गई हैं। उनपर विचार करने के लिए किसी अन्य पुस्तक का आश्रय लिया जाएगा।

इस पुस्तक का विषय तो उस काल पर प्रकाश डालना है, जिसने भारत को मुसलमानो के सफल आक्रमणो के लिए तैयार किया। इसमे उन कारणो पर विवेचना करने का यत्न किया गया है, जिससे वह भारत, जिसने सिकन्दर के आक्रमण का विरोध किया था, गजनी और गौरी का विरोध करने के अयोग्य हो गया।

सिकन्दर का विरोध पाचाल देश की जनता ने किया था। इस विरोध मे मगध आदि किसी बडे राज्य का हाथ नही था। यह तो सर्वविदित ही है कि सिकन्दर की सेना सतलुज तक पहुँचते-पहुँचते थक गई थी, परन्तु महमूद गजनी के विरोध मे जनता का कोई भी हाथ नही था। यह जनता मे क्लैव्यता कैसे आ गई, इसी प्रश्न की विवेचना इस पुस्तक का विषय है।

पुस्तक उपन्यास मात्र है। पात्र काल्पनिक है। इस पर भी ऐतिहासिक पुरुषो का विवरण, जो इस पुस्तक मे आया है, इतिहास मे लिखे अनुसार ही अंकित करने का यत्न किया गया है।

पुस्तक एक ऐसे विषय पर है, जिस पर पाठको मे मतभेद हो सकता हैं। लेखक का अपना एक मत है और वह मत किन आधारो पर बना है, इसका उल्लेख यहाँ कर दिया गया है। शेष तो पाठको के विचार करने की बात है।

गुरुदत्त

प्रथम परिच्छेद

: १ :

"महाराज ! यह निर्वाण मार्ग नहीं है। सासारिक वैभव मिथ्या है। इसके लिए रक्त बहाना अनर्थकारी है।"

राज्यभवन मे, एक विशाल आगार के मध्य मे, महाराज कन्नौजाधिपति ग्रहवर्मन मौखरी एक आसन पर बैठे थे। उनके साथ ही महारानी राज्यश्री बैठी गम्भीर भाव में, ध्यानपूर्वक बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी का उपदेश सुन रही थी। बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर महाराज तथा महारानी के सामने एक उच्च आसन पर विराजमान थे।

सप्ताह मे एक बार महाप्रभु अवलोकितेश्वर राज्य प्रासाद में ज्ञानोपदेश के लिए आया करते थे। आज भी इसी अर्थ आये हुए थे और महाराज तथा महारानी, दोनों आदरयुक्त मुद्रा मे उनके सामने बैठे हुए थे।

ज्ञानोपदेश तो समाप्त हो चुका था। इसके पश्चात् राज्यकार्य के विषय मे वार्तालाप होने लगी थी। महाराज ग्रहवर्मन ने राज्य की नवीनतम समस्या का उल्लेख किया था। महाराज ने कहा था, "मालवाधिराज देवगुप्त ने अपनी सेना मे वृद्धि करनी आरम्भ कर दी है। हमने उनके राज्य मे अपने गुप्तचर भेजे थे। उनकी सूचना है कि पिछले तीन र्षों में सेना तीन गुना हो गई है। अश्व, रथ, हाथी और पैदल सेना ानी अधिक हो गई है कि उनको रखने के लिए शिविर कम पडने लगे । नगर मे, कस्बो मे और देहातो मे सैनिक-ही-सैनिक दिखाई पडते

हैं ।' अस्त्र-शस्त्र भी दिन-रात बनाए जा रहे है । इस तैयारी का कारण अभी तक पता नहीं चला । इतना तो विदित हो चुका है कि मालवराज्य का मन्त्री समुद्रगुप्त गौडराज्याधिपति शशांक के पास भेजा गया है ।''

इस पर बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने उक्त बात कही थी । उनका कहना था, ''ग्रहवर्मन ! तुमने किसी के साथ किसी प्रकार की शत्रुता नहीं की । तुम्हारे मन मे किसी को हानि पहुँचाने का विचार-मात्र भी नहीं है । इस पर कोई तुमसे क्यो शत्रुता करेगा ? यदि किसी ने तुम्हारे राज्य पर आक्रमण किया भी तो अपनी करनी का फल वह स्वय भोगेगा ।''

''परन्तु भगवन् ! यदि आक्रमण हुआ तो प्रजा दुःखी होगी ।''

''संसार के सुख-दुःख का उत्तरदायित्व तुम पर उसी सीमा तक है, जिस सीमा तक तुम्हारी ओर से धर्मोल्लघन होता है । धर्म की सीमाओं से वाहर जाकर तुम अपना उत्तरदायित्व निभाओगे तो अपने साथ अन्याय करोगे । जो निर्वाण-मार्ग तुमने घोर तपस्या से पार किया है, वह सब व्यर्थ जायगा ।''

''तो आप क्या सम्मति देते हैं मुझको ?''

''अपने मन से भय निकाल दो । यह सासारिक वैभव मिथ्या है । यदि यह न भी रहा तो भी तुम्हे कुछ हानि न होगी । शान्त चित्त हो, भगवान् तथागत के पथ के अनुगामी बने रहो । शेष प्रकृति पर छोड दो । मन का मन साक्षि है । कोई कारण नहीं कि तुम जैसे सरलचित्त व्यक्ति पर किसी प्रकार का कष्ट आए । तुम्हारी सत्यप्रियता तथा धर्म-परायणता देखकर तो पत्थर भी पिघल जायेंगे । आक्रमण करने वाले तुम्हारा अहिंसा-व्रत देखकर तुम्हारे चरण छूएँगे ।''

वोधिसत्त्व जी महाराज उपदेश देकर चले गए । उनके जाने के पश्चात् कितने ही काल तक महाराज ग्रहवर्मन तथा महारानी राज्यश्री गम्भीर विचार मे पडे रहे । पश्चात् अपने विचारो मे लीन, वे अपने-अपने आसनो से उठ, पृथक्-पृथक् अपने-अपने आगारो की ओर चल पडे ।

महारानी राज्यश्री आजकल किसी अज्ञात भय से त्रसित रहा करती थीं। जब-जब भी वे अवलोकितेश्वर जी का उपदेश सुन कर आती थीं, उनके हृदय मे साहस और स्फूर्ति भर जाया करती थी, परन्तु आज उनके कथन मे उसे कुछ भी बल प्रतीत नही हुआ था। इस कारण उसके मन मे न तो साहस ही उत्पन्न हुआ था और न स्फूर्ति। वे अपने आगार मे पहुँची तो उन्होंने अपनी सखि कात्यायिनी को वहाँ प्रतीक्षा करते पाया।

कात्यायिनी चित्रकार थी। वह महारानी जी का चित्र बना रही थी और इस समय हाथ मे तूलिका लिये, बन रहे चित्र का अध्ययन कर रही थी। महारानी जी आई तो उसने उनसे कुछ काल के लिए सामने बैठ, चित्र को पूरा कराने का आग्रह करने के विचार से उनके मुख पर देखा; परन्तु वहाँ शोक और गम्भीरता अंकित देख चुप रह गई। महारानी धम्म से अपने आसन पर बैठी तो कत्यायिनी ने तूलिका रंग के पात्र में रख दी और महारानी के पास आकर उनके समीप बैठ पूछने लगी, "महारानी जी! क्या हुआ है?"

"नहीं जानती कि क्या हुआ है! जब से विवाह कर यहाँ आई हूँ, यहाँ की बाते विलक्षण ही प्रतीत हुई है। इनको देखकर मेरा मन बैठता जाता है।"

"यह स्वाभाविक ही है महारानी जी! आप श्री प्रभाकरवर्धन की सुपुत्री और श्री राज्यवर्धन की भगिनी है, जिनके प्रासादो मे आठों प्रहर सुभट्ट नग्न खड्ग लिये घूमते रहते हैं, जहाँ दिन-रात खड्ग-भालो की झंकार गूंजा करती है और जहाँ वीरता की गाथाएँ गाई जाती हैं। इसके विपरीत यहाँ दिन-रात सुरीले स्वरो मे 'बुद्धं शरणं गच्छामि' ादि की ध्वनि उठती रहती है। ऐसे वातावरण मे भला आपका मन प्रसन्न रह सकता है।"

"कात्यायिनी!" महारानी ने कुछ सतर्क होकर कहा, "तुम सदैव और वहाँ की तुलना किया करती हो। यह व्यर्थ है। मै कहती हूँ

कि मेरे मन की वर्तमान अवस्था इस कारण नही है। मै तो यहाँ के वातावरण को सर्वथा सुख और शान्तिप्रद मानती हूँ। यह कुछ और ही है, जो मैं समझ नहीं पाती। मुझको कुछ भय-सा लगा रहता है। किस बात का भय है, मैं समझा नही सकती।"

"तो भगवान् अवलोकितेश्वर जी से पूछ लेना था।"

"पूछा था। वे कहते थे कि प्रकृति का नियम है कि जब निर्वाण-प्राप्ति होने वाली होती है, तो मनुष्य ऐसा अनुभव करता है, जैसे वह निराधार आकाश मे स्थित है। इससे उसे कभी-कभी भय सा लगने लगता है। धीरे-धीरे जब मन को यह विश्वास हो जाएगा कि यह निराधार-अवस्था वास्तव मे दृढ़ आधार पर स्थित है, तब मन आत्म-विश्वास प्राप्त कर लेगा।"

"तो ठीक है। अवलोकितेश्वर जी महाराज बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं। उनके कथन में अवश्य ही तथ्य होगा। चिन्ता की कोई बात नहीं हो सकती।"

"चिन्ता न सही, परन्तु प्रसन्नता भी तो नहीं होती। क्यो, यह कुछ समझ में नहीं आता।"

"महारानी जी! एक बात कहूँ?"

"हा हा। ठीक समझ मे आई तो अवश्य मानूँगी।"

"मन के द्वार दस इन्द्रिया ही तो हैं। इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने का यत्न करिये। मन स्वयं सुखी हो जाएगा। मन का सुख ही तो आनन्द कहाता है।"

"कात्यायिनी! यह आज तुम आर्य-जीवन मीमासा छोड़ बौद्ध-जीवन मीमासा की बात क्यो कर रही हो? आर्य सिद्धान्त के अनुसार, आनन्द तो आत्मा का गुण है। मन को जो सुख मिलता है, वह क्षण-भगुर है।"

"महारानी जी सत्य कहती है। परन्तु आप बौद्ध मीमासा को मानने वाली हो गई हैं न। अतएव मै उसी के अनुसार ही तो बात कर सकती

हूँ। यदि कहीं कहती कि आत्मा को आनन्दित करने के लिए भगवान का भजन करना चाहिए तो आप, सदा की भाँति, उत्तर देतीं कि मैं क्या मूर्खों की-सी बातें करती हूँ। आत्मा कहाँ है, जिस को आनन्दित करना है ? परमात्मा कौन है, जो आत्मा को परमानन्द प्रदान करने की शक्ति रखता है ?

"महारानी जी ! इसी कारण मैंने यही उचित समझा कि आपको आपकी जीवन-मीमासा के अनुसार सुख-शान्ति सुलभ करने का उपाय बताऊँ। आप तो आत्मा-परमात्मा का अस्तित्व मानती नहीं। मन को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रिय-सुख प्राप्ति का मार्ग बता दिया है।"

"क्या करने को कहती हो तुम ?"

"देखिए, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों के विषयो का भोग होना चाहिए। सप्ताह मे एक दिन मधुर संगीत सुना जाए। दूसरे दिन सुन्दर दृश्य देखे जाएँ। तीसरे दिन नृत्य कराया जाय। चौथे दिन बहुत ही स्वादिष्ट पकवान बनवा कर खाये जाएँ। पाँचवे दिन सुगन्धित द्रव्य, कोमल गद्दे तथा अन्य सुखप्रद उपकरण भोग किए जाएँ।"

कात्यायिनी की, मन को आनन्दित करने के लिए यह मीमासा सुन महारानी राज्यश्री चकित रह गईं। महारानी को चुप देख कात्यायिनी ने आगे कहा, "तो महारानी जी ! आज्ञा हो तो हमारे राज्य के सर्वश्रेष्ठ गायक गायानाचार्य श्री कमलेश्वर भट्ट को, आज सायकाल संगीत सुनाने के लिए बुलाया जाये।"

"महाराज से पूछना होगा।"

"परन्तु उनका हृदय तो डोल नही रहा। हृदय तो आपका बैठ रहा. वे इसमे क्या कहेगे ?"

"तो उनको क्या मेरे लिए कुछ करना नहीं चाहिए ?"

"यदि वे करें तो उचित ही है। तो आप उनसे कहिए।"

"क्या कहूँ ?"

"आप कहिए कि आपका चित्त नहीं लगता। इस कारण मनोरंजन

के लिए राज्य-प्रासाद मे सगीत, नृत्य आदि का आयोजन हो। इससे आपकी इन्द्रियाँ तुष्ट होगी और मन प्रसन्न होगा।"

महारानी राज्यश्री इस आशा मे कि महाराज उनके लिए यह सब आयोजन करना स्वीकार कर लेंगे, प्रसन्न हो गई और कात्यायिनी को अपना चित्र पूरा करने के लिए कह, उसके सामने बैठ गईं।

: २ :

महाराज ग्रहवर्मन बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी का उपदेश सुन सीधे राज्य परिषद् की बैठक मे जा पहुँचे और अपने मन्त्री-मंडल से राज्य-कार्य के लिए विचार-विनिमय करने लगे।

महामात्य पद्मराज, अमात्य विश्वेश्वर, सेनानायक सुषेण एवं कन्नौज के अन्य मंत्रीगण बैठे हुए थे। महाराज ने अपना आसन ग्रहण किया तो महामात्य पद्मराज ने परिस्थिति का वर्णन कर दिया।

उसने कहा, "महाराज! गौडराज्य से समुद्रगुप्त मालवा लौट चुका है और उसके लौटने से राज्य-सभा मे तथा जनता मे उत्साह की तरंग दौड़ गई है। हमारे गुप्तचरों का यह कहना है कि सैनिक तैयारियाँ और भी अधिक वेग से चलनी आरम्भ हो गई हैं।"

"तो मंत्रीगण मुझे क्या राय देते हैं?"

"महाराज! हमे भी सेना में अविलम्ब भर्ती आरम्भ कर देनी चाहिए और अस्त्र-शस्त्र बनवाने के लिए ग्राम-ग्राम मे भट्टियाँ चालू करवा देनी चाहिये।"

"तो युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी जाय?"

"नहीं महाराज! युद्ध की नहीं, प्रत्युत आत्म-रक्षा की। युद्ध के लिए तो मालवा पर आक्रमण करना ठीक रहता। परन्तु हमे तो अपने देश की रक्षा के लिए तैयार होना चाहिए।"

"ठीक है परन्तु इसके लिए धन कहाँ से आएगा महामात्य?"

"अभी तुरन्त कार्यारम्भ के लिए तो कोष से निकालना चाहिये।"

"परन्तु कोष तो पहिले ही रिक्तप्रायः है। अभी पिछले मास एक लक्ष्य स्वर्ण मुद्रा महारानी के नाम बन रहे चैत्य के लिए दान मे दी गई हैं।"

"कुछ तो कोष मे होगा ही।" महामात्य ने कह दिया।

"बीस सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ बोधिसत्त्व जी को देने के लिए वचन दिया गया है।" अर्थ मत्री ने कहा, "वे बौद्ध-धर्म प्रचारार्थ देशाटन को जाना चाहते हैं।"

"तो उनको अपना भ्रमण अभी स्थगित करने के लिए कह दिया जाए।" ✓

"यह असम्भव है।" महाराज ने कहा, "विशेष रूप मे जब उनको यह पता चलेगा कि यह धन युद्ध की तैयारी मे व्यय हो रहा है।"

"तो महाराज! प्रजा पर कर बढ़ा दिया जाए।"✓

"कर बढ़ाने से असन्तोष बढ़ेगा और प्रजा मेरे ही विरुद्ध हो जाएगी।"

"प्रजा को यह बता दिया जाए कि पडौसी राज्य से युद्ध की आशका है और प्रजा की रक्षा के लिए हमे युद्ध सामग्री इत्यादि तैयार करनी है। जब जनता को यह पता चलेगा कि उनकी बहू बेटियों और बाल-वृद्धो को आक्रमण से कष्ट होगा, तो वे प्रत्येक प्रकार का त्याग करने के लिए तैयार हो जाएँगे।"

"मुझको इसमे सन्देह है। इस पर भी महामात्य महाप्रभु से मिल ले और यदि उन्होने हमारी योजना को स्वीकार कर लिया तो हम प्रजा पर कर भी लगा सकेंगे और सेना मे वृद्धि भी कर सकेंगे।"

"यदि महाराज आज्ञा दे तो मै आज ही उनकी सेवा मे उपस्थित होकर इस विषय मे बात करना चाहूँगा।"

"हाँ, कर सकते हो। हमने उन्हे परिस्थिति से परिचित कर दिया है।"

"एक और निवेदन है महाराज!"

"हाँ बताओ।"

"आपके स्वसुर श्रीकठाधिपति श्रीमान् प्रभाकर वर्धन जी को सहायता

के लिए लिखा जाए। वे यदि इसमे कुछ हाथ बटाएँ तो हम मालवा वालो के दात सहज ही खट्टे कर सकते है।"

"वे कदाचित् कुछ सहायता नहीं कर सकेंगे। श्रीमान् प्रभाकर वर्धन स्वयं तो वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके है। उनका ज्येष्ठ सुपुत्र राज्यवर्धन गाधार-देश मे हूणो से युद्ध कर रहा है और श्रीकठ की अधिकतर सेना राज्य वर्धन के साथ है।"

"यह तो ठीक है। हमको अपने पॉव पर खडे होने का यत्न करना चाहिए। इस पर भी जितने अधिक मित्र सहायता के लिए आ जाये, अच्छा ही है।"

इस पर महाराज ग्रहवर्मन ने बात बदल दी। उन्होने कहा, "महामात्य! आज महाप्रभु ने बताया है कि अभी तक हमारे राज्य मे बौद्ध भिक्षुओ के लिए यात्रा की वे सुविधाएँ नही हैं, जो मगध मे महाराज अशोक के काल मे थीं। कुछ भिक्षु महाप्रभु के पास पहुँचे थे और राज्य के भडार से उचित मात्रा मे अन्न न पाने के विषय मे कह रहे थे।"

"मैं इस विषय मे जाच करूँगा, महाराज!"

"सेनापति!" महाराज ने सुषेण को सम्बोधन कर कहा, "सेना की व्यवस्था के विषय मे क्या कहना है?"

"महाराज! पिछले दो वर्ष से सेना को वेतन नहीं मिला। कोषाध्यक्ष ने इस मास सब को कुछ-न-कुछ देने का वचन दिया था, परन्तु अभी तक एक रजत भी इस कार्य के लिए नहीं मिली।"

उत्तर अर्थमत्री ने दिया, "मैंने एक लक्ष मुद्राएँ इस अर्थ एकत्रित की थीं परन्तु वे चैत्य बनाने के लिए दे दी गई है। अब पुनः इतना धन एकत्रित होने मे दो मास लग जाएँगे।"

"अच्छी बात है। महामात्य महाप्रभु से मिल ले और उनसे स्वीकृति लेकर, कर-वृद्धि का आयोजन कर लें। वास्तव मे कठिनाई यह है कि प्रायः सेठी लोग बौद्ध उपासक हैं। यदि महाप्रभु की स्वीकृति मिल गई तो वे सहर्ष धन दे सकेंगे।"

इस समय अमात्य विश्वेश्वर ने कहा, "महाराज! उपाध्याय चक्रवर्ती जी का सन्देश आया है कि उनकी पाठशाला को वार्षिक सहायता-निधि नही भेजी गई। परिणामस्वरूप गौओ के लिए भूसा और दाना नही आ सका। गौओ का दूध सूख रहा है।"

"उपाध्याय जी से कह दिया जाए कि इस वर्ष गौओ को दाना न दिया जाय।"

"तो विद्यार्थियों के लिए दूध कम हो जायगा।"

"उनको इतना तो त्याग करना ही होगा। अगले वर्ष अधिक दूध मिल जायगा।"

इस प्रकार एक प्रहर तक राज्य परिषद् की बैठक चलती रही और एक के पश्चात् दूसरी समस्या उपस्थित होती रही, परन्तु धनाभाव के कारण किसी भी समस्या को अन्तिम स्तर तक न पहुँचाया जा सका।

दो दिन के पश्चात् राज्य सभा की बैठक पुनः करने का निश्चय कर महाराज उठ खड़े हुए और मन्त्रीगण भी जाने को तैयार हो गए।

महाराज गए तो सुषेण ने महामात्य को एक ओर ले जाकर पूछा, "अब क्या होगा?"

"सर्वनाश बन्धु! शीघ्र ही राज्य पर आक्रमण होने वाला है और हमारे पास जो थोड़ी-बहुत सेना है, उसके वेतन के लिए भी धन नहीं है।"

"यह तो ठीक है कि महाराज निर्वाण-पथ के अनुगामी हैं और वे इतने वीतराग हो चुके हैं कि उनमे राग, लोभ, मोह आदि विकार नही; परन्तु जनता का क्या बनेगा?"

पद्मराज ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सुषेण पुनः कुछ विचारकर पूछने लगा, "तो आप बोधिसत्त्व जी के पास जा रहे है क्या?"

"इसमे लाभ तो प्रतीत नहीं होता, परन्तु महाराज की आज्ञा है। पालन करनी ही होगी।"

"कब जा रहे है?"

"अभी जाने का विचार है।"

"तो मुझको भी साथ ले चलिए महामात्य !"

"मुझको कुछ भी आपत्ति नहीं। इस पर भी आपके चलने से कुछ लाभ होगा क्या ? मुझे तो कुछ समझ नहीं आता।"

"मुझे तो लाभ होगा। मैं वहाँ मकराका से मिल सकूँगा।"

"ओह ! यह तो भूल ही गया था। क्या अब पुनः उससे सम्पर्क बन गया है।"

"नहीं मित्र ! जब से वह भिक्षुणी बनी है, महाप्रभु की ही सेवा मे रहती है। पहिले तो वह मुझसे मिलती तक नहीं थी, परन्तु अब इतनी कृपा करती है कि चैत्य मे जाने पर दर्शन दे देती है। वह सदैव मुझसे कहती रहती है कि मैं भी भिक्षु बन जाऊँ। वह हमारे गृहस्थो के जीवन को हेय मानने लगी है।"

"तो क्या आप भी ऐसा ही मानने लगे है ?"

"उसके कहने से तो कुछ समझ मे नहीं आता। हाँ, राज्य की अवस्था देख अवश्य वैराग्य उत्पन्न होने लगा है। मुझको तो कुछ ऐसा समझ मे आ रहा है कि जिस नौका पर हम सवार है, वह मँझधार मे डूबेगी और हम भी उसके साथ ही डूबेंगे। मैं इस नौका के डूबने से पहले ही इससे बाहर आ जाना चाहता हूँ।"

"तो यह बौद्ध-दीक्षा आपको इस नौका से निकलने का उपाय प्रतीत होने लगा है ?"

"हाँ। गृहस्थ मे रहता हुआ यदि मन्त्री-पद से त्याग-पत्र देता हूँ तो महाराज और प्रजा की दृष्टि मे पलायक माना जाऊँगा। सब लोग यही कहेंगे कि भीड के समय भीरुओं की भाँति घर मे जा बैठा हूँ। इसके विरुद्ध बौद्ध भिक्षु बनने से तो मैं निन्दा के स्थान प्रशसा का पात्र बन जाऊँगा।"

"बन्धु ! जानना चाहते हो कि मेरे मन मे इसका क्या अर्थ जान पडा है ? मैं समझूँगा कि तुम न केवल भीरु हो, प्रत्युत वचक भी। महाराज का काम छोड देने से कुछ तो सत्यप्रियता प्रकट होगी ही। तुम

यह तो कह सकोगे कि महाराज की नीति से सहमत न होने से तुम त्याग-पत्र दे रहे हो; परन्तु बौद्ध भिक्षु बनने से तो यह कहना पड़ेगा कि तुम्हे संसार से विरक्तता प्राप्त हो गई है, जिसका दूसरा नाम वचना है।"

"कृष्ण की गीता के सिद्धान्तो से न ? परन्तु बौद्ध मीमासा से तो यह महात्याग माना जाएगा।"

महामात्य पद्मराज हॅस पड़ा। सुरक्षा मन्त्री ने भी हॅसते हुए कहा, "मित्र! शकर के मतानुसार यह सब-कुछ मिथ्या है। सत्य केवल आत्मा है और आत्मा सब मे एक समान विराजमान है। इस कारण भी मैं समझता हूॅ कि इस व्यर्थ रक्तपात से, जो अनिवार्य प्रतीत हो रहा है, मै पृथक् हो जाऊॅ। वास्तव में भगवान् बुद्ध की मीमासा का अनुकरण करूॅ अथवा आचार्य शकर की मीमासा का, बात एक ही होगी। संन्यास ही मेरी समस्या का सुझाव है।

"और फिर इन मीमासको की बात छोड़ भी दूॅ तो भी मेरे घर की परिस्थिति अब सूनी एवं नीरस हो गई है। जब से मकराका गई है, मुझको घर आत्मा-रहित प्रतीत होने लगा है। मैं इस एकाकी जीवन से ऊब गया हूॅ।"

दोनो मन्त्री लम्बे-लम्बे पग उठाते हुए राज्य-भवन से निकल राज-पथ पर चले जा रहे थे। वे पूर्वी नगर-द्वार को जा रहे थे और दोनो के मस्तिष्क मे भविष्य विकट रूप धारण कर हलचल मचा रहा था। दोनो समझ रहे थे कि कन्नौज का भविष्य अन्धकारमय है, परन्तु दोनो के मन मे इस सभावित, अन्धकारपूर्ण भविष्य की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न थी।

पद्मराज, काशी के एक आचार्य परजाता का शिष्य था। उसके रोम-रोम मे भारत-युद्ध नामक ग्रन्थ मे वर्णित कृष्ण गीता का कथन चक्कर काट रहा था—

'यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥'

पद्मराज और सुषेण नगर-द्वार से निकले तो पद्मराज ने अपने मन मे उठ रहे उद्गार वर्णन कर दिए। उसने कहा, "बन्धु ! मैं भी यह देख रहा हूँ कि कन्नौज मे महाप्रलय समावित है। परन्तु इससे भय खाकर भाग जाना और बौद्ध-विहार मे मुख छुपाने के स्थान कर्म करते हुए, अपने स्थान पर डटे रहना मै अधिक उचित समझता हूँ।"

"तो मित्र ! यह समझ लो कि तुम्हारा इहलोक समाप्त हुआ और उसके पश्चात् क्या होगा, कोई नही जानता।"

"तुम्हारे कहने का अर्थ है कि मैं मार डाला जाऊँगा। मुझे इसका भय नहीं। मै तो भगवान् कृष्ण के इस कथन को मानता हूँ,

'गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिता।'

"कौन जीवित रहेगा अथवा कौन मरेगा, यह पण्डितो के शोच का विषय नही। विद्वान् तो यह जानते हैं,

'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।'"

"परन्तु मित्र ! धर्म क्या है ? क्या तुम इस नपुंसक और मिथ्याचारी राजा की सेवा करना धर्म समझते हो ?"

पद्मराज इस पर हंस पडा। हंसकर उसने कहा, "तो क्या तुम समझ रहे हो कि मै ग्रहवर्मन की सेवा कर रहा हूँ ? नहीं। मै तो कन्नौज-राज्य का सेवक हूँ। राज्य का अर्थ ग्रहवर्मन नहीं, प्रत्युत् यहाँ की कोटि-कोटि जनता है। उनके प्रति मेरा जो धर्म है, वही मै पालन कर रहा हूँ। दुर्भाग्य यह है कि मै राज्य के सब सेवकों का कार्य नही कर सकता। मेरी शक्ति सीमित है। मैं तो ग्रहवर्मन् को भी राज्य का सेवक मात्र ही समझता हूँ। वह अपने धर्म का पालन नहीं कर रहा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मै भी अपना धर्म पालन करना छोड दूँ।"

इस समय वे चैत्य के द्वार पर पहुँच गए। राज्य के दो मन्त्रियो को पैदल ही आते देख श्रावक, जो चैत्य-द्वार पर बैठे थे, आश्चर्यचकित रह गए। वे इसका अर्थ नहीं समझ सके थे।

इस पर भी उनके आने की सूचना तुरन्त महाप्रभु को भीतर भेज

दी गई ।

: ३ :

महाप्रभु अवलोकितेश्वर ने मन्त्रीगण से पूछा कि वे किस उद्देश्य से आए हैं । पद्मराज ने मालवा की सैनिक तैयारी का वर्णन कर निवेदन किया, "महाप्रभु ! मन्त्री-मण्डल की यह सम्मति है कि कन्नौज की सुरक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए । इसके लिए सेना मे वृद्धि तथा प्रचुर मात्रा मे अस्त्र-शस्त्र निर्माण होने चाहिये । राज्य-कोप तो बौद्ध सम्प्रदाय के कार्यों मे ही व्यय हो चुका है । इस कारण कर-वृद्धि की आवश्यकता है । महाराज कर-वृद्धि की आज्ञा देने से पूर्व भगवान् का आशीर्वाद चाहते है ।"

"महामात्य !" महाप्रभु ने गम्भीर भाव धारण कर कहा, "मैं इसमे अपनी सहमति नही दे सकता । मेरी दृष्टि मे मालवाधिपति देवगुप्त किसी प्रकार भी असुर अथवा राक्षस नहीं । कन्नौज मे देवगुप्त का राज्य होता है अथवा ग्रहवर्मन् का, मेरे लिए चिन्ता का विषय नही । हाँ, नर-रक्त-प्रवाह की चिन्ता मुझे अवश्य है ।

"अतएव मेरी सम्मति मे न तो सेना बढाने की आवश्यकता है और न ही अस्त्र-शस्त्र के निर्माण की । यह धन का अपव्यय होगा ।"

"तो भगवन् ! देवगुप्त की सेना कन्नौज पर अधिकार कर लेगी और फिर विजयी सेना यहाँ की प्रजा पर अत्याचार भी कर सकती है । वह हत्याएँ भी कर सकती है; स्त्रियो का सतीत्व भी हरण हो सकता है ! महाराज ग्रहवर्मन की या तो हत्या हो जायगी अथवा वे आत्म-हत्या कर लेगे ।"

"ऐसा क्यो होगा ? देखो महामात्य ! यदि मालवा की सेना कन्नौज मे आई तो तुम उसके स्वागत का प्रबन्ध कर देना । महाराज देवगुप्त को ॅ का राज्य देने के लिए विधान कर देना । ऐसी अवस्था मे देवगुप्त वा उसकी सेना क्यो किसी की हत्या करेगी ।

"मानव-जन्म अति मूल्यवान परिस्थिति है, कई जन्म-जन्मान्तर के

पश्चात् किसी प्राणी को मिलता है। इसका हनन, राज्य जैसी तुच्छ वस्तु के लिए करना घोर पाप होगा। प्रत्येक मनुष्य के लिए इस जीवन को दीर्घ करने का अवसर मिलना चाहिये, जिससे वह अपने निर्वाण-मार्ग पर अग्रसर हो सके। युद्ध का मार्ग इस मे बाधक है। हम पंच-शील सिद्धान्त के मानने वाले हैं। पंच-शील की धुरि शान्ति है। शान्ति ही मनुष्य की उन्नति का साधन है और शान्ति युद्ध से प्राप्त नहीं हो सकती।"

"भगवन्! यह आपकी नीति अशुद्ध है। कन्नौज राज्य ने शान्ति भग करने का आयोजन नहीं किया। अतएव यदि कोई हत्या होती है, तो उसका पाप हम पर नहीं हो सकता। यह पाप तो मालवाधिपति को ही लगेगा। हम तो अपने अधिकार की रक्षा के लिए ही सेना तथा अस्त्र-शस्त्र निर्माण करना चाहते हैं।"

"नहीं! तुम मेरी युक्ति नहीं समझे। मालवा के कन्नौज पर आक्रमण मे कौन दोषी होगा, कौन निर्दोष, यह जानना हमारा कार्य नहीं। प्रकृति के नियम इसका निर्णय करेंगे। हमे तो यह देखना है कि मानव-जीवन व्यर्थ न जाए। सहस्रों सैनिक जो युद्ध मे मारे जावेंगे, निर्वाण-पथ पर की उन्नति मे बाधा पाएँगे। मै यह नहीं चाहता, इस कारण मै इसकी अनुमति नहीं दे सकता।

"जाओ, महाराज से कह दो कि युद्ध करना घोर पाप है। मैं कभी भी इस पाप के लिए सम्मति नहीं दे सकता। मेरी सम्मति है कि महाराज अपना एक दूत मालवा भेजे, जिसके द्वारा वे देवगुप्त पर अपनी शान्ति-प्रियता प्रकट कर दे। इस पर भी यदि वह आक्रमण करे तो उसको अपना एक भूला हुआ बंधु मान, राज्यभवन मे आमन्त्रित करे और उससे वार्तालाप द्वारा किसी ऐसे निर्णय पर पहुँचे, जिससे दोनो राज्य शान्तिपूर्वक रह सके।"

पद्मराज तो कुछ ऐसी ही सम्मति की आशा कर रहा था। इस पर भी वह आया था और उसने परिस्थिति का वर्णन कर दिया था। अब

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी का आदेश सुन वह उठ खड़ा हुआ और जाने से पूर्व निवेदन करने लगा, "महाप्रभु ! हम बौद्ध नहीं है। अतः हमे आपके पचशील सिद्धान्त पर विश्वास नही है। हम लोग तो यह मानने वाले हैं—

'परित्राणाय साधूनां विनाशय च दुष्कृताम् ।'

"परन्तु मैं यहाँ का राजा भी तो नहीं। केवल मन्त्रणा देने वाला हूँ। अतः जाकर महाराज को आपका आदेश सुनाकर, अपनी मन्त्रणा भी दे दूँगा। यदि महाराज ने मेरी मन्त्रणा नही मानी तो महामात्य पद का त्याग कर एक नागरिक के अधिकार से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करूँगा।"

"क्या मंत्रणा देने जा रहे हो महामात्य ?"

"यदि महाराज ने महाप्रभु के आदेश से भिन्न निर्णय किया तो मेरी सम्मति यह होगी कि महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी को बंदीगृह मे डाल दिया जाए और राज्य के सब युवको को, जिनकी आयु बीस और तीस वर्ष के भीतर है, सेना मे भर्ती कर लिया जाए। सब को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी जाए और पूर्व इसके कि मालव-नरेश कन्नौज पर आक्रमण करे, मालवा पर आक्रमण कर उसकी ईंट-से-ईंट बजा दी जाए।"

"शान्तं पापं ! शान्तं पापं !! महामात्य ! तुम बहुत ही दुष्ट प्राणी हो। हमारा आदेश महाराज को सुना देना और यदि एक धर्मात्मा, सत्य-प्रिय और निष्पाप प्राणी की सम्मति मानो तो तुरन्त राज्य छोड़कर चले जाना, अन्यथा कहीं बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को बंदी करने के स्थान स्वय बंदी न बन जाओ। जाओ, मेरे मन की शान्ति भंग मत करो।"

जब महामात्य लौटा तो सुषेण महाप्रभु के सम्मुख खड़ा हो गया। उसको खड़ा देख महाप्रभु ने पूछा, "क्या चाहते हो अमात्य सुषेण ?"

"महाराज ! भिक्षुणी मकराका के दर्शनो का अभिलाषी हूँ। स्वीकृति दीजिए।"

"भिक्षुणी इस समय चैत्य के प्रबन्ध-कार्य मे व्यस्त है। कदाचित्

वह नहीं मिल सकेगी।"

"भगवन्! उससे पूछ तो लीजिए। यदि अवकाश होगा तो वह आजाएगी अन्यथा उत्तर आ जाएगा।"

महाप्रभु ने ताली बजाई। एक भिक्षुक महाप्रभु के आगार में आ प्रविष्ट हुआ।

महाप्रभु ने आज्ञा दी, "जाओ भिक्षुणी मकराका को कहो कि अमात्य सुषेण दर्शनार्थ आए हैं।"

भिक्षु गया तो सुषेण महाप्रभु को नमस्कार कर बाहर चैत्य के प्रागण मे आ गया। वहाँ एक पीपल के वृक्ष की छाया में खडा हो प्रतीक्षा करने लगा।

लगभग चौथाई घडी प्रतीक्षा के पश्चात् एक स्त्री, जिसका सिर मुंडा हुआ था और जिसने पीत वसन धारण किए हुए थे, आकर सुषेण के सम्मुख खडी हो गई। वह भिक्षुणी मकराका थी। उसकी आयु तीस वर्ष के लगभग प्रतीत होती थी। रूप रेखा तीखी और सर्वथा गौराग थी। जब वह अमात्य के सम्मुख आकर खडी हो गई तो अमात्य ने कहा, "देवी! स्वास्थ्य कैसा है?"

"ठीक है।"

"चित प्रसन्न है क्या?"

"हाँ! सब प्रकार से ठीक हूँ।"

"तुम्हारा पुत्र मदन तुमको बहुत स्मरण करता है।"

"तो उसको ले आना था।"

"तुम क्यों नहीं आतीं?"

"इस कारण कि पहली बार जब मैं वहाँ गई थी तो तुमने मुझ पर बलात्कार करने का प्रयत्न किया था। इससे मेरे चित्त मे कितने ही दिन तक अशान्ति रही थी। ऐसी बातों से मेरी उन्नति मे बाधा उत्पन्न होती है।"

"परन्तु क्या तुम्हारा चित्त मदन से मिलने को नही करता?"

"नहीं भन्ते ! मैं राग-द्वेष से ऊपर उठ रही हूँ। परन्तु वह तो बालक-मात्र ही है। उसको अभी ज्ञान नहीं, इस कारण यदि वह मुझसे मिलना चाहता है तो यहाँ आकर मिल सकता है।"

"तो ले आऊँगा। अगली बार जब मिलने आऊँगा तो उसे लेता आऊँगा। क्या तुम मुझे भी इसी कारण दर्शन देने की कृपा करती हो कि मेरे चित्त को शान्ति प्राप्त हो ? अथवा क्या तुम्हारा भी मन करता है कि मुझसे मिलो ?"

"भन्ते ! मेरा मन मिलने को नहीं करता। भगवान तथागत की अपार कृपा है कि मै वीतराग हो चुकी हूँ। मेरे लिए आप प्रकृति का एक ऐसा अंश मात्र हैं, जिसके सम्मुख यह शरीर कुछ काल के लिए जा पड़ा था। भगवान तथागत की कृपा है कि अब मै आपसे उच्चकोटि की प्राकृतिक विभूति के आलोक में पहुँच गई हूँ।"

"तो तुम मुझसे मिलने क्यो आती हो ?"

"केवल इस कारण कि भगवान आपके मन मे भी प्रकाश करे और आप भी सन्मार्ग पर अग्रसर हो सके।"

"मैं कभी-कभी इतना व्याकुल हो उठता हूँ कि एक नवीन विवाह करने का विचार करने लगता हूँ। फिर यह आशा कर कि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, मुझ पर कभी तो कृपादृष्टि करोगी, यहाँ तुम्हारे दर्शन के लिए आ जाता हूँ। तुम निर्वाण-पथ पर कितना आगे बढ चुकी हो, मैं नहीं जानता। हाँ, मैं तुम्हारे अभाव को नित्य अनुभव करता हूँ।"

"भन्ते ! अब मेरे जाने का समय हो गया है। मुझको इतना ही अवकाश था। मेरा तो केवल यह कहना है कि इन्द्रियों को उत्तेजना देने से चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती। चित्त की शान्ति के लिए उत्तेजना से दूर होने की आवश्यकता है। मेरा कहा मानिए, भिक्षु धर्म ग्रहण कीजिए। महाप्रभु से कह कर आपको कूर्मांचल प्रदेश मे किसी शीत स्थान पर कुछ वर्षों के लिए रहने का प्रबन्ध करवा दूंगी। वहाँ आपकी इन्द्रियो को शान्ति मिलेगी और तदनन्तर मन को भी शान्ति

मिलेगी। अच्छा अब मैं चलती हूँ।"

इतना कह मकराका घूम कर जिस ओर से आई थी, उधर चली गई।

: ४ :

महाराजा ग्रहवर्मन राज्य परिषद् की बैठक से उठ कर प्रासाद के अन्तःपुर में चले गए। अन्तःपुर के द्वार पर एक प्रतिहारिन ने हाथ जोड शीष नवाकर निवेदन कर दिया, "महाराज! महारानी जी दर्शन की अभिलाषा रखती हैं।"

महाराज, महारानी के आगार की ओर चले गए। उन्हे, द्वार पर ही महारानी उनकी प्रतीक्षा करतीं मिलीं। इस कारण वे विस्मय मे पूछने लगे, "महारानी जी की क्या आज्ञा है?"

"ऐसा मत कहिये महाराज!" राज्यश्री ने महाराज की बॉह-मे-बॉह डाल, उन्हें भीतर ले जाकर आसन पर बैठाकर कहा, "महाराज! मै तो आपकी दासी हूँ। मुझको आज्ञा करने का अधिकार नहीं। मै तो कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।"

"हॉ, हॉ, कहो क्या चाहती हो?"

"कई दिनो से चित्त उदास-सा रहता है। महाप्रभु का आज का कथन सुनकर तो चित्त इतना खिन्न हुआ है कि हृदय डोल उठा है। सखि कात्यायिनी ने इसको स्थिर करने का एक उपाय बताया है। मैं श्रीमान् जी से स्वीकृति चाहती हूँ कि वह उपाय प्रयोग मे ला सकूँ।"

"और वह उपाय क्या है?"

"कात्यायिनी का मत है कि मन के द्वार पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ है। अतः मन को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रियो को प्रसन्न करना आवश्यक है। इन्द्रियो की प्रसन्नता उनको विषयो मे तुष्टि देने से होती है। अतएव मै चाहती हूँ कि इस भवन मे नृत्य-सगीत इत्यादि का आयोजन हो जाया करे।"

"इससे क्या होगा ? नृत्य और संगीत तो इन्द्रियों को तुष्टि प्रदान
ारने के स्थान उत्तेजित करने वाले सिद्ध होंगे। इससे शान्ति के स्थान
ाशान्ति उत्पन्न होगी।"

"नहीं महाराज ! मन-बहलाव का इससे अच्छा उपाय और क्या
ो सकता है ?"

"प्रातः उठकर जब 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि,
ाघं शरणं गच्छामि' की मधुर ध्वनि कर्णगोचर होती है, तो कितनी
ाान्ति मिलती है चित्त को।

"जब नित्य भिक्षुओं और भिक्षुणियों की मण्डलियाँ दान-दक्षिणा
लिए पीत वसनों में प्रासाद के आगे से निकलती हैं, तो कौन नृत्य
ने अधिक शोभा और शान्तिवर्धक हो सकता है। मैं तो समझता हूँ
ृत्य और संगीत से शान्ति के स्थान, अपूर्ण इच्छाओं के चिन्तन से
न्ति ही मिलेगी।"

"तो आपकी सम्मति है कि आयोजन न किया जाय।"

"नहीं देवी ! मेरा यह अभिप्राय नहीं है। मैंने तो यह कहा है कि
च्छित प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।"

"परीक्षा करके तो देखना चाहिये।"

"तो यह आयोजन कर सकती हो। इसके लिए धन का प्रबन्ध हो
ायगा।"

"धन्यवाद ! दासी आपकी कृपाओं के लिए सदा आभारी रहेगी।"

पश्चात् इधर-उधर की बातचीत आरम्भ हो गई। महाराज अभी
ाज्यश्री के आगार में ही थे कि प्रतिहारिन ने आकर सूचना दी कि
हामात्य पद्मराज मिलने आए हैं।

महाराज ने महारानी की ओर देखा तो महारानी समझ गईं और
तिहारिन से बोली, "महामात्य को यहीं ले आओ।"

पद्मराज ने आकर महारानी को झुककर प्रणाम किया और महाराज
ारा इंगित आसन पर बैठकर बोला, "महाराज ! महाप्रभु अवलोकि-

तेश्वर ने आदेश दे दिया है। आज्ञा हो तो वर्णन करूँ।"

"हाँ, हाँ। बताओ। गुरुदेव की क्या आज्ञा है।"

"उनका आदेश है कि मैं महाराज से निवेदन कर दूँ कि युद्ध घोर पाप है। वे इस पाप के लिए सम्मति नहीं दे सकते। महाप्रभु चाहते हैं कि महाराज अपने एक दूत द्वारा मालवाधिराज के पास शान्ति का सन्देश भेजें। इस पर भी यदि मालवा-नरेश आक्रमण करें तो उनको एक भूला हुआ बन्धु मान आप उन्हें राज्यभवन में आमन्त्रित करें और उनसे बातचीत कर, ऐसे निर्णय पर पहुँचें, जिससे दोनों राज्य शान्ति पूर्वक रह सकें।"

इस आदेश को सुन महाराज ग्रहवर्मन गम्भीर विचार में पड़ गए इस पर महामात्य ने उस वार्तालाप का संक्षेप में वर्णन कर दिया, जो उसके और महाप्रभु के भीतर हुई थी।

महाराज ने वार्तालाप का अन्त सुन आश्चर्यचकित हो पूछा, "तो महामात्य महाप्रभु से लड़ आए हैं?"

"नहीं महाराज! हाँ, अपनी उनसे मत-भिन्नता प्रकट कर आया हूँ।"

"परन्तु महामात्य ने तो यह कहा है कि वह उनको बन्दीगृह में डाल देंगे।"

"युद्धकाल में विरोधी पक्ष वालों के साथ यह एक प्रकार की छूट मानी जाती है कि उनको बन्दीगृह में सुरक्षित रखा जाय। यही कारण है कि उन्होंने मुझको आज्ञा दे दी है कि या तो मैं राज्य छोड़ जाऊँ अथवा वे मुझको बन्दीगृह में डलवा देंगे।"

"यही तो झगड़े की बात है।"

"नहीं महाराज! मैं तो समझता हूँ कि महाप्रभु का मुझको देश निर्वासित करना अथवा बन्दी बनाना किसी प्रकार का झगड़ा करना नहीं। इसी प्रकार मेरा उनको बन्दी बनाना भी झगड़ा करना नहीं। युद्ध-समाप्ति पर हम पुनः मित्र रूप में मिल सकेंगे।"

"तो फिर महामात्य का क्या विचार है?"

"मैंने सन्देश दे दिया है। अब महाराज अपनी इच्छा बतायें कि ग्रह चाहते हैं अथवा सन्धि। सन्धि करनी है तो दूत भेज दिया जाय और यदि विग्रह करना हो तो अविलम्ब सेना का नियन्त्रण कर मालवा र आक्रमण कर देने की आज्ञा हो जाय।"

"हमारी सम्मति है कि दूत भेजना चाहिए और हमें ऐसा प्रत्येक त्न करना चाहिए, जिससे दोनो राज्यो मे शान्ति बनी रहे।"

"तो ठीक है। मेरा निवेदन है कि श्रीमान् के विचारो को प्रकट रने के लिए महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी ही सर्व प्रकार से उपयुक्त दूत ोंगे।"

"महामात्य पद्मराज क्यो नहीं ?"

"इस कारण महाराज! कि मै इसे मिथ्या मार्ग समझता हूँ। मुझे समें सफलता की आशा दिखाई नही देती।"

"सफलता-असफलता का तो प्रश्न ही नहीं है। आप जाइये और ालवाधिपति देवगुप्त को मेरी ओर से निमन्त्रण दे दीजिए कि वे हमारे ाज्य में पधारे।"

"महाराज! क्षमा करे। यह कार्य मुझसे नही हो सकेगा। मैं इसी मय महामात्य-पद का त्याग करता हूँ।"

"तो क्या तुम चाहते हो कि हम अपने महामात्य को बन्दी करने ी आज्ञा दे दे।"

"सेवक उपस्थित है और आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है।"

इस समय राज्यश्री ने कहा, "महाराज! बन्दी बनाने मे कुछ भी योजन नहीं रह जाता, यदि महामात्य एक निश्चित अवधि के भीतर ेश से बाहर हो जाते है।"

महाराज ग्रहवर्मन कुछ काल तक विचार करने के उपरान्त बोले, "पद्मराज! हम महारानी जी का प्रस्ताव स्वीकार करते हैं। हमारा यह ादेश है कि यदि आप सोलह प्रहर के भीतर कन्नौज राज्य छोड़कर चले हीं जाते तो वन्दीगृह मे डाल दिए जायँगे।"

"आज्ञा शिरोधार्य है महाराज! अब जाने की अनुमति चाहता हूँ।"

"तो कहाँ जा रहे हैं पद्मराज?"

"महाराज! अभी यह निश्चय नहीं किया कि राज्य छोड़कर जाऊँ अथवा नहीं। कन्नौज मेरी जन्म-भूमि है और मैं, आदि कवि मुनि वाल्मीकि के कथनानुसार कि जन्म-भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है, मानता हूँ। अतः जन्म-भूमि मे बन्दी बनकर रहना भी बाहर स्वतन्त्र घूमने से अधिक उचित प्रतीत होता है। इस पर भी अब मन्त्रीपद और इसके कर्तव्यो से मुक्ति पाकर अपने परिवार के प्रति कर्तव्य का निर्णय करने जा रहा हूँ। इसके पश्चात् ही जन्म-भूमि के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने का विचार करूँगा।"

"अच्छी बात है। यदि पद्मराज को कभी यह समझ आए कि वह अपनी जन्म-भूमि के प्रति कर्तव्य-पालन यहाँ के महाराज की सेवा में रहकर कर सकता है, तो वह सदैव आमन्त्रित है और महाराज उसका अपराध क्षमा कर, उसको पुनः उचित पद पर नियुक्त कर देंगे।"

"इस आश्वासन के लिए मै अत्यन्त आभारी हूँ।"

पद्मराज ने झुककर प्रणाम किया और आगार से बाहर निकल गया। उसके चले जाने के उपरान्त महाराज ग्रहवर्मन ने महारानी से पूछा, "प्रिय! क्या विचार कर रही हो?"

"महाराज! मेरा मन कहता है कि यह कुछ अच्छा नही हो रहा।"

"वास्तव मे यह पद्मराज आर्य है। इसने कभी भी बौद्ध-मीमासा को स्वीकार नहीं किया। यह आचार्य शंकर के मत को भी अशुद्ध मानता है। यह उस ठग वासुदेव का उपासक है, जिसने भारत युद्ध मे वञ्चना कर कौरवों की पराजय कराई थी और असंख्य प्राणियों की हत्या कराई थी। इस कारण इसको तो एक दिन यहाँ से जाना ही था। इस भीड़ के समय वह अपने को कर्तव्य से मुक्त पाकर भाग्यशाली मानता होगा।"

"महाराज! मैं तो यह कह रही हूँ कि इस भीड के समय एक योग्य बुद्धिशील व्यक्ति का हमारे से दूर चले जाना उचित प्रतीत नही हुआ।"

"जब हमने राज्य त्याग करने का निश्चय कर लिया है तो फिर पद्मराज जैसे व्यक्ति को समीप रखने की हमारी सामर्थ्य ही कहाँ है ? यदि यह हमारे समीप नही है तो हम अपनी नीति का पालन भी भली-भाँति कर सकेंगे।"

"परन्तु महामात्य हमारी नीति को अशुद्ध जो मानता था। उसका कहना है कि राज्य छोडना उचित नहीं। देश की रक्षा करना अधिक उचित है। साथ ही देश की रक्षा आक्रमण करने में है न कि आक्रमण किए जाने पर लडने मे।"

"ठीक है, परन्तु हमारा सिद्धान्त यह है कि सासारिक विभूतियो के लिए रक्त-प्रवाह किसी प्रकार भी उन्नति का मार्ग नहीं हो सकता। मनुष्य-मात्र के लिए सखा भावना का, किंचित् मात्र सुख-सुविधा के लिए, हनन करना निर्वाण-पथ मे बाधा खडी करना है।"

"पर महाराज ! दूसरे जब इसको मानें, तभी तो इस सिद्धान्त का पालन किया जा सकता है। हम चाहे चुपचाप बैठे रहे, तो भी दूसरो के न मानने पर हत्या हो जायगी और रक्तपात होगा ही।"

"दूसरे क्या करते है और क्या नही करते, यह हमारे विचार करने का विषय नही। हमने तो अपना व्यवहार ठीक रखना है। हमारी उन्नति तो हमारे व्यवहार के अधीन है। दूसरो के कर्मो का फल दूसरो को मिलेगा।"

महारानी राज्यश्री इस युक्ति का उत्तर नहीं दे सकीं। उसने कहा, "तो महाराज ! अब मालवा को दूत भेजने का विचार कर लीजिए। क्या महाप्रभु इस अर्थ जाना उचित समझेंगे।"

"यह तो वे ही बता सकते है। उनसे पूछना पडेगा।"

"यह भी तो अब विचार करना होगा कि महामात्य पद पर किसको नियुक्त किया जाए।"

"यह भी महाप्रभु से विचार कर निश्चित किया जायगा।"

"तो ठीक है। महाप्रभु को बुलवाकर विचार कर लीजिए। नीति-

संचालन मे आलस्य करना उचित नहीं।"

"हम महाप्रभु को यहाँ आने का निमंत्रण भेजे देते है। वे कल मध्याह्न का भोजन हमारे यहा करें, तो कैसा रहे?"

"कल मे अभी सात प्रहर शेष हैं। इतने काल मे क्या कुछ हो सकता है कहना कठिन है।"

"कुछ नहीं होगा मेरी रानी! भगवान् तथागत के आशीर्वाद से सब कुछ ठीक होगा।"। इतना कह महाराज उठकर महारानी के आगार से विदा हो गए।

महाराज के जाते ही कात्यायिनी आ गई। कात्यायनी महारानी के सम्मुख बैठकर पूछने लगी, "महारानी जी! क्या हुआ है हमारे सगीत-समारोह के आयोजन का?"

"महाराज ने तो स्वीकृति दे दी है परन्तु मेरा विचार बदल गया है। मुझको देश पर भारी भीड पड रही दिखाई दे रही है। ऐसे समय मे राज्य-प्रासाद मे राग-रग शोभा नहीं देगा।"

"क्या भीड पड रही है महारानी जी?"

"मालवा मे सैनिक तैयारी हो रही है। महामात्य का विचार था कि वह कन्नौज पर आक्रमण के लिए है और इसका विरोध करने के लिए यहाँ भी सैनिक तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए। महाराज तथा महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी इस तैयारी और सभावित आक्रमण के विरोध की स्वीकृति नहीं देते। इस कारण महामात्य अपने पद का त्याग कर चले गए है।"

कात्यायिनी कुछ काल तक आश्चर्य में पडी रही। महारानी भी शोकमुद्रा बना प्रासाद की छत की ओर देख रही थीं। इस प्रकार दोनो अपने विचारो मे लीन थीं। अचानक कात्यायिनी के मन मे एक बात आई और उसने उसे महारानी के सम्मुख रख दिया। उसने कहा, "महारानी जी! एक बात का भय मेरे मन मे उत्पन्न हो गया है। कहीं ऐसा न हो कि महामात्य और महाराज परस्पर-विरोधी पक्षो के नेता बन

आक्रमण से पूर्व ही देश का नाश कर दे।"

"क्या कह रही हो तुम ? महामात्य पद-त्याग के पश्चात् अपने को वंदी बनाने के लिए तैयार थे।"

"तो महाराज ने उन्हे वदी बनाया क्यो नहीं ? भीड के समय तो एक ही नीति चलनी चाहिए। विरोधी विचार वालों के लिए कारागार ही उचित स्थान होता है।"

"यह तो महामात्य भी कहते थे। उनका कहना था कि यदि उनकी नीति चलनी है तो बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी को बदीगृह मे डाल देना चाहिए और यदि महाप्रभु जी की नीति चलनी है तो वे स्वयं बंदी होने के लिए तैयार हैं।"

"यही तो एक मार्ग है। जिस राज्य मे युद्धकालिक परिस्थिति में नीति-स्थिर और दृढ नहीं होती, वहाँ विनाश अवश्यम्भावी होता है।"

"महामात्य को महाराज की आज्ञा हुई है कि वह सोलह प्रहर के भीतर राज्य छोड़ कर चला जाए।"

"इतना विलम्ब ? एक प्रहर के भीतर ही क्यो नहीं ?"

"विलम्ब करने से क्या अन्तर हो जाता है ?"

"महामात्य पद्मराज वासुदेव कृष्ण की विचारधारा को मानने वाले हैं। वे अपने विचार बदल भी सकते हैं।"

"कुछ नहीं होगा कात्यायिनी ! तुम पद्मराज को नहीं पहचानतीं। वह सत्यवादी और देशभक्त नागरिक है। वह कोई ऐसा कार्य नहीं करेगा, जिससे देश को हानि पहुँचे।"

"इस पर भी यदि आप आपत्ति न करें तो मैं पता करूँ कि पद्मराज जी को अब क्या करने की इच्छा है।"

"तुम कैसे पता करोगी ?"

"पद्मराज की लड़की अलकनन्दा मेरी शिष्या है। वह मुझसे चित्र-कला सीखती है। मै आज जब उसके घर जाऊँगी तो बातों-ही-बातों में पता करने का यत्न करूँगी।"

"ठीक है। तुम पता करो। यदि कुछ गडबड प्रतीत हो तो उनको सन्मार्ग पर लाने का यत्न करना।"

: ६ :

कात्यायिनी बत्तीस-तेतीस वर्ष की आयु की युवती थी और अभी तक कुंवारी थी। विवाह को अपनी कला-साधना मे बाधा समझ उसने विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। यूँ तो उसके माता-पिता गाधार के रहने वाले थे। गाधार पर हूण आक्रमण के समय वे जन्म-स्थान छोड भारत के अन्तर्गत राज्यो का भ्रमण करते हुए कन्नौज मे आकर टिक गए थे। यहाँ पर वे अपना व्यवसाय स्थापित कर जीविकोपार्जन कर रहे थे। उस समय कात्यायिनी पाँच वर्ष की बालिका-मात्र ही थी। वह कन्नौज में ही बडी हुई और यहाँ ही उसने शिक्षा पाई और चित्रकला मे प्रवीणता प्राप्त कर यवन चित्रकार पराशर की शिष्या बन गई। पराशर, जब उसने कात्यायिनी को शिष्या बनाया था, उस समय पैंतीस वर्ष का अविवाहित युवक था। कात्यायिनी उस समय चौदह वर्ष की थी।

चित्रकला में योग्यता प्राप्त करने के साथ-साथ वह पराशर के प्रेम मे फंसती गई। परन्तु पराशर दिन-प्रतिदिन अधिक मद्यसेवी और वेश्यागामी बनता गया। कात्यायिनी ने कई बार प्रयत्न किया कि उसका गुरु विकृत मार्ग छोड दे, जिससे वह उसे अपना जीवन-साथी बना ले, परन्तु पराशर कात्यायिनी मे पुत्री-तुल्य भावना रखता था। इस कारण वह उससे विवाह के लिए तैयार नही हो सका और न ही अपना आचरण सुधार सका।

समय व्यतीत होने पर, चित्रकला में प्रवीणता प्राप्त करने के साथ-साथ कात्यायिनी को यह ज्ञान होता गया कि कला-साधना एक न समाप्त होने वाला मार्ग है और अब, जब वह उस पथ पर चल पडी है, तो जीवन भर उसे उस पर चलते रहना है। अपने गुरु से असफल प्रेम

और कला मे तल्लीनता के कारण उसका ध्यान विवाह से हट गया। अब वह बत्तीस-तेतीस वर्ष की हो गई थी और एक विशेष विचारधारा में बहने लगी थी। वह कला को ही अपना जीवन-साथी मानने लगी थी।

कुछ वर्षों से उसके चित्रो की ख्याति कन्नौज और उससे बाहर फैलने लगी थी। इससे उसको ग्रहवर्मन के राज्य-प्रासाद मे प्रवेश मिल गया। उसने महाराज तथा महारानी के कई चित्र बनाए। उसने कन्नौज राज्य के भी कई प्राकृतिक-सौन्दर्य के स्थानो के चित्र बनाए।

पद्मराज ने अपनी पुत्री अलकनन्दा मे चित्रकला के प्रति रुचि देखी तो उसे कात्यायिनी की शिष्या बना दिया। कात्यायिनी इस शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लेती थी। इस पर भी पद्मराज के परिवार से उसे कई प्रकार से लाभ होता रहता था।

पद्मराज की पत्नी विरोचना उसकी सखि बन चुकी थी और दोनो मे बहुत-कुछ विचार सामान्यता भी थी। कात्यायिनी की शिक्षा बौद्ध-प्रभाव के अधीन हुई थी। पराशर भी बौद्ध उपासक था। परन्तु विरोचना वैष्णव धर्म को मानने वाली थी। दोनो मे इस विषय पर विचार-विनिमय होता रहता था और कात्यायिनी धीरे-धीरे विरोचना के प्रभाव में आकर वैष्णव मतानुगामी बनती जाती थी।

वैष्णव मत वालो ने कन्नौज मे वासुदेव का एक विशाल मन्दिर बनवाया हुआ था। उस मन्दिर मे कीर्तन तथा देवदासियों का नृत्य होता रहता था। वासुदेव भगवान् कृष्ण के मन्दिर का पुजारी विष्णुकान्त एक महान् संगीतज्ञ था और कात्यायिनी विष्णुकान्त से संगीत सीखने लग गई थी। विष्णुकान्त का उसे सिखाने का आशय यह था कि वह कात्यायिनी को किसी दिन देवदासी बना लेगा। कात्यायिनी के विचारो मे परिवर्तन का श्रेय कुछ सीमा तक विष्णुकान्त के संगीत को भी था। जब विष्णुकान्त अपना चौतारा लेकर गाता,

'अरे मन भज नित्य नन्द किशोर
ललित त्रिभंग मनोहर छविमय ऋषि मुनि मानस चोर।

अरे मन भज······
अतुलित परम प्रेम रसनिधि, ललित नव मधुर निधान
अति उदार सौन्दर्य सुधार्णव, पा हो नन्द विभोर।
अरे मन भज······'

तो कात्यायिनी आनन्द-विभोर हो नृत्य करने लग जाती थी।

कुछ दिन से कात्यायिनी महारानी राज्यश्री को उदास देख रही थी और विष्णुकान्त के सुझाव पर ही उसने महारानी से राज्य-भवन मे संगीत-समारोह कराने के लिए कहा था। इस समारोह के फलीभूत होने से पूर्व ही राज्य पर सकट तथा महामात्य के त्याग-पत्र की बात कात्यायिनी को पता चल गई। पश्चात् महारानी से अनुमति प्राप्त कर वह पद्मराज से मिलने और उसके विचार जानने के लिए उसकी लड़की अलकनन्दा के आगारो मे जा पहुँची।

आज पद्मराज के प्रासाद मे महाराज ग्रहवर्मन के प्रासाद से भिन्न वातावरण था। महाराज के प्रासाद मे सदा शान्ति और गम्भीर वातावरण रहता था और इसका प्रभाव राज्य भर मे पडता रहता था। केवल वासुदेव के मन्दिर की स्थिति भिन्न थी। वहाँ दिन-रात मृदग, वीणा बजती रहती थी और पायलो की झकार तथा देवदासियो की मधुर संगीत-ध्वनि उठती रहती।

पद्मराज महामात्य-पद से त्याग-पत्र देकर अपने आवास मे पहुँचा और वहाँ जाते ही उसने अपनी पत्नी विरोचना को पूर्ण परिस्थिति से परिचित करा दिया। विरोचना यह सुन आगबबूला हो उठी। पद्मराज ने विष्णुकान्त को बुला भेजा और उससे सम्मति लेकर नगर के प्रमुख-प्रमुख वैष्णवो को अपने निवास्थान पर विचार-विनिमय के लिए बुला लिया।

जब कात्यायिनी वहाँ पहुँची तो पद्मराज की बैठक मे भारी जमाव हो रहा था। सब व्यक्ति आवेश मे भरे हुए, अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे। जब कात्यायिनी अलकनन्दा को ढूँढती हुई बैठक मे पहुँची

तो उसनें विरोचना और अलकनन्दा, दोनों को पद्मराज के समीप बैठे हुए पाया।

विष्णुकान्त ने कात्यायिनी को देख भीतर बुला लिया और पूछा, "राज्य-प्रासाद से आई हो क्या ?"

"हाँ गुरुदेव !"

"कोई नवीन समाचार है ?"

"नही। महारानी जी ने यहाँ का समाचार जानने के लिए भेजा है।"

"तो बैठ जाओ। प्रजा के इस अंग का विचार सुन लो और महाराज तथा महारानी को इससे अवगत करा देना।"

इस समय विष्णुकान्त उठकर कहने लगा, "भक्तजन ! रोष करने से तो कोई समस्या सुलझ नहीं सकती। समस्याओ को सुलझाने के लिए विचार, नीति और शक्ति की आवश्यकता होती है। आज मध्यरात्रि से पूर्व वैष्णवो का एक आयोग महाराज से मिलने जाना चाहिए और उनसे निवेदन करना चाहिए कि या तो वे आक्रमणकारियों से प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध करें अथवा राज्य का त्याग कर, कार्यभार किसी योग्य व्यक्ति को सौंप दे। सदैव अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन करने से राज्य नहीं चल सकता।

"अहिंसा अहिंसको के साथ तो ठीक है, परन्तु हिंसक पशुओ के साथ अहिंसा का प्रयोग न केवल अयुक्ति-संगत है, प्रत्युत् आत्महत्या के तुल्य भी है।

"भगवान् कृष्ण ने दुष्टो का दमन करने के लिए भारत-युद्ध का आयोजन किया था। लाखों सैनिक उस युद्ध में मारे गये थे। इस पर भी दुष्टो के विनाश के लिए यह किया ही गया था। युद्ध के पश्चात् पूर्ण देश-भर में सुख और चैन की वंशी बजने लगी थी। यही समस्या अब हमारे सामने उपस्थित है। मालवा राज्य दक्षिण-पथ के लिए तैयारी नहीं कर रहा है। उसकी दृष्टि कन्नौज पर है। अतः कन्नौज को अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए कुछ प्रयास तो करना ही चाहिए। इस

ओर प्रयास करना राजा का कार्य है, परन्तु एक मिथ्या विचार के अधीन राजा अपने कर्तव्य का पालन नहीं करना चाहता। अतएव हमको राजा से कह देना चाहिए कि हमारे बाल-बच्चों, बहू-बेटियों की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। राजा को हम कर इसी कारण देते हैं और यदि राजा यह नहीं कर सकता अथवा नहीं करना चाहता तो उसको यह कार्य, अर्थात् राज्य-भार, किसी अन्य योग्य व्यक्ति पर डाल देना चाहिए।

"मैं समझता हूँ कि हममें से पाँच व्यक्ति महाराज से आज रात ही मिलें। यदि तो महाराज कोई ऐसी योजना बताएँ, जिससे हमारी रक्षा का प्रबन्ध हो सके तो ठीक है, अन्यथा हमे अपनी रक्षा का प्रबन्ध स्वयं करना चाहिए।

"यह रक्षा हम किस प्रकार करेंगे, अभी इस पर विचार नहीं किया जा सकता। साथ ही हम उस रक्षा की योजना मे कहाँ तक सफल होंगे, अभी कहना असम्भव है। इस पर भी हम पूरा प्रयत्न करेंगे।

"हम कल मध्याह्न के समय पुनः मिलें और उस समय की स्थिति के अनुसार अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करें।

"यह महारानी जी की सखि कात्यायिनी यहाँ उपस्थित है। मै इसके हाथ नगर के पाँच प्रमुख व्यक्तियों के नाम महाराज के पास भेज देना चाहता हूँ, जिससे वे हमसे परामर्श कर सकें।"

कन्नौज के चार अन्य प्रमुख नागरिक विष्णुकान्त के अधीन महाराज से बातचीत कर, उसके परिणाम को अगले दिन मध्याह्न की सभा मे उपस्थित करने के लिए नियत कर दिये गए।

कात्यायिनी यह सन्देश लेकर महारानी के पास जा पहुँची। वहाँ पहुँच कात्यायिनी ने कहा, "महामात्य ने तो केवल अपने त्याग-पत्र के विषय मे बताया था। उस सभा मे मुख्य भाग वासुदेव मन्दिर के मुख्य पुजारी विष्णुकान्त जी ने लिया था और वह ही नागरिकों के नेता बन महाराज से भेंट करने आ रहे हैं।"

"महाराज उनसे भेंट करना स्वीकार नहीं करेंगे।"

"क्यो महारानी जी ?"

"राज्य कार्य-भार मे अनधिकृत लोगों का हस्तक्षेप सहन नहीं किया जाता।"

"परन्तु वे राज्य कार्यभार मे हस्तक्षेप करने नहीं आ रहे महारानी जी ! वे तो अपनी रक्षा की माँग करने आ रहे हैं। वे महाराज से अपना भय वर्णन करना चाहते हैं और उस भय के निवारण करने का आग्रह करना चाहते हैं।"

इस समय महाराज और महाप्रभु अवलोकितेश्वर वहाँ आ पहुँचे। उनको आया देख महारानी और कात्यायिनी उठ खडी हुई और प्रणाम कर प्रश्नभरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगीं। महाराज ने आने का कारण बताया, "देवी ! गुरुदेव ने राज्य के महामात्य पद को ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। वे कल मालवा की राजधानी अवन्ति जाने का विचार रखते है। इनको विश्वास है कि वे मालवाधिपति देवगुप्त से सन्धि कर ही लौटेगे।"

"महाराज !" महारानी राज्यश्री ने कहा, "कात्यायिनी नगर से यह सन्देश लाई है कि नगर के कुछ गण्य-मान्य लोग पुजारी विष्णुकान्त के नेतृत्व मे आपसे भेट करने आ रहे हैं।"

"कब ?"

"आज ही मध्य रात्रि से पूर्व।"

"पर हम उनसे मिलना नहीं चाहते।"

"क्यो ?"

"हम इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते।"

"यह तो आपको विदित नहीं कि वे क्या कहने आ रहे हैं। अतएव आप कैसे कह सकते हैं कि उनसे भेट की आवश्यकता नहीं ? महाराज ! नागरिको से मिल उनके दुःख-सुख से अवगत रहना एक राजा के लिए अत्यावश्यक है।"

"तो हम महामात्य जी से निवेदन करते हैं कि वे जनता के प्रति-

निधियो से मिल कर जान ले कि वे क्या चाहते हैं।"

"यदि धृष्टता क्षमा करे तो मैं भी एक निवेदन करना चाहती हूँ।" कात्यायिनी ने अपनी बात बीच मे रखने के लिए कहा।

"हाँ, कहो।"

"महाराज! गुरुदेव की नीति से वे लोग सहमत नही। अतएव वे आपके समक्ष अपना दृष्टिकोण रखने के लिए आ रहे हैं, जिससे आप निर्णय कर सके कि गुरुदेव की नीति राज्य मे चलेगी अथवा उन लोगो की। आपको तो निष्पक्ष रहना चाहिए। जो अधिक युक्ति-युक्त और व्यवहार-योग्य उपाय बताये, उसे ही स्वीकार करना चाहिए। मेरा निवेदन है कि महाराज स्वयं उनसे भेंट करे और यदि गुरुदेव को आपत्ति न हो, तो वे भी उस समय उपस्थित हो और उस विचार-विमर्श मे भाग ले।"

अब महाप्रभु ने कह दिया, "यह लडकी ठीक कहती है महाराज! आपको ही भेंट करनी चाहिये और इन लोगो की बाते सुननी चाहिये।"

इस प्रकार निश्चय हो गया और रात्रि भोजनोपरान्त नागरिको का आयोग महाराज की सेवा मे उपस्थित हो गया।

आयोग का मुख्य वक्ता विष्णुकान्त ही था। उसने महाराज, महारानी और महाप्रभु के समक्ष निवेदन किया, "महाराज की सेवा मे हम कन्नौज नागरिको के एक भाग के प्रमुख लोग यह निवेदन करना चाहते हैं कि श्रीमान् पद्मराज जी के त्यागपत्र से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि हमे अपने धन, सम्पद तथा बहू-बेटियो के मान का भय उत्पन्न हो गया है। अतएव हम निम्न प्रार्थना करते हैं कि

प्रथम, मालवा नरेश की सैन्य-तैयारी का विरोध करने के लिए अविलम्ब एक सुदृढ़ सेना का निर्माण किया जाए।

द्वितीय, श्रीकण्ठ राज्य से अस्त्र-शस्त्र निर्माणकर्ता बुलाकर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण कराया जाए।

तृतीय, सेनाध्यक्ष को, जिसने राज्य की रक्षा की ओर ध्यान न

देकर राज्य को दुर्बल बनाया है, पदच्युत् कर किसी योग्य व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाया जाए।

"चतुर्थ, राज्य के युवकों को सेना मे भर्ती कर उनको युद्ध की शिक्षा दी जाए। इस तैयारी के लिए स्थानेश्वर से कुछ सुयोग्य सुभट्ट बुला लिए जाएँ। स्थानेश्वर के राजकुमार राज्यवर्धन ने हूणों को धकेल कर भारत-खण्ड से बाहर करने मे योग्यता और वीरता का परिचय दिया है, उससे लाभ उठाने के लिए, वहाँ के कुछ वीर सैनिक बुलाए जाये और उनकी वीर-गाथाएँ अपने सैनिकों को सुनाकर, उनमे उत्साह उत्पन्न किया जाए।"

महाराज ग्रहवर्मन ने विष्णुकान्त का वक्तव्य सुनकर उससे पूछा, "कोई और कुछ कहना चाहता है?"

नागरिकों के चुप रहने पर महाराज ने अपनी नीति बताई। उन्होंने कहा, "हम आप लोगो के विचारों से सहमत नहीं। हम शान्ति और प्रजा के सुखवर्धन के लिए युद्ध एक उपयुक्त उपाय नहीं समझते। आततायी को समझाना और स्वय प्रत्येक प्रकार के कष्टों को सहन करना ही उपाय है, जिनसे विरोधी को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है, अतएव हम इन उपायो का प्रयोग कर रहे है।

"हमने राज्य मे सेना समाप्त प्राय: कर दी है, जिससे किसी भी पड़ोसी अथवा दूरवर्ती राज्य को यह भय न रहे कि हम किसी पर आक्रमण करने का विचार रखते हैं। हमारे इस कार्य से पड़ोसी राज्यों को विश्वास हो जाना चाहिए कि हम किसी से भी शत्रुता करना नहीं चाहते।

"दूसरी बात जो हमने की है, वह युद्धप्रिय पद्मराज को महामात्य पद से पृथक् होने की स्वीकृति देना है। उनके स्थान पर भगवान बोधि-सत्त्व अवलोकितेश्वर जी महाराज को महामात्य का पद देकर हम आशा करते हैं कि पूर्ण भारत-खंड मे यह विख्यात हो जायेगा कि कन्नौज राज्य अपने विस्तार का इच्छुक नहीं और सब राज्यों का मित्र बन कर रहना चाहता है।

"इस अर्थ कल, हमारे राज्य के नवीन महामात्य भगवान अवलोकितेश्वर जी मालवा को प्रस्थान करने वाले है और हमे पूर्ण आशा है कि वे मालव-राज्य को यह विश्वास दिलाने मे सफल हो सकेंगे कि हमसे मित्रता रखने मे उन्हे लाभ ही होगा।"

इस पर विष्णुकान्त ने कहा, "महाराज के इस उद्योग की बात सुनकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है और हमे राज्य पर भरोसा उत्पन्न हुआ है, परन्तु एक बात हम कहना चाहते है कि यदि मालव-राज्य ने हमारे पूज्य महामात्य को बात नहीं मानी तो फिर हम आगे क्या आशा रख सकते है?"

"हमको आत्मविश्वास से अपनी नीति पर कार्य करना चाहिए। सफलता निश्चित है। यदि महामात्य जी निराश लौटे तो हम देश तथा धर्म की रक्षा के लिए अपनी नीति की सार्थकता सिद्ध करने के लिए असीम त्याग का उदाहरण उपस्थित कर देंगे।"

: ६ :

विष्णुकान्त तथा उसके साथी इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं थे। इस पर भी वे महाराज के उद्गारो का आदर करते थे। अतः विष्णुकान्त ने महाराज का धन्यवाद करते हुए कहा, "महाराज! आपके राज्य की रक्षा के विषय मे विचारो को सुन हम प्रजागण आपके अत्यन्त आभारी है। यह जानकर हमे प्रसन्नता हुई है कि बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी महाराज हमारे लिए मालवा जाने का कष्ट कर रहे है। इस पर भी हमारा निवेदन है कि महाप्रभु के मालव-राज्य से किसी प्रकार का समझौता करने मे असफल होने पर, किसी प्रकार की कार्यवाही से पूर्व हमारी योजना पर विचार किया जाय और उसकी परीक्षा की जाय।"

इसका उत्तर महाप्रभु ने दिया, "आपकी योजना किसी प्रकार से नवीन तो है नहीं, जिसको सुनने या समझने की आवश्यकता हो। आदि काल से शान्ति स्थापित करने के लिए युद्ध का उपाय प्रयोग मे

लाया जाता रहा है, परन्तु आज तक शान्ति स्थापित नही हो सकी। भगवान् तथागत की कृपा से सभ्य समाज के हाथ मे यह एक नया प्रयोग आया है। इसकी परीक्षा हम करना चाहते है। यह परीक्षा एक-आध बार के असफल होने पर छोडी नहीं जा सकती। इसको बार-बार करने से ही मानव के मन मे प्रकाश होगा और तब मानव-समाज सुख, शान्ति और आनन्दमय होकर इस सासारिक कीचड से निकल सकेगा।"

"भगवन्!" विष्णुकान्त ने कहा, "यह तो वास्तविकता से दूर है कि शान्तिमय उपाय पहले प्रयोग मे नहीं लाये गए। वास्तव मे युद्ध और शान्ति साथ-साथ चलती रही है। प्रत्येक युद्ध से पूर्व शान्तिमय उपाय ही प्रयोग मे लाए जाते रहे है। भारत-युद्ध से पूर्व भी भगवान् कृष्ण ने शान्तिमय ढग से कौरवो और पाण्डवो की समस्या को सुलझाने का यत्न किया था। किस सीमा तक यह यत्न किया गया था, इतिहास पढने वालो से छुपा नही है: परन्तु जब इस उपाय से समस्या सुलझी नहीं तो विवश हो युद्ध करना पडा था।

"सदैव युद्ध से पूर्व सत्य पक्ष वाले शान्तिपूर्वक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करते रहे है। शान्तिमय उपायो के असफल होने पर ही युद्ध का आश्रय लिया जाता रहा है। यही, हमारा निवेदन है, कि यहाँ भी होना चाहिये।"

"नहीं, यह नही होगा।" महाराज ग्रहवर्मन ने कहा, "हम वार्तालाप के असफल होने पर एक नवीन प्रयोग करने वाले है। हम यह राजपाट अपनी इच्छा से आक्रमणकर्ताओ के हाथ मे सौंप देंगे और इस प्रकार रक्तपात से इस राज्य की जनता को बचा लेंगे।"

विष्णुकान्त तथा अन्य प्रतिनिधि यह सुन आश्चर्यचकित रह गये। इस पर विष्णुकान्त ने कहा, "महाराज! यह आप नहीं कर सकते। प्रजा इसे पसन्द नहीं करती। यही बताने के लिए हम यहाँ आपके पास आए हैं कि राज्य आपके पास प्रजा की धरोहर है। यह आप एक अधूरे ज्ञान को रखने वाले के कहने पर किसी दूसरे को नहीं दे सकते।"

"कौन अधूरे ज्ञान वाला है ?" महाराज ग्रहवर्मन ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा।

"जिनकी योजनानुसार महाराज अपनी प्रजा को किसी अन्य को भेंट मे दे रहे हैं।"

"परन्तु हम तो प्रजा की रुचि को जानकर ही ऐसा कर रहे हैं। यह शान्तिमय ढंग तो महात्मा बुद्ध का आयोजित है और हमारी प्रजा का मुख्य अंश बौद्ध है।"

"हमारा विचार ऐसा नहीं है। भले ही बौद्ध अधिक संख्या मे हैं, परन्तु वे कदापि यह नहीं चाहेंगे कि वे मालवा की सेना के पाँव-तले रौंद दिए जायँ।"

"हम जानते है कि उनको श्री बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी पर पूर्ण विश्वास है और वे अपना सर्वस्व उन पर न्योछावर कर देंगे।"

विष्णुकान्त और उसके साथी निराश होकर लौट गए। अगले दिन मध्याह्नोत्तर के समय कन्नौज के मुख्य पंथागार में वैष्णवों का बहुत बड़ा जमघट उपस्थित हो गया। इसमें विष्णुकान्त ने महाराज से अपनी वार्ता का पूर्ण वृत्तान्त बताया। इस बात को कि महाराज अपना राज्य तक मालव-नरेश को देने के लिए तैयार हैं, किसी ने पसन्द नहीं किया। जब विष्णुकान्त ने कहा कि महाराज का कहना है कि बौद्ध-जनता अवलोकितेश्वर का पूर्ण समर्थन करती है और अवलोकितेश्वर शत्रु को राज्य सौंपने के विरुद्ध नहीं, तो लोग अति निराश हुए।

इस पर भी यह निश्चय किया गया कि अवलोकितेश्वर जी के मालवा से वापिस लौटने पर पुनः पंचायत बुलाई जाय और इसमे बौद्धों को भी बुलाकर उन्हें समझाने का प्रयत्न किया जाय।

नागरिकों की यह सभा तो समाप्त हुई, परन्तु पद्मराज के लिए समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रही। महाराज की आज्ञा थी कि सोलह प्रहर के भीतर राज्य छोड़कर चला जाय, अन्यथा उसे बन्दीगृह मे डाल दिया जायगा। अतएव पंथागार से लौट पद्मराज अपने परिवार को एकत्रित कर विचार-

विनिमय करने लगा।

इस समय कात्यायिनी भी वहीं आई हुई थी और पद्मराज की समस्या को सुन रही थी। पद्मराज ने कहा, "मैं तो बन्दी होने के लिए तैयार हूँ। वास्तव में देश को छोड़कर भाग जाना मैं उचित नहीं समझता, परन्तु प्रश्न तो पूर्ण परिवार का है। वह क्या चाहता है?"

विरोचना ने दृढ़ता से कहा, "मै आपका वन्दी होना ठीक नहीं समझती। हमे यहाँ से चले जाना चाहिए।"

इस पर कात्यायिनी ने कहा, "क्या मैं कुछ कह सकती हूँ?"

"हाँ, हाँ! कहो।"

"मेरी सम्मति है कि महामात्य जी यहाँ से चले जाने की घोषणा कर दे और भूम्यान्तर्गत हो जाये। परिवार कन्नौज मे ही रहे। मै महारानी जी से मिल कर यत्न करती हूँ कि परिवार को यहाँ ही रहने की स्वीकृति मिल जाये।"

"परन्तु इससे लाभ क्या होगा? मै तो इस राज्य मे किसी कार्य के योग्य नहीं रहा।" पद्मराज का कहना था।

"यह आपका विचार है न? मेरा विचार इसके विपरीत है। देखिए अवलोकितेश्वर जी महाराज आज मालवा जा रहे हैं और लगभग आठ-दस दिन तक वापिस लौटेंगे। मैं समझती हूँ कि वे सफल नहीं होंगे। उस समय आपकी कन्नौज मे आवश्यकता होगी। आपको चाहिए कि नागरिकों की एक सभा बनाकर, राज्य की वागडोर हाथ में कर लें और मालव-सेना का डटकर विरोध करें। इसी अर्थ श्रीकंठ से भी सहायता ली जा सकती है और लेनी चाहिए। मेरी एक सम्मति यह भी है कि जिस प्रकार मालव-नरेश ने गौड राज्य से सन्धि कर ली है, उसी प्रकार आपकी नागरिक परिषद् अपना दूत भेज कामरूप से सधि करले। गौड-राज्य की पीठ पर कामरूप होगा और इस प्रकार गौड़-राज्य मालवा की सहायता नहीं कर सकेगा।

"परन्तु इस सब के लिए यह आवश्यक है कि कन्नौज राज्य बौद्धो

के हाथ से निकल कर प्रजा के हाथ मे आ जाये।"

पद्मराज को कात्यायिनी के मुख से वही योजना सुन, जिस पर वह स्वय विचार कर रहा था, बहुत प्रसन्नता और आश्चर्य हुआ। पद्मराज की योजना मे यही सब कुछ ग्रहवर्मन से करवाने की बात थी और कात्यायिनी ने उससे एक पग आगे जाकर ग्रहवर्मन के स्थान पर प्रजा परिषद् के निर्माण की बात कह दी थी।

पद्मराज यह भी जानता था कि सेना, जैसी कैसी भी है, जनता के हाथ मे होनी चाहिए और उसको जनता के हाथ मे रखने के लिए उसकी कन्नौज मे उपस्थिति आवश्यक है। परन्तु प्रश्न परिवार का था। पद्मराज ने कात्यायिनी से कहा, "कल मध्याह्न से पूर्व मुझको कन्नौज से बाहर होने की आज्ञा है। इसी अर्थ मुझे आज मध्यरात्रि से पूर्व यहाँ से वेगगामी रथ पर सवार को होकर चले जान चाहिए। अतएव यदि मेरे परिवार के यहाँ रहने की स्वीकृति आनी है तो आज सायकाल से पूर्व आ जानी चाहिए।"

"मै यत्न करती हूँ।" इतना कह कात्यायिनी महारानी राज्यश्री की सेवा मे पहुँच गई।

राज्यश्री आज अति खिन्न मन थी। उसने समझा कि कात्यायिनी उसका चित्र पूर्ण करने के लिए आई है। इस कारण उसने इसके लिए मना करते हुए कहा, "सखी! आज चित्र पर कार्य नही हो सकेगा। मेरा मन अशान्त है।"

"महारानी जी! मैं भी आज चित्र बनाने नहीं आई। मेरा मन आज रंगो से खेलने के लिए नहीं कर रहा। मुझे देश पर दासता की घोर घटाएँ छा रही प्रतीत हो रही हैं। उसके विषय मे ही कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।"

"हाँ बताओ।"

"महारानी जी! कन्नौज मे यह बात विख्यात हो गई है कि मालव-सेना आक्रमण करने वाली है। इस पर महाराज का नगर की रक्षा के

लिए ध्यान न देना घोर चिन्ता का कारण बन गया है। साथ ही नगर मे यह बात प्रचलित हो रही है कि पद्मराज जी को महामात्य पद से निकाल कर बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी को महामात्य नियुक्त कर दिया गया है। बोधिसत्त्व जी युद्ध-कला से सर्वथा अनभिज्ञ है। इस कारण धनीमानी लोग उस आक्रमण से पूर्व ही नगर छोड़ जाने का विचार कर रहे हैं। बहुत से लोग तो पद्मराज जी के साथ ही नगर छोड़ने की योजना बना रहे हैं।'"

"तो फिर क्या होगा ?"

"होगा यह कि जिन लोगो का नगर मे प्रभाव है, वे यहाँ से चले जायेंगे। इस के पश्चात् छोटे स्तर के लोग यहाँ लूटमार मचा देंगे। यह भी हो सकता है कि मालव-सेना के आने से पूर्व ही राज्य मे लूट-मार मच जाने से विप्लव हो जाए और हमारी सेना, जिसको कई मास से वेतन नही मिला, इस लूटमार मे भाग लेने लग जाये। सेना मे असन्तोष तो है ही।"

राज्यश्री इससे गम्भीर विचार मे मग्न हो गई। कात्यायिनी के इस कथन से कि मालव-सेना के आक्रमण से पूर्व ही राज्य मे विप्लव खड़ा हो सकता है और राज्य की सेना, जो वेतन न मिलने से असन्तुष्ट है, इस मे भाग ले सकती है, उसकी चिन्ता और भी बढ गई।

इस पर उसके मन मे एक विचार आया। उसने कहा, "सखी ! राज्य जनता की रक्षा के लिए प्रयत्न तो कर रहा है। जनता को तो नगर में व्यवस्था रखने के लिए राज्य की सहायता करनी चाहिए। यह उनके हित मे ही है।"

"यह तो ठीक है कि जनता अव्यवस्था नही चाहती, परन्तु जब जनता के मन मे यह बात बैठ गई है कि अव्यवस्था तो होने ही वाली है, तो प्रत्येक उस अव्यवस्था से लाभ उठाने के लिए उस अव्यवस्था के होने मे सहायक होने लगेगा। वास्तव मे जनता का, राज्य और सेना मे विश्वास ही जनता को नियंत्रण मे बाँध कर रख सकता है। यह विश्वास

पद्मराज जी के नगर छोड़ जाने से समाप्त होता जाता है।"

"परन्तु तुम ही तो कह रही थीं कि परस्पर-विरोधी विचार युद्धकाल मे नहीं चल सकते। राज्य की नीति का विरोध करने वाले को बंदी बना ही लेना चाहिए।"

"ठीक है महारानी जी! परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जनता का विश्वास पद्मराज की नीति मे अधिक है और अवलोकितेश्वर जी की नीति मे कम।"

"पर नगर मे तो बौद्धो की संख्या अधिक है और उनको बोधिसत्त्व जी की नीति मे विश्वास होना ही चाहिये।"

"बौद्ध-वर्ग ही सबसे अधिक संख्या मे भागेगे। वे प्रायः धनिक-वर्ग के हैं और उनको ही संभावित अराजकता मे हानि की सम्भावना अधिक है। वे धर्म से बौद्ध अवश्य हैं, परन्तु धन के लोभ मे वे मनुष्य ही हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारो मनुष्य की परम साधनाएँ हैं और उनको अवलोकितेश्वर जी की नीति मे अर्थ की रक्षा प्रतीत नहीं होती।"

"तो फिर क्या किया जाय?"

"किसी प्रकार पद्मराज जी के जाने को प्रकट नहीं होने देना चाहिए। को यह विदित होना चाहिए कि पद्मराज जी नहीं जा रहे। परिणाम यह होगा कि कोई भी बुद्धिशील व्यक्ति यहाँ ठहरने मे आश्वस्त अनुभव करने लगेगा।"

"परन्तु उनको तो निर्वासन की आज्ञा हो चुकी है।"

"यह पद्मराज जी के लिए है न। उनके परिवार को जाने से रोका जाय। उनके रुक जाने पर भी लोग समझेंगे कि महामात्य नहीं गए और भय की कोई बात नहीं। जब लोग जानेंगे कि भूतपूर्व महामात्य, जो राजनीति का ज्ञाता है, अपने परिवार सहित कन्नौज मे ही है, तो वे समझेंगे कि किसी प्रकार का भय नहीं है।"

"उनके परिवार को रोकना तो असम्भव है। उसको पद्मराज जी से पृथक् करना जहाँ अन्याय हो जायगा, वहाँ जनता मे और भी अधिक

असन्तोष उत्पन्न करने वाला होगा।"

"हाँ, यदि जनता को यह पता चल गया, परन्तु यह सब-कुछ ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए, जिससे इसमे महामात्य के जाने का भास न हो।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"महारानी जी! महाराज से आज्ञा-पत्र लिखवा दे कि भूतपूर्व महामात्य श्री पद्मराज के लिए देश-निर्वासन की आज्ञा है, परन्तु उनके परिवार के लिए नहीं है। यह आज्ञा केवल पद्मराज जी के लिए है, जो महाराज की नीति का विरोध करते प्रतीत होते है।"

"क्या इस आज्ञा से उनके परिवार के लोग यहाँ रह जायेंगे?"

"मुझको बहुत आशा है कि वे रह जायेंगे और उनके यहाँ रहने को पद्मराज जी पसन्द भी करेंगे। वास्तव मे वह देश को छोडना नहीं चाहते। वह तो केवल इस विशेष परिस्थिति मे ही यहाँ से जाना पसन्द करेंगे।"

"अच्छी बात है। मै महाराज से कहकर यह आज्ञा दिलवा देती हूँ।"

: ७ :

कन्नौज पर मालव-राज्य द्वारा आक्रमण का भय पूर्ण जनता के मन मे उत्पन्न हो गया था। इस भय के साथ ही जनता के मन में यह अंकित हो गया कि महाराज ग्रहवर्मन अति दुर्बल आत्मा है और युद्ध से भय खाता है। इस अवस्था मे धनीमानी लोग वास्तव मे चिन्ताग्रस्त हो, अपने धन को एकत्रित करने लगे थे और किसी अन्य राज्य मे चले जाने की योजना बनाने लगे थे।

धनी लोग प्रायः बौद्ध थे। वे इस बात का विचार भी नहीं कर सकते थे कि राज्य की रक्षा के लिए जनता का भी कुछ कर्तव्य है। अहिंसा के अर्थ वे यही समझते थे कि जहाँ कहीं हत्या का प्रश्न उपस्थित हो, वहाँ उन्होंने स्वय मर जाना है और दूसरे को कुछ नहीं कहना है।

ऐसी अवस्था मे नगर मे भगदड मचने की ही सम्भावना सबसे अधिक थी। लोग पद्मराज के पास जाते थे और पूछते थे कि वे क्या करे। सब यह समझते थे कि वह महामात्य-पद पर रहने से पूर्ण परिस्थिति से परिचित है। पद्मराज समझ रहा था कि राज्य का विनाश अवश्यम्भावी है, परन्तु वह अपने मुख से यह कह नही सकता था। ऐसा करना वह देश-द्रोह समझता था। अतएव वह उनको कहता, "विष्णुकान्त जी के पास जाओ अथवा किसी मन्त्री से जाकर पता करो। मै इस विषय मे कुछ भी सम्मति नहीं दे सकता।"

उसके इस प्रकार बात टालने पर लोग और अधिक घबराते थे। धीरे-धीरे यह चर्चा नगर-भर मे फैल गई कि पद्मराज परिवार-सहित नगर छोड़ रहा है। तीसरे दिन प्रातःकाल नगर के लोग पद्मराज के घर के बाहर यह देखने एकत्रित हो गए कि वह चला गया है अथवा नहीं। यद्यपि पद्मराज के दर्शन नही हुए, तो भी उसके परिवार को घर मे उपस्थित देख लोग सन्तोष अनुभव करते थे। अलकनन्दा खिडकी में आकर उपस्थित हुई तो लोगो ने हर्ष प्रकट करने के लिए पद्मराज की जय बुला दी।

कात्यायिनी रात को ही महाराज की आज्ञा पद्मराज को दे गई थी कि उसके परिवार को नगर छोडने की आवश्यकता नही है और उसको भी राज्य से बाहर जाने की आज्ञा तब तक के लिए ही है, जब तक मालवा से सन्धि नहीं हो जाती। इस आज्ञा से परिवार का कन्नौज मे रहना निश्चित हो गया था और पद्मराज रात ही भूम्यान्तर्गत होने के लिए घर से चला गया था। यह निश्चय कराने पर कात्यायिनी को ऐसा अनुभव हुआ कि उसने पद्मराज के परिवार को नगर मे रहने की प्रेरणा देकर, अपने पर भारी उत्तरदायित्व ले लिया है। उसने अपने मन की आशंका महारानी को बताई, "महारानी जी! यह काम तो हो गया। मै समझती हूँ कि जनता का चित्त स्थिर होने मे इससे भारी सहायता मिलेगी, परन्तु पद्मराज के परिवार की रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।

कहीं ऐसा न हो कि उसकी अनुपस्थिति में परिवार का कुछ अनिष्ट हो जाय।"

इसके लिए महारानी राज्यश्री नें अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। नगर की सेना पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। सुरक्षा मन्त्री, सुषेण के गृह से सूचना आई थी कि वह भिक्षु हो गया है। उसने अवलोकितेश्वर जी के मालवा जाने से पूर्व ही दीक्षा ले ली थी और विहार में प्रवेश पा गया था। यद्यपि सुषेण ने अभी तक पद-त्याग नहीं किया था तो भी वह दिन-रात 'बुद्धं शरणं गच्छामि' इत्यादि का मन्त्र जपता रहता था।

कात्यायिनी यहाँ से निराश हो विष्णुकान्त के पास पहुँची। उसने पद्मराज के परिवार के विषय मे जब बताया तो विष्णुकान्त ने कहा, "यह मुझे ज्ञात है। मुझको तुम्हारे इस प्रयत्न का भी ज्ञान है और जो-कुछ भी मै उनके परिवार की रक्षा के लिए कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। वैष्णव युवक परस्पर मिलकर दल बना रहे हैं। ये लोग मिलकर मन्दिर, महामात्य के घर तथा अन्य स्थानो की रक्षा का पूरा प्रयत्न करेंगे। इन युवको के लिए खड्ग, भाले आदि अस्त्रो के एकत्रित करने का प्रबन्ध हो रहा है।"

कात्यायिनी को इससे सन्तोष हुआ। इस समय उसको एक बात सूझ पड़ी। उसने कहा, "गुरुदेव! क्या यह अच्छा न होगा कि आप अपनी सुरक्षा-योजना मे राज्य-प्रासाद को भी सम्मिलित कर ले?"

"अच्छा तो है, परन्तु यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। इसमे कारण यह है कि हमारे पास युवको की सख्या प्रासाद की रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं। साथ ही राज्य के सैनिक, जितने और जो-कुछ भी हैं, वे ही हमारे युवको का विरोध करेंगे। हम यह नही चाहते कि इस दल को अपने राज्य के सैनिको के विरुद्ध ही लड़ने मे लगा दे।"

"यदि महाराज अथवा महारानी जी भीड़ के समय भागकर आपकी सुरक्षा मे आना चाहे तो क्या आप उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व अपने

ऊपर लेगे ?"

"कात्यायिनी !" विष्णुकान्त ने खिन्न होकर कहा, "तुम कभी-कभी बच्चो की सी बाते करने लगती हो। यदि राज्य-परिवार को यह पता चल जाय कि हम अपनी रक्षा के लिए लडने-मरने के लिए भी तैयार है और हम ऐसे कार्य को करने के लिए रक्त-पात को भी करने मे हानि नहीं समझते, तो वे हमे देश-द्रोही कहकर बन्दी तक बनवा सकते है। ऐसी अवस्था मे वे भला, हमारे पास रक्षा के लिए क्यो आयेगे ?"

"मान लीजिए, यदि वे आते हैं तो आप क्या करेंगे ?"

"यदि वे हमारे दल के संरक्षण मे रह सकेंगे तो रहने दिया जायगा।"

अगले दिन प्रातःकाल कात्यायिनी पद्मराज के परिवार का कुशल-मगल पूछने गई और विरोचना देवी से मिलकर जब वह बाहर निकली, तो एक बहुत बडा जन-समूह उसको घेरकर खडा हो गया। लोग उससे पूछने लगे, "देवी ! तुम इस घर मे रहती हो ?"

"मै विरोचना देवी की सखी हूॅ और उनसे मिलने आई थी।"

"महामात्य जी घर पर हैं ?"

"मुझे पता नही। मैने विरोचना देवी से पूछा नही।"

"विरोचना देवी नगर छोडकर जा रही हैं क्या ?"

"क्यो, नगर क्यो छोडेगी ?"

"मालव-सेना आक्रमण जो कर रही है।"

"किसने कहा है ? कहाॅ है मालव-सेना ?"

इस पर लोग चुप कर गए।

इस सब आयोजन मे बौद्ध-समाज सर्वथा पृथक् था। बौद्धो मे धनिक वर्ग का बाहुल्य था और उस वर्ग के लोग नगर मे अशान्ति की सम्भावना पर नगर छोडने की योजना बना रहे थे। श्रमण-वर्ग बौद्ध-चैत्यो मे जाकर 'बुद्ध' शरणं गच्छामि' का जप करने मे कल्याण मानता था।

महारानी राज्यश्री महाराज को इस भीड के समय अकर्मण्य देख

अशान्ति अनुभव कर रही थी। महाराज जब पूजा-गृह से बाहर निकले तो उसने हाथ जोड उनसे निवेदन कर दिया, "महाराज! सुना है कि जनता अति भयभीत है। उसको आश्वासन देने के लिए कुछ तो करना चाहिये।"

"जो कुछ करने योग्य है देवी! वह मै कर रहा हूँ। मैं एक प्रहर-भर भगवान् तथागत का चिन्तन कर आया हूँ।"

"यह तो ठीक है, परन्तु मेरा निवेदन था कि महाराज अपना रथ निकाल कर, उसमे बैठ नगर मे घूम आवे। इससे जनता को आश्वासन मिलेगा।"

"वास्तविक आश्वासन तो तब होगा, जब महामात्य यहाँ आकर अपनी मालव-यात्रा की सफलता की घोषणा करेंगे। उससे पहिले तो किसी प्रकार का कार्य न केवल व्यर्थ होगा, प्रत्युत् जनता के मन को और भी अशान्ति देने वाला होगा।"

"महाराज! कम-से-कम सेनानायकों को बुला कर उनको कुछ प्रोत्साहन देने से भी कुछ तो किया ही जा सकता है।"

"ऐसा करना कन्नौज राज्य मे सैनिक तैयारी समझी जावेगी और शान्ति के प्रयास मे जो कुछ हम कर रहे हैं, विघ्नकारक होगा।"

"तो क्या करना चाहते हैं आप?"

"मै शान्त-चित्त हो भगवान् तथागत से प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वे अपने प्रताप से हम क्षुद्र जीवों को सुमति दे। संसार मे पाप शान्त हो, विग्रह समाप्त हो और मानव कल्याण हो।"

महारानी चुप कर रही; परन्तु उसका मन चुप नहीं था। मध्याह्नोत्तर कात्यायिनी आई तो चुपचाप महारानी के चित्र पर कार्य करने लगी। वह तूलिका उठा महारानी के कपोलो का रंग ठीक करने लगी थी कि महारानी वहाँ आ पहुँची और पीछे खड़ी हो अपने चित्र को देखने लगी। जब कात्यायिनी का ध्यान भग नहीं हुआ तो राज्यश्री ने कहा, "सखी! क्या देख रही हो?"

कात्यायिनी चौक कर उठी। उसने महारानी को देख तूलिका रंग के पात्र में रख दी और खड़ी हो कहने लगी, "महारानी जी कब से खड़ी हैं?"

"आधी घड़ी से ऊपर हो गई है। क्या देख रही थी इस चित्र मे? इस सब समय तुम्हारी तूलिका तो स्तब्ध हाथ मे पकड़ी रह गई थी।"

"हाँ, मै देख रही थी कि पिछले छः मास के सतत प्रयत्न करने पर भी चित्र मे वह रूप और रंग नहीं ला सकी जो महारानी जी के मुख पर देख रही हूँ। मै विचार कर रही थी कि ऐसा क्यो है। मै क्या करूँ जिससे जैसा मैं आपको देखती हूँ, चित्र मे चित्रित कर सकूँ।"

"मेरा तो विचार है कि तुमने इसको वास्तविक राज्यश्री से भी अधिक सुन्दर बना दिया है। अब समाप्त करो। यदि और अधिक कला-कौशल का प्रयोग इस पर किया तो इस पट पर की राज्यश्री से मै ईर्ष्या करने लग जाऊँगी।"

कात्यायिनी ने मुस्कराकर कर कहा, "मै समझती हूँ कि वह अवस्था कभी नहीं आएगी। आप अभी भी इससे कई गुणा अधिक सुन्दर हैं।"

"पर मै पूछती हूँ कि आज का समय क्या कला साधना का है? इस नगर मे नागरिको के हृदयो मे इस अशान्ति के रहते, तुम किस प्रकार अपना मन इस कला-कार्य में लगा सकती हो?"

"मै तो समझती हूँ कि इस नगर मे अशान्ति तो कही भी देखने को नहीं। मेरा कहना तो यह है कि नगर कदाचित् आवश्यकता से अधिक शान्त है। इस निस्तब्धता मे ही तो चित्त को एकाग्रता प्राप्त हो सकी है। उसी से लाभ उठाकर इस चित्र मे रह गई त्रुटियो को जानने चली आई थी।"

"यह शान्ति तो अस्वाभाविक है सखी!"

"कुछ भी हो महारानी जी! वास्तव मे तो यह है ही। नगर के प्रायः जन इस शान्ति मे खाना-पीना आनन्द से कर रहे हैं। कल जनता मे जो कुछ कटुता उत्पन्न हो रही दिखाई दे रही थी, आज महाराज श्री ग्रहवर्मन जी की अनुकम्पा से वह कटुता लुप्त हो गई है। बौद्ध लोग,

जो इस राज्य में बहुत भारी संख्या में हैं, अब निश्चिन्त हो अपने कारोबार मे लगे है।"

"पर सखी! मेरा मन तो शान्त नहीं। मुझको तो यह आँधी के आने से पूर्व की शान्ति दिखाई देती है।"

"सत्य?"

"हाँ! न जाने क्यो, जब से मैंने सुना है कि मालवाधिपति सेना एकत्रित कर रहा है, मेरा मन अशान्त है।"

"महारानी जी! मेरे विचार मे यह इस कारण है कि आपको उस भय के निवारण मे कुछ किया जाता प्रतीत नही हो रहा। अथवा जो-कुछ किया जा रहा है, उसके सफल होने मे विश्वास नहीं होता। इसी कारण आप के मन मे अशान्ति है।"

महारानी गम्भीर विचार में पड गई। इस पर कात्यायिनी ने कहा, "मेरा विचार है कि महारानी जी को कुछ सोच-विचार कर कोई ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे भय का निवारण हो सके।"

"मैंने महाराज से कहा था कि वे रथ में चढकर नगर मे घूम आवे, जिससे लोगों मे उत्साह बढे। उन्होने बताया कि इससे कुछ लाभ नही होगा। वे तो भगवान् से प्रार्थना कर कि ससार मे शान्ति बनी रहे, सतुष्ट हो अपने आगार मे चले गए है।"

"यदि महारानी जी स्वयं ऐसा कुछ कर सके तो ठीक नहीं रहेगा क्या?"

"मुझको इसमें कुछ लाभ प्रतीत नहीं होता। भगवान् की मूर्ति के सम्मुख दो घडी भर बैठ आई हूँ। वहाँ बैठ समय व्यर्थ गँवाने मे लाभ न मान उठकर चली आई हूँ।"

"तो एक बात मैं बताऊँ?"

"हाँ बताओ।"

"तो महारानी जी! चलिए, हम दोनो रथ मे घूम आते है। नगर मे घूमने से और चाहे कुछ न हो, चित्त तो स्थिर हो ही जाएगा।

"यदि इससे भी कुछ अधिक करने का विचार हो तो हम उनसे मिल सकते हैं, जो अपने परिवार की रक्षा के लिए विचार कर रहे हैं और प्रबन्ध कर रहे हैं। अथवा हम उन लोगो से भी मिल सकते हैं जो भगवान तथागत की सरक्षा मे रह कर शात हो अपने व्यवसाय मे लगे हुए हैं।"

"यह ठीक है, पर मैं महाराज की आज्ञा के बिना रथ में घूमने निकल गई तो राज्य-परिवार का अपमान हो जाएगा।"

"मै तो एक साधारण स्त्री हूँ और एक साधारण माता-पिता की सन्तान हूँ। इस कारण मुझको तो साधारण जनता मे विचरण करने मे अपमान प्रतीत नहीं होता। महारानी जी के परिवार की परम्पराओ को मै नहीं जानती। अतएव आपके विषय मे मै कुछ सम्मति नहीं दे सकती।"

"तो महाराज से राय कर लूँ?"

"ठीक है, कर लीजिए।"

: ८ :

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर मालवा की सीमा पर पहुँचे तो उन्होने अपना एक दूत उज्जयिनी, मालवा की राजधानी मे भेज दिया। यह दूत तीव्रगामी अश्व पर, महामात्य से कई दिन पूर्व ही पहुँच गया। उज्जयिनी नगर के द्वार पर उसको रोका गया तो उसने बताया, "मैं कन्नौज अधिपति महाराज ग्रहवर्मन के महामात्य का दूत हूँ। महामात्य स्वयं उज्जयिनी पधार रहे हैं और मालव-नरेश की सेवा मे एक अत्यावश्यक निवेदन करने के लिए राज्य-सभा मे उपस्थित होना चाहते है।"

यह सूचना महाराज देवगुप्त के पास भेज दी गई और वहाँ से आज्ञा आई कि कन्नौज के राजदूत का, पंथागार मे ठहरने का विशेष प्रबन्ध कर दिया जाय। साथ ही मालव-नरेश ने अपना एक प्रमाणित दूत

अवलोकितेश्वर जी को, सम्मानपूर्वक लिवा लाने के लिए मार्ग मे भेज दिया। इस दूत के साथ बीस सशस्त्र सैनिक भी थे।

अवलोकितेश्वर जी के साथ केवल चार पैदल सैनिक थे। वे जब उज्जयिनी से दो दिन के मार्ग पर रह गए तो उन्हे मालवा का दूत मिल गया। अवलोकितेश्वर जी स्वयं पालकी मे थे। पालकी को ठहराकर दूत ने अपना परिचय दिया और कहा, "मालव-नरेश श्री देवगुप्त जी ने आज्ञा दी है कि श्रीमान् जी को अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ उज्जयिनी मे लाया जाय और आपकी सेवा की जाय।"

अवलोकितेश्वर जी इस सम्मान से बहुत प्रसन्न हुए। उज्जयिनी के दूत ने उनके मार्ग का पूरा प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया और शेष दो दिन का मार्ग छः दिन मे समाप्त कर अवलोकितेश्वर जी को उज्जयिनी में पहुँचा, एक अति विशाल भवन मे ठहराया और उनकी सेवा के लिए उस भवन मे बीसियो सेवक नियुक्त कर दिए।

दस दिन तक अवलोकितेश्वर जी के खाने-पहिरने, नृत्य-संगीत इत्यादि के मनोरंजन करने मे इतनी सतर्कता से प्रबन्ध किया गया कि उनको अपने आने का उद्देश्य बताने का अवसर ही नहीं मिला।

प्रातःकाल उठने के समय एक संगीतज्ञ महाप्रभु के शयनागार के बाहर बहुत ही मधुर ध्वनि में भैरव-रामकली आदि रागो मे गायन करता, जिसको सुनकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव करते। महाप्रभु के स्नानादि से निवृत्त होते तक यह गायन चलता। पश्चात् अति मधुर ध्वनि मे दो घडी भर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' आदि का गायन चलता। इस मन्त्र का जाप स्वर, ताल और लय के साथ होता। इससे महाप्रभु आनन्द-विभोर हो उठते।

प्रातः अल्पाहार के पश्चात् उज्जयिनी के पुस्तकालय से महाप्रभु के लिए बौद्ध ग्रन्थ स्वाध्याय के लिए आ जाते। इस प्रकार मध्याह्न के भोजन का समय हो जाता।

अति स्वादिष्ट मिष्टान्न तथा मांस इत्यादि पदार्थ भोजन मे होते।

इसके पश्चात् महाप्रभु विश्राम करते और सायकाल विश्राम के पश्चात् फलाहार होता। फलाहार के पश्चात् राज्य के रथ आ जाते और महाप्रभु को घुमाने के लिए ले जाते। उज्जयिनी के मन्दिर, विज्ञान-भवन अथवा नक्षत्रादि देखने के यन्त्र दिखाए जाते। भ्रमण से लौटने के पश्चात् नट-नटियो के खेल-तमाशे का प्रबन्ध होता। फिर रात्रि का भोजन होता। इस समय भोजन के साथ सुवासित मद्य होती। खाने के समय नर्तकियो का नृत्य होता। यह कार्यक्रम मध्य-रात्रि तक चलता और पश्चात् महाप्रभु सो जाते।

उक्त विधि से दस दिन व्यतीत हो गए। इस सब प्रकार के आनन्दोत्सवो मे लीन महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी महाराज को मालव-नरेश से मिलकर अपने उद्देश्य के विषय मे वार्तालाप करने का स्मरण ही नहीं रहा। दसवे दिन महाप्रभु को समझ आया कि कन्नौज मे उनकी प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक हो रही होगी। अतएव उन्होने सेवको के मुखिया को बुलाकर कहा, "मालवा के महामात्य से जाकर कहो कि हम उनकी सेवा से बहुत प्रसन्न हैं और उनकी ओर से जो हमारा सम्मान किया गया है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। हमको शीघ्र ही कन्नौज लौटना है और हम उनके दर्शन कर अति प्रसन्न होगे।"

इसके उत्तर मे महामात्य 'चन्द्रसेन' महाप्रभु से मिलने स्वयं आ पहुँचा। आकर उसने महाप्रभु के चरण-स्पर्श किए और निवेदन किया, "महाराज! क्या आज्ञा है?"

महाप्रभु इस आदर से प्रसन्न हो चन्द्रसेन को आशीर्वाद देने लगे, "चिरजीव रहो भद्र! भगवान् तथागत तुम्हारा कल्याण करे और तुम्हे सन्मार्ग दिखाये। तुम्हारा गृह धन-धान्य, बन्धु-बान्धवो तथा पुत्र-पौत्रो से भरा रहे।

"महामात्य! हम मालव-नरेश से एक परमावश्यक विषय पर वार्तालाप तथा परस्पर कुछ निर्णय करने के लिए आए है। इतने दिन तक आपके राज्य ने हमारा जो सम्मान किया है और हमे सुख तथा आराम

दिया है, उसके लिए कन्नौज राज्य आपका अत्यन्त आभारी है। हम चाहते हैं कि महाराज से हमारी भेंट का प्रबन्ध करा दिया जाय।"

"भगवन्! महाराज मृगया के लिए विन्ध्याचल पर गये हुए हैं। वे कुछ दिनो में लौटेंगे और आते ही उनकी आपसे भेंट करा दी जायगी।"

महाप्रभु अवलोकितेश्वर इस आश्वासन से अति प्रसन्न हो बोले, "हमारा कार्य अत्यावश्यक है और हम अपने देश से अधिक दिन तक बाहर नही रह सकते। इस पर भी कार्य की महिमा देख हम कुछ दिन और प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं; परन्तु हम चाहते हैं कि महाराज की सेवा मे हमारा निवेदन भेज दिया जाय। यदि वे शीघ्र लौटने का कष्ट कर सकें तो हम अत्यन्त आभारी होंगे।"

"भगवन्! आपका सन्देश अविलम्ब महाराज के पास भेज दिया जायगा और आशा करनी चाहिए कि या तो वे सन्देश पाते ही लौट आवेंगे अथवा वे आपको वही वन मे बुलवा लेंगे।"

महामात्य चन्द्रसेन के इस आश्वासन से महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार पाँच दिन और व्यतीत हो गए। पाँचवे दिन एक अश्वारोही कन्नौज राज्य की ओर से बहुत वेग से अश्व भगाता हुआ आया और सीधा महामात्य चन्द्रसेन के प्रासाद के बाहर जा खड़ा हुआ। ऐसा प्रतीत होता था कि महामात्य इस अश्वारोही की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके अश्व से उतरते ही महामात्य बाहर आया। महामात्य को बाहर आते देख अश्वारोही ने जयघोष कर दी, "मालव-नरेश महाराजाधिराज देवगुप्त की जय हो। महाराज ने कन्नौज विजय कर लिया है। महाराज की आज्ञा है कि राज्य-भर मे इस विजय की प्रसन्नता मनाई जाय और मन्दिरो में पूजा का तथा निर्धनो को वस्त्र और भोजन-वितरण का प्रबन्ध किया जाय।"

महामात्य ने अपने उत्तरीय के नीचे से स्वर्ण-मुद्राओं की एक थैली निकाली और अश्वारोही के हाथ मे फेंकी। अश्वारोही ने वह ले अपने

माथे से लगा ली और प्रणाम कर अपने शिविर की ओर चला गया।

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर मध्याह्न का भोजन कर रहे थे, जब नगर-भर में शंख, दुन्दुभि, भेरी तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के नरसिंहों का तुमुल नाद उठा। महामात्य अवलोकितेश्वर को यह समझ आया कि मालव-नरेश मृगया से लौट आए हैं। इस कारण वे आशा करने लगे कि सायंकाल तक उनसे भेंट हो सकेगी और वे शीघ्र ही अपना कार्य सम्पन्न कर कन्नौज वापिस लौट सकेंगे।

महाप्रभु ने एक सेवक को आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर महामात्य चन्द्रसेन से पता करे कि महाराज से किस समय भेंट हो सकेगी। उस सेवक को उस भवन से बाहर नहीं जाने दिया गया और एक मालव-सैनिक जाकर समाचार ले आया कि मालव-महामात्य स्वयं सायंकाल महाप्रभु से भेंट करने आवेंगे।

सायंकाल महाप्रभु को भ्रमण के लिए नहीं ले जाया गया। रात्रि के दिए जलने पर महामात्य चन्द्रसेन आया और महाप्रभु से कहने लगा, "भगवन्! महाराज देवगुप्त का सन्देश आया है कि उन्होंने कन्नौज पर विजय प्राप्त कर ली है और उनकी आज्ञा है कि यदि महाप्रभु अब भी उनसे भेंट करने की इच्छा रखते हों तो उनको कन्नौज भेज दिया जाय। महाराज वहाँ पर अभी कुछ मास तक रहेंगे।"

इस समाचार से तो महाप्रभु स्तब्ध रह गए। उनको क्रोध भी आया, परन्तु बोधिसत्त्व की उपाधि के स्वरूप अपना क्रोध मन-ही-मन पी गए। पश्चात् शान्त स्वभाव में कहने लगे, "महामात्य चन्द्रसेन! मैं आपका अति कृतज्ञ हूँ कि आपने मेरी और मेरे सेवकों की सेवा की है। अब तो मैं महाराज ग्रहवर्मन का दूत नहीं रहा और अब मैं उस सम्मान का भी अधिकारी नहीं रहा, जो मुझे इतने काल से मिल रहा था। अब मैं कन्नौज लौट जाना चाहूँगा।"

"भगवन्! यह सम्मान जो पिछले पन्द्रह-सोलह दिनों से आपको मिल रहा था, आपके कन्नौज के महामात्य के नाते नहीं था। यदि हम

आपको महाराज ग्रहवर्मन का दूत समझते तो आपका स्थान बन्दीगृह में होता। जो कुछ भी व्यवहार हमने आपके साथ किया है, वह आपके बौद्ध-सम्प्रदाय के एक उच्च अधिकारी होने के नाते किया है। हमारे राज्य मे सब सम्प्रदायो का एक-समान आदर होता है। अतएव आप-जैसे महान् आत्मा का सम्मान होना स्वाभाविक ही था। यदि महाप्रभु हमारे नगर मे रहना चाहें तो अब भी आपका वैसा ही सम्मान और आदर होता रहेगा, जैसा अब तक होता रहा है।"

"आपका अत्यन्त धन्यवाद है। इस पर भी यदि कोई बाधा न हो तो हम कन्नौज लौट जाना चाहेगे।"

"आप जा सकते हैं। जिस समय आप चाहें, यहाँ से प्रस्थान कर सकते है। आपके लिए किसी प्रकार की बाधा अथवा प्रतिबन्ध नही है।"

महामात्य नमस्कार कर जाते हुए कहने लगा, "मै समझता हूँ कि आप यह जानने के लिए उत्सुक होगे कि महाराज ग्रहवर्मन तथा राज-परिवार के अन्य सदस्यों का क्या हुआ? सूचना मिली है कि मालव-सेना बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के कन्नौज तक पहुँच गई थी और कन्नौज की प्रजा तथा सेना की ओर से कोई विरोध नही हुआ। महाराज ग्रहवर्मन ने हमारे महाराज के, वहाँ अन्तःपुर में जाने पर आपत्ति की, तो महाराज देवगुप्त ने उनको अपने खड्ग का स्वाद चखा दिया और महाराज ग्रहवर्मन स्वर्ग सिधार गए। उनकी सुन्दर रानी राज्यश्री महाराज देवगुप्त के अन्तःपुर को सुशोभित कर रही हैं।

"प्रजा में सब प्रकार से शान्ति है। केवल मालव-सैनिकों के मनो-रंजन के लिए नगर से कुछ सहस्र युवतियो की सेवा उपलब्ध की गई है और महाराज की आज्ञा से उन युवतियो को भली भाँति पुरस्कृत भी किया गया है।"

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर इस समाचार से अपने मन मे क्रोध से उबल रहा था, परन्तु ऊपर से शान्त स्वर में बोला, "शान्तं पापं, शान्तं पापं।"

इस पर महामात्य चन्द्रसेन ने कहा, "भगवन्! यह पाप नहीं है। यह तो कन्नौज की जनता के उद्धार का मूल्य है।" इतना कह चन्द्रसेन चला गया और महाप्रभु ने अपने सेवकों से कहा, "यहाँ से प्रस्थान का शीघ्र प्रबन्ध कर दो।"

: ६ :

श्री बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को महामात्य-पद पर सुशोभित होकर मालवा गए दस दिन हो चुके थे। पद्मराज छुपकर अपने मित्रों के यहाँ दिन व्यतीत कर रहा था। इन दिनों, वर्तमान परिस्थिति में वह क्या करे, इस पर उसने गम्भीरतापूर्वक विचार किया और विचार कर उसने एक योजना बना डाली। उसकी योजना इस प्रकार थी कि वह स्वयं स्थानेश्वर जाकर महाराज प्रभाकरवर्धन से सहायता माँगे। स्थानेश्वर से सेना लेकर कन्नौज पर अधिकार कर और महाराज ग्रहवर्मन को सिंहासन से पृथक् कर, राज्यश्री को सिंहासन पर बिठाकर मालवा के आक्रमण का विरोध करे। परन्तु कठिनाई, महारानी राज्यश्री से उनके पिता प्रभाकर-वर्धन के नाम एक पत्र लेने की थी, जिससे उसे उनसे सहायता माँगने का अधिकार मिल जाय। इसके लिए उसने कात्यायिनी से सम्पर्क उत्पन्न किया और महारानी राज्यश्री से भेंट करवाने में सहायता माँगी।

महारानी राज्यश्री कात्यायिनी के साथ नगर-भ्रमण के लिए जाने लगी थी। इस भ्रमण में वह नगर के प्रमुख नागरिकों से भेंट भी करने लगी थी। वह पुजारी विष्णुकान्त से भी मिली थी और विष्णुकान्त ने उसके सन्मुख नगर की परिस्थिति स्पष्ट रूप में रख दी थी। उसका कहना था, "महारानी जी! आपको यह विदित होना चाहिए कि मालव-नरेश बौद्ध नहीं है। न ही वह किसी विशेष धर्म को अपनी जीवनचर्या का आधार मानता है। अतएव वह बौद्धों के पञ्चशील सिद्धान्तों का सम्मान नहीं करेगा और महामात्य जी के मालवा से सफल होकर लौटने की कदापि आशा नहीं रखनी चाहिए।

"ऐसी अवस्था मे हमारा निवेदन है कि सेना को प्रसन्न रखने के लिए उसका कम-से-कम आंशिक वेतन तो दे ही देना चाहिए। हमारे सुरक्षा मंत्री भिक्षुक हो गए है। उनके स्थान पर कोई अन्य उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति शीघ्र होनी चाहिए अन्यथा सेना अनुशासनहीन हो जायगी। इसके साथ ही जनता से सहयोग मॉगा जाना चाहिए। मै समझता हूॅ कि जनता तन-मन-धन से राज्य की सेवा करेगी।"

महारानी नगर के सेट्ठियो से मिली। उनका कहना था, "हम महाराज के भक्त और धर्मानुयायी हैं। हम युद्ध नहीं चाहते। इस पर भी अपने घर और परिवार की रक्षा के लिए हम उत्सुक हैं। राज्य यदि कहे तो हम धन से सहायता के लिए सदैव तत्पर रहेगे।"

महारानी राज्यश्री जानती थीं कि सेट्ठी प्रायः बौद्ध हैं। इस कारण उसने प्रश्न किया, "युद्ध मे होने वाले रक्तपात से क्या आप लोग कल्याण की आशा रखते हैं?"

"रक्तपात को रोकने की हममे सामर्थ्य नही है। भगवान् तथागत भी रक्तपात को निर्मूल नही कर सके। कदाचित् उनका विचार इसको निर्मूल करने का था भी नहीं। यदि ऐसा होता तो वे कदापि मासाहार नहीं करते। मास तो रक्तपात के बिना सभव नहीं।

"महारानी जी! हम तो यह समझे हैं कि भगवान् का आशय यह था कि निर्वाणोभिमुख लोग रक्तपात से बचे। अन्य, जो इतर प्राणी हैं, वे रक्तपात करे तो कुछ हानि नहीं। उनके रक्तपात से निर्वाणोभिमुखी प्राणी लाभ उठाएॅ तो और भी अच्छा है। इसका अर्थ यह हुआ कि अबौद्धों की सेना तैयार कर उनसे युद्ध करवाना धर्मविरुद्ध नही है।"

यद्यपि यह मीमासा राज्यश्री को पसन्द नहीं थी, तो भी तात्कालिक बौद्ध व्यवहार के प्रतिरूप ही थी। उस रात वह महाराज के साथ बैठकर भोजन करने लगी और भोजन मे जब हिरण का मॉस परसा गया तो उसने सेट्ठियो से कही युक्ति महाराज के सन्मुख रख दी।

महाराज ने युक्ति का कुछ उत्तर न दिया, परन्तु अबौद्धो की सेना

बनाने के लिए भी वे तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा, "हमे अवलो-कितेश्वर जी के आने तक ठहरना ही चाहिए और पश्चात् हम देखेंगे कि क्या हो सकता है।"

"महाराज!" महारानी का कहना था, "मनुष्य, जो बौद्ध मीमासा को न तो समझ सकते हैं और न मानते हैं, वे पशुओं से किसी प्रकार भी श्रेष्ठ नहीं। उनका जीवनान्त कर देना किसी प्रकार से भी निर्वाण-पथ मे बाधाजनक नहीं। कदाचित् उनका जीवनान्त उनको निर्वाण पथ पर अग्रसर करने के लिए सहायक ही सिद्ध हो।"

ग्रहवर्मन ने हँसते हुए कहा, "तो तुम मनुष्य-मनुष्य मे भेद मानती हो? बौद्धों को उच्च कोटि के प्राणी और अन्यों को निम्न कोटि के प्राणी समझती हो? ऐसा तो तथागत भगवान का आशय नहीं था।"

"महाराज! मेरे मानने अथवा न मानने का तो प्रश्न नहीं। यह बात तो स्वयसिद्ध है कि बौद्ध मत संसार के अन्य मतो से एक उन्नत मार्ग है। उस मार्ग पर चलने वाले निस्सन्देह उच्च कोटि के प्राणी होंगे।"

"तो आर्य मतावलम्बियों का यह कहना कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो से श्रेष्ठ प्राणी हैं और उनकी रक्षा करना और उनको सहा-यता पहुँचाना पूर्ण जाति का कर्तव्य है, ठीक हुआ क्या?"

"परन्तु उनमे तो ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण होती है। उसकी योग्यता अथवा आचरण पर ध्यान नहीं दिया जाता।"

"हमारे यहाँ भी तो एक बौद्ध की सन्तान बौद्ध होती है। एक बौद्ध बालक भी क्या निर्वाण-मार्ग का राही है, जानने का कोई साधन नहीं। यदि बौद्धो की रक्षा के लिए अबौद्धो का रक्तपात क्षम्य हो जाए, तो फिर क्षत्रियो के युद्ध करने मे, जो ब्राह्मणो से निम्न कोटि के प्राणी माने जाते हैं, क्या हानि है?

"देखो देवी! तुम्हारी युक्ति अति प्रबल है। भगवान् मास खाते थे, अतः हत्या तो होती ही होगी। इसी प्रकार राज्य की रक्षा के लिए कुछ

हत्याएँ हो जायँ तो हानि ही क्या है ? मुझको तो केवल एक आपत्ति है कि मेरे पास कोई साधन नही, जिससे मै जान सकूँ कि युद्ध के समय कौन सैनिक उन्नत विचारो का है और कौन नहीं है। किसकी हत्या क्षम्य होगी और किसकी नहीं।

"इसी कारण मैं यह कहता हूँ कि बोधिसत्त्व महाप्रभु जी को आ जाने दो और फिर इस प्रश्न पर निर्णय कर लेगे।"

एक दिन भ्रमण के लिए जाते समय कात्यायिनी ने कहा, "महारानी जी ! भूतपर्व महामात्य पद्मराज जी आप से मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे ? उनको तो देश-निर्वासन का दंड हो चुका है।"

"जी, महारानी जी ! परन्तु वे किसी कार्य-विशेष से ही यहाँ है। आपसे कुछ विचार-विनिमय करना चाहते है।"

"हमे उनके विचार जानने मे कोई हानि नही।"

कात्यायिनी महारानी जी को वासुदेव के मन्दिर मे ले गई और वहाँ पद्मराज से, जो साधारण वेशभूषा मे वहाँ उपस्थित था, महारानी की भेंट हो गई। दोनो एक पृथक् आगार मे जाकर बाते करने लगे।"

महारानी के बैठने पर पद्मराज ने आदरयुक्त मुद्रा मे खडे-खडे ही कहा, "महारानी जी ! मै स्थानेश्वर जा रहा हूँ। वहाँ महाराज से भेंट कर कन्नौज की रक्षा के विषय मे विचार-विनिमय करना चाहता हूँ। यदि महारानी जी कुछ पत्र अपने पिता के नाम देना चाहे, तो अत्यन्त कृपा होगी।"

"हमने यदि कोई पत्र भेजना होगा तो राज्य के दूत के हाथ भेज सकते है। आप क्यो पत्रदूत बनना चाहते है ?"

"इस कारण कि आपका पत्रवाहक बनकर मैं एक विश्वस्त व्यक्ति माना जाऊँगा। साथ ही यदि आप लिख दे कि मै कन्नौज की रक्षा के विषय मे उनसे विचार करना चाहता हूँ तो मुझे बहुत सुभीता होगी।"

"तो आपका आशय है कि मैं आपको कनौज-राज्य की ओर से बात करने का अधिकार दे दूँ ?"

"हाँ! आप यहाँ की महारानी हैं और आपका इस राज्य की रक्षा में उतना ही उत्तरदायित्व है, जितना इस राज्य में किसी अन्य का।"

"पद्मराज जी! आप मुझे महाराज का स्थानापन्न बनने के लिए कह रहे हैं क्या?"

"महारानी जी! मैंने ऐसी कोई बात नहीं कहीं। इस पर भी यह तो आप समझ ही सकती हैं कि यदि किसी बाहर की सेना ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया तो यह उस सेना का अधिकार होगा कि कन्नौज का कौन अधिपति हो। यदि मालव-सेना यहाँ आ गई तो निस्सन्देह महाराज ग्रहवर्मन के स्थान देवगुप्त यहाँ का अधिपति बन जायगा। मैं चाहता हूँ कि मालव-सेना के यहाँ पर आने से पूर्व स्थानेश्वर की सेना यहाँ पर अधिकार कर ले। पश्चात् यह उसे अधिकार होगा कि वह किसको यहाँ का अधिपति नियुक्त करती है। यह स्वाभाविक ही है कि स्थानेश्वर की सेना यहाँ का अधिपति आपको बनाना चाहेगी।"

राज्यश्री को बात तो समझ में आ गई, परन्तु वह कोई ऐसी बात नहीं करना चाहती थी, जिससे वह अपने पति के विरुद्ध किसी षड्यन्त्र में सम्मिलित हो जाय। इस कारण वह विचार करने लगी। कुछ देर पश्चात् उसने कहा, "पद्मराज जी! मैं लिखकर कुछ नहीं दूँगी। केवल मौखिक आशीर्वाद कि आपका प्रयत्न सफल हो, दे सकती हूँ। केवल इतना कह देना चाहती हूँ कि यहाँ का राज्य यदि मुझे सौंपा गया तो पुनः यह मेरे पतिदेव के चरणों में जा पहुँचेगा।"

पद्मराज को इस भेंट से सफलता नहीं मिली। इस पर भी वह अपनी योजना को चलाना चाहता था। वह उसी रात एक तीव्रगामी अश्व पर सवार होकर कन्नौज राज्य की सीमा से बाहर निकल गया। उसका विचार स्थानेश्वर जाने का था, परन्तु वह स्थानेश्वर जाने से पूर्व मालवा जाकर वहाँ का पूर्ण समाचार लेना चाहता था।

तीसरे दिन वह मालव-राज्य की सीमा में प्रवेश कर गया और

उज्जयिनी की ओर बढ़ने लगा। दो दिन की यात्रा के पश्चात् उसे एक बहुत बड़ी सेना कन्नौज की ओर बढ़ती हुई दिखाई दी। विन्ध्याचल की एक रमणीक घाटी मे उसे सहस्रो तम्बू गड़े हुए दिखाई दिए। वह इन्हे देख खड़ा हो गया। वह जानना जाहता था कि सेना किस ओर प्रयाण कर रही है। इसके लिए वह एक निकटवर्ती ग्राम मे चला गया। एक ग्रामीण को अपना अश्व दे और उससे ग्रामीण-वस्त्र लेकर भेष बदल, वह सैनिक शिविर की ओर चल पड़ा। वहाँ वह रक्षको द्वारा पकड़ लिया गया और सेनाध्यक्ष के समक्ष उपस्थित किया गया।

सेनाध्यक्ष इस प्रौढ़ावस्था के व्यक्ति को सम्मुख खड़ा देख पूछने लगा, "कहाँ के रहने वाले हो ?"

"उज्जयिनी का महाराज !"

"इधर क्या कर रहे हो ?"

"मेरे स्वसुर कन्नौज राज्य के बड़गाँव के रहने वाले है। वहाँ अपनी गर्भिणी स्त्री को छोड़ने गया था। उसे छोड़कर लौट रहा हूँ।"

"कौन जाति हो ?

"मै बौद्ध उपासक हूँ श्रीमान् जी !"

"राज्य मे युद्ध की चर्चा है क्या ?"

"नहीं महाराज ! वह तो बौद्ध राज्य है। लोग शान्तिप्रिय हैं। राज्य किसी का हो, उन्हे चिन्ता नही।"

"महाराज ग्रहवर्मन को देखा है ?"

"नही महाराज ! मैं कन्नौज मे कभी नहीं गया।"

"जनता महाराज ग्रहवर्मन का मान करती है क्या ?"

"हाँ, महाराज ! बहुत। वह इस कारण कि वहाँ कर बहुत कम है और वह भी यदि कोई न दे तो उसे बाध्य नहीं किया जाता। कभी कोई कर न देता हुआ पकड़ भी लिया जाता है तो महाराज उसे क्षमा कर देते हैं। मेरे स्वसुर कई बार पकड़े जा चुके है और महाराज ने उन्हे क्षमा कर दिया था।

"परन्तु महाराज! लोग स्वेच्छा से कर देते हैं। एक साधारण कर्मचारी आता है और ग्राम में से पिच्यानवे प्रतिशत कर एकत्रित कर ले जाता है।"

"अब कहाँ जा रहे हो?"

"महाराज! उज्जयिनी जा रहा हूँ। वहाँ के एक सेठ धनगुप्त की सेवा में हूँ।"

"बहुत दूर विवाह किया है तुमने?"

"मेरे श्वसुर महाकाली के दर्शन करने आए थे। उनका परिवार भी साथ था। उनकी लड़की मुझे बहुत अच्छी लगी और उसे मैं भी अच्छा लगा। हमारा विवाह हो गया। हमारा विवाह हुए दस वर्ष व्यतीत हो गए हैं। सौभाग्य से मेरे पत्नी के दिन चढ़े तो उसको उसके माता-पिता के पास छोड़ने चला गया था। अब वह अति प्रसन्न है।"

"देखो उरतक!" सेनाध्यक्ष ने डाँटकर कहा, "सीधे उज्जयिनी का मार्ग पकड़ो और पीछे लौटकर मत देखना।"

पद्मराज यह समझ गया कि सेना मालव-नरेश की है और कन्नौज-विजय के लिए जा रही है।

अपने अनुमान की पुष्टि के लिए वह उज्जयिनी के मार्ग पर कुछ दूर निकल गया और पश्चात् एक पहाड़ी के शिखर पर चढ़कर सेना की गतिविधि का अध्ययन करने लगा।

: १० :

कन्नौज की अवस्था यथा पूर्व थी। कुछ अशान्ति और चिन्ता जो पद्मराज के महामात्य-पद से पृथक् किए जाने पर उत्पन्न हुई थी, वह समय व्यतीत होने पर और महारानी राज्यश्री के नागरिकों से मेलजोल के कारण शान्त हो गई थी। नगर में गतिविधि पूर्ववत् आरम्भ हो गई थी। लोग चैत्यों में उपासना के लिए और मन्दिरों में पूजा के लिए जाने आरम्भ हो गए थे। राग-रंग, नृत्य आदि के आयोजन फिर से आरम्भ

हो गए थे।

इस पर भी कुछ बुद्धिशील व्यक्ति थे, जो महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी के समय पर वापस न लौटने के कारण चिन्तित थे।

ऐसी परिस्थिति मे अचानक एक दिन प्रातःकाल मालव-सेना का कन्नौज की सीमा मे घुस आने का समाचार आया और उसके दूसरे दिन सेना नगर को चारो ओर से घेर कर खडी हो गई।

महाराज ग्रहवर्मन् को जब सूचना मिली कि मालव-सेना ने आक्रमण कर दिया है तो सबसे पहिले उनका ध्यान महाप्रभू की ओर गया। पश्चात् वे महारानी राज्यश्री से विचार करने लगे कि क्या करे। उनको ऐसी परिस्थिति मे अपनी पूर्व की योजना के अतिरिक्त कुछ न सूझा। उन्होने निश्चय कर लिया कि राजपाट सब कुछ देवगुप्त के हाथ सौप वे भिक्षुक हो जावेगे। उसी समय उन्होने घोषणा करवा दी, "मालवाधिपति देवगुप्त एक भारी सेना लेकर कन्नौज आ रहे है। मैने यह निश्चय किया है कि महाराज देवगुप्त का अतिथि के रूप मे कन्नौज मे स्वागत किया जाए। जहाँ तक प्रजा का सबन्ध है, उसको किसी प्रकार भी उनकी आज्ञा की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है, उसका महाराज देवगुप्त से मिलकर निर्णय किया जायेगा। यहाँ का जो भी राजा बनेगा, वह प्रजा का पूज्य और प्रजा का संरक्षक होगा। अतएव प्रजा को इस विषय में हस्तक्षेप नही करना चाहिए।"

यद्यपि इस घोषणा से अधिकाश नागरिको को सन्तुष्टि नही हुई, तो भी अपने को इस विषय में कुछ भी करने मे अयोग्य समझ सब लोग शान्त रहे। लोगो ने समझा कि महाराज ग्रहवर्मन् भिक्षु बनकर किसी चैत्य में प्रवेश ले लेंगे और दोनो राज्य परस्पर मिलकर एक हो जायेंगे।

अगले दिन मालव-सेना ने नगर पर घेरा डाल दिया। महाराज ग्रहवर्मन ने आज्ञा दे दी कि नगर के द्वार खोल दिए जाएँ। सुरक्षा मन्त्री सुषेण, जो बौद्ध-भिक्षु हो गया था, नगर के मुख्य द्वार पर पहुँच मालवाधिपति के सम्मुख उपस्थित हो गया। उसने कहा, "महाराज ग्रहवर्मन्

की आज्ञा से आपका स्वागत करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। हां
यद्यपि आपके आगमन की अग्रिम कोई सूचना नहीं मिली तो भी महारा
आपका स्वागत करते हैं और आपको आमन्त्रित करते हैं कि आप राज्य
प्रासाद मे पधारे और कन्नौज-अधिपति का आतिथ्य स्वीकार करे।"

इस अप्रत्याशित निमन्त्रण को सुन महाराज देवगुप्त एक क्षण आश्चर्य
मे लीन खडा रहा। पश्चात् यह विचार कर कि कहीं यह कोई षड्यन्त्र
न हो, अपने कर्तव्य का निश्चय करने लगा। उसने विचार कर कहा, "महा-
राज को विदित होना चाहिए कि हम अकेले नहीं आए है। हमारे साथ
हमारी पचास सहस्र सेना है। क्या यह निमन्त्रण सबके लिए है अथवा
अकेले हमारे लिए?"

"कन्नौज के महाराज की आज्ञा है कि आपको आपके साथियों
सहित आमन्त्रित किया जाए। अतएव सेना को नगर के बाहर डेरा
डालने की आज्ञा दे दे और स्वय राज्य-प्रासाद मे पधारे।"

देवगुप्त ने अपने सेनाध्यक्ष को बुलाकर आज्ञा दे दी, "कन्नौज के
महाराज ग्रहवर्मन् के निमत्रण पर हम राज्य-प्रासाद मे जा रहे हैं। हमारे
साथ हमारे मान के योग्य पॉच सौ सैनिक एवं सेनाध्यक्ष स्वयं साथ रहें
शेष को आज्ञा दे दी जावे कि राजमार्ग पर खडे होकर हमारी सवारी की
शोभा बढ़ावे और दो सहस्र सैनिक प्रसाद के बाहर खडे होकर मालव
राज्य की जयघोष करे।"

सेनाध्यक्ष इस आजा का अर्थ समझ गया। उचित आज्ञा दे दी
गई। इस प्रकार पूर्ण सेना नगर के अन्दर प्रवेश कर नगर द्वार से लेकर
राज्य-प्रासाद तक मार्ग केदोनो ओर खडी हो गई। महाराज देवगुप्त के
नगर प्रवेश से पूर्व ही दो सहस्र सैनिक राज्य-प्रासाद के बाहर खडे रहने
के लिए भेज दिए गए।

जब यह प्रबन्ध होगया तो अपने आगे-पीछे पॉच सौ सैनिक लेकर
महाराज देवगुप्त सेनाध्यक्ष के साथ राज्य-प्रासाद की ओर चल पडे। सुपेर
देवगुप्त के साथ रथ मे बैठा हुआ था। उसने साथ-साथ जाते हुए यह

अनुभव किया कि वह देवगुप्त को साथ नहीं ले जा रहा, प्रत्युत देवगुप्त उसे बंदी बनाकर अपने साथ ले जा रहा है।

राजमार्ग पर अथवा प्रासाद के बाहर कन्नौज का कोई सैनिक नहीं था। ग्रहवर्मन् देवगुप्त को किसी प्रकार से भी शंकित करना नहीं चाहता था।

प्रासाद के द्वार पर ग्रहवर्मन् स्वय देवगुप्त का स्वागत करने के लिए उपस्थित हुआ। उसने हाथ फैलाकर आक्रमणकारी का अतिथि के रूप मे स्वागत किया और उसे एक विशाल आगार मे ले जाकर बैठाया। उस आगार मे राज्यश्री मालव-नरेश का स्वागत करने से लिए उपस्थित थी। उसने अभ्यागत को आदर से उच्च आसन पर बैठाया और पश्चात् दासियो को जलपान का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी।

महाराज देवगुप्त के उस आगार मे प्रवेश करते ही पचास मालव-सैनिक और सेनाध्यक्ष भी वहाँ आ, एक ओर दीवार के साथ पंक्ति-बद्ध खड़े हो गए।

जलपान आरम्भ हुआ और परस्पर बातचीत होने लगी। ग्रहवर्मन् ने कहा, "बन्धु। बिना सूचना के आने से आपका स्वागत भलीभाँति नहीं किया जा रहा।

"मैने तो महामात्य अवलोकितेश्वर जी को आपकी सेवा में भेजा था और आपको सपरिवार यहाँ आमंत्रित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वे आपकी सेवा मे उपस्थित नही हो सके और आप उनसे बिना मिले ही यहाँ के लिए चल पड़े हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं मित्र!" देवगुप्त ने कहा, "वास्तव मे अवलोकितेश्वर जी वहाँ पहुँच गए थे, परन्तु हमने यही उचित समझा कि उन से वार्तालाप करने से पूर्व ही हम यहाँ कन्नौज मे आपसे भेंट करले।

"हमको विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि कन्नौज राज्य का प्रबन्ध बहुत ढीला है। हम अपने पड़ोस मे किसी ढीले राज्य को सहन नहीं कर सकते। इससे हमारे अपने राज्य की रक्षा संशित हो जाती है। अतः

यहाँ पहुँच स्वयं स्थिति का अध्ययन कर, इसके प्रवन्ध में उचित व्यवस्था करने चला आया हूँ। अभी तक मार्ग मे जो कुछ भी देखा है, उससे अपने को प्राप्त समाचारो की सम्पुष्टि ही हुई है। अतएव हमारा यहाँ आना सार्थक ही हुआ है।"

"किन बातो मे श्रीमान् ने हमारा प्रबन्ध ढीला देखा है?"

"सीमा पर किसी का पहरा नही था। न कोई सैनिक चौकी ही है। सीमा से लेकर राजधानी तक मार्ग स्थान-स्थान पर टूटा हुआ है। हम इतनी बडी सेना लेकर इस राज्य मे आए हैं। न तो कोई हमारा स्वागत करने वाला हमे मिला है और न कोई विरोध करने वाला। हमारी सेना के आगमन को देखने के लिए लोग घरो से बाहर निकल आते थे और विना हर्ष तथा विषाद प्रकट किए अपने काम पर लग जाते थे। हमारे सैनिक जब कुछ क्रय करने उनके पास जाते, तो वे दाम लेकर वह वस्तु उनको दे देते थे। यहाँ राजधानी में भी, यहाँ की जनता हमारी सेना और हमें ऐसे देखती रही है, जैसे हम यहाँ हैं ही नही। इसी प्रकार की अनेको बातो को देख हमारा अनुमान सत्य सिद्ध हुआ है कि यह देश निर्जीव प्राण-रहित शव की भाँति है।"

"बन्धु! ये सब बाते यहाँ गुण हैं, अवगुण नही। प्रजा, जिसने केवल मात्र प्रजा ही रहना है, उसको एक राजा और दूसरे मे भेद करने की आवश्यकता नहीं। जहाँ तक सेना का संबन्ध है, मैंने इस राज्य मे न्यूनतम कर दी है। इससे हमारा बहुत-सा धन बच जाता है। लोगो पर कर कम हैं और वे अपने जीवन से संतुष्ट हैं। सब सम्पन्न और समृद्ध हैं। ये तो राज्य की श्रेष्ठता के लक्षण हैं।"

"हम ऐसा नहीं समझते। जिस प्रकार आज मै यहाँ आया हूँ, उसी प्रकार कल यहाँ हूण अथवा पार्थिया के सैनिक आ सकते है। यहाँ की प्रजा और सेना उनका विरोध तक नहीं कर सकेगी।"

"हम युद्ध द्वारा विरोध करना उचित नही मानते।"

"तो किस प्रकार विरोध करेंगे आप?"

"हम राज्य को एक मिथ्या भावना मानते हैं। यह मनुष्य जन्म के क्ष्य-उद्देश्य, निर्वाण-प्राप्ति मे किसी प्रकार सहायक नही हो सकता।"

"यही तो मैं देख रहा हूँ। इसी कारण मैं यहाँ आया हूँ। आप से व्यर्थ समझते हैं तो इसे उनको सौंप दीजिए, जो इसको सुख-सुविधा सहायक समझते हैं।"

"मैं यही विचार कर रहा हूँ।"

"तो ठीक है। आप इस राज्य को छोड दीजिए। मैं राज्य को पनी और जनता की सुख-सुविधा मे साधन मानता हूँ और मुझको पने जीवन का उद्देश्य पालन करने दीजिए।"

"क्या है आपके जीवन का उद्देश्य ?"

"स्वयं सुख प्राप्त करना और अपनी प्रजा को सुख पहुँचाना।"

"सुख-प्राप्ति से मनुष्य उन्नति नही करता, प्रत्युत पतन की ओर ाता है।"

"ठीक है। यह आपका विचार है न। आप निर्वाण-प्राप्ति के लिए यत्न कीजिए। मेरी शुभ कामना आपके साथ है।"

"तो !"

"तो यह कि इस समय से मालव-राज्य और कन्नौज-राज्य एक ोते हैं और इन दोनों राज्यों का स्वामी देवगुप्त होगा।"

"मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

"मै आपको आज्ञा देने नहीं आया। आपको जो कुछ उचित ातीत हो कीजिए। मै कन्नौज-राज्य मे जो घोषणा करवा रहा हूँ, वह सुन ीजिए।"

महाराज देवगुप्त ने सेनाध्यक्ष को समीप बुलाकर घोषणा लिखने के लिए कहा। महाराज ने लिखाया, "मालव-नरेश महाराजाधिराज देवगुप्त यह घोषणा करते हैं कि महाराज ग्रहवर्मन की अनुमति से वे कन्नौज-राज्य को मालवा मे सम्मिलित कर रहे हैं। आज से कन्नौज की प्रजा हमारी प्रजा है। हम वचन देते हैं कि कन्नौज की जनता की सुख-

शान्ति और रक्षा के लिए यत्न करना आज से हमारा उतना ही कर्तव्य होगा, जितना मालव-जनता की सुख-प्राप्ति और रक्षा के लिए है।

"हम अपनी सेना के साथ कन्नौज के अतिथि हैं और चाहते हैं कि कन्नौज की जनता हमारी सेना तथा हमारे साथियो की प्रत्येक प्रकार से सेवा-शुश्रूपा कर उन्हें प्रसन्न करे। इस सेवा-शुश्रूषा का उचित मूल्य प्रत्येक को मिलेगा। हम अपनी सेना के कोषाध्यक्ष को आज्ञा देते हैं कि जनता से सेवा के उपलक्ष मे उन्हे उचित मूल्य दिया जाए।

"हम अपने सैनिको को आज्ञा देते है कि मालव-जनता की भाँति कन्नौज की जनता को भी हमारी प्रजा समझे और उनके साथ मैत्री-भाव रखे।"

इस घोषणा को सेनाध्यक्ष ने सैनिको को देकर कहा कि इसे कन्नौज की प्रजा को सुना दिया जाय और सैनिक इसके अनुकूल आचरण करे।

: ११ :

जलपान के पश्चात् देवगुप्त ने सेनाध्यक्ष को आज्ञा दी, "हम आज से इसी राज्य-प्रासाद मे रहेंगे। हमारे ठहरने और विश्राम का उचित प्रबन्ध कर दिया जाय। प्रासाद के सब सेवक और सेविकाओ को आज्ञा दी जाय कि वे उसी प्रकार कार्य करते रहे, जैसे अभी तक कर रहे थे। सबको उचित वेतन एव पुरस्कार मिलेगा।"

इतना कह देवगुप्त उठ खड़ा हुआ और राज्यश्री को सम्बोधन कर कहने लगा, "देवी! हमारा मार्ग दिखाओ। हमारे विश्राम के लिए कौन-सा आगार है?"

राज्यश्री ने अपनी सेविका को आज्ञा दी, "चन्दा! महाराज को इनके लिए निश्चित आगार मे ले जाओ।"

"नहीं देवी! चन्दा नही। यह हमारे यहाँ की प्रथा नहीं। हमारे प्रासाद मे रानियाँ ही राजा की सेवा करती हैं। सेविकाओ को, इस कार्य के लिए नियुक्त नहीं किया जाता।"

"ठीक है महाराज! परन्तु जिस क्षण से मेरे पतिदेव यहाँ के महाराज नहीं रहे, मै महारानी नहीं रही। अतः रानी के अभाव मे चन्दा ही आपका पथ-प्रदर्शन करेगी।"

"तो हम आज्ञा देते हैं कि देवी राज्यश्री आज से हमारी रानी होगी।"

"हम भारत-खण्ड में रहने वालो मे यह प्रथा नहीं है महाराज! एक विवाहिता पत्नी अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे की सेवा नहीं कर सकती।"

राज्यश्री का मुख क्रोध से तमतमा रहा था। देवगुप्त ने उसके रक्त-मुख को देखकर कहा, "हम यह जानते है। परन्तु देवी! तुम्हारे पति तो आज सायंकाल से पूर्व बौद्ध भिक्षु होने जा रहे हैं। अतः तुम पत्नी नही रहोगी। हम आज्ञा देते हैं कि भीतर जाकर हमारे विश्राम का प्रबन्ध करो।"

राज्यश्री ने उत्तर नही दिया और अपने आगारो की ओर चल दी। देवगुप्त ने उसे जाते देखा तो उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। ग्रहवर्मन ने उसका मार्ग रोककर कहा, "महाराज! इस ओर नही। आप पथ भूल रहे हैं। उधर चलिए। दासी चन्दा आपको आपके विश्राम-गृह की ओर ले जायगी।"

देवगुप्त ने एक क्षण के लिए ग्रहवर्मन का मुख देखा। पश्चात् अपनी खड्ग निकालकर कहा, "ग्रहवर्मन! मार्ग छोडो। हमे अपनी इच्छा का विरोध पसन्द नही है।"

ग्रहवर्मन ने मार्ग नहीं छोड़ा। उसने कहा, "बन्धु! मै अपने मित्र को पथ-भ्रष्ट होने नहीं दूँगा। आपका मार्ग उस ओर है।"

एक ही वार से देवगुप्त ने ग्रहवर्मन का सिर धड से पृथक् कर दिया। पश्चात् वह राज्यश्री के पीछे-पीछे चल पडा।

मुख्य भवन से एक सकरा मार्ग अन्तःपुर की ओर जाता था। राज्यश्री इसी मार्ग से गई थी। देवगुप्त भी उसी मार्ग पर चल पडा। सेनाध्यक्ष के संकेत से पाँच सैनिक भी उसके साथ हो लिए, परन्तु देवगुप्त

ने उन्हें साथ आने से मना कर दिया।

राज्यश्री के आगार में देवगुप्त को एक और बाधा खड़ी दिखाई दी। दस स्त्रियाँ नग्न खड्ग लिये मार्ग को रोके खड़ी थी। देवगुप्त इन बालिकाओं को देख हँस पड़ा। हँसते हुए उसने कहा, "देवियो! मैं यहाँ का महाराज देवगुप्त हूँ। मार्ग छोड़ दो।"

"महाराज! यह आवास स्थानेश्वर-अधिपति महाराज प्रभाकरवर्धन की सुपुत्री राज्यश्री का है। देवी, जो दो वीर भ्राताओं की भगिनी हैं, उनकी आज्ञा से हम रक्षा के लिए खड़ी हैं।"

"ओह! तो यह बात है।" देवगुप्त ने सबसे आगे जो खड़ी थी, उसको सम्बोधन कर कहा, "देवी! तुम कौन हो? तुम तो अच्छी सुन्दर स्त्री हो। मैं समझता हूँ कि हमारे सेनाध्यक्ष तुमको पसन्द करेंगे।"

यह कात्यायिनी थी। वह सबसे आगे खड़ी देवगुप्त का मार्ग रोक रही थी। देवगुप्त ने अपना रक्त-रंजित खड्ग म्यान में डालते हुए कहा, "हम सुन्दर स्त्रियों पर खड्ग-प्रहार नहीं कर सकते। यह हमारे धर्म के विपरीत है। अतएव हम आपसे अनुरोध करते हैं कि हमारा मार्ग छोड़ दें। हम सबको पुरस्कार देंगे।"

"नहीं महाराज!" कात्यायिनी ने कहा, "यह मार्ग आपका नहीं है। आप भूल कर रहे हैं।"

"तो तुम मार्ग नहीं दोगी?"

"महाराज! यह मार्ग आपके लिए नहीं है।"

देवगुप्त कुछ क्षण तक विचारकर वापिस लौट आया और अपने सैनिकों से बोला, "जाओ, राज्यश्री तथा इन देवियों को बन्दी बना लो।"

पाँचों सैनिक, जो उसके पीछे-पीछे आए थे, आगे बढ़ गए। कात्यायिनी तथा उसकी साथिनों ने उनका विरोध किया। युद्ध हुआ और एक-एक कर सब स्त्रियाँ मार डाली गईं। वे सैनिक उनको समाप्त करके ही राज्यश्री के आगार में प्रवेश पा सके। आगे बढ़कर जब सैनिक राज्यश्री को पकड़ने लगे, तो उसने कहा, "ठहरो! मैं स्वयं तुम्हारे

ःाराज के पास चलती हूँ।" इतना कह वह आगार से बाहर की ओर
ल पड़ी। सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। इस समय तक
ःगुप्त उस आगार में पहुँच गया था, जहाँ चन्दा ने उसके लिए प्रबन्ध
ःया हुआ था।

देवगुप्त एक पलंग पर विश्राम कर रहा था। दो दासियाँ उसके पाँव
ःा रही थीं। इसी समय सैनिक राज्यश्री को घेरे हुए वहाँ ले आए।

देवगुप्त उनको आया देख पलग पर से उठ खड़ा हुआ। सैनिकों
' राज्यश्री को उसी आगार मे छोड़ दिया और बाहर निकल गए।
वगुप्त ने पूछा, "आओ देवी! यहाँ बैठो।" इतना कह उसने अपने
लग की ओर संकेत किया।

राज्यश्री पलग पर बैठ गई। देवगुप्त पुनः लेट गया। उसने लेटे-
ःटे राज्यश्री का बायाँ हाथ अपने दाहिने हाथ मे ले लिया और उसे
अधरो से लगा लिया।

इसी समय राज्यश्री ने अपने दाहिने हाथ से, अपने उत्तरीय के नीचे
से कटार निकाली और अपने पूरे बल से देवगुप्त के हृदय-स्थल पर वार
कर दिया; परन्तु देवगुप्त सतर्क था। उसने अपने बाएँ हाथ से उसका
दाहिना हाथ हृदय-स्थल से एक इच ऊपर ही रोक लिया और पश्चात्
उसे इतनी जोर से मरोड़ा कि राज्यश्री के हाथ से कटार नीचे गिर पड़ी।
राज्यश्री अचेत हो गई।

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

गुप्त राज्य के ह्रास के समय हूण, जो मध्य एशिया से कामभोज, गाधार, काश्मीर और तिब्बत की ओर बढ़ रहे थे, भारत देश मे घुस आए। सिन्धु नदी पार कर हूण बढ़ते-बढ़ते पूर्ण पाचाल देश मे छागए। उस समय श्रीकंठ में, जिसकी राजधानी स्थानेश्वर थी, प्रभाकरवर्धन, एक शूर-वीर राजा राज्य करता था। प्रभाकरवर्धन ने, हूणो के भारत मे आगे बढ़ने को न केवल रोका, प्रत्युत उनको धकेलकर वापिस सिन्धु पार कर दिया।

प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र और एक लड़की थी। लडकी राज्यश्री सबसे छोटी थी। ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन स्थानेश्वर की शक्तिशाली सेना लेकर हूणों का पीछा करता हुआ सिन्धु नदी के तट पर जा पहुँचा था। हूण सिन्ध पार लौट गये थे और वीर राज्यवर्धन उनको गाधार से निकाल कामभोज से भी दूर कर, सुमेरु पर्वत तक कर देना चाहता था।

राज्यवर्धन ने समुद्रगुप्त के पराक्रम की गाथाएँ सुनी थी। उसने यह सुना था कि कैसे वह बीस वर्ष तक लडता हुआ, शको को पछाड़ता हुआ, उन्हे सुमेरु पर्वत के पश्चिम की ओर धकेल सका था। राज्यवर्धन के मन में वहीं वीर गति प्राप्त करने की लालसा जाग पड़ी थी।

प्रभाकरवर्धन की लडकी राज्यश्री का विवाह कन्नौज के युवक महाराज ग्रहवर्मन के साथ हुआ था। इस प्रकार प्रभाकरवर्धन अपने राज्य के पूर्व के पडोसी को अपना जामाता बना, निश्चिन्त होकर ही पश्चिम से

देश मे घुस आये मलेच्छो से युद्ध कर सका था।

राज्यवर्धन को पाचाल को मलेच्छो से रिक्त करने से ही सन्तोष नहीं हुआ। वह भली भाँति जानता था कि जब तक इन को गाधार तथा कामभोज से भी धकेल कर बाहर नही किया जाएगा, देश मे इनके पुनः आक्रमण करने का भय बना रहेगा। अतएव उसने सिंधु नदी के पूर्वी तट पर पडाव डाल, सेना का पुनर्गठन करना अराम्भ कर दिया, जिससे वह नदी पार कर अपनी समर को इसके स्वाभाविक परिणामो तक पहुँचा सके।

इस समय स्थानेश्वर मे राज्यवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन का एकाएक तीव्र ज्वर के कारण देहान्त होगया।

प्रभाकरवर्धन का कनिष्ठ पुत्र हर्षवर्धन उस समय पिता के पास था। प्रभाकरवर्धन के निधन से एक दिन पूर्व ही कन्नौज का पदच्युत महामात्य पद्मराज सहायता मागने प्रभाकरवर्धन के पास आया था, परन्तु स्थानेश्वर-अधिपति के अति रुग्ण होने के कारण वह उनसे मिल न सका। अगले दिन महाराज प्रभाकरवर्धन का देहान्त हो गया। पद्मराज यह जानते हुए भी कि कन्नौज मे मालव-सेना ऊधम मचा रही होगी, कुछ कर नही सका।

महाराज प्रभाकरवर्धन की अन्त्येष्टि-क्रिया के समय पद्मराज उपस्थित था। वह हर्षवर्धन के समक्ष उपस्थित हुआ। अपना परिचय दे उसने महाराज के निधन पर शोक प्रकट किया; परन्तु हर्षवर्धन अपने पिता के निधन के कारण इतन दुःखी था कि वह कन्नौज का समाचार पूछना ही भूल गया।

महाराज प्रभाकरवर्धन के क्रिया-कर्म के समाप्त होते तक कन्नौज के विजित हो जाने का समाचार भी आगया। कन्नौज से विष्णुकान्त द्वारा भेजा हुआ प्रतिहार समाचार लेकर स्थानेश्वर आया और उस समाचार लाने वाले व्यक्ति को लेकर पद्मराज हर्षवर्धन की सेवा मे उपस्थित हुआ।

राज्यवर्धन अपने पिता के देहान्त का समाचार पाकर सेना को सिन्धु-तट पर ही छोड़ तीव्रगामी अश्व पर सवार हो स्थानेश्वर आ पहुँचा। दोनों भाई अभी पिता के देहान्त से उत्पन्न परिस्थिति मे अपने को अभ्यस्त ही कर रहे थे कि पद्मराज कन्नौज के दूत के साथ उपस्थित हो गया।

राज्यवर्धन के समक्ष पद्मराज ने महाराज की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के पश्चात् निवेदन किया, "श्रीमान्! मैं महाराज के निधन के केवल एक दिन पूर्व ही यहाँ पर पहुँचा था। महाराज के रुग्ण होने के समाचार को सुन, मैं अपना सन्देश उन तक नहीं पहुँचा सका। पीछे कनिष्ठ कुमार की सेवा मे उपस्थित हुआ था, परन्तु कुमार के मन को दुःखित देख अपने आने के प्रयोजन को नहीं कह सका।

"वास्तव मे उस समय मुझको कन्नौज की उस दुर्घटना का ज्ञान नहीं था, जिसका समाचार यह दूत वहाँ से लेकर आज और अभी आया है।"

दूत ने कन्नौज मे घटी पूर्ण घटना का वृत्तान्त सुनाया। उसे सुन दोनों भाइयों का मुख क्रोध से लाल हो उठा। राज्यवर्धन पिता के देहावमान का दुःख, बहिन की दुर्गति को सुन भूल गया। उसने माथे पर त्यौरी चढ़ाकर पद्मराज से कहा, "और तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो?"

"मुझको महाराज ग्रहवर्मन ने देश से निर्वासित कर दिया था। मैं वहाँ रहकर कुछ भी कर सकने के अयोग्य होने के कारण श्रीमान् स्वर्गीय महाराज की सेवा मे उपस्थित होने के लिए आया था।"

"मैं आज ही अपनी सेना को, जो सिन्धु नदी के तट पर पड़ी है, वापिस बुलाने के लिए आज्ञा भेज रहा हूँ। उस सेना के वहाँ से लौटने और फिर कन्नौज तक पहुँचने मे छः मास लग जायेंगे। तब तक राज्यश्री का क्या होगा, कहना कठिन है। मैं कुछ कार्य शीघ्र ही करने के लिए व्याकुल हूँ।"

"मेरा विचार है," पद्मराज ने कहा, "उतावली मे कुछ करने से पराजय होने का डर है। मालव-राज्य आज भारी विस्तार पा चुका है और फिर इस राज्य का गौड-राज्य से गठजोड है। ऐसी अवस्था मे मालव-राज्य से युद्ध करने के लिए भारी तैयारी की आवश्यकता है।"

"देखिए पद्मराज जी!" राज्यवर्धन ने कहा, "राज्यश्री को तो शीघ्र ही मुक्त कराना है। जब तक वह बन्दी है, मै सुख की नीद नहीं सो सकता। अतएव मै आज ही उसको मुक्त करने का यत्न करने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ। शेष पीछे देख लूँगा।"

पद्मराज इतनी जल्दी कार्यवाही के पक्ष मे नही था। इस पर भी राज्यश्री के जो समाचार आए थे, उससे राज्यवर्धन का शान्त पडे रहना वह कठिन समझता था। इस कारण वह राज्यवर्धन को मना नहीं कर सका।

कन्नौज के दूत ने बताया, "जब महारानी जी की सखी कात्यायिनी तथा अन्य सेविकाओ को मृत्यु के घाट उतार कर मालव-सैनिक महारानी जी को देवगुप्त के आगार मे ले गए तो महारानी जी ने कटार से देवगुप्त की हत्या करनी चाही, परन्तु देवगुप्त बच गया। पीछे समाचार मिला है कि महारानी राज्यश्री को कारागार मे डाल दिया गया है। उनको भूम्यान्तर्गत आगारो मे रखा गया है और रोटी के दो टुकडे डाल दिए जाते हैं।"

इस प्रकार के दुर्व्यवहार से ही राज्यवर्धन पागल हो अपने साथ केवल पॉच सौ सैनिक लेकर कन्नौज की ओर चल पडा।

: २ :

राज्यवर्धन ने पद्मराज को साथ ले जाने की इच्छा प्रकट नही की। पद्मराज तो पहले ही दिन कन्नौज लौट जाना चाहता था, परन्तु यह विचारकर कि राज्यवर्धन उसकी सेवाओ से लाभ उठाएगा, वह स्थानेश्वर मे टिका रहा। अगले दिन पद्मराज हर्षवर्धन की सेवा में उपस्थित हुआ

तो उसको पता चला कि उसी दिन राज्यवर्धन ने प्रस्थान कर दिया है और उसके साथ केवल पाँच सौ घुडसवार ही हैं। इस समाचार से पद्मराज को दुःख हुआ। वह समझता था कि राजकुमार राज्यवर्धन उसको अपने साथ परामर्श के लिए ले जायगा। साथ ही केवल पाँच सौ सैनिको से वह कन्नौज विजय कर सकेगा, सन्देहात्मक बात थी।

इस पर भी वह हृदय से चाहता था कि कन्नौज मालवा के आधिपत्य से स्वतन्त्र हो जाय। उसने अपने मन के सन्देह हर्षवर्धन से वर्णन कर दिए। उसने कहा, "राजकुमार! आपके ज्येष्ठ भ्राता को इस प्रकार बिना पूर्ण स्थिति से परिचय प्राप्त किए और उस पर विचार किए जाना उचित नहीं था।"

"मैने दादा से कहा था। परन्तु उनको बहिन को छुडाने के लिए वहाँ जाना अत्यावश्यक जान पडा और वे बिना किसी भी कठिनाई का विचार किए चले गए।"

"कार्य मे सफलता अति कठिन प्रतीत होती है। मालव-महाराज के साथ पचास सहस्र पैदल सेना है। कितने ही हाथी और सहस्रो अश्व हैं। इतनी बडी सेना का विरोध पाँच सौ सैनिक किस प्रकार कर सकेंगे?"

"तो फिर क्या किया जाय?"

"मेरी सम्मति है कि उनकी सहायतार्थ एक बहुत बड़ी सेना यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र जानी चाहिए।"

"उसके लिए सिन्धु-तट पर पडी सेना को वापिस बुला लिया गया है। पाँच दिन दूत के वहाँ पहुँचने और फिर पच्चीस दिन सेना के वहाँ से लौटने मे लग जायँगे। यहाँ एक मास का समय उस सेना को विश्राम के लिए दिया जायगा और फिर यहाँ से कन्नौज तक जाने मे पन्द्रह दिन और लगेंगे। इस प्रकार कम-से-कम पचास दिन लगेंगे। और फिर जाते ही युद्ध तो हो नहीं सकता।"

"एक बात और है। मालव-नरेश ने गौड महाराज शशाक से सन्धि कर रखी है, उसका भी विचार करना होगा।"

"क्या सुझाव आप देते हैं ?"

"मेरा सुझाव है कि गौड-राज्य के पूर्व की ओर कामरूप है। वहाँ के अधिपति एक अच्छे और योग्य व्यक्ति हैं। हमारी उनसे मैत्री और परस्पर सहायता की सन्धि हो जानी चाहिए। यदि यह हो सका तो हम उस क्षेत्र में गौड-राज्य के भय से मुक्त हो जायँगे।"

हर्षवर्धन यद्यपि आयु मे राज्यवर्धन से छोटा था, परन्तु विचारशील उससे अधिक था। उसको पद्मराज का सुझाव पसन्द आया। उसने पद्मराज से कहा, "सेना के आते ही सेनापति भडी के अधीन उसे दादा की सहायता के लिए भेज दिया जायगा। तब तक सन्धि की वार्ता के लिए मैं अपना दूत कामरूप भेज रहा हूँ। आप अब क्या करना चाहेंगे ?"

"मै तो आज ही कन्नौज लौट जाना चाहता हूँ। वहाँ मेरा परिवार है। उनके विषय मे मुझे चिन्ता है। वहाँ रहते हुए यदि राजकुमार जी की कुछ भी सहायता कर सका तो अवश्य करूँगा।"

हर्षवर्धन पद्मराज के सुझाव पर दिनभर विचार करता रहा। अगले दिन उसने पडित चतुरानन को बुलाकर पूर्ण-परिस्थिति से परिचित कराया और उसको कामरूप के महाराज भास्करवर्मन से मिलकर, वार्तालाप करने के लिए तथा परस्पर सहायता की संधि करने के लिए कामरूप भेज दिया।

पंडित चतुरानन अपने साथ कुछ अश्वारोहियों को लेकर स्थानेश्वर से चल पडा और पन्द्रह दिन मे कामरूप जा पहुँचा। वहाँ पहुँच उसे यह जानकर विस्मय हुआ कि भास्करवर्मन को मालवा का कन्नौज पर विजय प्राप्त कर लेना विदित है।

महाराज भास्करवर्मन् बहुत ही चतुर और योग्य शासक था। पडित चतुरानन के वहाँ पहुँचते ही उसने उससे भेंट की। दूत के सम्मुख आने पर महाराज ने कहा, "आप लोग बहुत देर से आए है। इस समय कन्नौज मे मालव-राज्य स्थापित हो चुका है। गौड और मालव राज्यो की

सेनाएँ एकत्रित हो रही हैं और दोनो मिलकर भारत-खंड मे चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रही है।"

"ठीक है महाराज ! परन्तु महाराज प्रभाकरवर्धन स्वयं और उनके ज्येष्ठ सुपुत्र राजकुमार राज्यवर्धन हूणो को देश से निकालने मे संलग्न थे। यह कार्य अधूरा पडा हुआ था और पूर्ण देश की जनता उनसे भय-भीत रहती थी। इस कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने का भार हमारे महाराज ने अपने सिर पर लिया और बीस वर्ष तक सतत् प्रयत्न कर उनको चन्द्र-भागा नदी से धकेलते हुए सिन्धु-तट के पार कर छोडा है। हमारे महाराज कुमार उनसे गान्धार देश को भी खाली कराने की योजना बना, सिन्धु पार करने वाले थे कि हमारी पीठ पर मालवा तथा गौड़ राज्य ने छुरा घोप दिया है। हम तो देश के प्रहरी बन देश की संस्कृति और धर्म की रक्षा मे संलग्न थे और मालव-नरेश ने हमारी राजकुमारी का अपमान कर उसे बदीगृह मे डाल दिया है।

"ऐसी अवस्था मे महाराज कुमार ने श्रीमान् का धर्म और संस्कृति मे उत्साह देख, मुझे आपकी सेवा मे भेजा है। हमे पूर्ण आशा है कि श्रीमान् देश मे पुनः धर्म की संस्थापना के लिए हमे सहयोग देंगे।"

भास्करवर्मन् ने कहा, "पंडित चतुरानन ! यही तो मैं कह रहा हूँ। इन दोनो के गठजोड़ को निर्बल करने का उपाय यही है, जो तुम यहाँ करने आए हो। हम महाराज स्थानेश्वर के हूणो को पछाडने के प्रयत्नों को बहुत उत्साह और प्रसन्नता से सुनते रहे हैं। हम समझते है कि ऐसे राज्य की, जो देश, धर्म और जाति के लिए इतना कुछ कर रहा है, सहायता करना देश के सब राज्यो का कर्तव्य है। कुछ भी हो, हम महाराज कुमार से मैत्री करने तथा उनसे परस्पर सहायता की सन्धि करने के लिए उत्सुक हैं।"

भास्करवर्मन ने अपने दूत हंसवेग को स्थानेश्वर भेज दिया और सन्धि की चर्चा वहाँ होने लगी। वास्तव मे कामरूप की पश्चिमी राज्यों से रक्षा मगध के बलशाली राज्य के कारण रहती थी। पिछली आधी

शताब्दी से मगध राज्य हूणों से युद्ध करते-करते दुर्बल पड़ गया था। इस कारण अब वह पश्चिमी राज्यों के मार्ग मे बाधा नहीं रहा था। कामरूप का अधिष्ठाता सतर्कता से अपने देश की रक्षा के लिए भारत-भर मे चल रहे छोटे-छोटे राज्यों के सघर्ष को दृष्टि मे रखे हुए था।

जहाँ तक हूणों के आक्रमण का सम्बन्ध था, स्थानेश्वर के राज्य ने उनको पिछले बीस वर्षों से रोक रखा था। महाराज भास्करवर्मन को जब मालवा और गौड़ राज्यों मे गठजोड की सूचना मिली तो वह चिन्ता अनुभव करने लगा था। वह चाहता था कि स्थानेश्वर के वीर राज्य से सन्धि कर ले और इन दोनो राज्यों के गठजोड़ के विरोध मे एक गठजोड तैयार कर ले। परन्तु स्थानेश्वर राज्य अपनी पश्चिमोत्तरी सीमा की रक्षा मे इतना लीन था कि उसको देश मे मालवा-गौड सन्धि का ज्ञान ही नहीं था।

हंसवेग के प्रयत्न से स्थानेश्वर और कामरूप मे सन्धि हो गई। इस प्रकार अपनी स्थिति को सबल कर हर्षवर्धन ने अपना ध्यान कन्नौज की ओर किया। इतने काल मे सिन्धु-तट से स्थानेश्वर की सेना वापिस पहुँच गई थी। हर्षवर्धन ने उसे सेनापति भडी के अधीन कन्नौज की ओर भेज दिया।

राज्यवर्धन दुखित-हृदय, परन्तु क्रोध से भरा हुआ स्थानेश्वर से चल तो पड़ा, परन्तु दो-तीन दिन की यात्रा के पश्चात् उसको अनुभव होने लगा कि उसने इतने कम सैनिक साथ लाकर भूल की है। इस पर भी वह वापिस लौटकर जाना अपनी हेठी समझता था। अतएव वह गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा कि किस प्रकार कृतकार्य हो सकता है।

स्थानेश्वर राज्य की सीमा कन्नौज राज्य की सीमा से मिलती थी। इस कारण राज्यवर्धन सीमा पार करने से पूर्व अन्तिम पडाव पर दो दिन के लिए ठहर गया और अपनी योजना बनाने लगा।

पूर्ण घटना पर विचार करने पर उसे समझ आया कि उसके सामने प्रथम कार्य राज्यश्री को बन्दी-गृह से छुडाना है। राज्य को मुक्त करना

अथवा मालव-नरेश को दण्ड देना पीछे की बात है। उसमे तो समय लगेगा।

अतएव उसने एक दूत वापिस स्थानेश्वर भेज दिया। उस दूत के हाथ उसने हर्षवर्धन को कहला भेजा कि सेनापति भडी के अधीन पचास सहस्र सेना के दो भाग कर, एक भाग को कन्नौज पर और दूसरे को कन्नौज और मालवा की सीमा पर मार्ग रोकने के लिए भेज दे।

पश्चात् उसने अपने सब सैनिको को नागरिक वेष मे कन्नौज मे प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। उनको यह भी कह दिया कि वे कन्नौज नगर के मध्यवर्ती चौक मे प्रति सायकाल आम्रकूट सेनानायक से अपने कार्य के लिए आदेश ले जाया करे।

इस कारण चार-पॉच दिन के भीतर सब सैनिक कन्नौज मे प्रवेश कर गए। पश्चात् वह स्वयं, आम्रकूट, नैकृत और पिडस सेनानायको के साथ कन्नौज मे प्रवेश कर गया।

: ३ :

पद्मराज भी एक देहाती वेश-भूषा मे कन्नौज जा पहुँचा। यह राज्यवर्धन के राज्य मे प्रवेश करने के कई दिन पीछे की बात है। उसको सबसे प्रथम कार्य अपने परिवार की सूचना प्राप्त करना था। जब वह अपने निवास-गृह के बाहर पहुँचा तो यह देख उसे अत्यन्त दुःख हुआ कि उसके गृह मे मालवा के सैनिक भरे पडे हैं। गृह के चारो ओर विस्तृत मैदान था और उसमे भी सैनिको के खेमे लगे थे।

परिवार के विषय मे पता करने के लिए वह वासुदेव के मन्दिर मे विष्णुकान्त से मिलने गया। मन्दिर मे ताला लगा था और बाहर कुछ मालव-सैनिक बैठे हुए थे। कात्यायिनी के विषय मे तो वह सुन चुका था कि वह कुछ अन्य दासियो के साथ राज्यश्री के आगार मे, उसकी रक्षा करते हुए मारी गई थी। इस कारण अन्य कोई स्रोत न होने से वह नही जान सका कि उसके परिवार का क्या हुआ है।

इस परिस्थिति के विषय मे जानने से पूर्व उसके लिए अपने ठहरने की भी समस्या थी। वह कई पंथागारो मे गया, परन्तु कहीं स्थान नहीं मिला। सबमे मालव-सैनिक डेरा डाले हुए थे।

नगर मे स्थान न मिलने के कारण वह अति चिन्तित था। एक बात उसने यह भी अनुभव की थी कि राज्यवर्धन तथा उसके साथ आए सैनिको का कहीं चिह्नमात्र भी नहीं था और न ही उनकी कही चर्चा थी।

वह मध्याह्न के समय नगर मे पहुँचा था और संध्या हो चली थी। अभी तक उसे न तो ठहरने को स्थान मिला था और न ही उसके परिवार के किसी व्यक्ति का पता चला था।

नगर मे उसके कई परिचित तो थे, परन्तु वह किसी को भी प्रकट नही होने देना चाहता था कि वह नगर में है। अपने को प्रकट करने से पूर्व वह यह जानना चाहता था कि उसके परिवार का क्या हुआ है और उसके प्रति मालव-नरेश की क्या भावना है।

सायकाल उसको भूख लगी तो एक दुकान पर कुछ खाने जा पहुँचा। दुकान पर जब वह मिष्ठान्न खा रहा था तो उसने देखा कि एक ओर दो व्यक्ति परस्पर कानाफूसी कर रहे हैं। जहाँ कानाफूसी हो, वहाँ कुछ छुपाने को है, ऐसा अनुमान कर वह सतर्क हो, उन दोनो के हाव-भाव ध्यानपूर्वक देखने लगा।

एकाएक वे दोनो उठे और उस दुकान से बाहर निकल गए।

पद्मराज ने भी मिष्ठान्न का मूल्य चुकाया और बाहर निकल उनका पीछा करने लगा। कुछ दूर जाकर दोनो पृथक्-पृथक् हो गए। पद्मराज एक के पीछे चल पडा। वह व्यक्ति राज्य-प्रासाद की ओर गया और प्रासाद के बाहर खडे सैनिको मे से एक के साथ कुछ काना-फूसी करने लगा।

पद्मराज कुछ अन्तर पर खड़ा देखता रहा। जब वह व्यक्ति वहाँ से भी चला तो पद्मराज पुनः उसके पीछे हो लिया। वह व्यक्ति नगर के एक सघन भाग की ओर चल पडा। पद्मराज इस व्यक्ति के आचरण से

एक बात तो समझ गया कि वह राज्यसत्ता का अंग नहीं हो सकता। राज्य-सत्ता के पक्षपाती को लुकाव-छुपाव की आवश्यकता नहीं हो सकती। इस अनुमान से वह उसको राज्य-विरोधी पक्ष का व्यक्ति समझने लगा था। इस विचार से वह अपने दिन-भर की थकावट तथा अपनी अनिश्चित अवस्था को भूल गया। उसको उस व्यक्ति के विषय मे अधिक जानने की इच्छा हो गई। साधारण नागरिकों के वेष में वह व्यक्ति एक सँकरी वीथिका मे घुस गया। पद्मराज लगभग बीस गज के अन्तर पर था। वह भी उस वीथिका मे प्रवेश कर चलने लगा।

इस समय अँधेरा हो गया था और वीथिका के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे भवन होने से वहाँ बिलकुल अँधेरा था और इस अँधेरे मे वह व्यक्ति कहीं विलीन हो गया। पद्मराज ने अपनी चाल तीव्र की परन्तु कहीं पता नहीं चला। आगे जाकर वीथिक बन्द हो गई थी। वह व्यक्ति किसी भवन मे प्रवेश कर गया था।

विवश वह वीथिका से बाहर आ गया। उसे इस बात का शोक था कि वह उस व्यक्ति के विषय में कुछ जान नहीं सका। वीथिका को बाहर से पहचानने के लिए उसने उसके बाहर के भवनों को ध्यानपूर्वक देखा और उन भवनों को हृदयंगम कर एक अन्य मार्ग पर चल पडा। अब वह पुनः राज्य-मार्ग पर आ गया था। वह मन मे सोच रहा था कि इस वीथिका मे अगले दिन पुनः आएगा और जानकारी प्राप्त करने का यत्न करेगा। इस समय उसको पुनः अपने ठहरने का स्थान ढूँढने का ध्यान हो आया। अब वह अपने परिचितों के द्वार खटखटाने की सोच रहा था।

अभी वह थोडी दूर ही गया था कि उसे अनुभव हुआ कि कोई उसका पीछा कर रहा है। इससे वह अपने सन्देह की जाँच करने के लिए मार्ग मे एक ताम्बूली की दुकान पर खडा हो गया। एक टका उसने ताम्बूली के आगे फेंककर कहा, "एक पान लगा दो।"

ताम्बूली ने उसका स्वर सुना तो ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने

लगा। पश्चात् तुरन्त आँख नीची कर पान लगाने लगा। इसी समय वह व्यक्ति, जो पद्मराज का पीछा कर रहा था, वहाँ आ पहुचा। उसने भी एक टका ताम्बूली के आगे फेंककर कहा, "एक पान लगा दो।"

पद्मराज को अपने सन्देह की पुष्टि मिल गई। वह विचार करने लगा कि यह व्यक्ति अवश्य राज्य-कर्मचारी होगा। अब उसे कुछ-कुछ भय लगने लगा।

ताम्बूली ने पान लगाकर पहिले उस व्यक्ति को दिया। पान वाले के इस कार्य पर पद्मराज को सन्देह हुआ और उसने कहा, "भाई! मै तो पहले आया था।"

ताम्बूली ने कहा, "हट! जानता नही किनके विषय मे कह रहा है। ये तो आजकल कन्नौज के देवता है।"

पद्मराज समझ गया कि उसका पीछा करने वाला कोई विशेष व्यक्ति है। ताम्बूली ने एक बात और कही, "देखो, तुम्हारे लिए यह पान ठीक नही। यह तो बनारसी पान है। यहाँ के रईसो और बडे लोगो के लिए है। तुम देहाती को इसके खाने मे मज़ा नहीं आएगा। तुम्हे देसी पान देता हूँ।"

इतना कह ताम्बूली उठकर दुकान के भीतर चला गया। वह व्यक्ति, जिसको पान मिल चुका था, एक क्षण तक पद्मराज के मुख को देखता रहा और पश्चात् आगे बढ गया। ताम्बूली ने पान लाने मे देरी कर दी। अब इस देरी मे भी पद्मराज को कुछ रहस्य जान पडा। वह चुपचाप वहाँ खडा रहा और चोर आँख से उस व्यक्ति को जाते हुए देखने लगा। वह व्यक्ति पचास पग आगे गया। फिर एक ओर खडा हो पान वाले की दुकान की ओर मुख कर खडा हो गया। अब पद्मराज को बिलकुल सन्देह नहीं रहा था कि उसका पीछा आरम्भ हो गया है।

पान वाला बाहर आया तो उसने धीमे स्वर मे कहा, "महामात्य! आप यहाँ क्या कर रहे हैं?"

"तो तुम मुझको जानते हो ?"

"मैंने आपको आपके स्वर से पहचाना था। परन्तु वह व्यक्ति आपका पीछा कर रहा है और शायद गुप्तचर है। आपकी जान का भय है।"

पानवाला बातें कर रहा था और पद्मराज के लिए पान की ढेरी मे से साफ पत्ता ढूँढ रहा था।

"मैं कहीं रात व्यतीत करना चाहता हूँ।" पद्मराज ने कहा।

"जब तक यह भयंकर व्यक्ति आपके पीछे है, किसी मकान मे न जाइएगा। कल तक उस मकान के लोग पकड़ लिए जायेंगे और उस मकान पर सैनिक अधिकार कर लेंगे।"

ताम्बूली ने दो पान ढूँढ लिए थे और उन पर चूना-कत्था लगाना आरम्भ कर दिया था। पद्मराज ने पूछा, "पुजारी विष्णुकान्त के विषय मे जानते हो ?"

"नहीं महाराज! आपके परिवार के विषय मे भी किसी को कुछ पता नहीं। देखिये आप पान लेकर लौट जाइये और किसी अँधेरी वीथिका मे चले जाइए। वहाँ पर इससे छुटकारे का प्रबन्ध कीजिए। पश्चात् मेरे पास आइएगा और मैं आपका कुछ प्रबन्ध कर छोड़ूँगा। हो सके तो इसे समाप्त कर दीजिएगा। पर आपका वार खाली नहीं जाना चाहिए। इसके जीते-जी तो आपका और सम्भव है मेरा भी, जीवित रहना कठिन हो जायगा।"

पद्मराज आश्चर्यचकित रह गया। ताम्बूली ने दो पान उसको दिए और उन्हें मुख मे रख वह वापिस लौट पड़ा।

पद्मराज ने देखा कि वह व्यक्ति पुनः उसके पीछे-पीछे आ रहा है। इस कारण उसने ताम्बूली की राय के अनुसार उस व्यक्ति को मार डालने का निश्चय कर लिया। चलते-चलते वह पुनः उसी वीथिका के बाहर जा पहुँचा, जहाँ वह पहले आया था। एक क्षण ठहरकर उसने पीछे देखा और उस व्यक्ति को पीछे आते देख वह वीथिका मे प्रवेश कर

या। अब उसने अपने उत्तरीय के नीचे हाथ डालकर एक कटार निकाल
ी और अँधेरे मे एक ओर खडा हो उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करने लगा।

इस समय उसे पीछा करने वाले के पदचाप सुनाई दिए। जब वे
ाब्द उसके सम्मुख से जाने लगे तो पद्मराज ने वीथिका के बीच उसके
ाम्मुख अपनी टाँग अडा दी। पीछा करने वाला उसकी टाँग से अटक
ार लुढक गया। पद्मराज ने आगे बढ़कर एकदम उसकी गर्दन की
ाहिनी ओर वार किया। वह व्यक्ति मुख से घ्र......घ्र......की आवाजें
नेकाल कर भूमि पर लोटपोट होगया।

पद्मराज ने कटार उस शव के कपडे के साथ ही पोछ ली और उसे
ुनः अपने उत्तरीय के नीचे छुपाकर, वीथिका से बाहर निकल आया।
एक क्षण तक यह देख कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा, वह
ताम्बूली की दुकान की ओर बढ़ गया।

: ४ :

मिष्ठान्न-गृह पर कानाफूसी करने वाला व्यक्ति, जो वीथिका में लोप
हो गया था, उसको अपने पीछा किए जाने का संदेह उस समय हो गया
था, जब वह राज्य-प्रासाद के बाहर एक व्यक्ति से कानाफूसी कर रहा
था। जब उसे इस बात का विश्वास हो गया तो अपना पीछा छुडाने के
विचार से वह वीथिका मे प्रवेश कर गया और एक ओर छुपकर खड़ा
होगया। जब पद्मराज आगे निकल गया तो वह भागकर वीथिका से
बाहर निकल पुनः राज्य-प्रासाद की ओर चल पडा।

राज्य-प्रासाद के पिछवाडे की ओर जाकर वह एक छोटी-सी खिडकी
के बाहर जा खडा हुआ। खिडकी का द्वार खटखटाने पर एक व्यक्ति
ने खिडकी खोली और झुककर देखा कि कौन है। उसे देख वह विस्मय
करने लगा। इस पर पहिले व्यक्ति ने कहा, "भीतर आने का संकेत
दे दो।"

भीतर वाले व्यक्ति ने एक पीतल का बना चक्र, जिस पर मालव-राज्य

की मुहर लगी हुई थी, उसको दे दिया। वह उस चक्र को लेकर पुनः राज्य-प्रासाद के मुख्य द्वार की ओर चला गया और उस चक्र को दिखाकर भीतर चला गया। द्वार के भीतर जाकर वह प्रासाद के दक्षिणी पार्श्व मे चला गया। उस ओर सेवको के लिए कई गृह बने थे। उनमे से एक का द्वार उसने खटखटाया। उसी व्यक्ति ने, जिसने पीछे खिड़की से उसे चक्र दिया था, द्वार खोला और उसे भीतर कर द्वार बंद कर लिया। पश्चात् उसने पूछा, "क्या बात है ? लौट क्यो आए हो ?"

"राज्य का एक गुप्तचर मेरे पीछे लग गया था। मैं उसे चकमा देकर वापिस लौटा आया हूँ।"

"कहाँ से लगा था ?"

"राज्य-प्रासाद के द्वार पर मैं रात की सभा की सूचना महेश्वर को देकर गया तो मुझको सदेह हुआ। कहाँ से वह मेरे पीछे लगा था, कहना कठिन है।"

"मैं समझता हूँ कि तुम डर गए हो। अब तुम यही बैठो और मैं जाता हूँ। आज की बैठक निर्णयात्मक होने वाली है। हमने उसमे अन्तिम निर्णय करना है। इस कारण डरकर बैठ जाने से काम नहीं चलेगा।"

"मैं जाने को तैयार था, परन्तु भय तो इस बात का था कि कहीं पीछा करने वाला हमारी सभा तक पहुँच जाता तो सब रहस्य खुल जाता और कदाचित हम कुछ भी कर न पाते।"

"ठीक है। पर अब तुम ठहरो। शेष काम मैं कर आता हूँ। किन-किनको बताना शेष है ?"

उस आने वाले व्यक्ति ने अपनी जेब मे से एक सूची निकाल कर दूसरे को दे दी और कहा, "मध्य-रात्रि के समय पद्मनाभ के घर।"

"यह तो मै जानता हूँ।"

इतना कह वह पुरुष सकेत चक्र लेकर प्रासाद से बाहर निकल गया। पहिले व्यक्ति ने अन्दर से द्वार वद कर लिये।

दूसरे व्यक्ति को गये अभी आधी घड़ी ही हुई थी कि द्वार पर पुनः
थपथपाहट हुई। अन्दर वाले व्यक्ति ने द्वार खोला।

बाहर से आए व्यक्ति ने अन्दर वाले को देखा तो विस्मय में पूछा,
"नीलाग! तुम यहाँ क्या कर रहे हो?"

"भीतर आजाओ।" दोनो के भीतर आने पर नीलाँग ने द्वार बद
कर लिया और उसे बैठाते हुए कहा, "भाई जम्बुक! आज की गोष्ठी
की सूचना दे रहा था कि एक देहाती वेष मे गुप्तचर मेरा पीछा करने
लग गया। मैं नहीं चाहता था कि वह गोष्ठी का स्थान जान जाए,
अथवा ऐसी कोई बात जान सके। इस कारण एक वीथिका मे पहुँच,
अन्धेरे में छुपकर मै उसे वञ्चिका दे यहाँ वापिस आ गया हूँ। यहाँ आकर
साधू को सूचना देने के लिए भेज दिया है।"

"डमरू वीथिका मे नाभर की हत्या हो गई है। कदाचित् यह वही
देहाती वेप वाला होगा।"

"कैसे पता चला?"

"मैं सीमा से मिलकर आरहा था कि मेरा पाँव किसी वस्तु से अटका।
मैंने ध्यान से देखा तो एक शव था। मै लौट गया और सीमा से दीपक
लेकर देखने लगा कि कौन है। नाभर को पहिचान उसे वहीं छोड़ मै
चला आया हूँ।"

"पर मेरा पीछा करने वाला नाभर नहीं था। नाभर को मैं भली
भाँति जानता हूँ।"

"तो उसकी हत्या किसने की है?"

"कदाचित् उसी देहाती वेष वाले व्यक्ति ने की होगी जो मेरे पीछे
वहाँ गया था।"

"और नाभर वहाँ कैसे पहुँच गया?"

"कदाचित नाभर उसका पीछा करता हुआ वहाँ जा पहुँचा हो।
वह व्यक्ति मेरे, धोखे में नाभर को मार बैठा हो।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम व्यर्थ की हत्या से बच गए हो।"

"मुझको तो यही समझ मे आ रहा है।"

"पर विचारणीय बात तो यह है कि नाभर उसके पीछे क्यो लगा?"

"कुछ भी हो। वह अत्यन्त भयंकर व्यक्ति है। हमको उसकी हत्या से लाभ ही होगा। वह दुष्ट शशाक का आदमी था।"

"शशाक को कन्नौज मे अपने गुप्तचर रखने की क्या आवश्यकता हुई है? वह देवगुप्त का मित्र है, उसका मेहमान है और दिन रात उसके साथ रंगरेलियाँ मनाता है।"

"भाई! इन लोगों की बाते वे ही जाने। कदाचित् देवगुप्त की शशाक पर कुदृष्टि हो। वास्तव मे वह अपना भाग माँगने ही तो आया है। शशाक इस बात को जानता होगा और अपनी रक्षा के लिए अपने गुप्तचर साथ लाया हो।"

"हो सकता है। नाभर देवगुप्त की सेना से मेल-जोल भी बहुत रखे हुए था।"

"कुछ भी हो। हमे यह बात अपने नायक को बता देनी चाहिए, जिससे इस हत्या से लाभ उठाने के लिए हम अपनी योजना बना डाले।"

"यह तो आज रात की सभा मे हो जाएगा।"

"अब तो सब-कुछ शीघ्र ही हो जाना चाहिए।"

"साधु कह रहा था कि आज की सभा निर्णयात्मक होगी।"

"यह भी ठीक है। इस प्रकार चोरी-चोरी बहुत दिन तक रहना, कठिन है।"

"अच्छा नीलाग! आज भोजन नहीं किया। मैं साधु से कुछ खाने के लिए माँगने आया था। उस बेचारे ने कभी निराश नहीं लौटाया।"

नीलाग हँस पड़ा। उसने कहा, "भूख तो मुझे भी लगी थी, परन्तु सुमन ने चौक वाले उपहार-गृह से कुछ खिला दिया था। देखता हूँ यदि यहाँ कुछ खाने को रखा हो।"

नीलाग वहाँ से निकल रसोईघर मे चला गया और ढूँढ-ढाँढकर कुछ बासी रोटी, आम का अचार, कदली फली की छः फली और अरहर

की दाल का कटोरा ले आया। जम्बुक यह देख बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रोटी हाथ मे ले खानी आरम्भ कर दी। खाते हुए उसने कहा, "भगवान् इस साधु का भला करे। कितना अच्छा है यह! इसके यहाँ अतिथि-सत्कार का सदैव प्रबन्ध रहता है।"

"परन्तु इस प्रबन्ध की श्लाघा तो इसके पाचक को मिलनी चाहिए। साधु ने तो खाना बनाया नहीं।"

"इस पर भी वह सदा अपनी आवश्यकता से अधिक बनवाता है जो हम लोगो के काम आ जाता है।"

"तुम भी लाल बुभक्कड़ हो। सूखी रोटी और अरहर की दाल बहुत बढ़िया प्रबन्ध है क्या?"

"नीलाग! भूखे के लिए यही बहुत है। आज मेरी जेब मे एक टका भी नहीं था। प्रासाद से बाहिर जा नहीं सकता था। मेरा प्रवेश-सकेत तो सुमन के पास है न। बताओ ऐसी अवस्था मे यदि यह रोटी और दाल भी न मिलती तो क्या होता?"

इसी प्रकार बातें करते-करते जम्बुक भोजन कर रहा था। नीलाग उसे भूखे बाघ की भाँति खाते देख हँस रहा था। जब जम्बुक खा चुका तो नीलाग ने उसे जल दिया और फिर निश्चिन्त हो बाते करने लगे। इसी समय किसी ने द्वार खटखटाया।

जम्बुक ने कहा, "लो, साधु आ गया।"

"शायद कोई और है।"

"नहीं, तुम नही जानते। यह साधु ही है। उसके द्वार खटखटाने का विशेष ढंग है जो मै पहिचानता हूँ।"

नीलाग ने द्वार खोला। साधु और उसके साथ एक स्त्री थी। उसे देख जम्बुक बोल उठा, "ओह! सीमा, तुम भी आ गई हो?"

"हाँ। वीथिका में हत्या हो जाने से मुझको भय लग रहा था। इस कारण घर से बाहिर रहने के लिए यहीं चली आई हूँ।"

"कुछ पता चला कि हत्या कैसे हुई है?"

"हमारे पडोस मे मालव-सैनिक ठहरे हुए हैं। वे मद्यपान कर कहीं जा रहे थे कि पॉव के टकराने से उन्होंने शव को देखा। पश्चात् वे हल्ला करने लगे। इससे लोग बाहिर निकल आए। लोग शव को उठाकर नगरपाल के पास ले गए हैं। मुहल्ले वाले तो यह कह रहे थे कि सैनिकों ने ही मार डाला होगा।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि इस हत्या पर भारी हल्ला होने वाला है। यदि यह सन्देह पक्का हो गया कि उसकी हत्या सैनिकों ने की है तो कदाचित् शशाक और देवगुप्त की भी ठन जाए। शशाक बहुत कम सैनिक लेकर आया है। उसको अपने जीवन का भी भय हो जाएगा।"

"बड़ा आनन्द आए, यदि दोनो परस्पर भिड जाये।" जम्बुक ने कहा।

नीलाग ने कहा, "कौन कह सकता है कि क्या हो जाए। हमें तो अपने विषय मे सतर्क रहना चाहिए। सीमा ने यहाँ आकर अच्छा ही किया है।"

जम्बुक ने साधु को सम्बोधन कर कहा, "भाई साधु! सीमा के लिए कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध कर ही दोगे।"

"तुम्हे सीमा की बहुत चिन्ता है जम्बुक!"

"हॉ, इस कारण कि तुम्हारे घर मे पका खाना मै डकार चुका हूँ।"

"अभिप्राय यह कि रोटी-दाल तुम खा गए हो।"

"और हाँ, कदली फल भी।"

"तब तो और बनाना पडेगा।"

"अच्छा, अब हमारे जाने का समय हो चुका है। अब तुम जानो और तुम्हारी सीमा।"

: ५ :

पद्मराज ताम्बूली की दुकान पर पहुँचा तो ताम्बूली ने कहा, "संकेत त्रिशकु है। नगरपाल के गृह को, आप जानते हैं। उसके पडोस मे पडित भगीरथ का मकान है। वह आपको बहुत मानता है और आपकी पूजा

करता है। आप उसके घर चले जाइए। वह तो आपको पहिचानता है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति मे यह सकेत आपका प्रबन्ध करवाने मे सहायक होगा।"

पद्मराज ने संकेत लेकर कहा, "अच्छा, अब मै तुम्हे कहाँ मिलूँ ?"

"महाराज ! आप यहाँ न आइएगा। मैं स्वय आपसे मिल लूँगा। जैसे मैंने आपको पहिचान लिया है, हो सकता है कि कोई अन्य भी पहिचान ले।"

"अच्छी बात है।" इतना कह पद्मराज नगरपाल के आवास के समीप भगीरथ के गृह की ओर चल पडा। मकान का द्वार खुला था। इस कारण पद्मराज अन्दर जाने लगा। एक क्षण तक उसने देखा कि कोई द्वार पर है अथवा नहीं। पश्चात् वह अन्दर प्रवेश कर गया। उसके अन्दर प्रवेश करते ही पीछे द्वार एकदम बन्द हो गया। द्वार बन्द होते ही उस स्थान पर अन्धेरा छा गया।

पद्मराज को ऐसा अनुभव हुआ कि कोई उसके समीप खडा है और उसके कान मे पूछ रहा है, "कौन हो तुम ?"

इस समय उसे ताम्बूली के संकेत का ध्यान हो आया। उसने कहा, "त्रिशकु।"

"ओह !" यह स्वर नाम पूछने वाले का था। इसी समय प्रकाश हो गया। घर का द्वार अभी भी बन्द था। सामने खडे व्यक्ति ने पूछा, "किससे मिलना चाहते हो ?"

पद्मराज सामने खडे व्यक्ति को देख रहा था। वह उसे पहिचानता नहीं था। उसने कहा, "भगीरथ पण्डित से।"

"क्या काम है ?"

"गुप्त है। उन्हीं से कहने के लिए है।"

"तो ठहरिए। यहाँ से आगे आप नहीं जा सकते। आगे जीवन का भय है।" इतना कह वह व्यक्ति भीतर चला गया। शीघ्र ही भगीरथ पण्डित आया और आगन्तुक को ध्यानपूर्वक देखने लगा। पद्मराज को

समझ आया कि पण्डित उसे पहिचान गया है। उसने अपनी दाहिनी आँख से संकेत किया था। इस पर भी भगीरथ ने पूछा, "सकेत ?"

पद्मराज ने कहा, "त्रिशंकु।"

"ठीक है। भीतर आ सकते हो।" यह कह वह अन्दर की ओर चल पडा। पद्मराज उसके पीछे-पीछे हो लिया। अन्दर के कमरे मे जाकर भगीरथ ने द्वार बंद कर लिया। पश्चात् पद्मराज की ओर घूमकर बोला, "महामात्य जी ! आप यहाँ कैसे घूम रहे हैं ?"

"मैं अपने परिवार का पता करने आया था। मेरे निवास-गृह पर मालव-सैनिको ने अधिकार कर लिया है। मैं किसी परिचित द्वारा उनका पता करना चाहता था। एक व्यक्ति ने यह संकेत देकर आपके पास भेजा है।"

"महाराज ! आपके जाने के तीसरे दिन मालव-सेना नगर-द्वार पर आ पहुँची। मालव-नरेश का स्वागत किया गया और उसे आदरसहित राज्य-प्रासाद मे ले जाया गया। वहाँ दोनो नरेशो मे महारानी जी के कारण झगडा हो गया। मालव-नरेश ने महाराज की हत्या कर दी। पश्चात् महारानी जी ने भी मालव-नरेश की हत्या करनी चाही; परन्तु वे सफल नही हुई। यह कहा जाता है कि मालव-नरेश ने उनके साथ भारी दुर्व्यवहार किया है, परन्तु इस विषय मे कुछ निश्चित ज्ञान नहीं।

"पश्चात् मालव-नरेश ने यहाँ की जनता मे घोषणा करवा दी कि यदि वे अपनी रक्षा चाहते है तो उनके सैनिको के मनोरंजन के लिए दस सहस्र युवतियाँ उन्हे भेंट देनी होंगी। बौद्धों ने यत्न किया कि वैष्णवो के घरों की स्त्रियाँ मालव-सैनिको को मिल जायँ। परन्तु देवगुप्त का आदेश था कि वह बौद्ध अबौद्ध मे भेद नहीं मानता। जहाँ से भी उपलब्ध हों, युवतियाँ एकत्रित कर ली जायँ।

"पश्चात् क्या हुआ कोई नहीं जानता। परन्तु यह सत्य है कि राज्य-भर के बौद्ध-विहारों मे से सहस्रों भिक्षुणियाँ एकत्रित कर मालव-सैनिकों मे वितरित कर दी गई हैं।

"अब शशाक भी यहाँ आ गया है। हमे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि वह राज्य को स्वयं हथियाना चाहता है। उसने मालव-नरेश को चुनौती दी हैं कि यदि वह उससे किसी प्रकार का समझौता नही कर लेता तो वह अपनी सेना स्थानेश्वर की सेना के साथ मिला देगा और इस प्रकार मालव की ईंट-से-ईंट बजा देगा।

"सुना है मालव-नरेश ने मालवा से और अधिक सेना बुलवाई है और उसके आते ही वह शशाक का काँटा निकाल देना चाहता है।"

"मेरे परिवार का कुछ पता है?"

"मालव-सेना के नगर-द्वार पर आ जाने से पूर्व ही आपका और विष्णुकात का परिवार यहाँ से चला गया था। कोई नहीं जानता किधर। हमारी सूचना तो यही है कि विष्णुकात जी कहो छुपे हुए हैं। वे क्या कर रहे हैं, हमें कुछ पता नहीं।"

"और पण्डित! तुम क्या कर रहे हो? यह संकेत और लुकाव-छिपाव के क्या अर्थ हैं?"

"मै नगर में विप्लव खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। हमने राज्य के शस्त्रागार से एक सहस्र खड्ग निकलवाकर नगर के युवको मे वितरित करवा दी हैं। इसका अर्थ यह है कि इतने सशस्त्र युवक हमारे पास हैं। जिस दिन देवगुप्त और शशाक मे झगड़ा आरम्भ होगा, हम राज्य-प्रासाद पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार मे कर लेंगे। देवगुप्त को हम समाप्त कर देना चाहते हैं। हमारा विचार है कि प्रजा को इस प्रकार लड़ने-मरने के लिए तैयार देख शशाक भी लौट जाएगा।"

"परन्तु इन पचास सहस्र मालव-सैनिको का क्या होगा? इन पर कैसे सफलता प्राप्त की जा सकेगी?"

"बात यह है कि भिक्षुणियो के साथ घृणित व्यवहार करने के कारण राज्य की पूर्ण जनता मालव-सेना के विरुद्ध हो रही है। देहातो से लोग नगर में आ रहे हैं और हमारा विचार है कि एक बार विप्लव आरम्भ कर दिया जाए, पश्चात् मालव-सैनिको के लिए नगर मे रहना कठिन

हो जाएगा। देवगुप्त के मरने से उनका उत्साह समाप्त तो हो ही जाएगा। पश्चात् या तो वे भाग जायेंगे अथवा मार डाले जायेंगे।"

"तो यह कब तक करने का विचार है?"

"हम उस समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब शशाक और देवगुप्त में झगडा आरम्भ हो। वह समय जब आएगा, हम एकदम प्रहार कर देंगे।

"अब आप आ गए है। यदि आप हमारा नेतृत्व करे तो मै समझता हूँ कि सफलता निश्चित ही है।"

इस योजना से पद्मराज का मन पुनः उत्साहित हो गया। वह उसी मकान मे ठहर गया और वहाँ एकत्रित होने वाले षड्यन्त्रकारियो से मिलने लगा।

जिस दिन पद्मराज भगीरथ के घर ठहरा, उसी दिन एक भारी झगडा होते-होते बच गया।

पद्मराज भोजन कर अभी आराम करने ही लगा था कि भगीरथ उसके पास आया और कहने लगा, "नगर की एक वीथिका मे हत्या हो गई है। शशाक का एक साथी मारा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मालव-सैनिकों ने यह हत्या की है। परिणाम यह हुआ है कि नगर के चौक में मालव-सैनिको और शशाक के साथियो मे झगडा आरम्भ हो गया है। दोनो के भारी संख्या मे सैनिक मारे गए है।"

पद्मराज को एक बात सूझी। उसने पूछा, "आप लोगो मे कोई शशाक से मिल सकता है?"

"हाँ, मै जा सकता हूँ। वैसे मंगलेश्वर भी मिल सकता है।"

"मगलेश्वर कहाँ है?"

"वह राज्य-प्रासाद मे सेवा-कार्य करता है। मेरे कहने पर ही उसने यह कार्य स्वीकार किया है। वह आजकल शशाक की सेवा मे है।"

"तो ठीक है, उसको बुलाओ।"

"वह प्रातःकाल ही आ सकेगा।"

"कुछ हानि नहीं। मैं उसके द्वारा एक बात शशांक को कहलवाना चाहता हूँ।"

अगले दिन पद्मराज अभी सो ही रहा था कि मंगलेश्वर आ पहुँचा। पद्मराज को जगाया गया और मंगलेश्वर की भेंट करवा दी गई।

पद्मराज के महामात्य-काल में मंगलेश्वर गुप्तचर विभाग में कार्य करता था। उसका पद्मराज से परिचय भली भाँति था। अब पद्मराज को देख वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "पण्डित भगीरथ इस योजना को चलाने के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। इस पर भी अब जब आप इस योजना को चलाएँगे तो कार्य सुगमता से चल सकेगा।"

"देखो मंगलेश्वर! मैं यह समझता हूँ कि इस राज्य में शक्ति का अभाव है। परन्तु जहाँ तक बुद्धि, नीति और चातुर्य का सम्बन्ध है, हमको वे प्राप्त हैं।

"मेरी योजना यह है कि दोनों विदेशी नरेशों को और हो सके तो उनकी सेना को परस्पर लड़ा दिया जाए। इसका परिणाम यह होगा कि इनकी सैनिक-शक्ति दुर्बल पड़ जायगी। पश्चात् दोनों से एक-एक कर हम निपट लेंगे।

"इस अर्थ यदि तुम मेरी शशांक से भेंट करा सको तो ठीक है।"

"यह कार्य कठिन नहीं। परन्तु आपको प्रासाद के भीतर जाने के लिए कोई ऐसा रूप बनाना पड़ेगा, जिससे आप पहिचाने न जाएँ। प्रासाद के सेवक आपको भली-भाँति पहिचानते हैं।"

"यह हो जाएगा। तुम नौकाधिपति से कहना कि एक रत्न बेचने वाला उनसे मिलना चाहता है।"

"बहुत खूब! मुझको राजनीति के विषय में उनसे कुछ नहीं कहना होगा।"

"नहीं, वह मैं स्वयं कह लूँगा।"

मंगलेश्वर मध्याह्न-पूर्व ही आया और बोला—"भोजनोपरान्त शशांक

आपसे मिलना पसन्द करेगा। शर्त यह है कि आप देवगुप्त से पहिले उससे मिले। बढ़िया रत्न वह क्रय करना चाहेगा।"

पद्मराज ने नगर के कई रत्न बेचने वालो से एक-से-एक बढ़िया रत्न एकत्रित कर लिए और एक गाधार देश के नागरिक का भेष बनाकर, दाढी-मूँछ लगा, सलवार और ढीला-ढाला कुर्ता पहिन मगलेश्वर के साथ चल पडा।

: ६ :

देवगुप्त को जब विश्वास हो गया कि कन्नौज मे उसका कोई विरोधी नहीं रहा तो उसने विजयोत्सव मनाने की आज्ञा कर दी। इस अवसर के लिए उसने कन्नौज के नागरिको से सैनिको के मनोरजन के लिए युवतियाँ मागी। विष्णुकान्त कुछ ऐसी बात की आशा करता ही था। वह उज्जयिनी निवासियो के आचार-विचार से भली भाँति परिचित था। सस्कृति और कला के नाम पर नृत्य-संगीत और अन्य ललित-कलाओ का प्रचार वहाँ बहुत प्रचलित था। जब हूण मध्य भारत और गगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश से निकाल दिया गए तो मालव और कन्नौज राज्यो मे चैन की बासुरी बजने लगी थी।

कन्नौज मे तो बौद्धो के प्रभाव से वैराग्य और साधुता का प्रचार होने लगा और मालव मे वासना बढ गई—और दोनो बाते सीमा से पार चली गई। वैराग्य तो इतना अधिक हुआ कि महाराज ग्रहवर्मन् को राज्य की तथा अपनी रक्षा का ध्यान नहीं रहा और साधुता इतनी बढ़ गई कि जन-साधारण मे साधारण राजनीति तक समझने की योग्यता नहीं रही।

इसके विपरीत उज्जयिनी मे ससार मे प्रवृत्ति बढने लगी। परिणाम यह हुआ कि सासारिक सुख-भोग अधिक और अधिक होने लगा। इसके साथ ही सासारिक भोगो मे वृद्धि के लिए देश का तथा धन-सम्पदा का विस्तार आवश्यक प्रतीत होने लगा। इससे व्यापार मे, सैनिक शक्ति

मे, कूट नीति मे उन्नति होने लगी। इसका परिणाम ही था कि सर्वथा शान्तिमय कन्नौज-राज्य पर मालव आक्रमण हुआ।

मालवो की विजय सुगमता के साथ होने का कारण तो कन्नौज-प्रजा मे वैराग्य और साधुता मे सीमोल्लघन ही था। पद्मराज बौद्ध प्रभाव से बाहर था और उसके मित्र, जो प्रायः वैष्णव थे, उससे सहमत रहते थे। यही कारण था कि वे बाहरी ससार को देख सतर्क थे।

जब मालव-नरेश ने ग्रहवर्मन् की हत्या कर दी और राज्यश्री पर अधिकार प्राप्त करने का यत्न किया तो विष्णुकान्त और अन्य वैष्णव समझ गए कि उनके तथा उनकी स्त्रियो के साथ क्या होने वाला है। परिणामस्वरूप वे बिना अधिक सोच-विचार किये, अपने-अपने परिवारों को लेकर कन्नौज-राज्य छोड गए। उनमे से जो यह समझते थे कि पुरुषो को अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिए यत्न करना चाहिए, लौट आए और पडित भगीरथ उनमें से एक था।

विष्णुकान्त पद्मराज के परिवार को लेकर हरिद्वार जा पहुँचा। उसके चित्त को वहाँ भी शान्ति नही मिली और वह भगीरथ पंडित के विषय मे जाने बिना, कन्नौज मे पहुँचकर जनता को सगठित कर विद्रोह की तैयारी करने लगा।

इस काल मे विजयोत्सव की योजना बन गई और जनता को इसमे सहयोग देने की आज्ञा दी गई। महाराज देवगुप्त ने एक दिन नगर के धनी सेठियो को बुलाया और उनको अपने सैनिको के मनोरजन के लिए स्त्रियाँ देने का आदेश दे दिया।

भयभीत बौद्ध-चैत्यो के प्रबन्धको ने बौद्ध-भिक्षुणियो को इस कार्य के लिये पूर्ण राज्यभर मे से एकत्रित कर राज्य के हवाले कर दिया। परन्तु राज्य की पूर्ण जनता, विशेष रूप से बौद्ध लोग, इससे क्रोध तथा विवशता के मारे दाँत पीसते रह गये।

इस प्रकार विजयोत्सव की तैयारी होने लगी। इस समय गौड-नरेश शशाक देवगुप्त की विजय का समाचार सुन कन्नौज आ पहुँचा। उसने

आने से एक दिन पूर्व यह समाचार देवगुप्त को पहुँचा दिया था कि वह अपने मित्र देवगुप्त की विजय पर उसको बधाई देने आ रहा है।

देवगुप्त इसे पसन्द नहीं करता था, इस पर भी वह शशाक के आने को रोक नहीं सका। परिणामस्वरूप शशाक का स्वागत किया गया। शशाक की सेना को तो नगर के बाहर ठहराया गया और शशॉक को राज्य-प्रासाद के एक कक्ष मे निवास दिया गया। शशाक की इच्छा थी कि विजयोत्सव तक वह कन्नौज मे ही रहेगा।

विजयोत्सव मनाया गया और इसमे कई प्रकार से रगरेलियाँ मनाई गई। उच्छृङ्खलता असीम हो गई और इसमे मालव तथा गौड-नरेश तथा उनके साथियो ने जी भरकर भाग लिया।

विजयोत्सव के पश्चात् भी शशाक कन्नौज से बाहर नहीं गया। इससे देवगुप्त की चिन्ता बढ गई। शशाक ने अपनी सेना के कई गुप्तचर नगर-भर मे फैला दिए, जो जनता के विचारो की टोह लेने लगे और शशाक को सूचित करने लगे। इस कार्य के लिए शशाक ने कन्नौज के कई नागरिकों तक को सेवा मे रख लिया। इससे उसका आशय यह था कि वह कन्नौज की जनता से सम्बन्ध बनाना चाहता था।

नाभर शशाक के गुप्तचर-विभाग का प्रमुख अधिकारी था। उसकी हत्या के समाचार से शशाक ने समझा कि देवगुप्त ने यह हत्या कराई है और देवगुप्त उसके गुप्तचरो के विषय मे जान गया है।

गौड-सैनिकों ने नाभर की हत्या का प्रतिकार मालव-सैनिको से लिया। परस्पर झगडा बढ़ जाता, परन्तु शशाक की आज्ञा आ गई कि शान्ति रखी जाय। वह अपनी सीमित शक्ति से देवगुप्त के साथ युद्ध करना नहीं चाहता था।

अगले दिन वह देवगुप्त से मिलने गया तो देवगुप्त ने कहा, "मित्र! अपने सैनिकों को वश में रखो। हमें यह भय हो रहा है कि हमारी सेनाएँ परस्पर भिडकर विजय को पराजय में न बदल दें।"

"ठीक है।" शशाक ने कहा, "मुझे जब पता चला कि परस्पर

झगड़ा हो गया है, तो मैंने सैनिकों को नगर छोड़ शिविर मे जाने की आज्ञा दे दी थी। यही कारण था कि झगड़ा समाप्त हो गया। परन्तु मित्र! नाभर की हत्या से मुझे भारी दुःख हुआ है। वह मेरा एक अति विश्वस्त, योग्य और चतुर कर्मचारी था।"

"परन्तु वह उस सकीर्ण वीथिका मे गया क्यो?"

"यह मैं कैसे बता सकता हूँ? यदि वे सैनिक, जो उसके शव को उठाकर राज्यपाल के पास लेकर गए थे, उसको जीवित पकड़ लाते तो समस्या सुलझ जाती।"

"मैं समझता हूँ कि नित्य सूर्यास्त से पूर्व गौड सैनिको को शिविर मे लौट जाना चाहिए।"

"बात यह है कि जब नगर के द्वार रात-भर खुले रहते हैं और कोई भी व्यक्ति नगर में प्रवेश पा सकता है, तो फिर यह प्रतिबन्ध मेरे सैनिको के लिए क्यो? खैर, इस विषय मे फिर बात कर लेंगे।"

"श्रीमान् गौड-नरेश कब तक लौट जाने का विचार रखते हैं?"

"जब तक मेरे साथ वह सन्धि, जो कन्नौज-विजय से पूर्व हुई थी, पालन नही की जाती।"

"क्या सन्धि थी वह?"

"तो श्रीमान् देवगुप्त नहीं जानते?"

"मेरे पास लिखित सन्धि यहाँ नहीं है। वह उज्जयिनी मे है।"

"सन्धि की प्रतिलिपि मेरी भी पुड्र मे है; परन्तु मै यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि उस सन्धि मे यह शर्त थी कि कन्नौज-विजय के पश्चात् कन्नौज राज्य के दो भाग कर दिए जायँगे। एक भाग मालवा के अधिकार मे रहेगा और दूसरा गौड के अधीन।"

"मुझको स्मरण नहीं कि ऐसी कोई बात हुई हो।"

"तो वह सन्धि-पत्र मँगवा लिया जाय। मे आज ही अपना विश्वस्त व्यक्ति भेज देता हूँ।"

"मैं समझता हूँ," देवगुप्त ने कहा, "मुझको भी अपनी प्रतिलिपि

मँगवा लेनी चाहिए।"

"तो ठीक है। आने पर उस विषय पर बात कर लेंगे।"

इस प्रकार शशाक ने कई दिनो का कन्नौज मे ठहरने का प्रबन्ध कर लिया।

इसी दिन जब वह मध्याह्न को भोजन के लिए अपने आगार में पहुँचा तो मगलेश्वर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। शशाक के आने पर उसने झुककर नमस्कार किया और कहा, "श्रीमान् जी के कुछ क्षण लेना चाहता हूँ।"

"क्या चाहते हो?"

"दिवंगत महाराज ग्रहवर्मन् का जौहरी, जो देश-विदेश घूमकर रत्न बेचा करता है, महाराज से भेंट का प्रार्थी है।"

"कुछ नवीन रत्न लाया है क्या?"

"अवश्य लाया होगा। वह लंका से आ रहा है और लंका देश रत्नों का भण्डार है।"

"अच्छी बात है, हम मिलेंगे। मध्याह्न भोजनोपरान्त उसे हमारे पास ले आना। उससे कह देना कि देवगुप्त से मिलने से पूर्व हमसे मिले। हम नहीं चाहते कि बढिया रत्न वह क्रय कर ले।"

"श्रीमान् की आज्ञा बता दूँगा।"

: ७ :

मध्याह्न भोजनोपरान्त शशाक विश्राम के लिए अपने आगार मे जाने लगा तो मंगलेश्वर ने सूचना दी कि जौहरी उपस्थित है। शशांक ने उसे अपने आगार मे लाने को कह दिया। जब पद्मराज शशाक के सामने उपस्थित हुआ तो एक क्षण शशाक उसे देखता रहा। पश्चात् उसने कहा, "मगलेश्वर, तुम जाओ, इसे हमारे पास छोड दो।" मगलेश्वर के जाने के पश्चात् शशाक ने उसे अपने शयनागार मे आने को कहा।

दोनो शयनागर मे पहुँचे। शशाक एक चौकी पर बैठ गया तो रत्न-विक्रेता उसके सम्मुख भूमि पर बैठ गया। पद्मराज ने अपने रत्नो की सन्दूकची खोलने से पूर्व कहा, "कन्नौज मे दो वर्ष हुए आया था। महाराज ग्रहवर्मन् जी को मैंने एक हीरा दस सहस्र स्वर्ण पर दिया था। महाराज की इच्छा थी कि उसको अपने मुकुट में लगाएँ। परन्तु महारानी राज्यश्री चाहती थीं कि यदि उसके साथ की जोड़ी मिल जाए तो उसे अपने कर्णफूलो मे लगवा लें। मै वैसे ही एक पत्थर की खोज में था। पिछले वर्ष मुझे वैसा ही एक पत्थर सिंहल द्वीप की महारानी के पास मिल गया। मैं उनसे वह उसके बदले में तीन हीरे देकर ले आया हूँ; परन्तु यहाँ पहुँचकर पता चला कि राज्य बदल चुका है। इससे बहुत निराश हुआ हूँ।

"इस पर भी यह आशा कर कि कदाचित् गौड़ाधिपति उस हीरे को क्रय करने के इच्छुक हो, श्रीमान् की सेवा मे आ उपस्थित हुआ हूँ।"

पद्मराज ने सन्दूकची खोली। उसमे से एक डिबिया खोलकर एक चमचमाते हुए हीरे को निकाला और एक नीलवर्ण रेशमी रुमाल के ऊपर रख शशाक के सामने कर दिया।

कितने ही समय तक शशाक उसे देखता रहा। पश्चात् बोला, "मैं समझता हूँ कि राज्यश्री ठीक कहती थी कि यह कर्णफूल में शोभा पाएगा। जिस सुन्दरी के कानों में वे कर्णफूल होंगे, उसका सौन्दर्य शत गुणा बढ़ जाएगा।"

"महाराज का कथन सर्वथा सत्य है। परन्तु इसके जोडे का दूसरा हीरा महारानी राज्यश्री के पास होना चाहिए।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि वह अब देवगुप्त के अधिकार मे है।"

"भगवान् जाने। कुछ नहीं कहा जा सकता।"

"तो जौहरी! एक बात करो। यह हीरा हमारे पास छोड़ जाओ। यदि इसके जोडे का मिल गया तो हम क्रय कर लेंगे, अन्यथा तुमको लौटा देंगे।"

"पर महाराज ! वह कैसे मिलेगा ? कहाँ है वह ?"

"हम महाराज देवगुप्त से इसकी चर्चा करेंगे।"

"तो आप उनको यह हीरा दिखायेंगे ?"

"बिना दिखाए काम नही चलेगा।"

"तो महाराज क्षमा करें। मैं यह यहाँ कन्नौज मे नही बेचूँगा।"

"क्यों ?"

"मैं यह अनमोल वस्तु एक आततायी के हाथ नही बेचना चाहता।"

"तो तुम देवगुप्त को आततायी मानते हो ?"

"महाराज ! मेरे शब्दकोष मे एक ऐसे व्यक्ति के लिए और कोई शब्द है ही नही। पाँच सहस्र के लगभग भिक्षुणियाँ सैनिको मे वितरण कर दी गईं। इस समय उनमे से आधी के लगभग मर चुकी हैं। यह तो महाराज ! घोर पाप कर्म हुआ है।"

इतना कह पद्मराज ने रत्न वापिस लेने के लिए हाथ बढ़ा दिया। शशाक के मन मे एक विचार उठा। उसने कहा, "एक बात हो सकती है। हम यह रत्न लेने के लिए देवगुप्त को यहाँ से भगा सकते है।"

"ऐसे तुच्छ पत्थर के लिए मैं नही चाहता कि भारत-खण्ड के दो राज्यो में सघर्ष चल पडे, जो पुत्र-पौत्रों तक चलता रहे।"

"तुम विचित्र व्यक्ति हो। एक ओर तो उसको आततायी कहते हो और साथ ही उस आततायी को दण्ड देने से मना भी करते हो। क्या कन्नौज मे आने मात्र से ही बुद्धि क्षीण हो जाती है ?"

"यह नहीं महाराज ! मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि रत्न के लिए नहीं, प्रत्युत धर्म और न्याय के लिए राज्यो मे उथल-पुथल उचित है। मालव-राज्य यहाँ पर अधर्मयुक्त सिद्ध हो रहा है। इस अधर्म के विरोध और धर्म के सरक्षण के लिए जो कुछ भी किया जाए, वह क्षम्य होगा।"

"क्षम्य का क्या अर्थ ?"

"मेरा श्रीमान् देवगुप्त जी से अथवा आप से निजी रूप मे कोई द्वेष

नहीं। यदि मैं एक की सत्ता मिटाने की इच्छा करता हूँ, तो धर्म के संस्थापन के लिए ही। धर्म के संस्थापन के लिए यदि सहस्रो प्राणियों का रक्त भी बहाना पड़े तो भी कोई हानि नहीं। अन्यथा एक भी प्राणी की हत्या करते हुए अथवा उसकी इच्छा करते हुए मेरा हृदय काँपता है।"

"तुम कहाँ के रहने वाले हो ?"

"पुरुषपुर गाधार का। परन्तु अब वहाँ नहीं जाता। कारण यह कि वहाँ हूणो का राज्य स्थापित हो गया है। उनका राज्य भी न्याय और धर्म-संगत नहीं।

"महाराज प्रभाकर वर्धन ने पाचाल देश से तो उन दुष्टो को भगा दिया है परन्तु सिन्धु नदी के पार तो अभी भी उनका राज्य है।"

"पर सुना है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो चुकी है।"

"सत्य महाराज ?"

"हाँ।"

"यह तो अति शोकजनक समाचार है। इस पर भी मैं आशा करता हूँ कि श्रीकण्ठ का राजकुमार राज्यवर्धन तो हूणो से सिन्धु पार जाकर भी युद्ध करेगा।"

"ठीक है। परन्तु पिता के देहान्त से पुत्र को समर-भूमि से लौटना पड़ेगा।"

"तो महाराज ! भारत के सब सम्राट् मिलकर यह पुण्य कार्य क्यों नहीं करते ?

"इस समय विन्ध्याचल से उत्तर मे चार बड़े-बड़े राज्य है। स्थानेश्वर, गौड, मालव और कामरूप। इन चारो मे सन्धि नही हो सकती क्या ?"

"नहीं।"

"क्यो ?"

"इसलिए कि इनमे कौन बड़ा है, निश्चय नहीं हो सकता।"

"चारों ही बड़े रहे। मेरा अभिप्राय है कि बराबर-बराबर रहे।"

शशाक हँस पडा। उसने कहा, "यह नहीं हो सकेगा। जौहरी! तुम मानव-प्रकृति का ज्ञान नही रखते, तभी यह कहते हो। मैं तो अपने को सबसे बडा मानता हूँ।"

"पर बडा बनने के लिए जहाँ शक्ति, चातुर्य और भाग्य की आवश्यकता है, वहाँ न्याय-परायणता की भी आवश्यकता है।"

"ये सब गुण मैं अपने मे पाता हूँ।"

"तब तो ठीक है महाराज! आप जब उत्तर पथ के चक्रवर्ती राजा बनेंगे, तो मैं आपके चक्रवर्ती मुकुट को ऐसे-ऐसे रत्नो से जड दूँगा कि ससार के राजे-महाराजे श्रीमान् की ओर आँख नही कर सकेंगे।"

"सत्य?"

"हाँ महाराज! मुकुट आप बनाइए और रत्न मैं जड दूँगा।"

"मैं मुकुट बनाऊँगा? मै कोई स्वर्णकार हूँ?"

"मुकुट स्वर्णकारो की कठाली मे नहीं ढलते महाराज! मुकुट वीरो के खड्ग से ढाले जाते है। स्वर्णकार बेचारा तो जैसा ढला हुआ पाता है, उस पर वैसा रंग लगा देता है।"

शशाक हँस पडा। उसने कहा, "मैं समझता हूँ कि हम अपने विषय मे भटक गए हैं। बताओ इस रत्न के लिए क्या लोगे? हम समझते हैं कि यदि हमारे पास यह होगा तो इसका जोड प्राप्त करने के लिए हम युद्ध तक कर सकेंगे।"

"देखिए महाराज! यदि आप इसके जोडे का हीरक रखने वाले को पराजित कर उसको प्राप्त कर सकेंगे, तो मैं यह हीरक श्रीमान् जी की सेवा मे विना मूल्य भेट मे दे दूँगा।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि पहिले हम इसका जोड प्राप्त करे, तब ही तुम हमको यह दोगे?"

"विना मूल्य के। यदि श्रीमान् चाहे तो वह परिस्थिति उत्पन्न करने मे मैं सहायता भी दे सकता हूँ?"

"क्या सहायता कर सकते हो जौहरी?"

"महाराज! मैं जौहरी तो हूँ ही। साथ ही देश भर मे घूमने से कुछ अनुभव भी रखता हूँ। मेरा अधिक समय दक्षिण पथ मे व्यतीत हुआ है और जितने जोड-तोड लगाने वाले उस पथ पर बसे हैं, अन्य कही नहीं है।"

"ओह यह बात है! तो बताओ यदि तुम मेरे स्थान पर होते तो क्या करते?"

"मैं श्रीमान् के स्थान पर कैसे हो सकता हूँ? मै एक दुर्बल जौहरी। इस पर भी आप इस प्रकार पूछिए कि मेरी बुद्धि में इस विषमता का सुझाव क्या है?"

"पर विषमता यहाँ है क्या?"

"यह तो मुझको पिछले पाँच दिन मे, जब से मै यहाँ हूँ, स्पष्ट रूप मे दिखाई देने लगी है। कल रात ही नगर मे मालव तथा गौड़ सैनिको में युद्ध छिड चला था। फिर एक म्यान मे दो खड्ग नही समा सकते। इसी प्रकार एक राज्य-प्रासाद मे दो राजा नहीं रह सकते।"

"पर यहाँ तो हम लगभग पन्द्रह दिनो से रह रहे हैं।"

"आप बधाई के पात्र हैं महाराज! इस पर भी मेरी तुच्छ बुद्धि की बात सुन लें। या तो यह म्यान टूट जाएगा, अन्यथा दोनो खड्ग परस्पर भिड जायँगे।"

शशाक हँस पड़ा और बात को पुनः रत्नो की ओर लाकर बोला, "रत्न को तुम मेरे पास छोड़ जाओ।"

"कब तक इस बात का पता करूँ?"

"कल इसी समय मंगलेश्वर तुमको बुला लाएगा।"

"अच्छी बात है। एक बात आप सुन ले। यह रत्न देवगुप्त के पास नहीं बिकेगा। यदि आप प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर, इसकी जोड़ी ले सकेंगे तो यह बिना मूल्य, श्रीमान् जी की सेवा मे मेरी ओर से भेंट होगी। यदि आप इसको ऐसे ही लेना चाहेंगे तो इसका मूल्य पन्द्रह सहस्र स्वर्ण-मुद्रा होगा।"

"अच्छी बात है, कल मिलना।"

जब पद्मराज वहाँ से लौटा तो भगीरथ, जो अपने निवास-स्थान पर उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, उसे वापिस आया देख पूछने लगा, "क्या हुआ महामात्य जी ?"

"शशाक महामूर्ख है।"

"क्यो ?"

"वह इतनी राजनीति की बाते सुनकर भी मुझको एक साधारण जौहरी ही समझता रहा।"

"तो फिर ?"

"कल पुनः भेंट होगी।"

: ८ :

कन्नौज की एक वीथिका मे एक स्त्री, जो हाथ मे एक डोली, जो गीले कपडे मे लिपटी हुई थी, लिए हुए जा रही थी। वहाँ से निकल वह राजमार्ग पर चलने लगी। प्रातःकाल सोलहो श्रृगार किये हुए वह युवती, पॉव मे चॉदी की झॉझरो से छनक-छनक करती जाती थी। राजमार्ग पर अभी वह कुछ ही पग गई थी कि पीछे से किसी ने पुकारा, "ओ पत्रलता ! ओ पत्रलता !!"

पत्रलता ने घूमकर देखा। एक पुरुष मुस्कराते हुए उसके पीछे-पीछे आ रहा था। पत्रलता ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसके मुख पर देखा तो उसने पूछा, "कहाँ जा रही हो, कन्नौज के सौन्दर्य का भार लिये ?"

"ओह ! मंगलेश्वर जी है। पुरोहित जी ! किधर प्रस्थान हो रहा है इतनी सवेरे ? क्या पूजा-पाठ से जी ऊब गया है ?"

"पूजा-पाठ की महिमा नहीं रही प्रिये !"

"ओहो ! अब तो पंडितजी रसिक हो गए हैं।"

"तो तुम नहीं जानती कि रसिक हुए बिना पडित नहीं बना जा सकता। भेद तो रस के प्रकार मे पड गया है। कभी भगवान् के मोरमुकुट,

पीत वसन, कर्ण कुण्डल मे रस दिखाई देता था, अब रस भर गया है पत्रलता के मदभरे नयनो मे।"

"तब तो मगलेश्वर जी महाराज ! पत्रलता के चरणो की परिक्रमा होनी चाहिए।"

"हाँ ठीक कहती हो। इसी कारण तो पूछ रहा हूँ कि गोरी किधर चली है यह शृगार किये हुए।"

इस समय सामने से एक अन्य पुरुष जल-भरा लोटा लिये जगल की ओर जाता हुआ पत्रलता के सन्मुख खडा हो गया और पूछने लगा, "किधर से आ रही है हमारी पत्रलता ?"

"तुम्हारी पत्नी के प्रागण से। उसके सहवासी को पान का बीडा देकर।"

"हत दुष्टा कहीं की। उसकी शैया तो मै अभी छोडकर आ रहा हूँ।"

इस पर मगलेश्वर और पत्रलता हँसते हुए राज्य-प्रासाद की ओर चल पडे। कुछ काल तक चुपचाप चलने के पश्चात् पत्रलता ने पूछा, "पुजारी महोदय ! किधर जा रहे है ?"

"जिधर हमारी पत्रलता जा रही है।"

"मैं जा रही हूँ श्रीमती इन्द्रजालिक की सेवा मे।"

"ओह ! मै जा रहा हूँ इन्द्रजालिक के चाहने वाले की सेवा मे।"

"सत्य ? कब से ?"

"आज पाँच दिन हो गए है। गौड-प्रभु किसी विश्वस्त प्रतिहार की आवश्यकता मे थे। उनको मै पसन्द आया और मुझको सेवा मे ले लिया।"

"क्या गुण देखा है आपमे गौड़-प्रभु ने ?"

"उनके जीवन पर तीन बार घातक प्रहार किया जा चुका है और तीनो बार ही इस क्षुद्र पुजारी ने उनको बाल-बाल बचाया है।"

"तो प्रतिहारी नहीं, आपको अंगरक्षक कहना चाहिए।"

"महाराज का अंगरक्षक होना तो एक भारी सम्मान की बात है। वह पद भला कन्नौज की पराजित प्रजा के किसी व्यक्ति को कैसे मिल सकता है?"

"यही बात तो मेरी है। यह इन्द्रजालिक पाटलिपुत्र की रहने वाली है, इस कारण महाराज की प्रेमिका है और मैं कन्नौज की रहने वाली ताम्बूलिन-मात्र हूँ।"

"पर वह बहुत सुन्दर नृत्य करती है।"

"पर यह आप कैसे कह सकते हैं कि मैं नहीं कर सकती?"

"तो तुम नृत्य दिखाने जा रही हो महाराज को?"

"मैं नित्य ही तैयार होकर जाती हूँ। यह आशा करती हूँ कि कभी तो महाराज की दृष्टि मेरे पर पड़ेगी।"

"महाराज कहाँ मिलते हैं तुमको?"

"वे इन्द्रजालिक के आगारों में प्रातः का अल्पाहार लेते हैं। पश्चात् ताम्बूल लेते हैं और वह ताम्बूल लगाकर देने का कार्य मुझको मिला है।"

मंगलेश्वर ने एक दृष्टि पत्रलता की ओर फेंककर कहा, "वास्तव में तुम सुन्दर तो हो। क्या महाराज शशांक तुम्हारी ओर कभी देखते नहीं?"

"कभी तो देखेंगे। मैं भी पीछा छोड़ने वाली नहीं।"

"कहीं इन्द्रजालिक तुम्हारी शत्रु न बन जाए और रात के समय तुम्हें मरवाकर तुम्हारा शव चौक में न फिकवा दे। आजकल मालव-सैनिक भिक्षुणियों के साथ यही कर रहे हैं।"

"यही तो देखना है कि कौन चतुर है। इन्द्रजालिक अथवा पत्रलता। वह हरजाई राज्य-सत्ता की बातें क्या जान सकती है?"

"पत्रलता! ये हरजाइयाँ बहुत भयानक होती हैं। ज़रा सावधानी से रहना। यदि कुछ मेरी सहायता की आवश्यकता पड़े तो बताना।"

"बता तो सकती हूँ परन्तु पंडितजी को कभी गौड़-प्रभु के पास देखा

नहीं।"

"बात यह है कि मेरा कार्य मध्याह्न पश्चात् से मध्य-रात्रि तक रहता है। इन्द्रजालिक इतनी चतुर है कि रात के समय तुम जैसी सुन्दर स्त्री को महाराज के समीप फड़कने नहीं देती। रात के समय जितनी सेविकाएँ वहाँ आती हैं, वे सबकी सब छाँटकर कुरूप एकत्रित की गई हैं। स्वर्ण-भूषण को हरे रंग के वस्त्र पर रखने से जो लाभ होता है, वही कुरूप सेविकाओं की पृष्ठभूमि पर एक सुन्दर स्त्री के होने से प्राप्त होता है।"

इस समय वे राज्य-प्रासाद के द्वार पर जा पहुँचे थे। वहाँ पद्मराज जौहरी के वेष में उपस्थित था। शशाङ्क ने मंगलेश्वर को जौहरी के साथ प्रातः अल्पाहार के समय ही इन्द्रजालिक के आगार में बुलाया था। इस गाधार-निवासी जौहरी ने जब पत्रलता को देखा तो झुककर नमस्कार करने लगा। पत्रलता ने पूछा, "कौन हैं आप?"

"मैं गाधार-निवासी जौहरी हूँ। महाराज को कुछ रत्न दिखाने के लिए लाया हूँ।"

"आपको पहिले कहीं देखा है?"

"हाँ! जब ताम्बूलिन पान की दुकान करती थी, यह जौहरी कई बार पान खाने के लिए उसकी दुकान पर आया था।" जौहरी ने मुस्कराते हुए कहा।

तीनों भीतर चले गए। जब तीनों शशाङ्क के कक्ष की ओर जाने लगे तो पत्रलता ने पूछा, "तो ये जौहरी महाशय इसी समय महाराज से मिलने जा रहे हैं?"

"हाँ, इनको इन्द्रजालिक के आगारों में ही बुलाया गया है।"

"तो इन्द्रजालिक के लिए रत्न क्रय किये जा रहे हैं?"

इस पर जौहरी बोला, "हाँ, यदि कुछ नकद बिक्री हो गई तो एक-आध वस्तु पत्रलता के लिए भी प्राप्त हो सकेगी।"

"तुम दोगे?" पत्रलता ने जौहरी की ओर घूरकर देखते हुए कहा।

"कुछ हानि है क्या?"

"कुछ लाभ नहीं होगा।"

"कुछ लाभ की आशा मे नहीं दूँगा। मैं तो ठाकुरजी की पूजा में पुष्पपत्र चढ़ाने की बात कर रहा हूँ। प्रायः पत्थर के ठाकुर तो प्रसन्न नहीं होते और न ही उनकी प्रसन्नता की कोई बुद्धिमान आशा रखता है।"

"तो क्यो अपने पत्र-पुष्प व्यर्थ गँवाओगे?"

"अपने मन की तुष्टि के लिए। देखो पत्रलता देवी! तुम्हारी दुकान पर पान का दाम कोई एक रजत दे तो किस लिए देगा?"

"एक रजत? अब कोई नहीं देता। एक देने वाला था। भगवान् जाने कहाँ चला गया है?"

"तो यह इन्द्रजालिक क्या देती है?"

"साधारण लोग एक टका देते हैं और यह चार टका देती है?"

"बस? इतने के लिए सुन्दरी पत्रलता अपना सौन्दर्य बिखेरती रहती है?"

"पर सौन्दर्य टकों और रजत पाने के लिए नहीं है।"

"तो किस लिए है? यदि यह रजत, स्वर्ण और रत्नादि पर न्योछा-वर होता है तो वे देने वाले तो यहाँ है।"

"पर जौहरी महाशय!" मंगलेश्वर ने कहा, "कन्नौज की एक संकीर्ण वीथिका में उगी इस काँटेदार झाडी से उलझ गए तो पूर्ण शरीर छलनी हुए बिना नहीं रहेगा।"

"वीर और चतुर माली तो काँटेदार झाडियों मे से ही पुष्प एकत्रित करते हैं। बताओ पत्रलता! क्या चाहिए तुमको?"

"जो कुछ जौहरी देगा, वह पाने की अभिलाषा यहाँ नहीं है।"

इस समय वे प्रासाद के उस कक्ष मे जा पहुँचे थे, जिसमें शशाक रह रहा था। मंगलेश्वर तथा पत्रलता को सब जानते थे और जौहरी इनके साथ होने से प्रवेश पा गया।

महाराज शशाक इन्द्रजालिक के आगारों मे थे। जब तक वे वहाँ

रहते थे, केवल दासियाँ ही भीतर जा सकती थीं; परन्तु मंगलेश्वर ने द्वार पर खड़ी दासी को कहा, "महाराज ने जौहरी को इन्द्रजालिक के आगार में बुलाया है। उनको सूचना दे दो कि वह आया है।"

दासी भीतर सूचना देने चली गई। मंगलेश्वर ने कहा, "कदाचित् मैं भीतर नहीं जा सकूँगा। जौहरी महाशय! इस काँटेदार पत्रलता से सावधान रहियेगा।"

"हाँ! यह काँटे पुजारी जी के लिए कोमल फूल दिखाई देते हैं और वे इनको उखाड़ने के लिए लालायित हो रहे हैं।" पत्रलता ने कह दिया।

दासी बाहर आ गई और विनोद की बातें समाप्त हो गईं। दासी ने जौहरी को भीतर चलने के लिए कहा।

मंगलेश्वर के विषय में कोई आदेश नहीं था। इस कारण वह बाहर ही रह गया। पत्रलता तो ताम्बूलिन थी और वह प्रतिदिन प्रातःकाल इन्द्रजालिक के लिए पान लाया करती थी। इस कारण उसके लिए कोई रुकावट नहीं थी। वह भी अन्दर जा पहुँची।

इस पर भी दोनों भीतर एक साथ नहीं पहुँचे।

: ६ :

जौहरी भीतर एक अत्यन्त ही सुसज्जित आगार में ले जाया गया। आगार में इन्द्रजालिक अभी भी पलंग पर प्रायः अर्धनग्नावस्था में लेटी हुई थी। उसने अपने ऊपर एक चादर ओढ़ी हुई थी। उसका सुन्दर मुख ही, खुले कृष्ण केशों के बीच में से, प्रश्रय पर रखा दिखाई दे रहा था।

महाराज शशांक पलंग के समीप ही एक चौकी पर बैठे थे। जौहरी के अन्दर प्रवेश करने पर शशांक ने कहा, "जौहरी! उस हीरक का जोड़ीदार तो मिला नहीं। कल रात हमने महाराज देवगुप्त से वह माँगा था। वे हमें साथ लेकर रत्नागार में गए। वहाँ हमने भली प्रकार ढूँढा, परन्तु वह नहीं मिला।"

"तो श्रीमान् ने यह मेरे वाला हीरा महाराज देवगुप्त को दिखाया था ?"

"हाँ।"

"यह तो महाराज ! ठीक नही हुआ। आज प्रातःकाल ही महाराज देवगुप्त का एक सैनिक मुझको ढूँढता हुआ पथागार मे, जहाँ मैं ठहरा हूँ, पहुँच गया था। वह सैनिक मुझे पहचानता नहीं था। अतः मुझसे ही पूछने लगा, 'गाधांर जौहरी कहाँ है ?'

"मैंने कहा, 'भीतर आगार मे है।'

"उसने पूछा, 'मै कौन हूँ ?' तो मैंने कह दिया कि मैं उसका सेवक हूँ।

"वह द्वार खटखटाने लगा। मैं अवसर निकाल इस ओर भाग आया हूँ। मुझको महाराज की सेवा मे उपस्थित होना था। मेरा अनुमान है कि वह महाराज देवगुप्त का भेजा हुआ सैनिक था और मुझे महाराज के सन्मुख उपस्थित करना चाहता था।"

"पर वह हीरक वहाँ नहीं था।"

"तो वह पहिले ही निकाल लिया गया होगा।"

"उसके विषय मे पीछे बात करेंगे। अभी तो तुम इन देवी को कुछ रत्न दिखाओ। कदाचित् इनको कुछ पसन्द आ जाय।"

जौहरी भूमि पर बैठ गया। अपनी सन्दूकची, जो वह बगल मे दबाये हुए था, उसने सामने रख खोल दी और एक-एक कर रत्न, हीरक, पन्ना आदि निकाल दिखाने लगा।

"बहुत माल है जौहरी तुम्हारे पास ?" इन्द्रजालिक ने पूछा।

"हाँ, देवी जी ! यह तो अभी-अभी सिंहल द्वीप से लेकर आया हूँ। इससे भी अधिक मूल्यवान वस्तुएँ मेरे निवास-स्थान कौशाम्बी में रखी है।"

शशाक ने हँसते हुए कहा, "जौहरी ! यदि हम यह सब माल तुमसे छीन ले और तुमको धक्के मार-मारकर यहाँ से निकाल दे, तो फिर क्या

करोगे ?"

"मैं महाराज को ऐसा नहीं समझता। जिनको समझता हूँ, उनके पास जाता ही नहीं। मेरी बुद्धि और मानव-परख ने मुझे आज तक धोखा नहीं दिया।

"इसके साथ एक और बात भी है। आप यह सब-कुछ छीनकर जायँगे कहाँ? आपके दो सहस्र सैनिक देवगुप्त के पचास सहस्र सैनिको के वन्दी हैं।"

"तो इसीलिए यह तुम हमारे पास बेचने आए हो, जिससे मूल्य हमे चुकाना पडे और इनका स्वामी देवगुप्त बन जाय।"

"यह बात नहीं महाराज! आप······।"

इस समय शशाक की दृष्टि पत्रलता पर पडी। वह लगे हुए पान लेकर भीतर आई थी और महाराज शशाक के पीछे खडी जौहरी की बात सुन रही थी। इन्द्रजालिक हाथों मे पकडे दो माणिक्यो को देख रही थी। उसका ध्यान पत्रलता की ओर नहीं था।

शशाक ने पत्रलता की ओर देखकर कहा, "लो, ताम्बूलिन आ गई। देवी को पान दो न ताम्बूलिन, जिससे इनकी नींद खुले और ये उठे।"

"हाँ, लाओ।"

"देखो जौहरी! यह ताम्बूलिन कितनी सजधजकर पान देने आती है। मैं इससे पूछता हूँ क्यों, तो यह कहती है कि एक स्त्री के मन की बात एक पुरुष नहीं जान सकता। तुम इससे पूछो कि यह किसके लिए शृगार करती है।"

"महाराज! मैं इस ताम्बूलिन को चिरकाल से जानता हूँ। पिछली बार जब मैं कन्नौज आया था, तो इसकी दुकान पर पान लेने के लिए गया था। यह तब भी शृंगार किया करती थी। मैं केवल इसके शृगार किए होने के कारण, इसके पान का मूल्य एक रजत दिया करता था।"

"बहुत रसिक हो जौहरी तुम?"

"श्रीमान् जैसे रसिको की कृपा का फल ही है यह।"

पत्रलता ने पान इन्द्रजालिक को दिया तो उसने मुख में डाल लिया। इस समय इन्द्रजालिक ने दो बड़े-बड़े माणिक्य उठाकर महाराज शशांक को दे दिए और कहा, "इनको मैं अपने कर्णफूलों में लगवाना चाहती हूँ।"

"पर यह जौहरी कहता है कि यह सब कुछ देवगुप्त के हाथ लग जायगा।"

"क्यों जौहरी ? कैसे कहते हो तुम ?"

"जैसे दो और दो चार होते हैं, वैसे ही देवीजी ! एक नरेश और दूसरा नरेश एकत्रित हों तो क्या होता है, यह मैं जानता हूँ। इसी कारण तो यह निवेदन किया है। तीन में से पाँच ऋण नहीं किए जा सकते, परन्तु यदि तीन में दस मिला दिए जायँ और फिर उसमें से पाँच ऋण किए जायँ तो यह हो सकता है। यह गणित की बात मैं जानता हूँ महाराज! इसी से निवेदन कर रहा था कि तीन में दस मिलाने से यह रत्न श्रीमती जी के पास ही रह जायगा।"

"जौहरी ! तुम तो राजनीति की बातें करते हो।"

"महाराज ! मैं व्यापारी हूँ। यह व्यापार की ही बात तो कह रहा हूँ।"

"अच्छा यह बताओ, यह तीन में दस मिलाने के लिए कौन-सा द्वार खटखटाया जाय ?"

"महाराज ! एक बहुत बड़ा द्वार है। उसको खटखटाने से मुँह-माँगी मुराद मिलती है। वह द्वार है जनता का। जनता का हितचिन्तन कीजिए। यही द्वार खटखटाना है। इसी के द्वारा तीन में दस मिलाकर आप पाँच ऋण कर सकते हैं।"

शशांक को बात समझ आ रही थी। पिछले दिन मध्याह्न के समय जौहरी ने जो कुछ कहा था, अब उसके सन्मुख स्पष्ट हो गया। वह समझ गया कि उसकी दुर्बल स्थिति को प्रबल करने का सुझाव उपस्थित हुआ है। इस पर भी कुछ और कहने के पूर्व वह जौहरी के, प्रजा के विषय में

विस्तार जानना चाहता था। वह यह जानना चाहता था कि क्या सत्य ही कन्नोज की प्रजा देवगुप्त से इतनी रुष्ट है कि उसका साथ देने को तैयार हो जायगी वह अभी कुछ और पूछना ही चाहता था कि इन्द्रजालिक ने कहा, "तो महाराज ! ये रत्न जौहरी से ले लिए जायें और तीन और दस तेरह कर दिए जायें।"

"हाँ, तो इनके दाम क्या हैं ?"

"महाराज ! आठ सहस्र स्वर्ण।"

"पर इनमे क्या वैचित्र्य है, जो इतना मूल्य माँगते हो ?"

"इनका वैचित्र्य देवी जी जान गई हैं और यदि ताम्बूलिन के शब्द दुहरा दूँ तो यह कहूँगा कि यह बात पुरुष नही समझ सकते।"

शशाक ने ताली बजाई तो एक दासी भीतर आ गई। शशाक ने उसको आज्ञा दी, "मगलेश्वर को बुला लाओ।"

दासी गई तो मगलेश्वर भीतर आ गया शशाक ने उस को एक कागजपर आठ सहस्र स्वर्ण मुद्रायें जौहरी को देने की आज्ञा लिख दे दी।

इस पर जौहरी ने कहा, "महाराज ! उस हीरक के विषय में क्या आज्ञा है ?"

"वह तो तुम हमें बिना मूल्य भेट करना चाहते थे न ?"

"हाँ, महाराज ! परन्तु एक शर्त के साथ कि इसका जोड़ आप प्राप्त कर ले।"

"वह हम करेंगे। तुम तीन मे दस मिलाने को कहते हो। साथ ही यह कह रहे हो कि दस के लिए द्वार खटखटाना चाहिए। वह द्वार किस ओर है, यह भी बता दो न।"

"महाराज ! मै बीसियों बार कन्नौज में आ चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि कौन महाराज की अभिलाषा पूरी कर सकता है, परन्तु यह रहस्य यहाँ पर नहीं बताया जा सकता। कारण यह है कि मैं उस व्यक्ति का नाम नही जानता। हाँ, उसका निवास-स्थान जानता हूँ।"

"तो निवास-स्थान बता दो। यह मगलेश्वर इस नगर के मुहल्ले-

मुहल्ले से परिचित है। वास्तव मे इसी कारण तो इसे मैंने अपनी सेवा मे रखा है।"

"तो मंगलेश्वर को आज्ञा दीजिए। मैं साथ ले जाऊँगा और इसे उस व्यक्ति के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर दूँगा।"

मंगलेश्वर और पद्मराज के चले जाने के पश्चात् शशांक भी उठ खड़ा हुआ और पत्रलता से बोला, "पत्रलता! एक बात तो मैं समझ गया हूँ कि पुरुष स्त्री के हाथ से पान खाना क्यो पसन्द करता है और सजधज कर आई स्त्री के हाथ से और भी अधिक। इसी कारण जब तुम यहाँ आती हो तो यह आगार दुगना प्रकाशमान हो जाता है और पान लेने की इच्छा जाग्रत हो जाती है।"

"महाराज! दासी तो सदैव सेवा के लिए उपस्थित है। कहिए तो एक और बढ़िया तीव्र पान लगा कर सेवा मे उपस्थित करूँ।"

"हाँ, आज ऐसी ही इच्छा है।"

पत्रलता वहीं भूमि पर बैठ गई और अपनी डोली खोल बग देश का पान निकाल, उस पर कत्था चूना लगाने लगी। पान लगा कर उसने डोली मे से एक अन्य वस्तु निकालकर उसमे डाल दी। इन्द्रजालिक ने यह देखा तो पूछा, "यह क्या है पत्रलता?"

"यह एक विशेष प्रकार की सुगन्ध है। यह काश्मीर से आती है।"

"तो तुम यह मेरे पान मे नहीं डाला करतीं?"

"यह पुरुषो के लेने की वस्तु है।"

"ओह! क्या होता है पुरुषो को इसको लेने से, जो यह स्त्रियो के लिए उपयुक्त नहीं?"

"यह तो मै नहीं जानती। मेरे गुरु ने ऐसा ही बताया है और ऐसा ही मैं करती हूँ। इतना तो मैं जानती हूँ कि मेरे हाथ का पान, जिसमे यह वस्तु पडी हो, खाने वाले सैकडो कोस का मार्ग तयकर भी मुझसे लेने आते हैं।"

"तो यह वस्तु तुमने कभी जौहरी को खिलाई प्रतीत नहीं होती,

अन्यथा वह तुम्हारे इस गुण का बखान करता ?"

"नहीं महाराज !" इतना कह उसने पान लपेटकर शशाक के हाथ मे दे दिया।

शशाक ने पान मुख मे डालते हुए कहा, "पत्रलता ! तुम तो इस नगर की रहने वाली हो। इस जौहरी के विषय में क्या जानती हो ?"

"मैं तो केवल यह जानती हूँ कि जनता भिक्षुणियो और गृहस्थ स्त्रियों को सैनिको के मनोरंजन के लिए देने से अति क्रुद्ध है। परन्तु इस क्रुद्ध जनता से कुछ हो सकेगा, यह कह नहीं सकती।"

"तो तुम्हारा विचार है कि जौहरी बोलता अधिक है और कुछ अधिक कर नहीं सकेगा ?"

"यह तो मै नही कह सकती। मैं तो यह जानती हूँ कि यदि जनता के मन में यह वात बैठ जाय कि श्रीमान् जनता के हित और मान की रक्षा करेंगे तो जनता, जो कुछ भी हो सका, आपके लिए करेगी।"

"तो जनता को यह कैसे पता चलेगा कि मैं जनता का हितचिंतक हूँ ?"

"कोई जनता के हित की बात कीजिए तो वह स्वय जान जायेगी।"

"मै क्या कर सकता हूँ ?"

"इस समय महारानी राज्यश्री बंदी हैं ? जनता यह जानती है। जनता महारानी को बहुत चाहती है। आप महारानी जी को स्वतन्त्र करा दीजिए। मै समझती हूँ कि इतने मात्र से जनता का ध्यान आप भली-भाँति अपनी ओर आकर्पित कर सकेंगे।"

"तुम्हारा राज्यश्री से क्या सम्बन्ध है ?"

"वे बहुत भली स्त्री हैं। मुझसे पान लिया करती थी। नगर के सहस्रो दीन-दुःखियो की सहायेता किया करती थीं।"

"ओह हो !" शशाक ने कुछ सोच पुनः कहा, "अच्छी बात है। मैं विचार करूँगा।"

जाते-जाते शशाक ने पुनः पत्रलता से कहा, "भोजन के पश्चात्,

पान देने आओगी तो इसका मूल्य उसके साथ ही दे दूँगा।"

"इसका मूल्य मैं दे दूँगी महाराज!" इन्द्रजालिक ने कहा। पश्चात् उसने पत्रलता से पूछा, "इस विशेष पान का क्या लेती हो?"

"चार टका देवीजी!"

"पर जौहरी तो प्रत्येक पान का एक रजत देता था न?" शशांक ने कहा।

"वह मूर्ख है। इन शर्बती आँखों को देख व्यर्थ मे अपना धन व्यय करता है।" इन्द्रजालिक ने कहा।

"नही देवीजी! वह तो मेरे शृंगार को देख एक रजत देता था।"

"तो तुम समझती हो कि तुम्हारे शृंगार का मूल्य एक रजत ही है।"

"इसका दाम मै नहीं लगा सकती। इतना मैं जानती हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति सजधजकर रहना चाहता है और उस सजधज का मूल्य उसे मिलता है, कभी रजत के रूप मे, कभी प्रशसा-भरे शब्दो मे और कभी उच्च पदवी प्राप्त होने से।"

"पत्रलता! तुम पान लेकर आना। हम देखेंगे कि हम क्या दे सकते हैं।"

: १० :

पत्रलता मध्याह्न के समय पान लेकर शशांक की सेवा में उपस्थित हुई तो शशांक ने पूछा, "क्या तुम इन्द्रजालिक से चार टका पान का मूल्य लेकर सन्तुष्ट हो?"

"महाराज! चार टका पान का मूल्य नहीं। यह तो उनके मन की उदारता का प्रमाण है। पान तो एक टका मे पचास मिलते हैं। मसाला भी एक पान में चौथाई टके से अधिक नहीं लगता। ग्राहक पान का दाम नहीं देते। जो-कुछ भी वे देते हैं, वह मन की भावना होती है।"

"तो तुम समझती हो कि इन्द्रजालिक के मन का मूल्य चार टका है।"

"महाराज! जनसाधारण तो पान का मूल्य एक टका ही देता है।"

"तो वह जौहरी तुमको एक रजत क्यो देता है?"

"महारानी राज्यश्री भी जब पान लेती थीं तो एक स्वर्ण देती थीं।"

"क्यो? क्या वे मूर्ख नहीं थीं, जो इतना कुछ एक पान के लिए देती थी?"

"मूर्खता का मापदण्ड मेरे पास नहीं है महाराज! यह तो श्रीमान् उनसे पूछिये कि वे क्यो देते हैं?"

"तो तुम यह तो कह सकती हो कि इन्द्रजालिक जन-साधारण से चार गुना मूर्ख है और जौहरी इन्द्रजालिक से सोलह गुणा और राज्यश्री जौहरी से बीस गुणा अधिक।"

"इससे उलट भी हो सकता है महाराज! अर्थात् महारानी राज्यश्री जौहरी से बीस गुणा अधिक बुद्धिमान हो।"

शशाक हँस पडा। हँसकर बोला, "यहाँ, कन्नौज मे, लोग वाचाल बहुत है।"

"महाराज! इस वाचाल की एक बात सुन लीजिए परन्तु उसको वाचाल की बात मानकर फेक मत दीजिएगा।"

"हाँ, कहो।"

"यह वाचाल किसी प्रकार से जान गई है कि गौडाधिपति को इन्द्रजालिक के शयनागर मे मार डालने का षड्यन्त्र बन चुका है। कदाचित् आज रात ही इस योजना पर कार्य किया जाएगा।"

शशाक आश्चर्यचकित रह गया। उसने पूछा, "कैसे जानती हो तुम?"

"यह न पूछिए महाराज! यदि महाराज की परलोक यात्रा करने की इच्छा न हो तो रात को इन्द्रजालिक के शयनागार मे किसी अन्य युवक को भेजकर परीक्षा कर सकते है।"

"यह कौन करेगा?"

"इसके विषय मे अभी बताना न उचित है और न ही सम्भव।"

"क्या यह इन्द्रजालिक की जानकारी मे हो रहा है?"

"यह मुझको पता नही चला। इस पर भी इस वाचाल की सम्मति है कि आप अपनी योजना मे इन्द्रजालिक को सम्मिलित न करें। प्रातः जो-कुछ जौहरी ने कहा था, वह किसी अन्य स्थान पर विचार का विषय वन गया है। वह सूचना वहाँ कैसे गई, मै नहीं जानती। इस पर भी उसको अपने ज्ञान का भास न होने दें तो ठीक रहेगा। साथ ही अपने जीवन की रक्षा का प्रबन्ध करें।"

पत्रलता पान खिलाकर, पान का मूल्य दो स्वर्ण लेकर विदा हो चली गई। शशाक आश्चर्य मे पडा हुआ उसे जाते देखता रहा।

पत्रलता राज्य-प्रासाद से निकली तो सीधी मंगलेश्वर के घर जा पहुँची। मगलेश्वर अपने घर नही था। उसकी पत्नी ताम्बूलिन से परिचित थी। इस कारण उसने पूछा, "क्या काम है पुजारी जी से तुम्हारा?"

"राज्य-कार्य से आई हूँ।"

"तो तुम भी राजा की सेवा मे चली गई हो? न जाने यहाँ के रहने वालो को क्या हो गया है कि इन दुष्टो की सेवा मे जाने मे लज्जा तक अनुभव नही करते।"

"पण्डितायिन! जब कन्नौज में धनी-मानी लोग रहेगे नही तो हमारा निर्वाह कैसे होगा?"

"तो तुम समझती हो कि पण्डितजी भूखे मरने लगे थे, जो गौड-नरेश की सेवा मे चले गए हैं?"

"उनको धन की आवश्यकता नहीं होगी। कदाचित् वे मान की आशा मे गए हो।"

"एक ब्राह्मण का मान धर्मशास्त्र पढ़ने-पढ़ाने मे है, न कि झूठे और अत्याचारी राजाओ की चाकरी और चाटुकारी करने मे।"

"नहीं पण्डितायिन! तुम समझ नही सकती। अच्छा यदि पण्डित

जी आएँ तो कहना कि शीघ्रातिशीघ्र मुझसे मिले। मैं अपने गृह पर मिलूँगी।"

"और तुम्हारे घर जाने से उनका मान बढ़ेगा क्या?"

"यह तो राज्याज्ञा है।"

इतना कह पत्रलता वहाँ से निकल आई और अपने गृह की ओर चल पड़ी। उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने जौहरी और मंगलेश्वर दोनों को अपने घर मे उसकी प्रतीक्षा करते पाया। उसके मुख से एकाएक निकल पड़ा, "आप? बताइए किस कार्य से पधारे हैं?"

मगलेश्वर हँस पड़ा और कहने लगा, "पत्रलता! प्रातःकाल तो तुम कह रही थी कि नर्तकी इन्द्रजालिक बहुत सुन्दर नही है और तुम उससे अधिक सुन्दर हो। परन्तु उसको देखकर तो तुम्हारे कथन मे सत्यता प्रतीत नही हुई।"

"ओह! तो मंगलेश्वर जी महाराज वहाँ हम दोनो मे तुलना करते रहे थे। मेरा विचार है कि उसको देखकर तो पण्डितजी का मन अपनी पण्डितायिनजी से भी चटक गया होगा।"

"बड़ी दुष्टा हो तुम! उस सती-साध्वी पर कटाक्ष करने लगी हो।"

"मै अभी-अभी उनसे मिलकर आ रही हूँ। वे बेचारी चिन्तित प्रतीत होती थी, विशेष रूप से जब मैने कहा कि आपको मेरे घर भेज दे। वे कहने लगी कि उनकी मान-हानि हो जाएगी। परन्तु श्रीमान् तो पहिले ही पहुँच गए हैं।"

"तो तुम मेरे घर पर गई थीं? क्या काम था?"

"पहिले यह बताइये कि इन जौहरी महाशय ने आपको जनता का द्वार किधर बताया है?"

"इन्होने बता दिया है। मै वही से आया हूँ। वहाँ के ज[illegible]अपना कुछ शर्तें हैं। गौडाधिपति क्या वे शर्तें मानेंगे अथवा न[illegible] सैनिक कठिन है।"

"क्या मै उन शर्तों को जान सकती हूँ?" तो उन्होने शशाक अपने वास्तविक रूप

उतना कठिन नहीं होगा। इस अर्थ एक योजना बना ली गई। योजना का एक अंग था, शशांक को मालव-नरेश के विरुद्ध भड़काना। इसने पत्रलता और कुछ अन्य कर्मचारी लगे हुए थे। पत्रलता महाराज देवगुप्त, मालव-नरेश को गौड़ाधिपति के विरुद्ध भड़काने में सहायक हो रही थी। षड्यन्त्र का दूसरा अंग था, जनता को तैयार करना, जिससे वे सैनिकों के अत्याचार का विरोध कर सकें और फिर दोनों पक्षों में से एक को, जिसको नेता लोग कहें, अवसर आने पर सहायता दे सकें।

जब विष्णुकान्त ने जौहरी के रूप में पद्मराज को पहिचाना तो वह और उसके साथी अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस समय विष्णुकान्त ने बताया कि पत्रलता की यह सूचना है कि मालव-सैनिक बलपूर्वक इन्द्रजालिक के शयनागार में प्रवेश कर शशांक की हत्या कर देंगे। इन्द्रजालिक इस षड्यन्त्र के विषय में जानती है। उसे बहुत-सा धन देने का लोभ देकर चुप रखा गया है। वह चुप रहेगी। वास्तव में इन्द्रजालिक को गुप्त रूप से देवगुप्त के गुप्तचर-विभाग ने शशांक के पास भेजा हुआ है।

पद्मराज ने स्थिति को समझकर कहा, "तो आज ही विप्लव क्यों न कर दिया जाय! कितने नागरिक होंगे, जो शस्त्रधारी हैं और इस जीवन-मरण के कार्य को करने के लिए तैयार हैं?"

"तीन सहस्र के लगभग एकत्रित किए जा सकते हैं।"

"तो ठीक है। अभी एक घड़ी में मैं अपनी वास्तविक वेश-भूषा में शशांक से मिलने जाने वाला हूँ। नगर के छः द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर पाँच-पाँच सौ नागरिक अपने-अपने शस्त्रों को लेकर एकत्रित हो जाएँ मध्य-रात्रि के कुछ पश्चात् राज्य-प्रासाद की छत पर से अग्नि का एक वायु-[illegible]ला उड़ाया जायगा। उसको देखते ही द्वारों पर नियुक्त मालव-सैनिकों [illegible]आक्रमण कर दिया जाय। उन पर अधिकार कर द्वार पर अधिकार आशा [illegible] जाय। उस समय तक हम राज्य-प्रासाद पर अधिकार कर लेंगे "एक [illegible] को समाप्त कर चुके होंगे। पश्चात् शशांक को कन्नौज की और अत्याच[illegible]।"

"नहीं पर[illegible]

"यह तब तक चलेगा, जबतक स्थानेश्वर की सेना, जो सिन्धु नदी के तट पर से चल पडी है, यहाँ नहीं पहुँचती। तब कुमार राज्यवर्धन यहाँ के राजा होंगे। यदि महारानी राज्यश्री तब तक जीवित रही, तो उनको यहाँ की महारानी बना दिया जायगा।"

विष्णुकान्त ने इस योजना मे एक छिद्र की ओर संकेत किया, "नगर के बाहर चालीस सहस्र से ऊपर मालव-सेना पड़ी है। वह नगर को घेर लेगी और नागरिको को भूखा मार डालेगी।"

"उसका प्रबन्ध कर दिया जायगा। शशाक की सेना भी नगर के बाहर खडी है। यद्यपि उसकी संख्या मालव-सेना की तुलना मे कम है, इस पर भी उसको आदेश होगा कि एकाएक अँधेरी रात मे मालव-सेना पर आक्रमण कर दे। निस्सन्देह वे चालीस सहस्र मालव-सैनिक भाग खडे होगे। एक बार सेना भागी तो उसको देश के बाहर कर देना सुगम रहेगा। विशेष रूप मे तब, जब महाराज देवगुप्त मारे जा चुके होगे।"

योजना स्वीकार कर ली गई और विष्णुकान्त अपने भाग को कार्य करने के लिए चल पडा। मगलेश्वर और पद्मराज अपने वास्तविक वेश मे राज्य-प्रासाद की ओर चल दिए।

शशाक पत्रलता की चेतावनी सुन बहुत ही चिन्तित था। उसकी योजना यह थी कि ठीक मध्यरात्रि के समय अर्थात् आयोजित हत्या के समय के कुछ ही पूर्व, वह इन्द्रजालिक को लेकर अपने आगार मे आ जायगा। इन्द्रजालिक की शय्या पर एक सेवक को सुला दिया जायगा। प्रातःकाल यदि उसकी हत्या हुई मिली तो पत्रलता के कथन की परीक्षा हो जायगी। साथ ही वह प्रातःकाल देवगुप्त से झगडकर कन्नौज का आधा राज्य अपने अधीन करने को विवश कर सकेगा। रात को अपना शयनागार सुरक्षित करने के लिए उसने अपने पचास अतिरिक्त सैनिक अपने कक्ष मे बुला लिए।

सायकाल जब पद्मराज और मगलेश्वर वहाँ पहुँचे तो उन्होने शशाक की योजना को अव्यवहार्य बताया। यदि पद्मराज अपने वास्तविक रूप

मे वहाँ न होता तो शशाक अपनी योजना के छिद्रों पर विश्वास करना तो दूर, विचार भी न करता। परन्तु जब मगलेश्वर ने पद्मराज का, कन्नौज के भूतपर्व महामात्य के रूप मे परिचय कराया तो शशाक उसे अपनी सहायता के लिए तत्पर देख अति प्रसन्न हुआ।

पद्मराज ने कहा, "हम यहाँ पर बौद्ध-राज्य नहीं चाहते। सामाजिक स्तर पर बौद्ध मीमासा का प्रयोग हानिकारक सिद्ध हो चुका है। अतएव हम आपको कन्नौज की बागडोर सम्हालने का निमन्त्रण देते हैं।"

इसके पश्चात् पद्मराज ने अपनी योजना उसके सम्मुख रख दी। योजना शशाक ने स्वीकार करली। पद्मराज ने कहा कि गौड-नरेश के जो अतिरिक्त सैनिक राज्य-प्रासाद के भीतर हैं, उनको साधारण नागरिकों के वेप मे ही रखा जाए, जिससे देवगुप्त को किसी प्रकार का संदेह न हो। योजना का एक अंग यह भी था कि ज्यूँ ही शशाक के सेवक की इन्द्रजालिक के शयनागर मे हत्या हो, दो सौ नागरिक, जो तब तक राज्यप्रासाद मे प्रवेश कर चुके होगे, देवगुप्त के शयनागार को घेरकर उस पर आक्रमण करदे और उसे समाप्त करदे। उसके पश्चात् ऊपर भवन से एक अग्नि का वायुगोला उडा दिया जाए जिससे राज्य-प्रासाद के बाहर सशस्त्र नागरिक अपनी शेप कार्यवाही पूरी कर दे। शशाक ने अपने सेनानायक को बुलाकर उसे मालव-सेना पर उचित समय आक्रमण करने के लिए आज्ञा दे दी।

मध्य-रात्रि से पूर्व इन्द्रजालिक अपने शयनागर में बैठी थी, जब शशाक वहाँ आ उपस्थित हुआ। उसने कहा, "देवी! आज एक अन्य नर्तकी हमारे आगार मे अपना नृत्य दिखा रही है। हमने उसे चुनौती दी है और दस सहस्त्र स्वर्ण का पुरस्कार घोपित कर दिया है।"

"परन्तु महाराज! मैं तो आपकी संगति की इच्छुक हूँ।"

"वह भी होगा, परन्तु नृत्य के पश्चात्। इन्द्र! चलो। नहीं तो मेरा भारी अपमान हो जायेगा।"

इन्द्रजालिक विवश हो गई। वह देख रही थी कि देवगुप्त की सारी

योजना विफल होने जा रही है। इस पर भी उसने अन्तिम प्रयत्न किया, "महाराज! आधी रात तो निकल चुकी है। नृत्य कल हो जायगा। अब अधिक वियोग सहन नहीं हो सकता।"

"देर नहीं लगेगी इन्द्र! अभी तो मध्यरात्रि मे एक घडी शेष है। चलो, आओ!" इतना कह शशाक ने लालसा भरी दृष्टि से इन्द्रजालिक की ओर देखा।

विवश इन्द्रजालिक उठकर साथ चल दी। एक वार तो शशाक को ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं पत्रलता की सूचना मिथ्या न हो, परन्तु अब बात सीमा से दूर निकल गई थी। साथ ही वह प्रातः ही कन्नौज का अधिपति बनने का स्वप्न ले चुका था।

शशाक के शयनागार मे दोनो पहुँचे। शशाक ने कहा, "इन्द्र! नृत्य साथ के आगार मे होगा। वहाँ दूसरी नर्तकी बैठी है। लो तुम भी तैयार हो जाओ। मै अभी प्रतिहार को तुम्हे लिवाने के लिए भेजूँगा।"

इतना कह शशाक आगार से बाहर निकल गया। उसके बाहर निकलते ही द्वार खट से बद हो गया और बाहर से ताला लगने का शब्द हुआ। इन्द्रजालिक समझ गई कि वह बंदी बना ली गई है। वह भागकर द्वार की ओर लपकी, परन्तु पर्दे के पीछे से एक सैनिक नग्न खड्ग लिये हुए निकल आया। उसने केवल यह कहा, "देवी! मुझे यह आज्ञा है कि यदि आप किंचित्मात्र भी हल्ला करे तो आपका सिर धड से पृथक् कर दिया जाए। मेरा आग्रह है कि एक नारी की हत्या का पाप मुझ पर न लगने दीजिए।"

इन्द्रजालिक समझ गई कि सब योजना विफल हो गई है और अब हल्ला करने पर शायद वह भी इस षड्यन्त्र मे सम्मिलित मान ली जाए। इस कारण अपनी रक्षा करने की वह योजना बनाने लगी। उसने सैनिक से कहा, "वीर पुरुष! महाराज ने मुझे नृत्य के लिए आज्ञा दी है।"

"मैं जानता हूँ देवी! कुछ ही काल मे महाराज आयेंगे और आपको अपने साथ ले जायेंगे आपको बदी करने की आज्ञा इसीलिये है कि

कहीं आप भाग न जाएँ। दूसरी नर्तकी उस अवस्था मे, विजित घोषित हो जाएगी और महाराज दस सहस्र स्वर्ण हार जावेगे।''

महाराज शशाक इन्द्रजालिक को छोड बाहर आया तो पद्मराज ने पहली कडी की सफलता पर प्रसन्नता प्रकट की। पश्चात् दस सैनिको को प्रतिहारो के रूप में इन्द्रजालिक के शयनागार के पास ही, उसकी देख-भाल करने के लिए भेज दिया गया। उन्हे समझा दिया गया कि यदि मालव-सैनिक उस आगार मे जाना चाहे तो उन्हे जाने दिया जाये और कुछ क्षण पश्चात् यदि वे चुपचाप वहाँ से निकल भागे तो उन्हे रोका न जाए। यदि बाहर निकल कर वे सेविकाओ से कुछ पूछगीछ करना चाहे तो उन पर आक्रमण कर, उन सबको वही समाप्त कर दिया जाए। ऐसी अवस्था मे सकेत पाते ही और भी सैनिक वहाँ भेज दिए जाएँगे।

मध्यरात्रि का घंटा बजा और उसके कुछ ही काल पश्चात् एक सैनिक शशाक के पास, उसके आगार मे आया और कहने लगा, ''मध्य-रात्रि का घंटा बजते ही चार सैनिक इन्द्रजालिक के आगार मे प्रवेश कर गए। कुछ ही क्षणो मे वे वापिस बाहर निकल कर, देवगुप्त के आगार की ओर चले गए हैं। उनमे से एक का खड्ग नग्न और रक्तरंजित था। दासियाँ भयभीत होकर इधर आ रही थी। उन्होने कहा कि गौडाधिपति की हत्या करदी गई है। उनको चुप रहने का आदेश दे दिया गया है।''

पद्मराज ने समस्त सैनिको को, जो राज्य-प्रासाद में छुपे हुए थे, आज्ञा भेज दी कि देवगुप्त का कक्ष घेर ले।

: १२ :

नाभर की हत्या वाली रात्रि को नीलाग और जम्बुक, दोनों राज्य-प्रासाद से निकल कर नगर के ही एक अन्य घने भाग मे जा पहुँचे। वहाँ एक वीथिका के अन्दर उन्होने प्रवेश किया। वीथिका में एक अत्यन्त ही विशाल गृह था। उस गृह के द्वार पर पहुँच नीलाग ने द्वार को धीरे से धकेला। द्वार खुल गया, परन्तु भीतर अँधेरे मे से एक व्यक्ति ने

तीव्र स्वर मे पूछा, "संकेत।"

"चन्द्र।" जम्बुक ने उत्तर दिया।

दोनो को भीतर जाने दिया गया। उस गृह के भीतर एक विशाल प्रागण मे चालीस-पचास व्यक्ति बैठे थे। नीलाग और जम्बुक भी उनमे जा बैठे। अभी अन्य लोग आ रहे थे।

ठीक मध्यरात्रि के समय द्वार पर खडे व्यक्ति ने द्वार वंद कर, भीतर आकर उस प्रागण मे एक ओर वैठे व्यक्ति से कहा, "महाराज! सब आ गए हैं।"

वह व्यक्ति, जिसको महाराज कहकर सबोधन किया गया था, यह सुन खडा हो गया। यह व्यक्ति राज्यवर्धन था। उसने उपस्थित लोगो को कहना आरम्भ किया, "वीरो! अव वह समय आ गया है, जिसकी हमे प्रतीक्षा थी। हमारी तैयारी पूर्ण हो चुकी है।

"हम संख्या मे केवल पॉच सौ है, परन्तु अपने कार्य के लिए हम पर्याप्त है। हमारे पास राज्य-प्रासाद मे प्रवेश करने के पचास संकेत एकत्रित है। इनके द्वारा हम एक सौ सैनिक राज्य-प्रासाद मे प्रवेश कर सकेंगे।

"परसो मध्यरात्रि से पूर्व, हममे से एक सौ सैनिक प्रासाद मे प्रवेश कर जायेंगे ये लोग मध्यरात्रि का घंटा बजते ही भीतर से प्रासाद के द्वार पर आक्रमण वोल देंगे। द्वार पर लगभग तीस-पैंतीस सैनिक रहते है। उनको समाप्त कर प्रासाद का द्वार खोल दिया जाएगा। हममे से शेप चार सौ, जो इस समय प्रासाद के द्वार के बाहर एकत्रित हो जाएँगे, अन्दर प्रवेश कर लेंगे और पश्चात् देवगुप्त के कक्ष को जाकर घेर लेंगे। वहाँ पहुँच देवगुप्त को समाप्त करने मे हमे कोई कठिनाई नही होगी।

"हमे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि उसी दिन मध्य-रात्रि केसमय विश्वस्त देवगुप्त ने शशाक की हत्या करने का आयोजन किया है। हम आशा करते हैं कि शशाक की हत्या उस समय तक हो चुकी होगी। देवगुप्त को हम समाप्त करेंगे। दोनो काटो को निकालकर हमारा कार्य

नगर के छः द्वारों पर अधिकार करने का होगा। द्वारों को बंद कर हम नागरिकों की सेना तैयार करने का यत्न करेंगे।

"यह है मारी योजना है। अब आप लोग सेनाध्यक्ष बजरंग से अपना-अपना कार्य समझ लें।"

साधु राज्य-प्रसाद में सफाई इत्यादि का कार्य करता था। उसको, सेवा-कार्य में होने से राज्य-प्रसाद के भीतर ही एक, दो आगारों वाला गृह मिला हुआ था। सेवकों के लिए निवास-गृह प्रासाद की प्राचीर के साथ बने थे। इन गृहों में जाने के लिए मार्ग तो प्रासाद के मुख्य द्वार से ही था परन्तु खुली हवा के आने के लिए प्रत्येक गृह में एक खिड़की 'प्राचीर के बाहर की ओर खुलती थी। यह खिड़की भूमि से कुछ ऊँचाई पर थी और इन खिड़कियों में लोहे की छड़ें लगी हुई थीं।

जब देवगुप्त ने राज्य-प्रासाद पर अधिकार किया था, तो प्रसाद के अधिकतर सेवक भाग गए थे। इस कारण सेवा कार्य अथवा सफाई इत्यादि के लिए नये सेवक नियुक्त किए गए थे। इन नये सेवकों में नीलाग, जम्बुक तथा उनके कुछ और साथी भी थे, जो साधु के प्रयत्न से कार्य पा सके थे। नीलाग, जम्बुक इत्यादि को भी रहने के लिए सेवक-गृह मिले हुए थे।

निश्चित् दिन प्रातःकाल से ही एक-एक दो-दो कर स्थानेश्वर के सैनिक साधारण वेशभूषा में, परन्तु अपने-अपने वस्त्रों के भीतर अस्त्र-शस्त्र छुपाए हुए, प्रासाद में प्रवेश कर रहे थे। ये सेवकों के गृहों में जा जाकर छुप रहे थे। रात्रि तक लगभग एक सौ सैनिक भीतर प्रवेश पा चुके थे।

मध्यरात्रि का घंटा बजा और ये सब अपने-अपने छुपे स्थानों से निकल कर, एकत्रित होकर प्रासाद के द्वार पर लपके। इन्होंने खड्ग नग्न किये हुए थे और द्वार पर आक्रमण कर चालीस पहरेदारों को समाप्त करने में इनको अधिक समय नहीं लगा। पश्चात् मुख्य द्वार खोल दिया गया। द्वार के बाहर राज्यवर्धन अपने चार सौ साथियों के साथ तैयार खड़ा था। सबने भीतर प्रवेश किया और प्रासाद का द्वार भीतर से बन्द कर

लिया। पश्चात् राज्यवर्धन और उसके सैनिको ने देवगुप्त के आगारो को घेर लिया। मार्ग मे जो कोई भी आया, उसे समाप्त करने मे इन्हे कोई कठिनाई नहीं हुई।

देवगुप्त अपने आगार में बैठा शशाक की हत्या का समाचार सुन रहा था। वे चार सैनिक, जो इन्द्रजालिक के आगार मे देवगुप्त की हत्या करने गए थे, उसे समाचार दे रहे थे। जिसने हत्या की थी, उसने बताया, "महाराज! हमारे नग्न खड्गो को देख दासियाँ भयभीत हो दीवारों के साथ चिपक गई। मैने एक ही वार से शशाक का सिर धड़ से पृथक् कर दिया। वह इन्द्रजालिक की शैय्या पर लेटा हुआ था।"

"और इन्द्रजालिक?" देवगुप्त ने पूछा।

"महारारज! वह वहाँ नहीं थी।"

"शशाक का सिर लाए हो?"

"नहीं महाराज! इसकी आज्ञा नहीं थी।"

"तुम मूर्ख हो। क्या प्रमाण है कि तुमने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है?"

"महाराज की आज्ञा हो तो उसका सिर अभी प्रस्तुत किया जा सकता है।"

"हाँ! जाओ और लेकर आओ।"

सैनिक शशाक का सिर लाने के लिए वापिस जाने को घूमे ही थे कि राज्यवर्धन अपने कुछ सैनिकों के साथ उस आगार मे घुस आया। देवगुप्त इस प्रकार कुछ व्यक्तियों को नग्न खड्ग लिये अन्दर प्रवेश करते देख, एक क्षण तो आश्चर्य-चकित रह गया। पश्चात् परिस्थिति की विकटता को देख एकदम खडा हो गया। साथ की दीवार पर लटक रहे अपने खड्ग को निकाल कर उसने पूछा, "कौन हो तुम?"

"मै राज्यवर्धन हूँ; महारानी राज्यश्री का भाई। उसके साथ दुर्व्यवहार का प्रतिकार लेने आया हूँ।"

"तुम वीर मालूम होते हो। वीरो की प्रथा रखने के लिए एक के

साथ एक का युद्ध हो जाए।"

राज्यवर्धन के हाथ में खड्ग था ही। उसने अपने साथियों से कहा, "एक ओर हट जाओ।"

राज्यवर्धन आगे निकल आया। देवगुप्त भी आगे आ, पैंतरा बाँध खड़ा हो गया। खटाखट दोनों के खड्ग भिड़ने लगे।

इसी समय शशांक, पद्मराज और कुछ अन्य सशस्त्र नागरिक वहाँ आ पहुँचे। देवगुप्त ने शशांक को देखा और समझ गया कि वह जीवित बच गया है। परन्तु यह सोच कि उससे बाद में निपटा जायगा, उसने अपना ध्यान राज्यवर्धन के वारों की ओर ही रखा। शशांक देवगुप्त को एक भव्य स्वरूप वाले योद्धा से युद्ध करते देख आश्चर्यवत् खड़ा रहा। वह समझ नहीं सका था कि यह कौन हो सकता है। पद्मराज तो राज्य-वर्धन को पहिचान गया। उसने परिस्थिति का अध्ययन कर कुछ ही क्षणों में अपने कार्य का निश्चय कर लिया। वह नहीं चाहता था कि देवगुप्त और राज्यवर्धन के बीच, जबकि दोनों में हार-जीत के लिए युद्ध चल रहा है, शशांक कूद पड़े और देवगुप्त का साथ देने लगे। उसने इस कारण शशांक से कह दिया, "महाराज! ये भी हमारे पक्ष के लोग हैं। आप निश्चिन्त हो युद्ध देखिए। विश्वास कीजिए कि देवगुप्त मारा जायगा। आप इस हत्या के पाप से मुक्त रहेंगे।"

युद्ध करते-करते एक समय देवगुप्त के हाथ से खड्ग गिर पड़ा। देवगुप्त चुपचाप खड़ा हो गया। परन्तु राज्यवर्धन ने कहा, "ऐसे नहीं। हम निश्शस्त्र व्यक्ति की हत्या नहीं कर सकते। जाओ, अपना खड्ग उठा लो।"

इस शौर्यता तथा न्यायप्रियता को देख शशांक ने कहा, "धन्य हो योद्धा! हम बहुत प्रसन्न हैं।"

देवगुप्त ने खड्ग उठा लिया और पुनः दोनों योद्धाओं में युद्ध चालू हो गया। परन्तु देवगुप्त अधिक देर तक ठहर नहीं सका। वास्तव में वह शशांक को राज्यवर्धन का पक्ष लेते देख घबरा गया था। एक-दो

पैंतरे बदलने पर उसका हाथ छिटक गया और राज्यवर्धन का खड्ग उसके पेट मे घुस गया।

देवगुप्त के मारे जाने पर स्थानेश्वर के सैनिको ने जयघोष कर दिया, "महाराज राज्यवर्धन की जय हो!"

इस जयघोष को सुन शशाक को समझ आया कि वह तो एक जाल मे फॅस गया है। एक बात उसको समझ नही आई कि यदि पद्मराज उसका विरोधी था और राज्यवर्धन के वहाँ होने की सूचना रखता था, तो उसने उसे इन्द्रजालिक के शयनागार मे जाने क्यो नही दिया और इस प्रकार उसके जीवन की रक्षा क्यो की।

जब तक जयघोषो से महाराज राज्यवर्धन को बधाई दी जाती रही, शशाक अपने बचाव के उपायो पर विचार करता रहा। जब राज्यवर्धन अपने नागरिको को नगर-द्वारो की ओर जाने की आज्ञा देने लगा तो पद्मराज ने आगे बढ़कर कहा, "महाराज राज्यवर्धन की जय हो।"

"ओह!" राज्यवर्धन ने पद्मराज को पहिचानकर कहा, "आप यहाँ कैसे?"

"महाराज! यह पीछे बताऊँगा। पहिले इनसे भेट कीजिए। ये गौडाधिपति महाराज शशाक हैं।"

"मैं पहले नगर-द्वारो पर अधिकार करने के लिए सैनिक भेजना चाहता हूँ।"

"यह कार्य हो गया है महाराज! इस समय नगर-भर में कन्नौज के नागरिको का अधिकार हो चुका होगा। केवल यही नही, प्रत्युत् नगर के बाहर भी युद्ध छिड़ चुका है और हमे आशा करनी चाहिए कि कुछ ही देर मे मालव-सेना भागना आरम्भ कर देगी। इस विषय में आप निश्चिन्त रहे। इस समय यह आवश्यक है कि महाराज शशाक से परस्पर सन्धि हो जाय।"

"ठीक है, हमें पद्मराज जी की चतुराई का प्रमाण मिल गया है, अर्थात् महामात्य ने कन्नौज-विजय हमारी सहायता के बिना सम्पन्न कर

दी है।"

"महाराज! यह सब-कुछ आपके ही प्रताप से हुआ है। मेरा विचार है कि यदि महाराज पसन्द करें तो पृथक् आगार मे बैठकर सन्धि और उसकी शर्तें तय कर ली जाएँ।"

राज्यवर्धन ने कहा, "मैं नहीं जानता कि कहाँ बैठना चाहिए। महामात्य इसका प्रबन्ध करें।"

अतएव महाराज शशाक, राज्यवर्धन और पद्मराज, तीनो एक आगार मे पहुँच गए। राज्यवर्धन के साथ सेनापति बजरग नग्न खड्ग लिए उनकी रक्षार्थ खड़ा था।

: १३ :

परस्पर सन्धि के अनुसार कन्नौज मे यह घोषणा कर दी गई कि दो दिन के भीतर जो मालव-सैनिक कन्नौज की सीमा के भीतर पाए जायँगे, उनको प्राण-दण्ड दिया जायगा; महारानी राज्यश्री, जो देवगुप्त द्वारा बन्दी बनाकर कहीं छुपाकर रख दी गई हैं, उसका पता बताने वाले को दस सहस्र स्वर्ण का पुरस्कार दिया जायगा, जब तक महारानी राज्यश्री, जो वास्तविक कन्नौज की अधिकारिणी हैं, नही मिल जातीं, तब तक राज्य का प्रबन्ध स्थानेश्वर के महाराज कुमार राज्यवर्धन करेंगे। गौड़ाधिपति कन्नौज के अतिथि हैं। उनकी और उनके साथ आए उनके सैनिकों की रक्षा और सम्मान का उत्तरदायित्व कन्नौज-राज्य पर है।"

जैसे-जैसे कन्नौज की जनता को यह विदित होता गया कि कन्नौज को स्वतन्त्र कराने मे किस-किस का हाथ है, उनका मान राज्य-भर मे बढता गया। पत्रलता के कार्य की भूरि-भूरि प्रसशा होने लगी। इस पर भी पत्रलता नगर के चौक में पान की दुकान करती थी। अब तो बिना माँग किए उसके यहाँ पान का मूल्य चार टका हो गया था। लोग प्रसन्नता-पूर्वक उसे अधिक मूल्य देते थे।

जनता में यह भी विख्यात होने लगा था कि पत्रलता दिवगत-

महाराज देवगुप्त की प्रेमिका बनी थी और इस कारण उसने मालव-नरेश के चारो ओर ऐसा षड्यन्त्र रचा कि उसकी मृत्यु सम्भव हुई और मालव-सेना को भागना पड़ा। घर-घर और गली-गली मे ऐसी जन-श्रुतियाँ बाल-वृद्ध के मुख पर थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी दुकान पर मध्याह्न-पूर्व से मध्य-रात्रि तक पान खाने वालों की भीड़ लगी रहती थी।

इन सब बातो का ज्ञान पद्मराज को भी हो रहा था। यद्यपि वह जानता था कि इसमे बहुत-कुछ अतिशयोक्ति है, इस पर भी उसने पत्रलता की महिमा कम करने में कोई प्रयोजन नहीं समझा।

एक दिन राज्यवर्धन ने पद्मराज से पूछा भी, "यह पत्रलता के विषय मे जो जन-श्रुति है, उसमे कितना तथ्य है?"

"महाराज! जन-श्रुति तो पूर्णतया कभी सत्य नहीं होती। परों की डारें तो बना ही करती हैं। इस पर भी इस लड़की ने जिस साहस और बुद्धिमत्ता से विष्णुकान्त जी के कार्य का एक सूत्र देवगुप्त और दूसरा सूत्र शशाक के कक्ष में पहुँचाया, वह सराहनीय है ही।

"जब विष्णुकान्त अपने और मेरे परिवार को हरिद्वार छोड़कर कन्नौज लौटे तो उन्हे कोई ऐसा व्यक्ति नही मिला था, जो पचास सहस्र सैनिको से घिरे देवगुप्त के विरोध मे खड़ा हो सके। एक दिन विष्णुकान्त निराश और उदास चौक मे खड़े थे कि पत्रलता अपनी दुकान से उठ, पुजारी जी के पास आकर कहने लगी, 'भगवन्! पान नहीं खाइयेगा?'

'क्या होगा पान खाने से?' पुजारी जी ने कहा।

'मस्तिष्क को स्फूर्ति मिलेगी और जटिल-से-जटिल समस्या का सुझाव सूझ पड़ेगा।'

'बहुत पान खाये हैं लड़की! कन्नौज का सत्यानाश ही पान खाने वालों ने किया है। सब मार्ग थूक-थूक कर लाल कर दिये है।'

'भगवन्! एक दिन इस तुच्छ लड़की के हाथ का बना पान खाइए और फिर बताइयेगा कि घाटे मे रहे है अथवा लाभ मे?'

"इस समय विष्णुकान्त पत्रलता से बातें करते-करते, उसकी दुकान

पर पहुँच गए थे। पत्रलता दुकान पर बैठ पान बनाते हुए बोली, 'जो इस पान को खाएगा, वह कन्नौज का उद्धार कर पाएगा।'

'तेरे पान में कन्नौज का उद्धार रखा है?'

'हाँ, पण्डित जी! तनिक धीरे-धीरे बोलिए। सड़कों के कंकर भी यहाँ गुप्तचर का कार्य करते हैं।'

''विष्णुकान्त को पत्रलता की बातों में कुछ रहस्य प्रतीत हुआ। इस पर उन्होंने कहा, 'घरों में भी पान देने जाती हो, ताम्बूलिन?'

'हाँ, परन्तु उनके घरों में, जिनकी धर्मपत्नियाँ मुझसे अधिक सुन्दर हैं।'

'क्यों?'

'तब वे मेरे ऊपर कुदृष्टि नहीं करते।'

'अच्छा, सेठ प्रफुल्ल जी की पत्नी तुमसे तो सुन्दर है ही। उनके घर दो बीड़ा पान मध्याह्न के समय पहुँचा दिया करो।'

''इस पर पत्रलता ने हँसकर पूछा, 'वह भैंस सुन्दर है क्या?'

'मेरी दृष्टि में वह मेनका से कम नहीं।'

'और आपकी दृष्टि में मैं कैसी जँची हूँ।'

'तुम? अच्छी हो, पर प्रफुल्ल जी की श्रीमती के समान नहीं।'

'तब तो ठीक है। मैं पान लेकर आऊँगी। साथ ही आशा करती हूँ कि आप अपनी दृष्टि, परम सुन्दरी, प्रफुल्ल जी की पत्नी की ओर ही रखेंगे।'

''इस प्रकार दोनों में सम्पर्क उत्पन्न हुआ और जब विष्णुकान्त जी ने कहा कि उनको ऐसा व्यक्ति चाहिए, जो राज्य-प्रासाद में पहुँच वहाँ की सूचना लाया करे तो पत्रलता तैयार हो गई। उसने न केवल देवगुप्त के अन्तःपुर तक जाने का प्रयत्न किया, प्रत्युत शशांक के रहस्यों को भी जानने लगी। पश्चात् उसने देवगुप्त के मन में शशांक के लिए द्वेष उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। पत्रलता उस सब षड्यन्त्र की, जिससे ये दोनों नरेश एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो गए थे, धुरि बन गई।

पश्चात् इन दोनो का पतन तो सबको विदित ही है।"

"ऐसी चतुर लड़की के लिए चौक में पनवाड़ी की दुकान शोभा नहीं देती। उसको तो किसी धनी-मानी के गृह की शोभा बनना चाहिए।"

"मैं उससे कई वार यह प्रस्ताव कर चुका हूँ; परन्तु वह मानी नही।"

"क्यो?"

"इसमे उसका एक रहस्य है। उसका एक कवि युवक से प्रेम हो गया है। किसी साधारण-सी बात पर वह इससे रूठकर कहीं चला गया है और यह कहती है कि जीवन-भर उसकी प्रतीक्षा करेगी। वह कवि उसको इसी दुकान पर मिला था। वह आशा करती है कि वह पुनः उसको ढूँढता हुआ इसी दुकान पर आएगा।"

"हमारी इच्छा है कि उसको राज्य-प्रासाद मे पान दे जाने के लिए एक स्वर्ण नित्य दिया जाए।"

"वह स्वर्ण की भूखी नहीं है महाराज! वह कन्नौज की नागरिक है और उसके हृदय मे कन्नौज की स्वतन्त्रता तथा मान-प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। इसी भावना से उसने अपने जीवन को भय मे डाला था।"

"हम उससे कन्नौज की मान-प्रतिष्ठा का कार्य ही लेना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि वह राज्यश्री को ढूँढने मे वह हमारी सहायता करे।"

"मुझको सन्देह हो रहा है कि वे मार डाली गई हैं।"

"मुझको इसके विपरीत यह विश्वास है कि वह अवश्य जीवित है। देखो मैंने राज्य-प्रासाद की दासियों से यहाँ तक पता किया है एक दिन शशाक के पास एक जौहरी आया और कहने लगा कि उसने एक हीरक महाराज ग्रहवर्मन् को बेचा था; महारानी राज्यश्री ने उस हीरे को, इस शर्त पर अपने पास रख लिया था कि उसका एक जोड़ीदार हीरक और मिल जाए तो वह उन्हे अपने कर्णफूल मे लगवाएगी। वह जौहरी वैसा ही एक हीरक सिंहल द्वीप से ढूँढकर लाया था। वह शशाक को वह हीरा

विना मूल्य देने के लिए कहता था, यदि महाराज शशाक उसके साथ का जोड़ीदार हीरक, जो राज्यश्री ने अपने पास रख लिया था, ढूँढ सके। शशाक ने उस हीरक के विषय में छान-बीन की और राज्यश्री से बन्दीगृह में भी मिला। इसके पश्चात् एक रात राज्यश्री को कोई बन्दी-गृह से निकाल कर ले गया। कोई दासी यह भी कहती है कि राज्यश्री स्वयं षड्यन्त्र कर भाग गई थी। मुझे पहिली वात कि उसके भागने मे शशाक का हाथ है, अधिक सम्भव प्रतीत होती है। यदि मेरा अनुमान ठीक है तो निस्सन्देह राज्यश्री शशाक के पास बन्दी है। परन्तु शशाक इस बात को नहीं मानता।"

इस पर पद्मराज ने मुस्कराते हुए कहा, "महाराज! मुझको यह सब विदित है। आपके अनुमान की परीक्षा करनी ही चाहिए, परन्तु पत्रलता इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं। कारण शशाक उसे भली भाँति जानता है। अब वह उसका विश्वास नहीं करेगा।"

"परन्तु यह ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। मै यहाँ राज्यश्री के लिए ही ठहरा हूँ। मुझको भारत-खण्ड की सीमा पर जाना है और हूणों को, जो अब पुनः प्रवल होने लगे हैं, दवाना है। इस विपत्ति को अन्य कोई टाल नही सकता। मै उनकी दुर्वलता और सवलता को भली भाँति जानता हूँ।"

"तब तो महाराज! महारानी राज्यश्री की खोज और भी सुदृढ़ कर देनी चाहिए। मैं अपने गुप्तचर विभाग को शशाक के आगे-पीछे लगा दूँगा।"

"हाँ महामात्य! राज्यश्री के आने पर यह राज्य उसे सौंपकर मैं लौट जाना चाहता हूँ।"

उसी दिन पद्मराज ने शशाक के चारो ओर गुप्तचरो का जाल बिछा दिया। प्रतिदिन वहाँ से उसके पास समाचार आने लगे। उसको इस खोज के तीन विन्दु दिखाई दिए। एक शशांक, दूसरा इन्द्रजालिक और तीसरा वौद्ध महाप्रभु वोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर।

जब से बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर उज्जयिनी पहुँचे थे, वे अपने चैत्य मे छुपकर बैठे हुए थे। उनको यह जानकर कि सहस्रों भिक्षुणियो के साथ मालव-सैनिको ने दुराचार किया है और उनसे ऊबकर उनकी हत्या कर डाली है, वे प्रायश्चित् के रूप मे भगवान् तथागत के चिन्तन मे लीन रहते थे। समाचारो से यह विदित हुआ था कि ये लोग, कम-से-कम, राज्यश्री के विषय मे जानते अवश्य है कि वह कहाँ है।

: १४ :

राज्यश्री की खोज अभी चल रही थी कि शशाक की ओर से राज्यवर्धन् को एक लिखित सन्देश मिला। उस संन्देश को पढ़कर-राज्यवर्धन चकित रह गया। सन्देश के साथ शशाक की भगिनी का चित्र भी था। शशाक ने यह पत्र पद्मराज को उसकी सम्मति लेने के लिए दिखाया। पत्र इस प्रकार था,

'प्रिय बन्धु ! कई दिन से मैं इस बात का विचार कर रहा हूँ कि स्थानेश्वर के राज्य-परिवार से किस प्रकार गौड-परिवार का सम्बन्ध सुदृढ़ किया जाये। एक मास से ऊपर हो चुका है, जब मेरा श्रीमान् से परिचय हुआ था और उस समय से आपकी शौर्यता, सरलता और धर्मपरायणता का प्रमाण उत्तरोत्तर अधिक और अधिक प्राप्त हो रहा है। इससे मै एक प्रस्ताव आपके सम्मुख रख रहा हूँ।

'इस पत्र के साथ मेरी भगिनी मंगला का चित्र है। वह इस समय षोडषी है। यदि श्रीमान् स्वीकार करे तो हमको उसका कन्यादान श्रीमान् के हाथो मे करते हुए अत्यन्त हर्ष होगा।

'इससे जहाँ, मेरा विचार है कि मेरी बहिन का भाग्य खिल उठेगा, वहाँ हम भी, बहिन को सुयोग्य हाथो मे देकर, अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायेंगे। साथ ही कन्नौज और स्थानेश्वर से हमारी सास्कृतिक-सन्धि भी हो जाएगी। ये तीनों राज्य मिलकर आपको चक्रवर्ती राजा घोषित करने मे सफल होंगे। भारत-खण्ड में चिरकाल से कोई चक्रवर्ती राजा

नहीं हुआ। यही कारण है कि यहाँ अशान्ति है और धर्म का पालन नहीं हो रहा।

'अतएव निवेदन है कि श्रीमान् हमारी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर हमारे परिवार को अनुगृहीत करें। इससे हमारा कल्याण होगा और भारत का उद्धार होगा एव पुनः धर्म की स्थापना होगी,

महामात्य पत्र पढकर चकित रह गया। पन्नराज का विचार था कि यह हो सके तो बहुत अच्छा है, परन्तु गौड़ के राज्य-परिवार के लोग अत्यन्त अभिमानी थे और वे पश्चिमोत्तरी देश के किसी नरेश को अपनी लड़की दे देंगे, सम्भव प्रतीत नही होता था।

राज्यवर्धन का कहना था, "महामात्य! देश मे परिस्थितियाँ बदल रही हैं और आज देश को सुदृढ़ करना परमावश्यक है। पश्चिमोत्तरी सीमा के पार बडे-बडे राज्य बन और बिगड रहे हैं। भारत को उनसे सतर्क रहना चाहिए। भारत की रक्षा के हेतु यह परमावश्यक है कि यहाँ पर एक सुदृढ चक्रवर्ती राज्य बन जाए। भारत के कोटि-कोटि जन यदि एक सूत्र मे बाँध दिये जायँ तो ससार की कोई शक्ति इन पर अपना अधिकार नहीं बना सकेगी।"

पन्नराज ने गम्भीरता-पूर्वक कुमार राज्यवर्धन के मनोद्गार सुने और उनकी सराहना करते हुए कहा, "श्रीमान् का कहना सर्वथा सत्य है। यह मैं मानता हूँ कि देश को कैलाश से कन्या कुमारी तक और सुमेरु पर्वत से वंग सागर तक एक राजनीतिक और सास्कृतिक सूत्र मे बँध जाना चाहिए। यह मेरी ही सम्मति थी कि श्री कण्ठ को कामरूप के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये और पण्डित चतुरानन ने इस दिशा मे जो कार्य किया है, वह सराहनीय ही रहा है।

"अतः यदि यह सम्बन्ध गौड-राज्य से बन जाए तो बहुत उत्तम है।"

"परन्तु यह सब ठीक होते हुएभी मेरा यह कहना है कि लडकी को बिना देखे हुए मै स्वीकृति नहीं दे सकता।"

"तो महाराज कुमार आज्ञा दे, जिससे इस लडकी को कन्नौज में

लाने के लिए महाराज शशाक को लिख दिया जाए और पश्चात् आपकी अनुमति से विवाह-सम्बन्ध हो जाए।"

इस प्रकार उक्त पत्र का उत्तर लिख दिया गया कि महाराज कुमार गौड-नरेश की भगिनी को देखकर ही विवाह की स्वीकृत दे सकते है।

इसके उत्तर मे एक अति विनम्र पत्र आया। उसमे शशाक ने लिखा, "राज्य-परिवार की मान-प्रतिष्ठा के लिए यह उचित प्रतीत नहीं होता कि राजकुमारी वर के घर मे जाए। हमारे समाज की प्रथा के अनुसार यह उचित ही है कि वर स्वयं वधू के गृह पर आए। आप विश्वास रखे कि राजकुमारी हंस के समान गौर-वर्णीय और साक्षात् भगवती के समान सुन्दर है।"

राज्यवर्धन ने यह पत्र पढा तो उसे यह उचित ही प्रतीत हुआ। वह गौड जाने के लिए तैयार हो गया।

पद्मराज यह उचित नही समझता था। उसे गौड-नरेश पर अभी भी विश्वास नही होता था। उसने राज्यवर्धन को मना भी किया, परन्तु राज्यवर्धन का कहना था, "महामात्य! हमारा अपनी पत्नी से सम्बन्ध हमारी निज की बात है। इसमें मानव-भावनाओ का उतना ही हाथ है, जितना कि किसी भी मनुष्य के कार्यों मे हो सकता है।"

"महाराज!" पद्मराज का कहना था, "मुझको तो शशाक के व्यवहार पर सन्देह है। उसका व्यवहार पहले ग्रहवर्मन के साथ और पश्चात् देवगुप्त के साथ कुछ भी श्लाघनीय नही रहा। साथ ही अभी तक महारानी राज्यश्री का पता नहीं चला। जिन-जिन व्यक्तियो पर हमे सन्देह है, उनमे गौड-नरेश शशाक भी है।"

"महामात्य को हमारे जीवन का भय है न? महामात्य! हम समर पर जाते समय अथवा युद्ध-भूमि मे योद्धाओ की प्रथम पक्ति मे लडते समय, भय अनुभव नहीं करते तो इस पिलपिले भीरु के सन्मुख भय खायेंगे क्या? हॉ, यह कर्तव्य महामात्य का है कि हमारे जीवन की रक्षा करे।"

पद्मराज इस सुझाव से घबराया। इस पर भी उसने कई योद्धा और कितने ही सबल नागरिक राज्यवर्धन की बरात मे सम्मिलित करने का प्रबन्ध कर दिया। राज्यवर्धन का सेनाध्यक्ष बजरंग, अंगरक्षक बनकर साथ रहा।

पुंड्र, गौड-प्रदेश की राजधानी के बाहर आकर गौड-राज्य की ओर से राज्यवर्धन का भव्य स्वागत किया गया। ढोल, दुन्दुभि, नगाड़े इत्यादि के तुमुल नाद मे राज्यवर्धन की सवारी निकाली गई। नगर-भर मे राजकुमारी के विवाह के उपलक्ष्य मे सजावट की गई थी। सवारी के समय नागरिको ने पुष्प-वर्षा की। स्थान-स्थान पर शहनाई-वादन का प्रबन्ध था। वास्तव मे इस विवाह के उपलक्ष्य मे पूर्ण नगर-भर मे हर्षोल्लास का ऐसा प्रदर्शन किया गया कि पद्मराज को सन्देह प्रकट कर शोक होने लगा। इस स्वागत से प्रफुल्ल-मन हो जब राज्यवर्धन अश्व पर सवार, साथ मे चलते पद्मराज को देखता, तो पद्मराज लज्जित हो, आँखे नीची कर लेता।

राज्यवर्धन की सवारी राज्य-प्रासाद के द्वार पर पहुँची, तो राजकुमारी पुष्पमाला लेकर महाराज के स्वागत के लिए द्वार पर आई। राज्यवर्धन ने उसको देखा और उसको उसके चित्र से कई गुना अधिक सुन्दर पाकर अति प्रसन्न हुआ।

इस समय महाराज को घोडे से उतार कर पालकी मे बैठाकर प्रासाद के अन्दर ले जाया गया और उनको निश्चित विश्राम-स्थान पर पहुँचा दिया गया। उसके अगरक्षको और साथ मे आए नागरिको के विश्राम के लिए भी उचित प्रबन्ध कर दिया गया।

रात को नगर-भर मे दीपमालिका की गई। राज्य-प्रासाद तो सहस्रों दीपकों और अग्नि-शिखाओ के प्रकाश मे जगमगा उठा।

भोजनोपरान्त राजकुमारी की माँ तथा उसकी अन्य सखियाँ राज्यवर्धन के पास आई और हँसी-ठट्ठे के बीच उसे अन्तःपुर मे ले गई। राज्यवर्धन का अगरक्षक बजरंग उसके साथ जाना चाहता था, परन्तु राज्यवर्धन ने

उसे अन्तःपुर में ले जाना उचित नहीं समझा और कह दिया कि वह महामात्य की देखभाल करे। पद्मराज लज्जा से रक्तवर्ण हो रहा था।

महामात्य यद्यपि बाहर से किसी प्रकार के भी षड्यन्त्र का भास नहीं पा रहा था, तदपि वह सर्वथा निश्शक नहीं था। प्रत्यक्ष मे तो वह कुछ भी कह नही सका। राजकुमारी की माँ तथा उसकी सखियो के हाव-भाव देखकर भय मानने मे कोई कारण नहीं था।

शशाक पद्मराज के पास बैठा विवाह के प्रबन्ध मे विचार करता रहा। सब-कुछ निश्चित हो जाने के पश्चात् शशाक ने उठते हुए कहा, "अब विलम्ब हो रहा है। मै समझता हूँ कि आपको तथा महाराजकुमार को भी अब विश्राम करना चाहिए, जिससे विवाह-संस्कार के समय आप लोग उठकर तैयार हो जाएँ।"

यह कह शशाक अन्तःपुर मे चला गया। पद्मराज तथा बजरग चिर-काल तक महाराज कुमार के बाहर आने की प्रतीक्षा करते रहे। मध्य-रात्रि हो चुकी थी। पद्मराज ने एक प्रतिहार को बुलाकर कहा, "प्रतिहार! किसी स्त्री को अन्तःपुर मे भेज कर यह सूचना भेज दो कि महाराज की बाहर, हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

प्रतिहार भय से काँपने लगा। पद्मराज ने तीव्र स्वर मे कहा, "जाओ किसी दासी को भेज दो।"

प्रतिहार ने उँगली उठाकर खिड़की के बाहर की ओर संकेत कर दिया। पद्मराज को इसका अर्थ समझ नही आया। इस कारण वह खिड़की के पास जाकर बाहर की ओर झाँककर देखने लगा। उसको प्रासाद के आँगन मे, असख्य दीपको के प्रकाश मे भारी संख्या मे सैनिक खड़े दिखाई दिये। कन्नौज के सभी नागरिक उन सैनिको द्वारा घिरे हुए थे और 'महाराज कुमार, महाराज कुमार' की पुकार कर रहे थे।

इसका अर्थ समझने के लिए उसने प्रतिहार से पूछने के लिए घूम कर उसकी ओर देखा, परन्तु वह वहाँ से भाग चुका था। पद्मराज को इसमें धोखाधड़ी प्रतीत हुई। वह पुनः खिड़की मे आकर देखने लगा।

उसको तीस के लगभग नागरिको पर नग्न खड्ग लिए सैनिक कूदते दिखाई दिए।

नागरिको ने बहुत चीत्कार मचाया, परन्तु कुछ ही क्षणो मे सब समाप्त कर दिए गये। इस पर पद्मराज का ध्यान अपनी रक्षा की ओर गया। उसने अपने आगार के बाहर देखा। उसे लगभग पचास सैनिक अपने आगार की ओर आते दिखाई दिये। वह समझ गया कि उसका भी जीवन भय मे है। वह लपककर साथ के आगार मे गया, जहाँ भय-भीत बजरंग खड़ा था। पद्मराज ने कहा, "बजरग! भागो, सैनिक हत्या करने के लिए आ रहे हैं।"

दोनो ने अपने-अपने खड्ग निकाल लिये और भाग खड़े हुए। जिस ओर राजकुमारी की सखियाँ महाराज कुमार को लेकर गई थी, उस ओर अन्तःपुर को जाने के लिए एक द्वार था। द्वार से एक सकीर्ण मार्ग दूर तक गया था। ये दोनो भागते हुए उस मार्ग पर चलते गए। मार्ग के अन्त मे एक अन्य द्वार था। पद्मराज ने जोर से धक्का दिया तो वह खुल गया। यह द्वार एक आगार मे खुलता था। आगार मे दोनों ने देखा कि राज्यवर्धन का शव पड़ा है, जिसके हृदयस्थल पर कटार घुसी हुई थी। दोनो एक क्षण के लिए खड़े हो गए। इसी समय उन्हे पिछले संकीर्ण-मार्ग पर सैनिको के आने का कोलाहल सुनाई दिया। पद्मराज ने कहा, "भागो, हमारा पीछा किया जा रहा है।"

दोनो आगार के दूसरे द्वार को लाँघ आगे को भागे। सामने ही सीढ़ियाँ थीं। दोनो सीढ़ियो के नीचे उतर एक प्राँगण मे जा पहुँचे। यह वह प्रागण नहीं था, जहाँ नागरिको की हत्या की गई थी। वहाँ कुछ दासियाँ भयभीत खड़ी थीं। दोनो ने दासियो की ओर ध्यान नही दिया और सामने ही जो द्वार आया, उसमें प्रवेश कर गए। वास्तव मे यही अन्तःपुर था। वहाँ कई दासियाँ खड़ी थीं। दोनो को नग्न खड्ग लिये उस ओर आते देख, वे भयभीत हो चिल्लाने लगीं और मार्ग छोड़ एक ओर हट गईं।

पद्मराज को विचार करने तक का समय नहीं था। वह आगे-ही-आगे बढता जा रहा था, जिससे पीछे आने वाले सैनिक उन्हे न पकड सकें। अन्तःपुर के सामने एक और प्रागण था। वे उसमे जा पहुँचे। अब उन्हे राज्य-प्रसाद की प्राचीर दिखाई दी। वे समझ गए कि राज्य-प्रासाद के पिछवाडे मे वे जा पहुँचे हैं। उस प्राचीर मे बाहर को जाने का एक छोटा सा द्वार था। वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था। उसने इनको आते देख अपना खड्ग निकाल लिया और मार्ग रोककर खडा हो गया। बजरंग को उसे समाप्त करने मे एक-दो क्षण ही लगे। पश्चात् वे द्वार से बाहिर को निकल गये। द्वार के बाहर आकर उन्होने देखा कि वे राज्य-प्रसाद के बाहर एक उजडे मुहल्ले मे आ पहुँचे हैं।

तृतीय परिच्छेद

: १ :

श्रीकंठ की सेना को सिन्धु नदी से वापिस आकर, पुनः युद्ध की तैयारी करने मे दो मास लग गए। इस समय तक कन्नौज से समाचार आ चुका था कि देवगुप्त की हत्या कर महाराजकुमार राज्यवर्धन ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया है। इस पर भी यह आवश्यक समझा गया कि मालवा पर आक्रमण कर उसे विजय कर लिया जाए। अतः सेना को सेनापति भंडी के अधीन कन्नौज की ओर भेज दिया गया। आक्रमण के विषय मे कोई निश्चित योजना न होने से सेनापति भडी को सेना-सहित कन्नौज पहुँचने मे एक मास और लग गया। जब कन्नौज-राज्य के बाहर श्रीकंठ की सेना पहुँची तो कन्नौज में यह समाचार पहुँच चुका था कि राज्यवर्धन की हत्या हो चुकी है। सम्पूर्ण राज्य और कन्नौज नगर शोक-ग्रस्त पडा था।

पद्मराज तथा बजरंग दोनो गौड से बचकर वापिस आने मे सफल हो गए थे। पद्मराज ने आते ही कन्नौज की रक्षा की तैयारी आरम्भ कर दी थी। सेना का पुनर्गठन और नई भर्ती तो राज्यवर्धन के समय मे ही हो चुकी थी। उसे सन्देह था कि गौड-नरेश कन्नौज पर आक्रमण करेगा। वह यह भी सोचता था कि राज्यवर्धन की हत्या का प्रतिकार लेने के लिए कन्नौज तथा श्रीकंठ को गौड पर आक्रमण करना पडेगा। इस कारण सैनिक तैयारी पूर्ण करने मे वह लग गया।

जब उसे सूचना मिली कि भडी पचास सहस्र सेना के साथ कन्नौज

के बाहर आ पहुँचा है, तो वह स्वयं सेनापति भंडी से मिलने गया। उसने पूर्ण वृत्तान्त बताकर कहा, "मैंने यह समाचार स्थानेश्वर भेज दिया है और हम कन्नौज वालो का यह मत है कि महाराज कुमार के कनिष्ठ भ्राता श्री हर्षवर्धन शीघ्रातिशीघ्र राज्य-कार्य सभाल ले। पश्चात् मालवा तथा गौड पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया जाए। राजकुमार हर्षवर्धन कन्नौज तथा श्रीकंठ, दोनो राज्यो की सेना की सहायता से भारत मे एक महान् राज्य की नींव डालें।"

"पर महामात्य!" भंडी का कहना था, "आपने महाराज कुमार की रक्षा का प्रबन्ध क्यो नही किया?"

"जो-जो भी प्रबन्ध के लिए योजना बनाई गई थीं, उन्हे महाराज कुमार ने अपने भावी श्वसुर और पत्नी का अपमान समझकर चलने नहीं दिया। अतः उन पर कार्य नहीं हो सका।

"महाराज की हत्या अन्तःपुर मे हुई थी। अतः हम नहीं जानते कि कौनसी वचना का प्रयोग किया गया था।"

भंडी को पद्मराज की सफ़ाई से सन्तोष नहीं हुआ। इस कारण उसने कह दिया, "मेरे मन मे महामात्य पद्मराज के लिए भारी मान है; परन्तु यह राजनीति है। कुमार हर्षवर्धन के आने तक मेरा महामात्य से निवेदन है कि वे अपने को अपने निवास-स्थान पर बंदी समझें।"

महामात्य देख रहा था कि भंडी की सेना का विरोध अभी कन्नौज की नवजात सेना के सामर्थ्य के बाहर की बात है। अतएव उसने केवल मात्र यह कहा, "तो सेनापति से मेरा निवेदन है कि राज्य का कार्यभार सभाल लें। मैं आज से अपने घर से बाहर नही निकलूँगा।"

इस प्रकार कन्नौज पर स्थानेश्वर की सेना का अधिकार हो गया। महामात्य का, अपने घर पर बदी किए जाने का समाचार कन्नौज नगर में फैल गया। इससे नागरिको के क्रोध का वारापार नहीं रहा। वे जानते थे कि पद्मराज देशभक्त नागरिक है और उसके ही विपुल प्रयत्न से कन्नौज का उद्धार हुआ था। अब स्थानेश्वर की सेना को

आकर कन्नौज पर अधिकार करते तथा महामात्य को बदी बनाते देख वे क्रोध से उबलने लगे।

पद्मराज ने सेनापति भडी से कह दिया था कि यह घर से बाहर नहीं निकलेगा। अतः नागरिको को उससे मिलने मे भी बाधा खडी नहीं की गई। इस समाचार के फैलते ही कि महामात्य अपने घर मे बंदी है, भीड-की-भीड महामात्य के प्रासाद के बाहर एकत्रित होने लगी। बाहर एकत्रित होकर वे पद्मराज की जयघोष करने लगे। जयघोष सुन पद्मराज कुछ समझ नहीं सका और खिडकी से झाँककर देखने लगा। उसने हाथ खडा कर लोगों को चुप कराया और पूछा, "क्या चाहते हो?"

"हम स्थानेश्वर-सेना का यहाँ रहना पसन्द नहीं करते।"

"क्यो? क्या कष्ट है?"

"हम सैनिको का राज्य नहीं चाहते।"

"ठीक है। शीघ्र ही एक बुद्धिशील राजा का राज्य यहाँ हो जाएगा। आप अपने-अपने घरो को लौट जाइये। स्थानेश्वर की हमसे शत्रुता नहीं और न ही उनके हृदय मे हमारे लिए द्वेष भावना है।"

"हम अपने महामात्य की मुक्ति चाहते है।"

"मैं मुक्त हूँ। स्वेच्छा से यहाँ पडा हूँ। मैं कन्नौज से राजकुमार हर्षवर्धन के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उनके आने पर ही यहाँ से जाऊँगा। अब आप लौट जाइए।"

लोग यद्यपि इस सफाई से सन्तुष्ट नहीं थे परन्तु पद्मराज के कहने पर वहाँ से चले गए।

एक व्यक्ति नहीं टला। यह पत्रलता थी। वह पान की डोली हाथ मे लिये महामात्य को पान देने के लिए अभी तक खडी थी। जब सब लोग चले गए तो वह प्रासाद के द्वार पर आई। वहाँ पर स्थानेश्वर के दो सैनिक पहरा दे रहे थे। उसने उनसे पूछा, "मै महामात्य को पान देने के लिए भीतर जाना चाहती हूँ। क्या मै जा सकती हूँ?"

सैनिको को उसे रोकने मे कोई प्रयोजन नहीं था। पत्रलता भीतर
ली गई और महामात्य के आगार में जा पहुँची। महामात्य एकान्त
। बैठा अपने-आप से ही शतरंज खेल रहा था। दोनों ओर की मोहरे
ह स्वयं ही चला रहा था और अपनी ही पूर्व चाल को उत्तर चाल से
मात करने का यत्न कर रहा था।

"महामात्य जी! क्या हो रहा है?"

पद्मराज ने बाहर भीड मे पत्रलता को खडे देखा था और विचार
केया था कि वह ही भीड़ को एकत्रित कर उसके प्रासाद पर लाई है।
प्रब पत्रलता को अकेले आते देख, उसे अपने अनुमान पर विश्वास हो
ाया। उसने कहा, "तो तुम आ गई हो?"

"हाँ श्रीमान्!"

"वे तुम्हारे चेले-चाँटे चले गए है क्या?"

"मेरे चेले चाँटे? श्रीमान्! वे आपके भक्त थे। ठाकुर को मन्दिर
ं निश्चल बैठे देख ठाकुर जी को जगाने आये थे; परन्तु बेचारे नहीं
ानते कि ठाकुर तो पत्थर के हैं। ढोल-नगाडे बजाने पर भी जाग नहीं
उकते।"

"जाग तो पडा था। साक्षात् दर्शन देकर उनको आदेश भी दे
देया था, परन्तु अर्ध-विश्वासी भक्त भगवान् का आदेश तो माने नहीं
और भगवान् पर दोपारोपण करने लगे है। ऐसे भक्तो के साथ भगवान्
क्या कर सकता है!"

"मैं यह समझ कि श्रीमान् एकान्त में उदास न हो जायें, श्रीमान्
का दिल बहलाने आई हूँ।"

"दिल बहलाना भी कोई काम है? यह तो बहुत ही सहज बात है।
देख तो रही हो कि दिल कैसे बहलाया जा रहा है। ये हरे मोहरे मेरा
दाहिना हाथ हैं और ये पीले मोहरे मेरा बायाँ हाथ। मेरा दाहिना हाथ
दो बाजी जीत चुका है। इस बार यह हारता प्रतीत होता है। देखो पीले
ंग के मोहरो ने हरे रंग के राजा को फाँस लिया है।"

पत्रलता बोली, "यदि श्रीमान् स्वीकार करें तो यह हार रहे मोहरों का पक्ष लेकर एक-दो हाथ मैं खेलूँ।"

"तुम खेलोगी ? पर यह तो हारा हुआ पक्ष है। नई बाजी लगाई जा सकती है।"

"नहीं श्रीमान्! इसी पर हम खेलेंगे।"

इतना कह पत्रलता ने एक मोहरा चल दिया। इस मोहरे के बीच में आ जाने से हरे राजा की रक्षा हो गई और पीले राजा को भय उत्पन्न हो गया। पद्मराज एक क्षण तो आश्चर्यचकित रह गया। पश्चात् उसने कहा, "बहुत खूब" यह कह उसने अपने राजा को पीछे हटा लिया।

पत्रलता ने दो-चार चालों में ही पीले मोहरे के राजा को पूर्ण रूप में फाँस लिया। पद्मराज ने हार मान ली और विस्मय प्रकट कर कहा, "पत्रलता! तुम तो बहुत ही अच्छा खेलती हो।"

"हाँ श्रीमान्! परन्तु शतरंज वीरों का खेल नहीं। यह तो नीति-कुशल, चतुर और वंचकों का खेल है। इस कारण इसमें आप जैसे सरल चित्त व्यक्ति का एक स्त्री द्वारा पराजित होना किसी प्रकार भी विस्मय की बात नहीं।"

"तो तुम्हारा विचार है कि स्त्रियाँ वंचक होती हैं ?"

"हाँ महाराज! वे स्वभाव से ही चतुर होती हैं और वंचना करने में सिद्धहस्त होती हैं?"

"बहुत बुरी होती हैं वे।"

"हाँ! यह बात आपको आज पता लगी है क्या ? मैं तो समझती थी कि गौड में स्त्रियों का षड्यन्त्र देखकर महामात्य को अनुभव हो चुका होगा।"

"तो तुम्हारा विचार है कि गौड में राज्यवर्धन की हत्या के षड्यन्त्र में स्त्रियाँ और विशेष रूप में शशांक की भगिनी सम्मिलित थी।"

"इसमें सन्देह करने को तो स्थान ही नहीं है। आपको कदाचित् यह विदित नहीं कि महाराजकुमार के हृदयस्थल पर वार किया गया

था। यह तो मंगला ने आलिंगन करते समय ही किया होगा।"

"मंगला बहुत ही दुष्टा निकली।"

"हॉं! वह शशाक के पिता की एक सुन्दर रखेल से कन्या है। यह रखेल पीछे गौड मे नर्तकी का कार्य करती थी।"

"तब तो समझने की बात है। परन्तु तुम तो एक रखेल अथवा नर्तकी की कन्या नहीं हो। अएतव तुम न तो दुष्टा हो सकती हो और न ही विश्वासघातिनी।"

"कैसे कहते हैं आप? मैंने देवगुप्त और पश्चात् शशाक को धोखा दिया था।"

"तो तुम भी बहुत दुष्टा हो?"

"हॉं महाराज! अब जीवन में एक दुष्टता और करना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि भण्डी का कार्य भी पूर्ण कर दूँ, हर्षवर्धन के यहॉं पहुॅचने से पूर्व ही, जिससे कन्नौज के महाराज पण्डित पद्मराज बन सकें।"

"क्या लाभ होगा इससे?"

"एक भले मनुष्य के हाथ मे राज्य तो सदैव भलाई की बात ही होगी।"

"देखो पत्रलता! मै तुम्हारा आशय समझ गया हूँ। परन्तु मैं तुम्हे बताना चाहता हूँ कि मै ब्राह्मण हूँ, मेरा काम निष्काम भाव से जनता की सेवा करना है। यदि मै राज्य की लालसा करने लगा तो मेरे मस्तिष्क मे भी राजमद चढ आएगा और मैं भी वैसी ही दुष्टता करने पर उतारू हो जाऊँगा, जो शुंग परिवार के पुष्यमित्र ने की थी। शुंग लोग ब्राह्मण थे। उन्होने राज्य को हस्तगत कर भारी भूल की थी। इससे न उनका भला हुआ और न ही देश का कल्याण हो सका।"

"पर महाराज! बौद्ध धर्म के प्रचार से तो वर्णों मे भेद-भाव रहा ही नहीं। जब विवाह आदि मे, व्यापार मे, आचरण मे और पढाने-लिखाने मे सब लोग स्वतन्त्र हैं, तो फिर राज्य करने मे क्या आपत्ति हो

सकती है ?"

"पर बौद्धों के कारण ही तो सब-कुछ मलियामेट हो रहा है। न केवल गम्भीर विचार और प्रयत्न से प्रचलित की गई वर्ण-व्यवस्था का लोप हुआ है, प्रत्युत् भगवान तथागत ने ब्राह्मणों के लिए मान और भक्ति तक मिटाने में कसर नहीं रखी। शूद्र, अनपढ़, मूर्ख, गँवार भी भिक्षु बन संघ में वही मान पाने लगते हैं, जितना कि पढ़े-लिखे विद्वान् ब्राह्मण अथवा शूरवीर क्षत्रिय। परिणामस्वरूप पूर्ण समाज का घोर पतन हो गया है।"

"परन्तु इसमे आपको क्या आपत्ति है कि एक स्त्री अथवा शूद्र निर्वाण प्राप्त करे ?"

"मैंने यह नहीं कहा। मेरा आशय तो यह है कि जो योग्यता से अब्राह्मण है, वह भी योग्य ब्राह्मण के समान इस कारण माना जाता है क्योंकि वह दीक्षा प्राप्त किया भिक्षु है। यह अन्याय है।

"मोक्ष-प्राप्ति तो एक पृथक् बात है। उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्म मे लगा हुआ यत्नशील हो सकता है, परन्तु हानि तब होती है जब एक अयोग्य, योग्य व्यक्ति के स्थान पर नियुक्त होता है और फिर वैसा मान पाने लगता है।

"देखो, मैंने कहा है कि मैं ब्राह्मण हूँ। मैं मन्त्रणा दे सकता हूँ, परन्तु राज्य नहीं कर सकता। राज्याधिकारी होने के लिए यह आवश्यक है कि वह शूरवीर हो, शक्तिशाली हो, मोह-ममता के बन्धनो से ऊपर हो और फिर ब्राह्मणों के कहे के अनुसार कार्य करने वाला और धर्म परायण हो।

"बौद्ध सम्प्रदाय के समानता के सिद्धान्त ने यह बात नहीं रहने दी। देखो पत्रलता! महाराज अशोक क्षत्रिय थे। बलशाली और निर्भीक व्यक्ति थे, परन्तु उन्होंने कभी किसी विद्वान् की सम्मति से अपना आचरण नहीं बनाया। किसी कारण से उसके सम्मतिदाता बौद्ध भिक्षु हो गए, जो प्रायः नीच वंशजोत्पन्न और अशिक्षित थे। उनकी सम्मति से उन्होने एक पक्षपातपूर्ण राज्य चलाया। राज्य का पूर्ण कोष बौद्ध-सम्प्रदाय के

चैत्यों में लगा दिया और अन्य सम्प्रदाय धनाभाव के कारण मिटते गए। परिणाम यह हुआ कि राज्य दुर्बल पड़ गया। यद्यपि बौद्ध विचार-धारा ने राज्य को दुर्बल करने के साथ-साथ यहाँ की जनता को भी निस्तेज किया, परन्तु विदेशो मे रहने वालो को वे तेजहीन नहीं कर सके। इस कारण देश पर जब बाहरी आक्रमण हुए, तो न तो राज्य ही उनका विरोध कर सका और न ही जनता मे विरोध की शक्ति रही।

"तुमने कन्नौज की अवस्था तो देखी ही है। राज्य पुंसत्वहीन था। जनता भेड-बकरी समान हो गई थी और एक विदेशी राजा चुपचाप यहाँ अधिकार पा गया।

"महाराज ग्रहवर्मन् ने एक ब्राह्मण की बात नहीं मानी। एक बोधि-सत्त्व को अपना दूत बनाकर कार्य चलाना चाहा। बोधिसत्त्व भगवान अवलोकितेश्वर राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ, मनोविज्ञान से शून्य, ग्रह-वर्मन् के सम्मतिदाता हुए तो परिणाम हुआ उनकी हत्या और राज्य का पतन।

"पश्चात् पुनः कुछ लोग एक ब्राह्मण की सम्मति पर कार्य करने लगे तो परिणामस्वरूप मिली स्वतन्त्रता। परन्तु एक क्षत्रिय राजा ने जब पुनः भावावेश में एक ब्राह्मण का कहना नही माना तो परिणाम तुम देख रही हो।"

: २ :

पत्रलता को यह तो समझ मे आ गया कि एक ब्राह्मण को राज्य नहीं लेना चाहिए परन्तु वह यह नहीं समझ सकी कि वह मूर्ख राजा, जो एक ब्राह्मण का कहा नही मानता और बिना प्रमाण के उसे दोषी ठहरा देता है, कैसे सहायता पाने का अधिकारी हो सकता है।

वह चुपचाप मन मे विचार करती हुई पान लगाने लगी। पद्मराज ने समझा कि वह युक्ति मे परास्त हो गई है। इस कारण उसने बात बदलनी चाही। उसने कहा, "पत्रलता! तुम्हारा प्रियजन मिला अथवा

नहीं ?"

"नहीं भगवन् ! एक बार समाचार मिला था कि वह गौड़-राज्य मे चला गया है ! मैं उसको ढूँढने वहाँ गई थी। उन्हीं दिनों महाराज-कुमार की हत्या हुई। मुझे हत्या का समाचार एक घडी-भर मे मिल गया था। पश्चात् यह भी समाचार मिला कि आप वहाँ से बचकर भागने मे सफल हो गए है। जब मेरे प्रेमी का समाचार मुझे नहीं मिल सका, तो मैं वापिस चली आई। यहाँ आकर पता चला कि श्रीमान्, जो कन्नौज की सुरक्षा के लिए सेना को एकत्रित कर रहे थे, बदी बना लिये गए हैं।

"आज प्रातःकाल महामात्य के भक्त वासुदेव के मन्दिर मे एकत्रित हो इधर आ रहे थे। मैं भी उनके साथ चल पडी। जब वे लोग सर्वथा असन्तुष्ट लौट गए, तो मेरा मन आपसे मिलने को कर आया। मैं आपकी नीति को ठीक नहीं समझती थी। यहाँ श्रीमान् शतरंज खेल रहे थे। श्रीमान् जी तो समझ ही गए होगे कि आप युक्ति मे मुझसे हार गए हैं।" इतना कह पत्रलता ने शतरज के मोहरो की ओर सकेत कर दिया।

"तो तुम समझती हो कि शतरज की बाजी जीत जाने से तुमने मुझे युक्ति मे भी परास्त कर दिया है?"

"केवल शतरंज मे ही नहीं, प्रत्युत् राजनीति में भी युक्ति द्वारा आप परास्त हो चुके हैं।"

"सत्य ? पत्रलता ! मै तो इससे विपरीत समझा था। मैने कहा था कि समाज मे एक वर्ग सदैव ऐसा रहना चाहिए, जो निष्काम भाव से निष्पक्ष होकर, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विकारो से मुक्त होकर मन्त्रणा देने का कार्य करे। मैं उसी वर्ग मे रहना चाहता हूँ।"

"यह युक्ति नहीं है महाराज ! यह तो एक सिद्धान्त की बात है और मैंने इस सिद्धान्त को अस्वीकार नहीं किया। मै तो यह कह रही हूँ कि जब मन्त्रणा लेने वाला व्यक्ति अधिकारी न हो, तो फिर मन्त्रणा

देने वाला क्या करे ?"

"मन्त्रणा दे और तटस्थ होकर परिणाम देखता रहे। किसी विद्वान् का कहना न मानने से जो परिणाम हो सकते हैं, वे होगे और फिर उसको उस विद्वान् की मन्त्रणा मानने के लिए विवश कर देगे।"

"तो क्या ससार मे मूर्ख राजा ही मन्त्रणा पाने के अधिकारी रह गए हैं ? क्या मन्त्रणा देने वाले को मन्त्रणा देने के पात्र को ढूँढना आवश्यक नहीं ?"

"ओह ! अब मैं समझा कि पत्रलता का मस्तिष्क किस ओर कार्य कर रहा है। हमारी ताम्बूलिन यह चाहती है कि वह स्थानेश्वर के परिवार-वालो को पान खिला-खिलाकर ऊब गई है। कोई अन्य राज्य-परिवार यहाँ पर खडा करना चाहिए, जिससे उसके पान की महिमा और विस्तृत हो सके।"

"श्रीमान् बहुत जल्दी समझे हैं। राज्य-परिवार लाये जा सकते हैं, परन्तु भरतखण्ड मे कोई ऐसा परिवार मिल सकेगा क्या ?"

"राजा बनाए नहीं जा सकते पत्रलता ! वे अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल से उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मणो का कार्य तो केवल मात्र यह है कि जो भी राजा हो, उसको सन्मार्ग दिखाते रहे। इस समय मै, स्थानेश्वर के राज्य-परिवार से अधिक उपयुक्त परिवार भारत का सम्राट् बनने के योग्य नहीं समझता।

"देखो पत्रलता ! राज्यवर्धन के विषय मे तो मैं पहले भी कुछ अच्छी सम्मति नहीं रखता था। स्थानेश्वर मे जब मैने उसको अपना परिचय दिया और कन्नौज की परिस्थिति बताई, तो वह बिना मेरे से राय किए, अपने साथ केवल पाँच सौ सैनिक लेकर कन्नौज-विजय के लिए चल पडा था। यदि तुम्हारे तथा विष्णुकान्त इत्यादि के प्रयत्न से यहाँ की स्थिति अनुकूल नहीं होती, तो जानती हो क्या होता ? राज्यवर्धन, सम्भव है देवगुप्त को मार न सकता, क्योकि गौड-नरेश उसकी सहायता के लिए पहुँच जाता। और यदि देवगुप्त मर भी जाता तो शशाक की सेना

राज्यवर्धन तथा उसके सैनिको को कुचल डालती। कन्नौज-राज्य इस समय शशाक के हाथ में होता।

"राज्यवर्धन को मैने कहा था कि वह मगला को कन्नौज बुलाकर, यहाँ उससे विवाह करे, परन्तु वह अपनी ही मति के अनुसार कार्य करता रहा। परिणाम तुमने देख लिया है।

"परन्तु हर्षवर्धन को मैने राज्यवर्धन से भिन्न पाया है। मै उसको एक अवसर देना चाहता हूँ। यदि उसने विद्वानो की सम्मति से कार्य करना स्वीकार किया, तो वह निस्सन्देह भारत मे एक सबल और स्थायी राज्य स्थापित करने मे सफल होगा।"

"इस विषय मे श्रीमान् जी से मतभेद रखते हुए भी मैं एक ताम्बूलिन-मात्र कुछ अधिक कह नहीं सकती। मुझ जैसी अनुभवहीन लडकी की सम्मति का मूल्य आपके सम्मुख कुछ भी नहीं हो सकता। इस पर भी इतनी बात मै समझती हूँ कि राज्यश्री जब यहाँ की महारानी बनी थी, तो वैष्णव थी। परन्तु यहाँ के वातावरण के सम्मोहन मे केवल बौद्ध ही नहीं हुई, प्रत्युत् राज्य-सत्ता को भी शिथिल करने मे सहायक हो गई। इसके साथ ही एक अन्य बात आपको विदित नहीं। जब महाराज ग्रहवर्मन की हत्या हो चुकी थी तो मैने राज्यश्री से कहा था कि उसके लिए विष खाकर मर जाने के अतिरिक्त अब कोई उपाय नहीं। वह कहने लगी कि वह अपने पति के हत्यारे को मार डालना चाहती है। इस पर मैंने उसे विष दिया था और कहा था कि पहले यह विष खा ले। इसका प्रभाव एक घडी के पश्चात् आरम्भ होगा। तब तक वह देवगुप्त से निपट लेगी। मेरा विचार था कि वह विष खा चुकी होगी, परन्तु पीछे जब वह बदीगृह मे थी तो मुझे पता चला कि अपने हाथो मरने का वह साहस नही कर सकी।

"जैसी बहिन है, वैसा ही भाई होगा, मेरा ऐसा अनुमान है।"

"पत्रलता का अनुमान है, परन्तु मेरा अनुभव है। हर्षवर्धन कुछ दिनो मे यहाँ आ जायेगा। उसके आने पर मैं अपना मार्ग निश्चित्

करूँगा।"

पत्रलता अपने प्रयास मे विफल हो चली गई। इस पर भी वह नित्य पान लेकर महामात्य के पास आती रही और नगर एवं राज्य के समाचार बताती रही।

पद्मराज को दृढ़ विश्वास था कि हर्षवर्धन उसकी सम्मति से कार्य करेगा और वह उसको भारत का सम्राट् बनाने में पूर्ण शक्ति से सहायता करेगा।

हर्षवर्धन को जब ज्येष्ठ भ्राता की हत्या का समाचार मिला, तो वह कन्नौज आ पहुँचा। भंडी ने उसे बताया कि उसे सन्देह है कि राजकुमार की हत्या मे पद्मराज का हाथ है। वह बहुत ही चतुर व्यक्ति है; उसने पहले देवगुप्त को मरवाया, पश्चात् महाराज कुमार को अपने मार्ग से दूर किया और अब श्रीमान् को कन्नौज मे बुलाकर किसी षड्यन्त्र मे फँसाना चाहता है।

हर्षवर्धन के साथ पण्डित चतुरानन भी था। चतुरानन जानता था कि कामरूप से सन्धि करने की प्रेरणा देने वाला पद्मराज ही था। इस सन्धि से ही कन्नौज और श्रीकंठ दोनो की स्थिति अति प्रबल हुई थी। यदि वह स्वय कन्नौज का राज्य संभालना चाहता, तो स्थानेश्वर और कामरूप मे सन्धि कराने के स्थान, स्वयं किसी प्रकार से कामरूप के साथ सन्धि करता। साथ ही पद्मराज की, स्थानेश्वर मे हुई हर्षवर्धन के साथ वार्तालाप का उसके मन पर अच्छा प्रभाव था। इस कारण वह भंडी के सन्देह को सुन, तुरन्त विश्वास नहीं कर सका। महाराज हर्षवर्धन ने जब उसकी सम्मति माँगी, तो वह गम्भीर विचार मे पड गया। पश्चात् उसने सेनापति भंडी से प्रश्न करने आरम्भ कर दिए। उसने पूछा, "सेनापति ने पद्मराज को क्या आज्ञा दी थी?"

"मैंने कहा था कि महामात्य अपने को अपने निवास-स्थान पर बंदी समझे।"

"उसने क्या कहा था?"

"वह बंदी बनने के लिए तैयार हो गया था। उसने मुझसे कहा था कि मैं राज्य-कार्यभार अपने ऊपर ले लूँ। वह मैंने ले लिया।"

"क्या महामात्य पर किसी प्रकार का पहरा बिठाया गया है?"

"हाँ; परन्तु वह व्यर्थ मान उठा लिया गया। उसने भागने की चेष्टा नहीं की।"

"क्या महामात्य जनता के लोगों से मिल सकते हैं?"

"हाँ, इसमें कोई रुकावट नहीं है।"

"महामात्य के परिवार के सदस्य कहाँ हैं?"

"वे वहीं हैं। उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।"

"सेनापति ने हत्या के विषय में जाँच करवाई है?"

"वह तो गौड़-विजय के पश्चात् ही हो सकेगी।"

"आपने वहाँ के किसी कर्मचारी से पता करने का प्रयत्न किया था कि महाराज कुमार को महामात्य ने गौड़ जाने से मना किया था अथवा नहीं?"

"यह तो राजकुमार स्वयं जाँच करवायेंगे।"

"महाराज!" चतुरानन ने हर्षवर्धन से कहा, "मैं समझता हूँ कि महामात्य निर्दोष हैं। उन्हें मुक्त कर देना चाहिए।"

हर्षवर्धन चतुरानन के इस परिणाम पर पहुँचने से प्रसन्न था। वह स्वयं भी यह मानता था कि पद्मराज निर्दोष है। उसने समझा कि बंदी बनाने से पद्मराज का अपमान हो गया है और अब स्वयं उसके निवासस्थान पर जाकर, उसे मुक्त करना चाहिए। वह अपने साथ अपने अंगरक्षकों को लेकर पद्मराज के आवास पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर हर्षवर्धन ने पद्मराज से क्षमा माँगी, तो पद्मराज इतनी सज्जनता देख प्रसन्नता के आँसू बहाने लगा। पश्चात् उसने कहा, "महाराज! आपको शीघ्र ही कार्यभार सम्भाल लेना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि अभी तक हमने सारा समय व्यर्थ ही गँवाया है। इस समय तक हमें गौड़-राज्य पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लेना चाहिए था। वञ्चक को वंचना का

फल मिलना ही चाहिए।

"इसके अतिरिक्त आपको कामरूप के महाराज से निवेदन करना चाहिए कि वे पूर्व की ओर से गौड पर आक्रमण कर दें। यह समर एक मास मे सम्पूर्ण हो जाना चाहिए। पश्चात् हमे अपना ध्यान मालवा की ओर लगाना होगा।"

पद्मराज की मुक्ति के समाचार से कन्नौज-भर की जनता मे प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। हर्षवर्धन ने उसे अपने साथ एक सजे हुए हाथी पर बैठाकर नगर-भर मे घुमाया। नागरिको ने दोनो की जयघोष की और उन पर पुष्प-वर्षा की।

: ३ :

पत्रलता पद्मराज के मुक्त हो जाने से और स्थानेश्वर तथा कन्नौज, दोनों राज्यो के महामात्य नियुक्त किए जाने से अपने अनुमान के असत्य होने पर लज्जित हुई और पद्मराज से इस विषय मे क्षमा माँगने के लिए उसके निवास-स्थान पर पहुँच गई।

महामात्य को उसकी योजना की सफलता पर बधाई देते हुए उसने कहा, "मै समझती हूँ कि मुझको अपने विचारो की शुद्धि के लिए श्रीमान् की और अधिक सेवा करनी चाहिए। मैं इतने श्रेष्ठ व्यक्ति पर सन्देह करने के लिए लज्जित हूँ।"

"पत्रलता!" पद्मराज ने उसका बनाकर दिया पान मुख मे डालते हुए पूछा, "तुम्हारी आयु कितनी है?"

"अभी बाईस वर्ष से कुछ कम है।"

"और जानती हो कि मेरी आयु कितनी है?"

"श्रीमान् पचास के लगभग होंगे।"

"हाँ, मैं बावन वर्ष की आयु का हूँ। तुम्हारी ज्ञान-आयु अभी दो वर्ष की है। मेरी ज्ञान-आयु बत्तीस वर्ष की है अर्थात् ज्ञान-उपलब्धि की आयु मे मैं तुमसे सोलह गुना अधिक आयु वाला हूँ। इस कारण मेरे

अनुमान और ज्ञान मे और तुम्हारे ज्ञान में अन्तर होना स्वाभाविक ही है।

"इस पर भी मैं तुम्हारी बात को भूला नहीं हूँ। तुमने कहा था कि राज्यश्री वैष्णव होती हुई कन्नौज मे बौद्ध-प्रभाव के अधीन भीरु और उत्साहहीन हो गई थी। यही बात मुझको हर्षवर्धन के विषय मे सतर्क कर रही है।

"मै तुमको एक बात बताता हूँ। जो अवगुण तुमने राज्यश्री मे पाया था, वही अवगुण, उससे कुछ कम मात्रा मे, मैने हर्षवर्धन में भी पाया है। मैने कल यह प्रस्ताव रख दिया था कि वे राज्यारोहण कर ले। इस पर उन्होंने इस बात से इन्कार करते हुए कहा कि जब तक वे अपनी भगिनी के विषय मे पूर्ण जॉच नहीं कर लेते, तब तक वे कन्नौज के सिंहासन पर पॉव नहीं रखेगे।

"मैंने कहा था कि राज्य करना पुरुषों का काम है, स्त्रियॉ राज्य करने के योग्य नहीं होतीं। इस पर वे बोले कि कन्नौज का राज्य राज्यश्री का है और वे अपनी बहिन के अधिकार पर छापा नहीं डाल सकते।

"मुझको कुछ ऐसा भास हुआ है कि यह परिवार सीमा से अधिक भावुक है। बडा भाई, अपने बहनोई की हत्या को सुन मनोद्गार मे डूबा हुआ बिना योजना के, एक चतुर और बलशाली राज्य से टक्कर लेने चल पडा था और यह कुमार भावावेष मे राज्य जैसी वस्तु को मलिया-मेट करने की बात पर विचार कर रहा है।"

पत्रलता अपने अनुमान की पुष्टि पाकर चकित रह गई। उसने विस्मय मे पूछा, "पर श्रीमान् क्या करने वाले हैं?"

"मै ब्राह्मण का कार्य करूँगा। मै अपनी विचार की हुई सम्मति से हर्षवर्धन का पथ-प्रदर्शित करने का यत्न करूँगा।"

"पर यह तो कुछ नहीं हुआ श्रीमान्! देश और जनता के सम्मुख अपने उत्तरदायित्व को निभाने का यह उपाय ठीक नहीं है।"

"तो तुम क्या कहती हो, मुझको क्या करना चाहिए?"

"वह राज्य-परिवार राज्य करने के योग्य नहीं। इनकी शिक्षा-दीक्षा मे कुछ कहीं त्रुटि है, जिस कारण ये उच्छृङ्खलता करने के लिए विचार करते रहते हैं।"

"मेरा विचार है कि पत्रलता को हर्षवर्धन से सम्पर्क उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए और उसको सुमति देने का यत्न करते रहना चाहिए।"

"यदि श्रीमान् आज्ञा देंगे तो मैं यत्न करूँगी। इस पर भी मेरी यह सम्मति है कि इससे कुछ लाभ नहीं होगा। मै तो पुनः यही निवेदन करूँगी कि श्रीमान् अपनी स्थिति सुदृढ़ कर राज्य हस्तगत करें। इसमे ही देश के कल्याण की आशा है।"

पद्मराज हँस पड़ा। उसने कहा, "देखो पत्रलता! तुमको पश्चिम् के एक देश नजरथ के एक महापुरुष यशु मसीह के शिष्यो द्वारा लिखित एक ग्रन्थ मे वर्णित एक कहानी सुनाता हूँ। उसमे लिखा है,

"पृथ्वी पर अँधेरा था। न सूर्य था, न तारे थे। भगवान् की आत्मा इस अन्धकारमयी दुनिया पर डावाडोल घूमती थी। भगवान् के मन मे विचार आया तो उसने सूर्य बनाया; फिर उसने चाँद बनाया, पश्चात् पहाड, नदियाँ-नाले, पेड़ इत्यादि सृष्टि की सब वस्तुएँ बनाईं। इसमे छः दिन लग गए। इससे भगवान् थक गया और उसने सातवे दिन विश्राम किया।

"जब दुनिया बन गई तो भगवान् का मन अति प्रसन्न हुआ। इतनी बडी दुनिया में वह अपने को अकेला अनुभव करने लगा। इस कारण उसने मट्टी ली और अपनी नकल का एक बहुत सुन्दर पुतला बना दिया। जब पुतला बन गया तो उसने उसमे फूंक मारी और वह पुतला सप्राण हो गया। इसका नाम उसने आदम रखा।

"इससे भगवान् बहुत प्रसन्न हुआ। वह कभी-कभी आकर इस पुतले के साथ खेलकर मन बहलाया करता था। एक दिन आदम ने भगवान् से कहा, 'प्रभु! जब आप यहाँ नहीं होते तो मै बहुत उदास रहता हूँ। मै नहीं जानता कि क्या करूँ और किससे बात करूँ तथा किससे

खेलूँ ।'

"परमात्मा को अपने अकेलेपन का स्मरण हो आया और उसने आदम की कठिनाई को अनुभव किया। उसने आदम की एक पसली निकाल उसमे से एक औरत बना दी। इसका नाम हव्वा रखा। अब आदम और हव्वा इकट्ठे रहने लगे। परमात्मा जब पृथ्वी पर आता तो वे उसका मन बहलाते। जब परमात्मा चला जाता तो वे परस्पर खेलते-कूदते, बाते करते और ससार की अनेकानेक वस्तुओ से आनन्द उठाते। दोनो नग्न रहते थे, परन्तु उनको इसका ज्ञान नहीं था। वे स्त्री-पुरुष थे; परन्तु इनको इसका भी ज्ञान नहीं था। वे अदन नाम के स्थान पर रहते थे। यह स्थान इतना सुन्दर, सुख-प्रद और सुविधाजनक था कि उसको स्वर्ग कहा जाता था।

"परमात्मा ने आदम और हव्वा को मना कर रखा था कि वे ज्ञान-रूपी पेड के फल को न खायें, उस फल को खाने से उनका स्वर्ग से पतन हो जायगा। ये दोनो परमात्मा को परम हितेच्छु मानते थे। इस कारण ये अन्य सब प्रकार के फल खाते थे, परन्तु ज्ञानरूपी फल को नहीं खाते थे।

"एक दिन शैतान को परमात्मा का उन पर प्रभाव अखडने लगा। उसने एक साँप का रूप बनाया और हव्वा को सिखाने लगा कि वह ज्ञानरूपी फल खाये। जब हव्वा ने कहा कि परमात्मा ने मना किया हुआ है तो उसने हँसकर कहा कि वह तो ढोंगी है और स्वार्थी है। अपने को तुमसे ऊँचा रखने के लिए वह तुम्हें मना करता है। वह नहीं चाहता कि तुम उस ज्ञान को प्राप्त कर लो, जो उसको है और जो ज्ञान इस फल को खाने से उत्पन्न होता है।

"हव्वा लोभ मे फँस गई और उसने फल तोडकर स्वयं खाया और आदम को खिलाया। फल के खाने से उन दोनो को प्रथम ज्ञान यह हुआ कि वे नग्न हैं, उनको तन ढाँपना चाहिए।

"इसके पश्चात् जब परमात्मा आया तो हव्वा, जो नग्न थी और

जिसको नग्न होने का ज्ञान हो चुका था, एक पेड़ के पीछे जा छुपी। परमात्मा ने उसको छुपते देख कहा, 'हव्वा ! इधर आओ।'

'प्रभु ! मैं नग्न हूँ। मैं पर-पुरुष के सामने इस प्रकार कैसे आ सकती हूँ?'

"परमात्मा समझ गया कि उसने फल खाया है। इससे उसको क्रोध चढ़ आया। उसने आदम से पूछा कि उसने भी वह फल खाया है क्या? आदम ने बताया कि हव्वा ने उसे कहा, तो उसने भी खा लिया।

"परमात्मा ने उन दोनो को श्राप दिया तो दोनो स्वर्ग से गिरकर इस लोक मे आ गए और पश्चात् वे पति-पत्नी के रूप मे रहने लगे। उनके सन्तान हुई और उस सन्तान से यह वर्तमान मानव-सृष्टि उत्पन्न हो गई।"

जब पद्मराज यह कहानी सुना चुका तो बोला, "तब से यह कहावत प्रचलित हो गई है कि स्त्री-पुरुष को फुसलाती है और स्वर्ग से नरक मे ले जाती है।"

इस पर पत्रलता हँस पडी और कहने लगी, "तो श्रीमान् मुझको फुसलाने वाली समझते हैं?"

"मैं कुछ नहीं समझता। मैं राज्य पाना नहीं चाहता। तुम मुझको राज्य पाने और सम्राट् बनने के लिए कहती हो। यह फुसलाना है अथवा कुछ और, तुम स्वयं ही देख लो।"

"मै समझती हूँ कि ज्ञान का फल खाने के लिए हव्वा का आग्रह ठीक ही था। परमात्मा का उनको पुरुष-स्त्री होने के ज्ञान से वंचित रखना अन्याय था। हव्वा ने अपने अधिकारो को प्राप्त करना उचित समझा और फिर इसका परिणाम भी ठीक हुआ। आज यह चराचर सृष्टि उस ज्ञान का परिणाम ही तो है।"

"तो मैं यह समझूँ कि पत्रलता ज्ञान की उपलब्धि मेरे लिए उचित समझती है। मुझको वह प्राप्त करना चाहिए और स्वर्ग से पतित होकर जो संसार मुझको मिलेगा, वह ठीक ही होगा।"

"हाँ श्रीमान्! उससे ही मानव-समाज का कल्याण होगा।"

"पर जब हव्वा की प्रेरणा से आदम ने फल खाकर ज्ञान प्राप्त कर लिया तो दोनो इस संसार मे आ गए और फिर पति-पत्नी के रूप मे रहने लगे। क्या आधुनिक हव्वा भी ऐसा रहना चाहेगी?"

"चाहती, यदि सम्भव होता।"

"असम्भव क्यो है?" पद्मराज ने हँसते हुए पूछा।

पत्रलता का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसकी आँखे झुक गईं। उसने धीरे से कहा, "इसमे कारण कन्नौज के एक बडे व्यक्ति के परिवार का रहस्य है।"

"क्या मतलब?"

"छोडिए इस बात को। क्या हम अपने आशय से दूर नहीं भटक गए? यदि श्रीमान् को नई पत्नी की आवश्यकता पड़ेगी तो लडकी ढूँढ दी जायगी। यह ताम्बूलिन किसी राज्य की महारानी बनने के योग्य नहीं है।"

"तो ठीक है। यह श्रीमान् भी महाराज बनने के योग्य नही। परन्तु पत्रलता! तुमने अपने जीवन मे झाँकने का निमन्त्रण देकर और उसकी खिडकी बन्द कर मेरे मन मे भारी हलचल मचा दी है। तुम कौन हो और कहाँ की रहने वाली हो? यह सब क्या रहस्य है? और फिर तुम्हारा और मेरा इससे क्या सम्बन्ध है?"

"रहस्य बताने के लिए नहीं होते श्रीमान्! बुद्धिमानो के लिए ये जानने के विषय हो सकते है। पर मेरा यह विचार है कि इन पर मस्तिष्क खराब करना समय का अपव्यय करना है।

"हमारे वार्तालाप का विषय था कि क्या स्थानेश्वर के वर्धन-परिवार को भारत के सम्राट् पद पर आसीन करने का यत्न किया जाये? मेरी तुच्छ सम्मति इसके विरुद्ध थी।

"इन पर श्रीमान् मेरी सम्मति का समर्थन कर रहे प्रतीत होते हैं।"

"हां; परन्तु पत्रलता! भारत मे जितने भी राज्य-परिवार है, उनमे

यह सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होता है।"

"हम यह बातचीत करते हुए एक चक्र मे नहीं घूम रहे क्या ? मेरा प्रश्न तो यही है कि क्या जन-साधारण मे से कोई नवीन राज्य-परिवार उत्पन्न नही हो सकता ?"

"मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता। यह हो सकता है कि कहीं किसी टूटे खण्डहर की ईंटों के नीचे कोई व्यक्ति पड़ा हो, जो भारत का सम्राट् बन सकता हो। अभी तक तो मिला नही। हमको तो जो उपलब्ध है, उससे ही कार्य चलाना है।"

: ४ :

हर्षवर्धन ने अपने कन्नौज मे पहुँचने से अगले दिन ही पद्मराज को अपना महामात्य घोषित कर दिया और उसके साथ दो-चार अन्य सहायक अमात्य भी नियुक्त कर दिए। पद्मराज के महामात्य नियुक्त होने से जनता में सन्तोष की तरंग चलने लगी और प्रत्येक के मुख से हर्षवर्धन की जय-जयकार होने लगी। इतना कर हर्षवर्धन ने एक पत्र कामरूप के महाराज प्रभाकर वर्मन को लिखा। उसमे शशाक के धोखा और झूठ का वर्णन कर दिया। साथ ही उसने यह भी लिखा कि इस प्रकार के धूर्त राजा को भारत की पुण्य-भूमि से दूर कर देना देश के कल्याण मे है। अन्त में हर्षवर्धन ने लिखा, "मै अभी बालक-मात्र हूँ। पिता के स्वर्गवास और बड़े भाई की हत्या से अत्यन्त विक्षुब्ध-मन हूँ। अतः आप-जैसे देश तथा समाज के हितेच्छुओं से आशा करता हूँ कि मेरे ऊपर अपना कृपा का हाथ सदैव रखे। साथ ही मैं अपनी बहिन राज्यश्री को छुड़ाना चाहता हूँ। वह शशाक ने ही कहीं बंदी कर रखी है।

"मैं श्रीमान् जी से प्रार्थना करता हूँ कि वे शशाक को लिखे कि वह मेरी बहिन को मुक्त कर दे और मेरे भाई की हत्या का प्रायश्चित करे, अन्यथा हम उसके राज्य की ईंट-से-ईंट बजा देंगे।"

इस पत्र को चतुरानन के हाथ भेज हर्ष ने एक पत्र शशाक को

वशेप दूत के हाथ भेज दिया। इसमे उसने लिखा,

"गौड-नरेश की सूचना के लिए।

"मेरे ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन की तुम्हारे राज्य-प्रासाद मे हत्या की गई है। मेरी भगिनी राज्यश्री तुम्हारे किसी बदी-गृह मे बंदी पड़ी है। अतः मैं, हर्षवर्धन, स्थानेश्वर-नरेश तथा कन्नौज का रक्षक, यह चाहता हूँ कि राज्यश्री को तुरन्त छोडकर कन्नौज भेज दो और महाराज कुमार राज्यवर्धन की हत्या के प्रायश्चित मे कन्नौज की अधीनता स्वीकार कर लो। इस अधीनता के प्रतिरूप प्रथम वर्ष का कर दो लक्ष स्वर्ण तुरन्त कन्नौज भेज दो।

"यदि ये दोनो माँगे एक मास के भीतर पूर्ण नही हुईं, तो मै कन्नौज-सेना के साथ गौड-राज्य पर आक्रमण कर दोनो बाते स्वीकार कराऊँगा।"

जब दूत हर्षवर्धन का यह पत्र लेकर गौड-नरेश की सभा मे उपस्थित हुआ, तो शशाक ने पत्र को फाड़कर टुकडे-टुकडे करते हुए दूत को मौखिक सन्देश दिया,

"हे दूत! तुम जाकर अपने राजकुमार से कह देना कि राज्यश्री हमारे बंदी-गृह मे नहीं है। इस कारण उसको हम नहीं भेज सकते।

"महाराजकुमार राज्यवर्धन की हत्या हमने नहीं की। वे तो गौड़ की एक नर्तकी के गृह मे मारे गए हैं। अतएव उनकी हत्या का उत्तरदायित्व हमारे ऊपर नहीं है। इस कारण हम आपकी इन अनर्गल बातो को पूर्ण नहीं कर सकते।"

दूत के वापिस आने पर हर्षवर्धन ने सेनापति भंडी को गौड पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। भडी ने अपनी सेना के तीन भागकर, तीन ओर से गौड पर आक्रमण कर दिया।

शशाक के पास कामरूप के राजा प्रभाकर वर्मन का पत्र भी पहुँचा था। इसमे उसने लिखा था कि राज्यश्री को बंदी बनाकर रखना भारतीय सभ्यता के सर्वथा प्रतिकूल है। यदि उसे तुरन्त न छोडा गया तो कामरूप की सेना गौड-राज्य पर आक्रमण कर देगी।

इसके उत्तर में शशांक ने प्रभाकर वर्मन को राज्यश्री का पता लिख भेजा। उसने लिखा, "मालव-राज्य मे विन्ध्याचल पर्वत पर विन्ध्याटवी वन मे दिवाकर नाम के भिक्षु के आश्रम मे राज्यश्री रहती है। वह आश्रम मेरे राज्य मे नहीं और न ही मेरे अधीन है।"

शशाक का इस सूचना को भेजने का आशय यह था कि कामरूप कन्नौज के आक्रमण के साथ-साथ आक्रमण न कर दे। इस कारण उसने प्रभाकर वर्मन को सन्तोष दिलाने के लिए राज्यश्री का पता लिख भेजा। इस प्रकार कामरूप से अपने को सुरक्षित कर, उसने अपनी पूर्ण सेना भंडी सेनापति की सेना से टक्कर लेने के लिए खड़ी कर दी।

प्रभाकर वर्मन ने राज्यश्री का पता हर्षवर्धन को लिख भेजा। हर्ष-वर्धन स्वयं गौड पर आक्रमण करने के लिए जाने वाला था, परन्तु इस सूचना को पाकर उसने भडी को ही युद्ध के लिए भेज दिया और स्वय पद्मराज के साथ विन्ध्याटवी वन की ओर चल पड़ा।

कन्नौज-राज्य तथा मालव-राज्य दोनो की सीमाएँ विन्ध्याचल पर मिलती थी। विन्ध्याचल पर शर्वर जाति के लोग वसे हुए थे और ये लोग दोनो राज्यो से मैत्री रखते थे। पद्मराज ने शर्वर जाति के नेता भूकम्प से राज्यश्री को ढूँढने मे सहायता माँगी। भूकम्प ने वताया कि विन्ध्याटवी मे एक बौद्ध चैत्य है। उसमे बौद्ध-परिवार के दिवाकर मित्र गुरु-पद पर आसीन हैं। यह आश्रम मालव-राज्य मे है। अतः हर्षवर्धन पद्मराज के साथ और अपने सेवको के साथ सीमा पार कर उस आश्रम मे जा पहुँचा।

आश्रम मे प्रायः भील, शर्वर, गौड आदि जातियो के लोग ही भिक्षुक बनकर रहते थे। जब वे लोग वहाँ पहुँचे, तो पद्मराज ने अपने एक सेवक को महाराज हर्षवर्धन का परिचय देकर दिवाकर मित्र को सूचना भेजी।

दिवाकर मित्र सूचना पाकर भागा हुआ हर्षवर्धन का स्वागत करने आया। सब को आश्रम के अन्दर ले जाकर, उसने उनकी बहुत सेवा तथा आव-भगत की। हर्षवर्धन ने अपने आने का प्रयोजन बता दिया।

यह सुनकर दिवाकर मित्र ने कहा, "महाराज! इस रूपरेखा तथा नाम वाली स्त्री हमारे आश्रम मे नही है। इस आश्रम मे भगवान् तथा-गत का सन्देश इन वनवासी शर्वर-गौड-भील इत्यादि तक पहुँचाने का आयोजन हैं। यहॉ उत्तर भारत की आर्य जाति की कोई स्त्री नहीं है।"

"तो शशाक ने हमे धोखा दिया है?"

"महाराज! इस विषय मे मैं क्या कह सकता हूँ?"

पद्मराज ने हर्षवर्धन से कहा, "महाराज! हमे शीघ्र ही यहॉ से लौट चलना चाहिए और अपनी खोज किसी अन्य स्थान पर करनी चाहिए।"

हर्षवर्धन राज्यश्री को यहॉ न पाकर वास्तव मे बहुत ही निराश हुआ था। उसे विश्वास था कि शशाक की यह सूचना, जबकि कामरूप उसकी पीठ पर आक्रमण करने के लिए तैयार है, ग़लत नहीं हो सकती। अब दिवाकर मित्र को शान्त और गम्भीर भाव मे राज्यश्री के विषय मे अनभिज्ञता बताते सुन, उसे विश्वास हो गया कि शशाक ने यहॉ भी धोखा दिया है।

निराश वह वहॉ से चलने के लिए दिवाकर मित्र से आज्ञा लेने लगा ही था कि उसी समय कुछ शर्वर स्त्रियॉ भागती हुई वहॉ आई और कहने लगीं, "भगवन्! एक गौर वर्णीय स्त्री अपने को जलती चिता मे भस्म करने जा रही है।"

"क्यो?" दिवाकर मित्र ने प्रश्न किया।

"महाराज!" शर्वर स्त्री ने कहा, "वह बेचारी बहुत ही दुःखी प्रतीत होती है। वह विधवा है, उसका राज्य छीना गया है। उसके भाई की हत्या हो चुकी है और शत्रु राजा ने उसके साथ बहुत ही दुर्व्य-वहार किया है। अतएव वह इस मलिन शरीर को त्याग देना चाहती है।"

"बहुत ही शोचनीय अवस्था है।"

हर्षवर्धन इस स्त्री का वर्णन सुन रहा था। उसको तुरन्त विश्वास

हो गया कि यह स्त्री राज्यश्री ही होगी। अतः उसने दिवाकर मित्र से कहा, "भगवन्! ऐसा प्रतीत होता है कि जिसकी खोज मे मैं यहाँ आया हूँ, यह वही स्त्री है। आप चलकर उसे बचाइये।"

दिवाकर मित्र यह सुनकर उठ खड़ा हुआ और उन शबर स्त्रियों के साथ उस ओर चल पड़ा, जिस ओर से वे भागती हुई आई थीं। हर्षवर्धन और पद्मराज तथा अन्य राज्य कर्मचारी भी साथ-साथ चल दिए।

नदी के तट पर एक बहुत बड़ा ढेर सूखी लकड़ियो का लगा हुआ था। उन लकड़ियो पर एक स्त्री श्वेत परिधान मे, माथे और बाहों पर चन्दन का लेप किये, खुले केशो के साथ बैठी भगवान् को स्मरण कर रही थी। उसके समीप ही घी, चन्दन आदि आग लगाने का समान रखा था।

हर्षवर्धन उसे देखते ही पहिचान गया कि यही उसकी बहिन राज्यश्री है। उसे पहिचानते ही वह उतावला हो! राज्यश्री! राज्यश्री!!' चिल्लाता हुआ चिता पर चढ़ गया।

हर्षवर्धन ने उसे पकड़कर गले लगा लिया और विह्वल हो रोने लगा। राज्यश्री, जो दृढ़ निश्चय कर चिता पर बैठी थी, अपने भाई को इस प्रकार विह्वल हो रोते देख द्रवित हो उठी। उसकी आँखो से आँसुओ की अविरल धारा बहने लगी।

हर्षवर्धन उसे उठाकर नदी-तट पर ले आया और रोते हुए कहने लगा, "बहिन चलो।"

"कहाँ?" राज्यश्री ने अपना मुख ढाँपते हुए पूछा।

इसका उत्तर दिवाकर मित्र ने दिया, "बेटी! यहाँ समीप ही आश्रम है। वहाँ चलो, तुम्हारे मन की मैल धुल जाएगी। भगवान् बुद्ध की कृपा से मन शुद्ध होकर शान्ति प्राप्त करोगी। तुम अत्यन्त भाग्यशालिनी हो, जो हम समय पर आ पहुँचे हैं। अन्यथा तुम मिथ्या मार्ग पर जा रही थी। भगवान् तथागत की अपार कृपा है कि हम तुम्हे मिथ्या मार्ग से रोक

सके हैं।''

राज्यश्री चुप रही। हर्षवर्धन ने भी आश्रम मे ही जाना उचित समझा। अतः सब पुनः आश्रम मे जा पहुँचे।

: ५ :

''देवी!'' दिवाकर मित्र का कहना था, ''इस शरीर को क्यो नष्ट करने जा रही थीं?''

''भगवन्! यह शरीर कलुषित हो गया है। इसको बचाकर रखने मे अब कुछ प्रयोजन नही रहा।''

''शरीर कलुषित कैसे हो सकता है? देवी यह तो जल से धोकर साफ किया जा सकता है। कलुषित होता है मन। मन को भी शुद्ध करने का उपाय है। जप और प्रायश्चित करो। भगवान् तथागत की अपार कृपा है। ग्रहवर्मन मेरा मित्र था और उसका भगवान् के सिद्धान्तो पर अगाध विश्वास और श्रद्धा थी। अतएव तुम्हे भी भगवान् तथागत पर विश्वास और श्रद्धा रख निर्वाण-प्राप्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए। भगवान् तथागत तुम्हारी सहायता करेगे।

''ससार का कोई प्राणी ऐसा नहीं, जो भगवान् की कृपा पा जाने से निर्वाण-पथ पर अग्रसर न हुआ हो। इस कारण बेटी! तुम्हारा कल्याण होगा। बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, मंत्र का जाप करो, तुम्हारा कल्याण होगा।

''देखो आत्म-हत्या करने से तुम मन को, जो सब प्रकार के पापों का स्थान है, मार नही सकतीं। यह अपने इस जन्म के कर्मों को अगले जन्म में साथ ले जायगा। इसको शुद्ध कर सकती हो और इससे मुक्ति पाने का उपाय निर्वाण-प्राप्ति ही है।''

राज्यश्री को आश्रम मे भिक्षुणी बन कर रहना अपनी समस्या का सुझाव समझ आया; परन्तु हर्षवर्धन तो बहिन को कन्नौज के सिंहासन पर बैठाने का विचार रखता था। इस कारण उसने बहिन का निर्णय

सुनकर कह दिया, "राज्यश्री ! मै तुम्हे ले जाने के लिए आया हूँ।"

"कहाँ ?"

"कन्नौज के राज्य-सिंहासन पर बैठाने के लिए।"

"नही हर्ष ! मै राज्य नही करूँगी। मै अब इस ससार मे रहने मे कुछ भी सार नहीं समझती। हर्ष ! मुझको भूल जाओ। समझ लो कि मैं जलकर भस्म हो चुकी हूँ। राज्यश्री कन्नौज की महारानी अब इस ससार मे नही है। तुम जाओ और कन्नौज का राज्य करो।"

हर्षवर्धन ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु राज्यश्री नही मानी। अगले दिन वह सिर मुडा, पीत वसन धारण कर भिक्षुणी बन गई।

पद्मराज इससे सन्तुष्ट नहीं था। सबसे पूर्व वह राज्यश्री का इतने दिन का इतिहास जानना चाहता था। वह जानना चाहता था कि वह कहाँ रही थी और किसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था; परन्तु पद्मराज को राज्यश्री से भेट करने का अवसर ही नहीं मिला। उसी रात पद्मराज ने हर्षवर्धन से कहा, "महाराज ! इन मनोद्गारो मे वास्तविक बात को हम नही जान सके।"

"वास्तविक बात क्या है महामात्य ! जो आप जानना चाहते हैं ?"

"मै यह जानना चाहता हूँ कि महारानी इतने दिन कहाँ रहीं। वे शशाक के अधिकार मे थीं अथवा मालवराज्य के।"

"क्या होगा यह जानकर ?"

"हम जान लेगे कि शशाक की धूर्तता कितनी दूर तक गई है। महाराज ! मुझको सन्देह हो रहा है कि शशाक ने ही उसको बन्दी बनाकर रखा हुआ था। जब उसने देखा कि कामरूप की सेना भी उसपर आक्रमण कर रही है, तो उसने राज्यश्री को इस वन मे लाकर छोड दिया है।"

"परन्तु इसके जानने से क्या होगा ? गौड पर हमने आक्रमण तो कर ही दिया है।"

"होगा यह कि कामरूप के महाराज को भी हम गौड पर आक्रमण

करने के लिए उत्साहित कर सकेंगे। इससे हमारा कार्य सुगम हो जायगा।"

"मै समझता हूँ कि इस समय गौड-सेना पराजित हो रही होगी।"

"इससे तो यह सिद्ध हो जायगा कि वास्तव मे महारानी राज्यश्री वन्दी नहीं थी। वे वैराग्यवश कन्नौज से चली आई थी।"

"महामात्य! हमे इन बातो से किसी प्रकार का सरोकार नहीं। राज्यश्री जीवित है, मुझको यह देखकर अतीव प्रसन्नता हो रही है। मैं अब उसे व्यर्थ की बाते पूछकर अधिक दुःखी नहीं करना चाहता। अब तो वह सन्यासिन हो रही है। यह और भी हर्ष की बात है।"

पद्मराज को इससे सन्तोष नही हुआ। अगले दिन वह प्रयत्न करता रहा कि राज्यश्री से मिल सके। परन्तु उसके सिर मुडाने से पूर्व यह सम्भव नही हो सका। पद्मराज उसके भिक्षुणी बनने के पश्चात् ही उससे पूछ सका, "भन्ते! क्या मै जान सकता हूँ कि आप इतने काल तक कहाँ रही है?"

"क्या लाभ होगा यह जानकर?"

"सत्य इतिहास जानने से जो लाभ होता है, वही होगा।"

"मूर्ख ससार की बातो को मै भूल चुकी हूँ। मै उनको स्मरण कर पुनः अपने मन मे मैल नही लाना चाहती। मेरा यहाँ न कोई शत्रु है, न मित्र। मै इस विषय पर अब बात करना नहीं चाहती।"

पद्मराज ने उसे कुछ-न-कुछ कहने के लिए विवश करने के लिए कहा, "मैं समझता हूँ कि आप इस आश्रम मे चिरकाल से रह रही थी और दिवाकर-मित्र जी ने आपको छुपाकर रखा हुआ था। कल जो कुछ आप करने वाली थीं, वह केवल मात्र एक नाटक था। आप दिवाकर मित्र जी का अनावश्यक राजनीति मे हस्तक्षेप छुपाने के लिए कुछ कहना नही चाहतीं।"

राज्यश्री ने विस्मय मे पद्मराज के मुख पर देखकर केवल यह कहा, "मन की भ्रांति दूर करने के लिए केवल एक उपाय है, भगवान् की शरण मे जाना। महामात्य! अब आप हर्ष को लेकर यहाँ से चले जाइये?"

"आपसे बलात्कार किया गया है क्या ?"

राज्यश्री बिना उत्तर दिये वहाँ से एक ओर चल दी।

पद्मराज किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सका। वह दिवाकर मित्र की सेवा मे जा पहुँचा। उसने सामने बैठ वार्तालाप प्रारम्भ करने के लिए उनसे कहा, "भगवन्! हम आज यहाँ से जा रहे है। हमारी सेना राज्यश्री को बदी बनाने वाली सेना के साथ युद्ध करने मे संलग्न है। यदि हम अपनी सेना का नेतृत्व करने नहीं पहुँचते तो सेना और जनता हमारी शौर्यता पर सन्देह करने लग जायेगी।"

दिवाकर मित्र ने केवल यह कहा, "शान्तं पापं! शान्त पापं!!"

"हाँ भगवन्! हम यही करने जाना चाहते है।"

"पर महामात्य! एक पाप को शान्त करने के लिए दूसरा पाप कैसे सहायक हो सकता है ?"

"भगवन्, जैसे एक खड्ग को काटने के लिए दूसरी खड्ग की आवश्यकता रहती है। जिस प्रकार सूई से कॉटा निकल जाता है, अथवा जैसे हथौडे से पत्थर तोडा जाता है।"

"पर पाप क्या पत्थर है अथवा खड्ग है ? यह तो मन की एक अवस्था का नाम है। इस अवस्था का सुधार ही पाप को शान्त करने का उपाय है।"

"हाँ भगवन्! मन का सुधार मन की प्रेरणा से होता है। युद्ध तो केवल साधन है। यह मन के पास एक अस्त्र है। जब युक्तियॉ असफल हो जाती हैं, तो युद्ध सफल होते हैं।"

"यह मिथ्या युक्ति है। संसार के आरम्भ से युद्ध को शान्ति लाने के लिए प्रयोग मे लाया जाता रहा है। इससे शान्ति स्थापित नहीं हो सकी।"

"परन्तु भगवन्! युक्ति और प्रेरणा का प्रयोग भी युद्ध से कम नहीं हुआ। जब-जब भी ससार के श्रेष्ठ जनो ने युद्ध किया है, उससे पूर्व उन्होंने सदैव युक्ति और प्रेरणा का प्रयोग किया है। युद्ध तो उन उपायों के

असफल होने पर ही प्रयोग में लाया जाता रहा है। भारत-युद्ध के समय भगवान् कृष्ण ने युद्ध होने से रोकने के लिए विपुल प्रयत्न किया था। पाँडवो के लिए आधे राज्य के स्थान पाँच गाँव लेने के लिए तैयार हो गए थे, परन्तु दुष्ट प्रकृति के मनुष्य भला युक्तियों से अथवा प्रेरणा से कभी माने हैं? वे तो भले जनों के झुकने को उनकी दुर्बलता मान लेते हैं। ऐसी अवस्था मे युद्ध अनिवार्य हो जाता है।"

"युद्ध अनिवार्य हो अथवा अनावश्यक, युद्ध युद्ध ही है। इसमें मानवों की हत्या होती ही है। नर-रक्त प्रवाह तो युद्ध के साथ सम्बन्धित बात है। यह तो किसी अवस्था मे भी क्षम्य नही हो सकता। संसार मे शान्ति स्थापित करने का एक ही उपाय है और वह है युक्ति, धैर्य, सहनशीलता और क्षमा।"

"इसमें हमारा बौद्ध-मत वालो से मत-भेद है प्रभु! हम यह मानते है कि युद्ध से पहले समझौते अथवा वार्तालाप से शान्ति का सुझाव ढूँढा जाय, परन्तु हम प्रत्येक अवस्था मे युद्ध को वर्जित नही मानते। ऐसी अवस्था मे, जब अन्य सब उपाय विफल हो जाते हैं, तो युद्ध ही एक उपाय शेष रह जाता है, जो प्रयोग मे लाया जाता है।"

इस समय पद्मराज ने बात को बदलने के लिए कहा, "परन्तु भगवन्! यह राज्यश्री का आपके आश्रम के समीप एकाएक प्रकट हो जाना वास्तव में विस्मयकारक है। हमारा विचार था कि वह शशाक के बन्दीगृह में बन्दी थी, परन्तु जब उसने यह कहला भेजा कि वह आपके आश्रम में रहती है, तो हम यहाँ आये। वह आपके यहाँ नहीं थी। जब हम निराश हो यहाँ से जाने लगे, तो महारानी जी के सती होने के लिए तैयार होने का समाचार मिल गया। हम वहाँ गए तो चिता अभी प्रज्ज्वलित नहीं हुई थी और महाराज हर्षवर्धन ने यत्न किया तो महारानी जी तुरन्त चिता पर जलने का विचार छोड बैठीं और आपके सकेत-मात्र से भिक्षुणी बनने को तैयार हो गई। यह सब आश्चर्यजनक नहीं है क्या?"

"सब भगवान् तथागत की कृपा का फल है। भगवान् ने सब संसार

के उद्धार का उपाय बताया है। हम कौन हैं किसी पर न्याय करने वाले? हम स्वयं कौन हैं, जो दूसरो के छिद्रान्वेषण करने मे लग जाएँ।"

"भगवन्!" पद्मराज ने कहा, "यहाँ आप तथा किसी अन्य व्यक्ति का प्रश्न नही। मै तो समाज की बात कहता हूँ। समाज की रक्षा राज्य का कार्य है। समाज से मेरा अभिप्राय समाज में प्रचलित आचार-विचार से है। इस आचार-विचार के विरोधी तत्त्वो को समाज-हित मे कर देने का यत्न राज्य-कार्य है। यह जानना कि किस व्यक्ति का व्यवहार कहाँ समाज-हित का विरोध करता है, छिद्रान्वेषण नही कहाता। यह राज्य का कर्त्तव्य है। अतः मेरा आपसे निवेदन है कि आप मेरे उक्त प्रश्नों पर प्रकाश डालने का कष्ट करे।"

"हम राज्य नहीं हैं। यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम दूसरे के दोष और गुण वर्णन करते रहें।"

"पर भगवन्! मै तो राज्य का एक अधिकारी हूँ। मेरा तो कर्त्तव्य है कि दोष को ढूँढ कर, उसको निकालकर बाहर करूँ। अतः मै आपसे जो प्रश्न करूँ, वह आप बताने की कृपा करे।"

"मैं तुम्हारी प्रजा नहीं हूँ। अतः तुम्हारे प्रश्नो का उत्तर देना अपना कर्त्तव्य नहीं मानता। न ही मै तुम्हारा अधिकार मानता हूँ कि मुझ से कुछ पूछो।"

पद्मराज निरुत्तर हो गया। इस पर भी ज्यो-ज्यो दिवाकर मित्र उसके संशयो का निराकरण करने से इन्कार करता गया, उसका अनुमान दृढ़ होता गया कि राज्यश्री का एकाएक आश्रम के पास प्रकट हो जाना आश्रम के षड्यन्त्र का परिणाम है। उसने अपने प्रयास के लिए एक अन्तिम प्रयत्न किया। उसने कहा, "भगवन्! यह तो ठीक है कि मै मालव-राज्य में कुछ भी अधिकार नहीं रखता और आप अपने को मालव-प्रजा मानते हैं। इस पर भी जहाँ तक सामाजिक प्रचलन का सम्बन्ध है, क्या भारत के सब राज्यों मे एकता नहीं? आप मेरे सन्मुख उत्तरदायी न हों, परन्तु आप मालव-राज्य के सामने तो उत्तरदायी हैं।

आप क्या मालव के देवगुप्त और गौड-नरेश की दुष्टता पर पर्दा नहीं डाल रहे और उनको समाज की दृष्टि मे उच्च और श्रेष्ठ, जो वे नही हैं, प्रकट होने मे सहायक नहीं हो रहे ?"

"तुम मालव-समाज का अंग भी नही हो। तुम यह सब मुझसे पूछ भी कैसे सकते हो ?"

"भगवन् ! समाज तो मालव और गौड आदि भागो मे बटा हुआ नहीं है। भारतखण्ड मे एक समाज है और उस समाज का मै भी एक अग हूँ। हमारे समाज मे पर-स्त्री अपहरण एक भारी अपराध माना जाता है। आपने क्या इसमे सहायता नही दी ?"

"देखो महामात्य ! मैं इस कारण कह रहा हूँ कि जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक उससे हमारा राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि कुछ अर्थ रखते है; परन्तु मरने के पश्चात् तो उसको बदनाम करना कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं करता।"

"कठिनाई यह है कि आप सदैव व्यक्ति को ही दृष्टि मे रखते हैं। समाज का अस्तित्व आपकी दृष्टि मे है ही नहीं। इसी कारण आपकी विचारधारा और हमारी विचारधारा भिन्न-भिन्न दिशाओ मे जाती है। किसी मृत व्यक्ति के कार्यों का ज्ञान इस कारण नहीं होता कि उससे जो प्रशसा अथवा घृणा उसके प्रति उत्पन्न होगी, वह उस मृत व्यक्ति को लाभ अथवा हानि पहुँचा सकती है। इसमे लाभ यह होता है कि समाज के सामूहिक आचार-विचार पर, उस गुण-दोषान्वेषण का प्रभाव पडता है। मानव अपनी की गई भूलो को जानकर उससे बचता है और पहले किये गए उचित कर्मो के ज्ञान से, आगे उन्नत अवस्था तक पहुँचने का यत्न करता है।

"रावण ने सीता का हरण किया था और उसका राज्य, उसका यश और सस्कृति सब नाश को प्राप्त हुई। इस अपहरण की बात और उसके परिणामो की बात को स्मरण रखने से क्या हम पुनः वैसी भूल करने से बचते नहीं ?"

इसी समय हर्षवर्धन आश्रम छोड़ने से पूर्व दिवाकर मित्र परिव्राट् से विदाई लेने आ पहुँचा। पद्मराज और दिवाकर मित्र मे बात आगे नहीं चल सकी। हर्ष के भीतर प्रवेश करते ही दिवाकर मित्र उठ खड़ा हुआ और हर्षवर्धन को विदा देते हुए उपदेश देने लगा, "कुमार!" उसने कहा, "संसार में बहुत दुःख, क्लेश और पाप है। जितना कोई इसमे लिप्त रहेगा, उतना ही वह पतन की ओर जायगा। किये हुए पापो को स्मरण रखने से मनुष्य उन्ही पाप-कर्मो की ओर खिचता है। पाप करने मे आनन्द आता है और किये हुए पाप-कर्मों को स्मरण करने से उस आनन्द का भी स्मरण होता है। अतः पाप से बचने का केवल मात्र एक ही उपाय है कि आगे की ओर देखो। पीछे घूम-घूम कर देखने से मनुष्य न केवल अपनी उन्नति में बाधक बनता है, प्रत्युत् पुनः अन्धकार के गर्भ मे गिरने की सम्भावना उत्पन्न करता है।

"कुमार! पीछे की विसार दो और आगे की सुध लो।"

इतना कह दिवाकर मित्र ने हर्षवर्धन को आशीर्वाद दिया। उसने कहा, "भगवान् तथागत तुम्हारी दृष्टि को निर्मल करें। तुम भगवान् के महान् कार्य को आगे ले जाने वाले सिद्ध हो। सत्य का प्रकाश तुम्हारे मन में हो और तुम ससार में अमित कीर्ति लाभ करो।"

इस आशीर्वाद के पश्चात् हर्षवर्धन अपने साथियो के साथ आश्रम से निकल, मालव-राज्य की सीमा पार करने को चल पड़ा। वह शीघ्राति-शीघ्र अपने राज्य की सीमा में प्रवेश कर जाना चाहता था।

: ६ :

वापिस लौटते समय हर्षवर्धन ने कहा, "महामात्य! मैं आज राज्यश्री से वार्तालाप करता रहा हूँ। मैंने उससे पूछा था कि वह इतने काल तक कहाँ थी। किसी की वन्दी थी अथवा स्वतन्त्र?"

पद्मराज के कान खड़े हो गए। हर्षवर्द्धन ने आगे कहा, "राज्यश्री कहने लगी कि इसके जानने से कुछ लाभ नहीं होगा। उसने बताने से

इन्कार कर दिया है।"

पद्मराज को इस उत्तर से निराशा हुई। उसने कहा, "महाराज! मैंने भी इस विषय पर परिव्राट् जी से बातचीत की थी। उन्होंने भी मेरे प्रश्नो का उत्तर देने से इन्कार कर दिया। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मेरा अथवा आपका इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं रहा परन्तु भारत-समाज का तो ऐसी घटनाओ से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज के भविष्य के लिए घटनाओ का सत्य-सत्य वर्णन और उन घटनाओ से उत्पन्न परिणामो का ज्ञान समाज की उन्नति मे एक महान् साधन होते है। यही उद्देश्य इतिहास-पुराण इत्यादि लिखने का होता है। ये बौद्ध भदन्त सत्य को छुपाकर समाज को इस उन्नति से वञ्चित करने का यत्न कर रहे हैं।"

"छोडो महामात्य! अब हमे विचार यह करना है कि इस नई परिस्थिति मे हमें क्या करना चाहिये। हम अभी तक यह आशा लगाए हुए थे कि राज्यश्री को कन्नौज की राज्यगद्दी पर बैठायेंगे। यह अब नहीं हो सकेगा। अब क्या किया जाय?"

"महाराज! मेरा तो स्पष्ट मत है कि स्थानेश्वर और कन्नौज राज्यो को एक कर देना चाहिए और श्रीमान् को इस सम्मिलित राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले लेनी चाहिये। गौड-राज्य को विजय कर पृथ्वी को शशाक के भार से मुक्त कर देना चाहिये। मालवा में इस समय अराजकता विद्यमान है। देवगुप्त का शिशु पुत्र राजा घोषित किया जा चुका है। वास्तव मे देवगुप्त की पत्नी महारानी बन राज्य-कार्य चला रही है। वह राज्य करने के अयोग्य है और उसके प्रेमी मालवा पर राज्य करते हैं। वहाँ भी बौद्धो का प्रभाव बढ़ता जाता है, जो देश के हित मे नहीं है। अतएव गौड-विजय के पश्चात् मालवा पर आक्रमण कर अधिकार कर लेना चाहिए। इस प्रकार सिन्धु नदी से लेकर पाटलीपुत्र तक और हिमाचल के दक्षिण पार्श्व से लेकर नर्मदा तक एक सुदृढ़ साम्राज्य बनाकर हूणो को गाधार से बाहर करने का यत्न करना चाहिए। इतना कुछ तो मै अपनी ऑखो के सामने स्पष्ट देख रहा हूँ। फिर जीवन शेष

रहा तो भारतीय धर्म और सस्कृति को विदेशो तक ले जाने के लिए विचार किया जायेगा।"

हर्षवर्धन यद्यपि इस सुन्दर चित्र से मन मे उल्लास और सन्तोष अनुभव कर रहा था, परन्तु परिव्राट् देवमित्र के उपदेशो के प्रभाव के कारण कहने लगा, "इतना कुछ करने के लिये हमे कितनी सेना की आवश्यकता पड़ेगी?"

"इतने बडे साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए एक लक्ष सेना चाहिए और फिर सिन्धु नदी के पार जाकर अपनी विजय-पताका फहराने के लिए दो लक्ष सेना और चाहिए।"

"महामात्य! आप क्या समझते हैं कि इन सब युद्धो मे, जो साम्राज्य को बनाने के लिए करने पडेगे, कितने योद्धाओ के रक्त से भूमि सीचनी पडेगी।"

"कम-से-कम एक लक्ष सैनिको की बलि देनी पडेगी।"

"क्या मुझको अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए यह पाप करना होगा? मानव-जीवन की इस महान् हानि को, अपनी महिमा बढाने के लिए, करना ठीक रहेगा क्या?"

पद्मराज समझ गया कि मस्तिष्क पर रग कहाँ का चढा है। इस रंग को उतारने के लिए उसने अपनी युक्ति दृढ़ता से उपस्थित की। उसने कहा, "महाराज! यह किसने कहा है कि ये युद्ध स्थानेश्वर के महाराज हर्षवर्धन का साम्राज्य बढाने के लिए किए जायँ? जिस देश मे युद्ध व्यक्तिगत लाभ के लिए किए जाते हैं, वह देश निश्चित रूप से रसातल को जाता है। यह भारत की रीत नही। कम-से-कम हम आपको ऐसे प्रयास मे सहायता नही दे सकते। मेरा निवेदन तो केवल यह है कि भारत की रक्षा के लिए, भारतीयता के फलने-फूलने के लिए और यहाँ पर चिरन्तन सुख-शान्ति के लिए एक विशाल तथा सुदृढ़ शासन की आवश्यकता है। इस समय देश की परिस्थिति ऐसी बन रही है कि कन्नौज, स्थानेश्वर, गौड तथा मालवा तो एक सूत्र में बधे बिना नहीं

रह सकते। इसके पश्चात् मेरा आशय है कि दक्षिण पथ और पूर्व पथ के राज्यो से सन्धि और मैत्रीकर अपनी शक्ति को और भी बढ़ाया जाय। भारत मे इस प्रकार एक विशाल शक्ति की उपस्थिति मे, किसी विदेशी राजा अथवा सुलतान का साहस नही हो सकेगा कि इस ओर आँख उठाकर देख सके।"

"यदि मै आपकी इस योजना मे सम्मिलित न हो सकूँ तो?"

"यह अति खेद का विषय होगा, महाराज! मेरा मार्ग स्पष्ट है कि मै कन्नौज छोड किसी अन्य राज्य मे चला जाऊँगा अथवा हरिद्वार मे जाकर अपना शेष जीवन भगवद् भजन मे लगा दूँगा।"

"कन्नौज को हमारे विरुद्ध तो नही कर दोगे?"

"यह बात असम्भव नही है। मुझको अपने धर्म और आचार-व्यवहार से प्रेम है। मै अपनी प्रिय वस्तु की रक्षा के लिए क्या कुछ नहीं करूँगा, अभी कह नही सकता। मैं आपकी सेवा मे इसलिए नहीं हूँ कि आप हर्षवर्धन है, प्रत्युत् इस कारण कि मै आप मे अपने देश का कल्याण देखता हूँ। यदि आप देश और समाज के कल्याण का मार्ग छोडकर, किसी ऐसे मार्ग का अवलम्बन करेंगे, जो स्वार्थ पर केन्द्रित होगा तो मै आपसे तटस्थ हो जाऊँगा। और यदि आपके स्वार्थ का मार्ग देश और समाज का विरोधी हो जाएगा तो निश्चय जानिये, महराज! कि पद्म-राज आपका विरोध भी करेगा।"

हर्षवर्द्धन का मुख इस स्पष्ट कथन को सुन लाल हो गया। इस पर भी उसने कुछ न कहना ही उचित समझा। वह अभी तक यह समझ रहा था कि राजा राज्य करने के लिए परमात्मा की ओर से बनाए जाते हैं। आज उसको इस बात का भास हुआ कि एक सच्चा ब्राह्मण भी भगवान् की ही देन है और वह न तो निर्माण किया जा सकता है और न ही सेवक बना रखा जा सकता है। हर्षवर्द्धन को दिवाकर मित्र ने बताया था कि युद्ध करने से एक राज्य बडा हो जाता है और दूसरा छोटा। इतनी छोटी-सी बात के लिए रक्तपात अत्यन्त ही घृणित कार्य

है। परन्तु पद्मराज ने एक दूसरा दृष्टिकोण उपस्थित किया था। वह दृष्टिकोण था, समाजवाद का। उसने कहा था कि एक राजा भी समाज के एक विशेष कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही होता है। समाज-हित के लिए युद्ध तो वैसे ही है, जैसे शरीर में रक्तचाप बढ़ जाने पर रक्त-स्राव द्वारा मनुष्य को बचाया जा सकता है।

इससे हर्षवर्द्धन को अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया। परन्तु राज्यश्री का कन्नौज-राज्य-प्रासाद से लोप हो जाना एक रहस्य बना रहने के कारण, कामरूप को शशाक के विरुद्ध नहीं किया जा सका। उस समय मगध-राज्य अति दुर्बल हो चुका था। मल्ल-राज्य सर्वथा लोप हो चुका था और कलिग-राज्य सर्वथा बौद्ध था।

पद्मराज ने राज्यश्री के मिल जाने की सूचना प्रभाकरवर्मन को भेज दी और साथ ही अपना अनुमान लिख दिया कि राज्यश्री को शशाक ने बन्दीगृह से हमे मिलने से कुछ काल पूर्व ही छोडा था। प्रभाकरवर्मन ने इस अनुमान को व्यर्थ समझा। अतएव वह शशाक के विरुद्ध कन्नौज की सहायता के लिए युद्ध-क्षेत्र मे नहीं उतरा।

सेनापति भडी ने पहले तो युद्ध मे शशाक को भारी हार दी, परन्तु न तो शशाक मारा गया और न ही उसकी मुख्य सेना, जो गौड राजधानी की रक्षा के लिए नियुक्त की गई थी, पराजित की जा सकी। तीन बार उस मुख्य सेना से टक्कर हुई और तीनो बार स्थानेश्वर-सेना को पीछे हटना पडा। एक बात अवश्य हुई कि गौड़ राजधानी पुड्र घेरे मे ले ली गई। शशाक पुंड्र से भागकर हिमालय की तराई मे चला गया और वहाँ वनो मे अपनी सेना का पुनर्गठन करता रहा।

पुड्र कई मास तक घेरे मे रही। इस पर भी न तो वहाँ की सेना ने साहस छोड़ा और न ही नागरिको ने धैर्य छोडा। अभी घेरा पड़ा हुआ ही था कि शशाक की पुनर्गठित सेना बाहर से स्थानेश्वर की सेना पर छुट-पुट आक्रमण करने लगी।

यह अवस्था चल रही थी कि दूसरी ओर से मालव-सेना ने देवगुप्त

की स्त्री के अधीन संगठित होकर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया।

यह तो पद्मराज की नीति रही थी कि कन्नौज की अपनी सेना निर्माण की जाय। इस समय तक कन्नौज मे तीस सहस्र सैनिक थे। उनको युद्ध-क्षेत्र मे उतार दिया गया।

हर्षवर्द्धन मे बौद्ध प्रभाव न्यूनाधिक मात्रा मे आ उपस्थित हुआ था। अवलोकितेश्वर महाप्रभु पुनः राज्य-प्रासाद मे आने लगे थे। वे सदैव दुःखमय संसार से ऊपर उठने के उपदेश दिया करते थे। सबसे बडा प्रयत्न महाप्रभु का यह रहा करता था कि हर्षवर्द्धन पद्मराज से पृथक् रहा करें।

ऐसे ही किसी एक अवसर पर हर्षवर्द्धन ने अवलोकितेश्वर जी से कहा, "भगवन्! मैं समझता हूँ कि कन्नौज पर एक भारी मुसीबत आ रही है। लगभग एक वर्ष हो चला है कि सेनापति भडी गौड से निपटने मे सफल नहीं हुआ। अब मालव-सेना से जूझना पडेगा। मेरे ज्ञानवान होने मे क्या लाभ, यदि दूसरे हम पर आक्रमण करने से रुकते नहीं?"

"हर्ष! क्या युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय नही?"

"उपाय तो है महाराज! मैं कन्नौज छोडकर स्थानेश्वर चला जाऊँ तो कन्नौज राज्य के दो टुकडे हो जायेंगे। एक भाग मालव-राज्य मे सम्मिलित होगा और दूसरा गौड में। इस प्रकार युद्ध होने से रुक जायगा।"

"जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है, इसमे कोई अन्तर नहीं पडता। मालव और कन्नौजियों मे कोई अन्तर नही। प्रश्न तो केवल राजा का रह जाता है। क्या राजा मालव-राज्य मे रहने वाला होगा अथवा स्थानेश्वर मे रहने वाला। केवल इस छोटी-सी बात के लिए रक्तपात क्यों?"

महाराज हर्षवर्द्धन इस सम्मोहिनी मीमासा के प्रभाव मे बहता जाता था और वह विचार कर रहा था कि युद्ध बन्द करने का आदेश दे दे।

कन्नौज की सेना तो राज्य की सीमा पर शिविर डाल चुकी थी।

पद्मराज इस सेना के साथ था। हर्षवर्द्धन अनिश्चित-मन अपने कुछ सेवकों के साथ शिविर मे जा पहुँचा। उसके पहुँचने से सैनिकों में नवीन उत्साह की तरंग दौड गई। सैनिक हर्षवर्द्धन की जय-जयकार करने लगे।

सैनिकों के जयकारों से तथा युद्ध की पूर्ण तैयारी देख हर्षवर्धन को भी उत्साह आ गया और महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी बोधिसत्त्व का प्रभाव समाप्त हो गया। वह सेना का प्रबन्ध और युद्ध की विधि रुचि-पूर्वक देखने लगा।

: ७ :

"महाराज! युद्ध एक कला है। इसमे केवल अस्त्र-शस्त्रो का तथा शारीरिक बल का प्रयोग ही हो, ऐसी बात नहीं। इन सबसे अधिक इसमे बुद्धि का प्रयोग होता है। बुद्धि और युद्ध-साधनो का समन्वय ही युद्ध मे विजय का आधार है। भारत-युद्ध मे ग्यारह अक्षौहिणी सेना की पराजय और सात अक्षौहिणी सेना की विजय कभी न हो सकती, यदि भगवान् कृष्ण की बुद्धि विजय-पक्ष के साथ न होती।"

यह वक्तव्य पद्मराज को देना पडा था, जब उसने हर्षवर्द्धन को यह बताया कि उसने कुछ गुप्तचर गडरियो तथा चरवाहो आदि के रूप मे मालव-सेना को पथ से विचलित करने के लिए भेज दिए है। हर्षवर्द्धन ने इस पर विस्मय प्रकट किया था। पद्मराज ने आगे कहा, "केवल यही नहीं श्रीमान्! मै कल स्वयं शत्रु-सेना मे था। मैंने वहाँ जाकर इन गुप्तचरो के लिए क्षेत्र बना दिया है।"

"महामात्य स्वयं गए थे?"

"हाँ महाराज!"

"किस रूप मे?"

"एक नर्तकी के साथ मृदंग वजाने वाले के रूप मे।"

"महामात्य यदि पकडे जाते तो?"

"महाराज ! यह भय लेना कभी-कभी आवश्यक हो जाता है । मैं अपनी आँखो से शत्रु सेना का आचार-व्यवहार और उनकी शक्ति का अनुमान लगाना चाहता था ।

"तीन दिन से हमारे गुप्तचरो का कोई सदेश नही आया था । मैंने 'पटु-पत्रिका' को साथ लिया और स्वयं दक्षिण निवासी मृदंग बजाने वाले का रूप धारण कर चल पडा । अश्वो से हम बीस कोस का चक्कर काट कर सेना के पीछे जा पहुँचे । अश्वों को पेडो के झुरमुट मे बाँधकर हम शिविर मे जा पहुँचे । मैने अपनी मृदग खडका दी और पटु-पत्रिका ने पायल की झनकार की और हाथ मे एक तारा लेकर स्वर भर दिया । श्रीमान् उसके कोमल और लोचभरे स्वरो से परिचित ही हैं । बस फिर क्या था ! देखते-देखते ही वहाँ अखाडा लग गया । गाना हुआ, नृत्य हुआ, हँसी ठट्ठा हुआ और फिर हमको भोजन दिया गया ।

"भोजने करते समय हमने अपना परिचय इस प्रकार दिया कि हम दक्षिण मदुरा के रहने वाले है । गाने-बजाने से निर्वाह करते है और देशाटन करते फिरते हैं । जहाँ कहीं भी कोई संगीतज्ञ मिल जाय, उससे गाना सीखते हैं । कई दिन सेना के वहाँ पडे रहने से उत्साहित हो कुछ उपार्जन के लोभ मे चले आए हैं ।

"इस प्रकार बातचीत होती रही । हम अपने लाभ की बात ध्यानपूर्वक सुनते रहे । पटु-पत्रिका के गाने के विषय मे प्रशंसा देवगुप्त की पत्नी मुक्तिका के कान मे भी पहुँची । उसने हमे बुला भेजा और हमसे बहुत प्रश्न किये । जब मैने बताया कि मै इस सीमावर्ती प्रदेश मे कई वर्षो तक घूमता रहा हूँ, तो हमसे कन्नौज जाने का सुगम मार्ग पूछा गया । यहाँ का मानचित्र खीचकर मैने स्थानो का निर्देश भी कर दिया । साथ ही यह बताया है कि सेना उधर से आये तो कन्नौज सेना के पीछे सुगमता से पहुँच सकेगी ।

"इसके पश्चात् हमे विदा कर परस्पर उनकी गोष्ठी होती रही । मुझको वहाँ के सैनिको से पता चला कि कन्नौज सेना द्वारा, मार्ग के किनारे के

पहाड़ो की चोटियो पर अधिकार की बात उन्हे पता चल गई है। वे समझते हैं कि यदि सीधे रास्ते से उन्होंने आक्रमण किया तो उनकी आधी सेना मार्ग मे ही समाप्त कर दी जाएगी।

"इससे मेरा अनुमान है कि वे मेरी सम्मति पर कार्य करने का विचार कर रहे है। हम अभी शिविर मे ही घूम रहे थे और अधिक सूचना प्राप्त करने का यत्न कर रहे थे कि महारानी मुक्तिका का एक सेवक हमको मिला और हमसे बात कर उस मार्ग के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने का यत्न करने लगा। मैंने अपने बताए मार्ग की इतनी स्पष्ट व्याख्या कर दी कि उसको हमारी बातों पर विश्वास हो गया।

"मैंने, अब यह अनुमान लगा कि कदाचित् वे मेरे वक्तव्य के विषय मे अधिक जानकारी करना चाहेगे, अपने अन्य गुप्तचर शत्रु-सेना के शिविर की ओर भेज दिये हैं। मैंने कुछ गुप्तचर अपनी उस सीमा की ओर भी भेज दिये हैं। मुझे पता चला है कि मालव-सेना के दो घुड़-सवार उस ओर से मार्ग का निश्चय करने आये है। हमारे गुप्तचर उनको मार्ग दिखा रहे हैं।"

"महामात्य! यह तो वंचना हो जायगी।"

"नहीं महाराज! यह उचित ही होगा। परन्तु मेरी योजना की श्रेष्ठता का तो पीछे पता चलेगा। इस सब मे मेरा उद्देश्य यह है कि हम कम से-कम हानि उठाकर शत्रु को पराजित कर सकें। यह उद्देश्य-पूर्ति एक श्रेष्ठ कार्य है।"

हर्षवर्धन युद्ध का यह प्रकार देख अति विक्षुब्ध मन हो गया। वह समझता था कि यह धर्म युद्ध नहीं है। इस पर भी वह अनुभव करता था कि इस समय महामात्य का, जो सेनाध्यक्ष भी है, विरोध करना सम्भव नहीं।

मध्याह्न को सीमा पार से सूचना आई कि मालव-अश्वारोही सीमा पार कर आए हैं। तीसरे प्रहर सूचना मिली कि वे सेना के पीछे जा पहुँचे है और पश्चात् रात को सूचना मिली कि वे कन्नौज सेना पर पीछे

से आक्रमण करने का स्थान निश्चित् कर लौट गए हैं।

अगले दिन प्रातःकाल सूचना मिली कि मालव-शिविर मे हलचल है। उसी दिन मध्याह्न को यह सूचना मिली कि लगभग आधी सेना नवीन मार्ग पर चल पड़ी है।

सेना तो उस वेग से नहीं चल सकती थी, जिससे परीक्षण के लिए अश्वारोही गए थे। सेना को निर्धारित स्थान पर सीमा पार करने में दो दिन लग गए और उसकी गति-विधि का पता लगता रहा। उस सेना के सीमा पार करने से पूर्व ही कन्नौज सेना की एक शक्तिशाली टुकडी को सीमा पर, एक पहाडी मार्ग पर बैठा दिया गया। जब मालव-सेना वहाँ से निकली तो उस सेना की टुकडी ने पीछे से मार्ग रोक लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मालव-सेना का अपनी सेना के दूसरे भाग से सम्बन्ध टूट गया। जब मालव-सेना का यह भाग कन्नौज-राज्य मे कुछ और आगे बढ़ गया तो कन्नौज सेना के एक भाग के घेरे मे आगया और कुछ ही घडियो मे सहस्रो को मृत्यु के घाट उतार दिया गया, अथवा उन्हें बंदी बना लिया गया। एक भी व्यक्ति वहाँ से बचकर अपनी मुख्य सेना मे यह समाचार ले जाने वाला नहीं छोडा गया।

दूसरी ओर पद्मराज ने एक दूत द्वारा महारानी मुक्तिका को यह संदेश भेजा कि कन्नौज-राज्य मालवा के साथ सधि करने के लिए तैयार है, महारानी मुक्तिका इस अर्थ महाराज हर्ष से सीमा पर आकर भेंट करें, महारानी यदि चाहे तो अपने साथ अंगरक्षक ला सकती हैं, परन्तु यह भेंट अगले दिन प्रातःकाल तक हो जानी चाहिए, अन्यथा कन्नौज-सेना सीमा पार कर मालवा की सेना पर आक्रमण कर देगी।

दूत यह सूचना लेकर वापिस आया कि महारानी अगले दिन वार्तालाप के लिए पहुँच रही है।

परन्तु महारानी मुक्तिका का अनुमान था कि उसी रात्रि तक सीमा पार कर चुकी सेना के पीछे से आक्रमण की सूचना आ जाएगी। इस कारण उसने अपनी सेना को तैयार होकर सीमा पर पहुँचने की आज्ञा दे दी।

अगले दिन प्रातःकाल यह सेना सीमा के पास पहुँच गई। अभी तक सेना के दूसरे भाग से कोई सूचना नही आई थी। इससे महारानी चिन्तित हो उठीं।

सामने सीमा पर पहाड़ियो पर कन्नौज-सेना युद्ध के लिए खड़ी दिखाई दे रही थी। इसके साथ ही इस ओर की एक पहाड़ी पर चढ़कर देखा गया तो पता चला कि दूर से एक और विशाल सेना कन्नौज-सेना की सहायता के लिए आ रही है।

महारानी इससे बहुत घबराईं। उन्होने अपने सेनानायको की गोष्ठी बुलाई और परिस्थिति पर विचार किया गया।

कुछ लोगो का विचार था कि आक्रमण कर दिया जाए। कही यह न हो कि दूसरी सेना, जो कन्नौज की सेना की सहायता के लिए आ रही है, आकर मालव-सेना पर ही आक्रमण कर दे। परन्तु प्रायः सेना-नायको का यह कहना था कि सन्धि की वार्ता आरम्भ कर दी जाय, जिससे उनको और समय मिल सकेगा। सेना का दूसरा भाग, जो पीछे से आक्रमण करने के लिए गया हुआ है, उसकी सूचना तब तक आ जाएगी और इससे कन्नौज की सेना मे भगदड़ मच जायगी। पश्चात् आक्रमण का समय होगा। यह सम्मति मान ली गई और एक दूत को, श्वेत पताका देकर भेजा गया, जिससे महाराज हर्षवर्धन से वार्तालाप के लिए समय और स्थान नियुक्त किया जाए।

महाराज हर्षवर्धन ने यह सूचना दी कि वे और महारानी मुक्तिका दस-दस सैनिको के साथ एक खुले स्थान पर पहुँच जायँ और वार्तालाप करें। मुक्तिका ने सूचना भेज दी कि वह स्वय नही आ सकती। कोई अन्य राज्य का अधिकारी आ सकता है। इस पर पद्मराज ने महाराज हर्षवर्धन से कहा, "महाराज! सन्धि की तो कुछ भी आशा नहीं। यह तो समय-लाभ करने के लिए वार्तालाप हो रही है।"

"परन्तु महामात्य!" हर्षवर्धन ने कहा, "हम चाहते है कि प्रयत्न किया जाय और वास्तव मे सन्धि हो जाए, जिससे व्यर्थ का रक्तपात

होता-होता रुक जाए।"

"परन्तु, महाराज! हमने तो आक्रमण किया नहीं। अभी तक हमारी सेना ने सीमोल्लंघन भी नहीं किया। यह मालव-सेना है, जिसने सीमा पार कर हमारी सेना के पीठ पीछे पहुँचने का यत्न किया है। उनका यह प्रयत्न सफल हुआ है अथवा नहीं, विचारणीय बात नहीं है। विचारणीय बात तो यह है कि मालव-सेना दूसरी बार हमारी सीमा में प्रवेश कर चुकी है। उसका आशय हमें हानि पहुँचाने का ही है।"

"तो महामात्य क्या चाहते हैं?"

"मेरी योजनानुसार कल मध्याह्न तक हमारी सेना मालव-सेना के पीछे पहुँच कर आक्रमण कर देगी। उस समय हम इस ओर से आक्रमण करेंगे। यदि उससे पूर्व कोई सन्धि हो जाती है अथवा मालव-सेना अपनी योजना के विफल जाने की सूचना पाकर वापिस लौट जाती है, तो यह युद्ध नहीं होगा।"

"तो महामात्य यत्न करें। महारानी मुक्तिका को सूचना भेज दी जाये कि दोनों राज्यों के महामात्य मिल लें और वार्तालाप कर लें।"

पद्मराज ने इस पर सहमति प्रकट कर दूत के हाथ सन्देश भेजा, साथ ही एक पत्र भी लिख दिया। उसने लिखा—

"मालव-सेना की पराजय निश्चित है।

"मालव-सेना तथा महाराज देवगुप्त ने पिछले वर्ष भी अकारण आक्रमण किया था।

"इस बार भी मालव-सेना का आक्रमण अकारण है।

"इस पर भी महाराज हर्षवर्द्धन की इच्छा है कि रक्तपात न हो। इस अर्थ उनका निवेदन है कि स्वर्गवासी महाराज देवगुप्त की भगिनी मृणालिनी से महाराज हर्षवर्द्धन का विवाह कर दिया जाय, जिससे दोनों परिवारों और राज्यों के सम्बन्ध मधुर और सुदृढ़ बन सकें; परन्तु विवाह होने से पूर्व सेना लौटा ली जाय।

"विवाह कन्नौज में होगा। कन्नौज में राजकुमारी को लाने के लिए

पाँच सौ सैनिक साथ आ सकेंगे।

"अन्य बातो के निर्णय के लिए और लिखा-पढ़ी के लिए दोनो राज्यों के महामात्य एक घड़ी के भीतर दोनो सेनाओ के मध्य मे, खुले स्थान पर मिल सकते हैं।"

इसके उत्तर में महारानी मुक्तिका ने लिखा कि राजकुमारी मृणालिनी के विवाह का निश्चय पहले ही उज्जयिनी के एक प्रसिद्ध सेठ के साथ हो चुका है। इस कारण उसका प्रश्न ही नही उठता। हाँ, दोनो महामात्य मिल लें, महारानी मुक्तिका अब अधिक विलम्ब नही सह सकतीं। यदि सायकाल तक कुछ निर्णय न हुआ तो वे किसी भी समय आक्रमण की आज्ञा दे देंगी।

समय निश्चित कर लिया गया और दोनो राज्यो के महामात्य दस-दस सैनिको की संरक्षा मे निश्चित स्थान पर जा पहुँचे। पद्मराज चाहता तो था कि उसे कल मध्याह्न तक का समय मिल जाय, जिससे तब तक कन्नौज की सेना मालवा की सेना के ठीक पीछे से आक्रमण कर देगी, परन्तु वह जानता था कि ऐसा होना कठिन है। ज्यो ही उसकी सेना सीमा-पार मालव-सेना के पीछे जाने का यत्न करेगी, महारानी मुक्तिका को इसका पता चल जायगा और सम्भव है युद्ध उसी समय आरम्भ हो जाय। इस पर भी वह मालव-महामात्य से मिलने जा पहुँचा। दोनों महामात्य मिले और अभी वार्तालाप एक घड़ी-भर कठिनाई से चली थी कि एक मालव-सैनिक हाथ मे सफेद पताका लिए अपने महामात्य को एक पत्र देने आया। पद्मराज ने देखा कि मालव-महामात्य का मुख पीला पड गया है। वह समझ गया कि कन्नौज-सेना के सीमा-प्रवेश का समाचार उसे मिल गया है। मालव-महामात्य ने कहा, "मुझे महारानी जी का पत्र मिला है कि परिस्थिति परिवर्तित हो गई है और इस नई परिस्थिति मे मुझे महारानी जी से राय करनी है। इस कारण हम अभी वार्ता स्थगित करते है।"

पद्मराज ने कहा, "श्रीमान्! इस नई परिस्थिति का ज्ञान मैं आपको

करा सकता हूँ। देखिए, मालव-सेना ने सीमोल्लंघन यहाँ से बीस कोस पश्चिम की ओर जाकर किया था। मालव-सेना का वह भाग हमारे राज्य मे दस कोस तक प्रवेश कर गया और वहाँ वह पूर्णतया नाश को प्राप्त हुआ है। जहाँ तक मेरी सूचना है, उस सेना मे तीस सहस्र सैनिक थे और उनमे से एक भी बचकर वापिस नहीं पहुँचा।

"अब हमारी सेना उसी मार्ग से, जिससे मालव-सेना ने प्रवेश किया था, मालव-राज्य मे जा पहुँची है। यह सेना बहुत शीघ्र ही महारानी का उज्जयिनी को लौटने का मार्ग रोक लेगी।

"यह है नई परिस्थिति। इस कारण मै इस रक्तपात तथा महारानी मुक्तिका का वैसा अपमान, जैसा स्वर्गवासी महाराज देवगुप्त ने महारानी राज्यश्री का किया था, न होने देने के लिए यह प्रस्ताव आपके सम्मुख रखता हूँ कि महारानी सायकाल से पूर्व अपनी सेना को वापिस लौटने का आदेश दे दे। हम महारानी मुक्तिका का मालव-राज्य पर अधिकार स्थिर रहने देगे। साथ ही महाराज का विवाह राजकुमारी मृणालिनी से ही होगा। इसके अतिरिक्त परस्पर-मैत्री की सन्धि पर आज सायं से पूर्व हस्ताक्षर हो जाने चाहिएँ।

"अब आप इस सन्देश के साथ जा सकते हैं। यदि आज सायकाल तक आपने इन बातो के लिए स्वीकृति न भेजी तो कल जो-कुछ होगा, उसका उत्तरदायित्व हम पर नहीं होगा।"

: ८ :

सायकाल से पूर्व ही सन्धि हो गई। मृणालिनी और महाराज हर्ष-वर्धन के विवाह के विषय मे महारानी मुक्तिका ने यह सन्देश दिया कि उनका दूत कन्नौज में आकर सब-कुछ निर्णय तब करेगा, जब कन्नौज की सेना मालवा से निकल जाएगी। साथ ही महारानी यह आशा रखती हैं कि मालवा पर आक्रमण नहीं किया जायगा।

पद्मराज इससे अत्यन्त सन्तुष्ट था। हर्षवर्धन को भी इससे बहुत

प्रसन्नता हुई। उन्होने विशेप दूत के हाथ यह सूचना मालव-सीमा पार कर चुकी सेना के भाग को भेज दी कि वापिस लौटती हुई मालव-सेना पर आक्रमण न किया जाय।

हर्षवर्धन ने इस अवसर पर महारानी मुक्तिका को एक पत्र लिखा। इसमे उसने लिखा,

"हम महारानी के वापिस लौट जाने के निर्णय को सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। यह इस कारण नही कि इससे एक राज्य की विजय अथवा दूसरे राज्य की पराजय प्रतीत होती है, प्रत्युत् इस कारण कि इससे सहस्रो सैनिको की हत्या होने से बच गई है; उनकी माँ-बहनो तथा पत्नियो के प्रलाप से दोनो देशो की रक्षा हुई है।

"यह आशा की जाती है कि महारानी जी की सेना बिना किसी प्रकार से अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग किए वापिस चली जाएगी। हमने अपनी सेना को यह आज्ञा भेज दी है कि शान्तिपूर्वक लौटती हुई मालव-सेना पर हथियार प्रयोग न किये जाए।

"वर्तमान परिस्थिति मे कन्नौज की सेना मालव-सेना का सर्वनाश कर सकती थी। परन्तु महारानी जी को यह सुविधा देने से हमारा आशय, केवल यह सिद्ध करना है कि हमारे मन में मालवा के साथ मित्रता की सन्धि करने का विचार है। हम मालवो के मित्र बन रहने मे, विजय प्राप्त करने से अपना गौरव अधिक समझते है।"

इस प्रकार मालव-सेना अपने तीस सहस्र के लगभग सैनिको की आहुति देकर शान्तिपूर्वक वापिस लौट गई। बौद्ध सम्प्रदाय के लोगो ने इसे अपनी शान्तिप्रिय नीति का परिणाम समझा और पद्मराज ने इसको शक्ति और युक्ति के उचित समन्वय का परिणाम माना।

महारानी मुक्तिका इस प्रकार विवशतापूर्वक वापिस लौटने के लिए बाध्य होने से अत्यन्त दु:ख एवं लज्जा अनुभव करने लगी थी। जब तक तो उसकी सेना कन्नौज की सेना के मध्य मे से निकलती रही, वह सेना के साथ रही, तदनन्तर वह अपनी सेना को अपने भाई, सेनानायक

महाबली के अधीन कर, स्वय अपने अंगरक्षको के साथ तीव्रगामी अश्व पर सवार हो उज्जयिनी जा पहुँची।

वहाँ पहुँच सबसे प्रथम उसने मंत्री-मण्डल की बैठक बुलाई और सम्पूर्ण परिस्थिति का वर्णन कर दिया। पश्चात् उसने अपने मत्रियो से इस परिस्थिति पर सम्मति माँगी।

मालवा का अर्थमंत्री धनराज था। प्रायः उसकी सम्मति की अवहेलना इस कारण की जाती थी कि वह वृद्ध हो चुका था। उसका अर्थमत्री बना रहना, उसके एक श्रेष्ठ अर्थ-सचालक होने के कारण था। उसने अवसर देख कहा, "महारानी जी! आपको ध्यान होगा कि मैंने युद्ध से मना किया था। यह ठीक है कि कन्नौज की दृष्टि गौड-विजय के पश्चात् मालवा पर पडती, परन्तु इस समस्या का सुझाव युद्ध नही था, प्रत्युत् परस्पर की सन्धि थी। सन्धि सेना द्वारा नहीं, राजदूत द्वारा की जाती है।

"इस समय कन्नौज एव स्थानेश्वर राज्य-परिवार भारी और दुःखमयी समस्याओ मे उलझा हुआ है। हमे चाहिये था कि हम उनसे सहानुभूति रखते, परन्तु हमने आक्रमण कर दिया। इस पर भी यह तो उनकी उदारता है कि उन्होने हमे सन्धि के लिए आह्वान किया है और हमारी सेना की कम-से-कम हानि कर हमसे सन्धि कर ली है।

"कन्नौज की दुर्बलता वहाँ पर बौद्ध-प्रभाव के कारण थी। इसी कारण महाराज देवगुप्त सर्वथा विजयी होकर वहाँ पहुँचे थे। परन्तु अब तो कन्नौज और स्थानेश्वर दोनो राज्यो पर बौद्ध-प्रभाव कम हो गया प्रतीत होता है। स्थानेश्वर की सेना गौड-राज्य से युद्ध कर रही है और कन्नौज के सैनिकों तथा नागरिको मे भी नवचेतना उत्पन्न हो गई है। वहाँ का महामात्य पद्मराज भी अत्यन्त नीतिकुशल और योग्य है। मैं समझता हूँ कि इस अवसर का लाभ उठाकर हमे उनसे स्थायी मैत्री की सन्धि कर लेनी चाहिये। जिस प्रकार, इस युद्ध के समय, उन्होने हमको कम-से-कम सम्भव हानि पहुँचाई है, उसी प्रकार सन्धि के पश्चात्, हमे विश्वास

रखना चाहिये कि वे हम पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि हमने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया, तो सम्भव है कि कन्नौज और स्थानेश्वर मे वातावरण हमारे प्रतिकूल बना रहे और समय पर पुनः युद्ध की भेरी बज उठे और जनता की शान्ति भंग हो।"

महारानी का प्रश्न था, "परन्तु यदि गौड-विजय के पश्चात् कन्नौज-सेना ने स्थानेश्वर की सेना के साथ मिलकर हमारे ऊपर आक्रमण किया, तो फिर हम कुछ नहीं कर सकेंगे। इसी कारण तो यह अवसर देख हमने युद्ध किया था। जो व्यवहार पिछले वर्षों मे हमारा उनके साथ रहा है, उसके कारण यह असम्भव है कि हर्षवर्द्धन हमसे सदैव मैत्री बनाए रखे। वह अवश्य प्रतिकार लेगा। यदि तो वह बौद्ध होता अथवा उसका महामात्य बौद्ध होता, तो यह सम्भव था कि वह शान्ति की नीति बनाए रखता। परन्तु महामात्य पद्मराज ब्राह्मण है और आक्रमण तथा विजय मे विश्वास रखता है। इस प्रकार हम कैसे शान्त रह सकते हैं?"

"महारानी जी का यह भ्रम है कि ब्राह्मण सदैव युद्ध और विजय में विश्वास रखते है। युद्ध तो केवल आवश्यकता पडने पर ही किया जाता है, अन्यथा प्रत्येक ब्राह्मण यह चाहेगा कि समस्या का सुझाव शान्तिपूर्वक ही किया जाय। हॉ, बौद्धो के समान वे यह नहीं मानते कि कठिनाई उपस्थित होने पर भी अहिंसा और शान्ति की नीति पर स्थिर रहना चाहिये। मै समझता हूँ कि महामात्य पद्मराज एक बहुत ही योग्य व्यक्ति है और वह शक्ति और शान्ति का समन्वय एवं सन्तुलन करना भली भॉति जानता है।"

"तो अमात्य धनराज हमे क्या सम्मति देते है?"

"मेरी सम्मति स्पष्ट है। महाराज हर्षवर्द्धन को उनकी उदार नीति पर बधाई दी जाय और उनसे स्थायी सन्धि की चर्चा चलाई जाय। साथ ही राजकुमारी मृणालिनी का विवाह उनसे रचा दिया जाय।"

"इस विवाह से क्या प्रयोजन है?"

"यही कि भविष्य मे दोनो राज्यों का सम्बन्ध मधुर और दृढ़ रहे।

यह दोनो ही राज्यो के हित मे होगा। हम उत्तर की ओर से निश्चिन्त हो सकेंगे, पश्चात् सौराष्ट्र से सम्बन्ध बनाने का यत्न कर सकेंगे।"

"हम राज्य-विस्तार नही चाहते।"

"महारानी जी का यह विचार श्रेष्ठ है। परन्तु मेरा आशय मैत्री से है, राज्य-विस्तार तथा आक्रमणादि से नही। मैत्री-सम्बन्ध से राज्य मे सुख-सुविधा बढ़ती है। राज्य धन-धान्य से सम्पन्न हो जाता है। परन्तु यह एक तथ्य है, जिसका हमे ध्यान रखना होगा कि दुर्बल से मैत्री कोई नही करता। उच्च-स्वर से घोषित, सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त भी बिना शक्ति का आधार पाये मान्य नहीं होते। हमे अपनी शक्ति सदैव बढाते रहना चाहिये।"

"तो उस शक्ति के बढ़ाने की क्या आवश्यकता, जब उसका कोई उपयोग ही नही? जब सेना बढ़ाई जायगी, नये-नये शस्त्र निर्माण किए जायँगे, तो उनका प्रयोग भी तो होना चाहिए।"

"यही मानव की एक भूल है। वह हाथ में शक्ति आते ही भूल जाता है कि शक्ति का प्रयोग दुष्टों के नाश के लिए है, साधुओ के नाश के लिए नही। खड्गो का निर्माण किया जाता है, इस कारण उसका उपयोग करना ही चाहिए, चाहे अपने अहित में ही क्यो न हो, यह तो उचित नही। और फिर यह तो और भी भारी मूर्खता होगी, यदि खड्गो का निर्माण ही बन्द कर दिया जाय, क्योकि उससे मूर्ख लोग अपना ही अहित कर बैठते हैं।"

: ६ :

मालव-सेना की बिना युद्ध के पराजय होने से पद्मराज की महिमा कन्नौज तथा स्थानेश्वर, दोनो राज्यो मे बढ़ गई। महाराज हर्षवर्द्धन भी उसे बहुत मानने लगे। प्रत्येक कार्य मे उसकी सम्मति अनिवार्य होने लगी। पद्मराज ने एक दिन यह सम्मति दी कि कन्नौज तथा स्थानेश्वर दोनों राज्यों को मिला दिया जाय और महाराज हर्षवर्द्धन

का राज्याभिषेक कर दिया जाय। इसमे दो बाधाएँ थी। एक तो गौडो से अभी तक युद्ध चल रहा था और दूसरे बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी इसका विरोध करने लगे थे।

एक दिन हर्षवर्द्धन ने पद्मराज को बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की उपस्थिति मे ही बुलवा लिया और राज्याभिषेक की चर्चा चला दी। हर्षवर्द्धन ने कहा, "महामात्य! हम चाहते हैं कि हमारे पूर्ण राज्य मे शान्ति बनी रहे। इसके लिए हमे क्या करना चाहिये?"

"महाराज की इच्छा सराहनीय है। परन्तु महाराज! प्रत्येक इच्छा-पूर्ति के लिए उपाय करना पडता है और वह भी उचित ढग से। अतः इस शान्ति के लिए उचित उपाय प्रयोग में लाने चाहियें।"

"यही तो विचार का विषय है कि उचित उपाय कौन-से हैं?"

"महाराज! सेनापति भडी को गौड पर आक्रमण किये दो वर्ष के लगभग हो चुके हैं। यह ठीक है कि पुड्र हमारी सेना के अधिकार मे हो चुका है, परन्तु यह विजय का लक्षण नहीं। हमारी विजय तो तब पूर्ण होगी, जब शशाक बन्दी बना लिया जायगा, गौड़ को हम अपने साथ मिला लेंगे और गौड-राज्य के नागरिक हमारे अनुकूल बन जायँगे। तभी यह विजय पूर्ण होगी। सेनापति इनमे से एक भी बात पूर्ण नहीं कर सके।"

"भगवान् अवलोकितेश्वर जी का एक उपाय है। हम चाहते हैं कि उस पर भी विचार किया जाय और उसे, सम्भव हो तो प्रयोग मे लाया जाय।"

"हाँ महाप्रभु! आज्ञा करिए। यह सेवक सदैव महापुरुषो के प्रवचन सुनने को तत्पर रहता है।"

"हमारे पास सूचना आई है," अवलोकितेश्वर जी ने कहा, "कि शशाक कन्नौज से मैत्री चाहता है।"

"सूचना कौन लाया है? महाराज!"

"हिमाचल मे स्थित पावनी विहार के महाप्रभु यह सूचना लाये

हैं। वे कल ही यहाँ पहुँचे हैं और शशाक से सन्धि का प्रस्ताव लेकर आए हैं।''

''तो महाराज! उन महाप्रभु जी से भेंट करनी चाहिये, जिससे वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो सके।''

''महामात्य जो कुछ उनसे पूछना चाहते है, मुझसे पूछ सकते हैं।''

''यद्यपि ज्ञान-प्राप्ति की यह विधि उचित नहीं, इस पर भी मै यह पूछना चाहूँगा कि महाराज शशाक पावनी विहार की भिक्षुणियों की संगत से ऊब गए हैं क्या?''

अवलोकितेश्वर जी का मुख क्रोध से लाल हो गया। पद्मराज ने कहा, ''भगवन्! किसी तथ्य का उल्लेख, जब वह तथ्य सप्रमाण हो, तो क्रोध का विषय नहीं होना चाहिए। प्रत्युत् यह तो मनन और समझने का विषय है।''

''तो जो-कुछ महामात्य कह रहे है, उसका प्रमाण है उनके पास?''

''यद्यपि इन प्रमाणों को निष्भ्रान्त कहना कठिन है। कारण यह कि इनकी जाँच करना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। वह विहार गौड़-राज्य के उस भाग मे स्थित है, जहाँ हमारा अधिकार अभी नहीं। इस पर भी जब भिन्न-भिन्न स्रोतो से एक ही समाचार का पता चले तो उसको सत्य मानना ही पड़ता है। यदि महाप्रभु चाहे तो वे प्रमाण अभी एक घड़ी के भीतर उपस्थित किये जा सकते है।''

''हम इस प्रकार की बातो मे विश्वास नहीं रखते। इस पर भी जो विषय हम आज विचार कर रहे हैं, वह महराज शशाक अथवा किसी भिक्षुणी के पथच्युत हो जाने से सम्बन्ध नहीं रखता।''

''यह सम्बन्ध तो पीछे मैं वर्णन करूँगा। इस समय बोधिसत्त्व जी महाराज क्या यह बताएँगे कि इस सन्धि का प्रस्ताव पावकी चैत्य के महाप्रभु जी ने किया है अथवा शशाक ने स्वयं?''

''इससे महामात्य क्या सिद्ध करना चाहते हैं?''

''बिना दोनों ओर से सन्धि के लिए इच्छा होने के मैत्री सम्भव

नहीं हो सकती। मैं यह जानना चाहता था कि महाराज शशाक को चैत्य से, जहाँ आजकल वे डेरा डाले हुए है, निकालने के लिए महाप्रभु ने यह सन्धि-चर्चा चलाई है, अथवा महाराज स्वयं उस विहार से निकलने के लिए सन्धि करना चाहते है ?

"देखिए भगवन्! मैत्री करने से पूर्व यह जानने की आवश्यकता रहती है कि विपक्षि, जो आज तक प्रत्येक प्रकार से हमारा विरोध करता रहा है, अब क्यो मैत्री के लिए उत्सुक है ?"

"मै तो यह समझता हूँ कि वह शान्ति और सन्धि के लिए इच्छुक अवश्य है। प्रयोजन भले ही कुछ हो, पर उद्देश्य तो ठीक है। इस कारण सन्धि की चर्चा अवश्य होनी चाहिए।"

"महाराज! आपकी विद्वत्ता के विषय मे मुझे कभी भी सन्देह नहीं रहा, यद्यपि अन्य बौद्ध-विद्वानो के विषय मे मेरे विचार कुछ ठीक नहीं। परन्तु आज आपने एक ऐसी बात कह दी है, जो विद्वानो को शोभा नही देती। क्या मैं जान सकता हूँ कि प्रयोजन और उद्देश्य मे कुछ अन्तर होता है ? प्रयोजन ही क्या वास्तविक उद्देश्य नही होते ?

"देखिए महाराज! शान्ति कभी भी उद्देश्य नही हो सकती। उद्देश्य है उन्नति। राज्य मे शान्ति का उद्देश्य है प्रजा की उन्नति। जो शान्ति प्रजा की उन्नति मे सहायक नहीं हो सकती, वह शान्ति वाञ्छनीय नहीं है। यदि तो महाराज शशाक से सन्धि कन्नौज की प्रजा की उन्नति मे साधन हो, तब तो सन्धि होनी चाहिए और यदि सन्धि शान्ति के स्थान भविष्य मे भय, चिन्ता, द्विविधा इत्यादि बाते उत्पन्न करे, तो ऐसी शान्ति का मैं समर्थक नहीं हूँ।

"यह जानने के लिए कि पावनी विहार के महाप्रभु द्वारा आयोजित सन्धि शान्ति उत्पन्न कर सकेगी, यह आवश्यक है कि इस सन्धि-चर्चा की पृष्ठभूमि जानी जाय। उसके लिए महाप्रभु से भेंट करनी आवश्यक है।"

हर्षवर्द्धन पद्मराज की बुद्धि की तीव्रता और राजनीतिक ज्ञान पर

मुग्ध था। इस पर भी वह यह चाहता था कि राज्याभिषेक पर विचार किया जाय। इस कारण उसने पद्मराज से कहा, "तो क्या हमारा राज्याभिषेक अनन्तकाल तक स्थगित रहेगा?"

"महाराज! भडी सेनापति को आज्ञा हो जाय कि मेरी योजनानुसार युद्ध की गति-विधि चलाए। मैं आशा करता हूँ कि तीन मास के भीतर शशाक से सन्धि एक दृढ आधार पर हो सकेगी। तब श्रीमान् जी के राज्याभिषेक के प्रश्न पर विचार किया जा सकेगा।"

हर्षवर्द्धन जानता था कि भडी पद्मराज के अधीन होकर, उसकी योजनानुसार कार्य नहीं करेगा। भण्डी पद्मराज का विरोधी था। उसे यह भी भय था कि भण्डी के मना करने पर स्थानेश्वर की सेना भी पद्मराज के अधीन नहीं चलेगी। इस कारण उसने कहा,

"महामात्य! भण्डी आपके अधीन कार्य नहीं कर सकता। वह आपकी नीति का विरोधी है और आपसे निजी शत्रुता भी रखता है।"

"परन्तु महाराज! मैंने तो आज तक जान-बूझकर उसके विरोध मे कोई कार्य नही किया।"

"उसने आपको बन्दी बनाया था और पण्डित चतुरानन ने उसकी इच्छा के विपरीत आपको छुडा दिया था। तब से वह आपको अपना मित्र नही मानता।"

"तो यह उसका भ्रम है महाराज! उसने मुझे बन्दी बनाया तो मैं बन्दी हो गया। पश्चात् महाराज ने मुझे मुक्त कर दिया। इसमे मेरे से शत्रुता करने मे उसे कोई कारण नही होना चाहिये। मैंने अपनी योजना इस कारण रखी थी कि मैं गौड-राज्य को अपने अनुकूल कर सकूँ। यह सेना के मेरे अधीन होने से ही हो सकता है।"

"कुछ भी हो। हम भण्डी को नाराज करना नही चाहते। वह हमारे ज्येष्ठ भ्राता का सखा है। महामात्य! आप कोई अन्य उपाय बताइये।"

"हाँ, एक अन्य उपाय है। भण्डी जी को अमात्य बना दिया जाय

और सेना का नायक कोई अन्य सेना-नायक कर दिया जाए, जो मेरे अधीन रह सके।" -

इस सुझाव को कार्य मे लाने योग्य समझ, हर्षवर्धन ने युद्ध-क्षेत्र में दूत भेजकर भण्डी को बुला भेजा। महाराज ने उसे लिख भेजा कि राजधानी में राज्य-कार्य-भार अत्यन्त अधिक हो गया है। इसमे सेनापति भण्डी की आवश्यकता आ पडी है। वह अपने अधीनस्थ सेना-नायक नरसिंह को कार्यभार अस्थायी रूप मे सौपकर शीघ्र चला आये।

भण्डी राजधानी आया, परन्तु जब उसके समक्ष अमात्य बनने का प्रस्ताव रखा गया तो उसने अमात्य पद अस्वीकार कर दिया। हर्षवर्धन इससे चकित रह गया। उसने कारण पूछा तो भण्डी ने कह दिया, "महामात्य पद्मराज के रहते हुए मैं मन्त्री पद के लिए अपने को योग्य नहीं समझता।"

"तो फिर?"

"मुझको आज्ञा दी जाय कि मैं वापिस जाकर अपना सेनापति का पद सँभाल लूँ।"

"पर सेनापति भण्डी राज! मै तो आपकी उन्नति कर रहा हूँ। आपको सेनापति के पद से उठाकर मैं अमात्य बना रहा हूँ।"

"यदि महाराज मुझसे रुष्ट हो तो मुझको छुट्टी दे दी जाय, जिससे मै स्थानेश्वर जाकर अपने घर पर काम-काज कर सकूँ।"

"भण्डी राज! सेनापति के पद मे क्या मोह है? देखिये, मालव-सेना ने कन्नौज पर आक्रमण किया और पद्मराज ने सेनाओ की गतिविधि का ऐसे सचालन किया कि एक सप्ताह मे ही बिना युद्ध के मालव-सेना भारी हानि सहकर वापिस लौट गई। आपने गौड पर दो वर्ष से आक्रमण कर रखा है। लक्ष-लक्ष स्वर्ण व्यय हो चुका है, परन्तु अभी तक युद्ध मे सफलता का चिह्न दिखाई नही पडता।"

"दोनो में अन्तर है महाराज!"

"हम मानते है, परन्तु किसी दूसरे को यत्न करने का अवसर क्यों

नहीं देते ?"

"महाराज ! मैं अभी सेनापति पद का त्याग कर देता हूँ परन्तु मैं पद्मराज के अधीन अमात्य-पद स्वीकार नही कर सकता ।"

हर्षवर्धन इस समस्या से घबरा उठा । उसने केवल इतना कहा, "आप मेरे पिता के विश्वस्त सेनापति रह चुके हैं । मेरे भाई के साथ हूणो को परास्त करने मे आपने भारी भाग लिया है । इस कारण मैं आपको रुष्ट नही करना चाहता । इस पर भी हम चाहते है कि गौड-समर शीघ्र समाप्त हो जाय । इसके लिए कोई निश्चित आयोजन होना चाहिए । मैं चाहता हूँ कि आप हमे अवसर दें कि इसका कोई मार्ग निकल सके ।"

"महाराज ! मुझको गौड लौट जाने की स्वीकृति कब देंगे ?"

"अभी आप तीन-चार दिन ठहरिए । हमे विचार करने के लिए कुछ समय चाहिए ।"

विवश भण्डीराज कन्नौज में रुक गया । हर्षवर्धन ने पद्मराज को बुला भेजा और उसकी सम्मति माँगी । पद्मराज ने कहा, "महाराज ! सेनापति को कन्नौज मे दो सप्ताह के लिए रोक रखिए । यहाँ इनके मन-बहलावे का प्रबन्ध कर दिया जाय । मैं आशा करता हूँ कि तब तक युद्ध समाप्ति का कोई-न-कोई उपाय निकल आएगा ।"

हर्षवर्धन इस आश्वासन से प्रसन्न था । उसने पद्मराज की योजना के अनुसार भण्डी के लिए कन्नौज में मन-बहलाव का कार्यक्रम जुटा दिया ।

वैसे तो पद्मराज ने उस दिन से ही अपनी योजना चालू कर दी थी, जिस दिन भण्डी को वापिस आने के लिए कहा गया था । अब वह स्वयं पुण्ड्र जा पहुँचा । दो दिन के भीतर ही सारी सेना मे उत्साह की तरंग दौड गई ।

पुण्ड्र का, सेनापति भण्डी के अधिकार मे आ जाने से, शशाक को पुण्ड्र छोड वनो मे भटकना पडा था । उसने पावकी चैत्य को सुरक्षा का सबसे अच्छा स्थान समझा और बौद्ध उपासक बनकर, अपनी सुरक्षा

के लिए बौद्ध विहार पावकी में जा पहुँचा। पावकी मे उसे इन्द्रजालिक, जो स्वय भिक्षुणी हो चुकी थी, मिल गई।, इन्द्रजालिक देवगुप्त की हत्या के पश्चात्, शशाक को यह सन्तोष कराकार कि षड्यन्त्र मे उसका कोई हाथ नहीं था, पुण्ड्र जा पहुँची थी।

वहाँ से वह राजनीतिक घटनाओं के कारण विक्षुब्ध मन हो भिक्षुणी बन गई और पावकी चैत्य में जा पहुँची।

जब शशाक वहाँ पहुँचा तो पुनः दोनो में सम्बन्ध होने लगे। बौद्ध-विहार मे पहुँचने पर भी शशाक अपने बचे-खुचे सैनिको को एकत्रित कर स्थानेश्वर की सेना पर छुप-छुपकर आक्रमण करता रहा।

सेनापति भण्डी केवल मात्र एक वीर योद्धा था। यदि उसके साथ शशाक खुलकर युद्ध करता तो वह शशाक को बुरी तरह पराजित करता। परन्तु शशाक के छुटपुट आक्रमण से वह स्वयं परेशान हो उठा था। इन छोटे-मोटे आक्रमणों मे गौड-जनता भी शशाक की सहायता करती थी। इस कारण भण्डी के विपुल प्रयत्न करने पर भी शशाक को वह बन्दी नहीं बना सका।

पद्मराज ने सम्पूर्ण गौड-राज्य का मानचित्र बना रखा था। उसने सबसे प्रथम कार्य यह किया कि भिन्न-भिन्न स्थानो पर अपने गुप्तचर छोड दिए, जो उसे शशाक तथा उसकी पुनर्गठित सेना की सूचना देने लगे।

जब भण्डी कन्नौज मे गया तो पद्मराज ने सेनानायक नरसिंह को, जो अब सेनापति के स्थान पर कार्य कर रहा था, आज्ञा भेज दी कि वह राजधानी मे एक वृहद् उत्सव का आयोजन करे। उसमे मनोरजनार्थ मल्ल-युद्ध तथा अन्य ऐसे ही खेल-तमाशे रखे। इस उत्सव की घोषणा वह सारे राज्य मे करा दे और सबको निमन्त्रण दे कि आकर प्रतियोगिता मे भाग ले। विजित होने वालो के लिए विशेष पुरस्कार की भी घोषणा कर दी जाय।

नरसिंह ने उचित घोषणा करा दी। इससे लोगो मे इन प्रतियो-

गिताओ को देखने का उत्साह व्याप्त हो गया। ग्राम-ग्राम से लोग इस उत्सव में भाग लेने और उत्सव देखने के लिए राजधानी मे आने लगे। यहाँ तक कि शशाक के अधीन प्रदेश से भी लोग अथवा सैनिक उत्सव देखने की इच्छा करने लगे। नरसिह ने घोषणा करवा दी कि कोई भी इसमें भाग लेने आ सकता है, यदि वह अपने साथ अस्त्र-शस्त्र न लाए।

शशाक ने अपना शिविर पावकी-चैत्य के बाहर, परन्तु उसके पास ही बना रखा था। जिस दिन राजधानी मे उत्सव मनाया जा रहा था, शशाक ने इन्द्रजालिक को अपने शिविर मे बुला भेजा था। अगले दिन प्रातःकाल चैत्य और शिविर को एक बहुत बडी सेना के घेरे मे देख वह आश्चर्यचकित रह गया। उसकी सूचना के अनुसार सारी स्थानेश्वर की सेना राजधानी मे एकत्रित हो उत्सव मना रही थी।

: १० :

वास्तव मे स्थानेश्वर-सेना गौड-राजधानी पुण्ड्र में ही थी। जिस दिन यह उत्सव का प्रबन्ध कर रही थी, कन्नौज की सेना पावकी की ओर तीव्र गति से बढ़ रही थी। पद्मराज ने कन्नौज की सेना को मालवा की विजय के पश्चात् गौड-राज्य मे भेज दिया था। उसकी योजना इस प्रकार रहती थी कि सेना की यात्रा के पूर्व उस मार्ग पर, जिस पर सेना को जाना होता था, अपने कई सैनिक पहिले ही भेज दिया करता था, जिससे सेना की गतिविधि की सूचना उस प्रदेश से निकलकर बाहर न जा सके। इसी कारण जब कन्नौज की सेना ने गौड-प्रदेश मे प्रवेश किया तो किसी को पता तक न चला और ठीक उत्सव के दिन, कन्नौज-सेना ने पावकी-चैत्य और शशाक के शिविर को घेर लिया।

पावकी मे शशाक के बीस सहस्र सैनिक पडे थे, परन्तु राजधानी मे उत्सव होने के कारण अधिकाश सैनिक नागरिक वेश मे पुन्ड्र जा पहुँचे थे। किसी को स्वप्न मे भी यह आशा नहीं थी कि कन्नौज सेना पावकी को घेरे मे ले लेगी।

प्रातःकाल शिविर के प्रहरी ने शशाक को सूचना दी कि चारो ओर से शत्रु-सेना घेरा डाल कर आगे बढ़ रही है।

शशाक ने आश्चर्यचकित हो पूछा, "कौन सेना है?"

"महाराज! यह स्थानेश्वर की सेना नहीं क्योंकि इनका गणवेश उनसे नहीं मिलता। साथ ही स्थानेश्वर की सेना तो उत्सव मे सलग्न है। मेरा अनुमान है कि यह कन्नौज की सेना है।"

"तो सेना को युद्ध की तैयारी की आज्ञा दे दो। मै भी तैयार होकर आता हूँ।"

"महाराज! हमारी अधिकाश सेना तो पुन्ड्र में ऊत्सव देखने के लिए गई हुई है।"

"फिर भी जो कुछ भी सैनिक बचे हुए हैं, उन्हे शीघ्र एकत्रित होने का आदेश दे दो।"

इन्द्रजालिक अत्यन्त भयभीत थी। जब प्रहरी चला गया तो उसने शशाक से कहा, "महाराज! इस युद्ध का परिणाम शुभ प्रतीत नहीं होता। मेरी सम्मति मानिए चैत्य मे चले चलिए। वह धर्म-स्थान है। वहाँ पर कन्नौज की सेना प्रवेश नहीं करेगी।"

"तब तो निश्चित रूप से हमारी पराजय है।"

"महाराज! पराजय तो अब भी निश्चित है। परन्तु यदि वहाँ जाकर आपका जीवन बच गया तो आप पुनः सेना एकत्रित कर, अपने राज्य को पाने का यत्न कर सकते हैं। यदि आप युद्ध में मारे गए तो निस्सन्देह गौड-राज्य पूर्णरूप से पराजित हो जाएगा।"

शशाक इस सम्मति पर विचार करने लगा। इस पर भी उसने अपने कक्ष से बाहर निकलकर स्थिति का अध्ययन करना उचित समझा। उसने घेरा डालने वाली सेना को देखा। शत्रुसेना इतनी अधिक थी कि उसका विरोध बिल्कुल असम्भव था। शत्रुसेना मे हाथी, अश्वारोही और रथ भी थे। शशाक के अपने सैनिक प्रायः सब उत्सव में पहुँचे हुए थे। अतएव शशाक इन्द्रजालिक की सम्मति पर कार्य करने के लिए

तैयार हो गया।

उसने सेनानायकों को, जो वहाँ शिविर मे थे, बुलाया और कहा "मै समझता हूँ कि व्यर्थ के युद्ध से कोई लाभ नहीं। आप सब लोग यहाँ से बचकर निकलने का प्रयत्न करिए। आप लोग जाकर शत्रुसेना के सम्मुख हथियार डाल दे। मेरे विषय मे घोषित कर दे कि मैं शिविर मे नहीं हूँ।

"कुछ समय पश्चात् मैं शीघ्र ही आप लोगों का पुनः आह्वान करूँगा। आप सब लोग पुनः एकत्रित हो जाइएगा। पश्चात् हम पुनः अपने राज्य की मुक्ति का उपाय करेंगे।"

इस योजना के अनुसार गौड-सेना ने श्वेत पताका के नीचे कन्नौज की अधीनता स्वीकार करने की घोषणा कर दी। शशाक इन्द्रजालिक के साथ चैत्य मे जा पहुँचा।

पावकी चैत्य का महाप्रभु अभी तक कन्नौज मे ही था। वह शशाक की ओर से सधि का प्रस्ताव लेकर गया हुआ था। शशाक ने उसको यह वचन दिया था कि यदि स्थानेश्वर सेना गौड राज्य से निकल जाए तो वह कन्नौज और स्थानेश्वर से स्थायी मित्रता कर लेगा। महा-प्रभु अभी तक कन्नौज से वापिस नही आया था कि यह घटना घट गई।

चैत्य के अधिकारियो का साहस नही हुआ कि शशाक को चैत्य मे प्रवेश देने से इन्कार कर सके।

कन्नौज की सेना के साथ पद्मराज स्वय उपस्थित था। उसे आशा थी कि घोर युद्ध होगा। उसको विजय की पूरी आशा थी परन्तु युद्ध के पश्चात्; इस कारण उसके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब घिरी हुई गौड-सेना का दूत श्वेत पताका के साथ उसके पास लाया गया। पद्मराज ने पूछा, "क्या चाहते हो?"

दूत ने कहा, "महाराज शशाक वेष बदलकर उत्सव मे मल्लयुद्ध देखने गए हुए हैं। हमारे सेनापति का यह निर्णय है कि यदि हमें अपने

अधीन रखने का वचन दे दिया जाए तो हम बिना युद्ध किए हथियार डालने को तैयार हैं।"

पद्मराज को शशाक के न पकडे जाने पर अत्यन्त शोक था। परन्तु उसने भयभीत सेना की हत्या कराने में कुछ प्रयोजन न समझ, उनकी बात मान ली। उसने आज्ञा दे दी, "गौड-सेना का आत्म-समर्पण हमे स्वीकार है। शर्त यह है कि सब सैनिक एक-एक कर अपने-अपने शस्त्रो को सौंप कर, हमारी सेना के घेरे के बाहर निकल जाएँ। यहाँ से वे सीधे पुन्ड्र जा पहुँचे और अपना नाम-धाम लिखा कर कन्नौज सेना मे भर्ती हो जाएँ। हम इन सब को पुनः रख लेंगे।"

यह कार्य मध्याह्न से पूर्व समाप्त हो गया। गौड-सैनिक इतनी शीघ्रता से छूटने की आशा नही रखते थे। अतः उन्होने इससे तुरन्त लाभ उठाने का निश्चय कर लिया। कन्नौज-सेना ने उन्हे केवल शरीर धारण किये वस्त्रो मे ही बाहर जाने दिया। उनका शेष सब कुछ वही रखवा लिया गया। पद्मराज की आज्ञा थी कि मध्याह्न से पूर्व सबको वहाँ से निकाल दिया जाय और शशाक के विपय मे विशेप सतर्क रहा जाय।

जब गौड-सेना आत्मसमर्पण कर रही थी, पद्मराज कुछ सैनिको के साथ शशाक के शिविर मे जा पहुँचा। उसने शशाक के कक्ष को ध्यान-पूर्वक देखा। उसने शशाक की शैया को देख अनुमान लगा लिया कि शशाक कहीं-न-कहीं छुपा हुआ है। पद्मराज को विश्वास था कि शशाक भेप बदलकर बाहर नहीं निकलेगा। अवश्य वह चैत्य मे छुप गया होगा। इस विचार के आते ही उसने एक सौ सैनिक चैत्य के द्वार पर बैठा दिए।

बौद्ध भिक्षुक यह देख क्रुद्ध हो गए। उन्होने यह चुनौती दे दी कि यदि सैनिको ने चैत्य मे प्रवेश करने का यत्न किया तो यह उनकी हत्या कर ही सम्भव हो सकेगा।

पद्मराज ने चैत्य के प्रबन्धकर्ता को कह दिया, "हमे चैत्य मे प्रवेश करने का कोई प्रयोजन नहीं। हमें सन्देह है कि शशाक इसी चैत्य मे

छुपा हुआ है। यदि वह है तो हमारे अधीन कर दिया जाए।"

चैत्य अधिकारी ने कह दिया, "शशाक भीतर है। परन्तु उस ने श्रवण होने की दीक्षा ले ली है। अतः उसे वन्दी वनाने मे कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा।"

"तो भिक्षु शशाक को हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिया जाए। यदि यह सत्य है कि उसने दीक्षा ले ली है, तो हम उसे वन्दी नहीं वनाएँगे।

अतएव विवश होकर शशाक को सिर मुंडा पीतवसन पहिन कर चैत्य-द्वार तक आना पडा। उसको पहिचान पद्मराज ने कहा, "भिक्षु शशाक! यदि तुम भिक्षु न बनते और अपने को मेरे आधीन कर देते तो मैं तुमको अभयदान देना चाहता था और गौड-राज्य में एक मित्र अधिपति के रूप मे रखे जाने का महाराज से निवेदन करता। परन्तु अब तुमने जो मार्ग ग्रहण किया है, मै तुम्हें उससे लौटाने के लिए नही कह सकता। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे, कारण यह कि अब तुम हमारी सहायता से दूर हो गए हो। इस पर भी मेरी सम्मति मानो तो इसी रूप मे कन्नौज चले आओ। वहाँ भगवान् अवलोकितेश्वर जी के पास आकर ठहरो। तुम्हारे पुनरुद्धार के लिए यत्न किया जा सकेगा।"

इस प्रकार पद्मराज ने अपने विचार से गौड-समस्या का सुझाव उपस्थित कर दिया। पुण्ड्र मे यह समाचार फैल गया कि शशाक ने पराजय स्वीकर कर ली है। परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण गौड़-सैनिको ने हथियार डाल दिए। उनमे से अधिकाश कन्नौज सेना मे भर्ती होने लगे। पद्मराज की योजना यह थी कि उनको छोटी-छोटी मडलियो में विभक्त कर भिन्न-भिन्न स्थानो पर रखा जाये।

गौड-समस्या को इस प्रकार सुलझा कर पद्मराज कन्नौज आ पहुँचा। वह स्वयं ही यह समाचार लेकर महाराज हर्षवर्धन के पास आया था।

सेनापति भंडी ने भी यह समाचार सुना। वह इस कॉटे को इस प्रकार निकलते देख जल-भुन गया। उसे अपनी विफलता और पद्मराज

की सफलता से पद्मराज से विद्वेष और भी तीव्र हो गया। उसने महाराज हर्षवर्धन से कहा, "महाराज! मैं अब बूढा हो गया हूँ। अब आगे मै वह सेवा नही कर सकता, जो कि नई पीढी के लोग कर सकते है। अतएव मैं चाहता हूँ कि मुझे छुट्टी दी जाए। मै हरिद्वार जाकर गंगा-तट पर बैठ भगवत् भजन करना चाहता हूँ।"

हर्षवर्धन ने पद्मराज से इस विषय मे सम्मति माँगी। पद्मराज ने कहा, "मैं समझता हूँ कि सेनापति ठीक ही कहते है। उनको पाँच सहस्र स्वर्ण वार्षिक वृत्ति देकर कार्यभार से मुक्त कर दिया जाए।"

हर्षवर्धन पद्मराज की इस उदारता पर विस्मय भी करता था और प्रसन्न भी था।

: ११ :

अब हर्षवर्द्धन के राज्याभिषेक का प्रश्न उपस्थित हो गया। यह अभी तक कई कारणो से टलता आ रहा था। इन कारणों मे सबसे प्रमुख तो ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु थी। राज्यवर्धन की मृत्यु को अब दो वर्ष से ऊपर हो चुके थे। पश्चात् राज्यश्री के साथ दुर्व्यवहार करने वाले शशाक को दण्ड देने का प्रश्न था। यह भी सुलझ गया था।

राज्याभिषेक के विषय पर बातचीत चल रही थी कि भगवान् बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने अपना प्रस्ताव रख दिया। उन्होंने कहा, "राजकुमार हर्षवर्द्धन का राज्याभिषेक स्थानेश्वर श्रीकण्ठ की राजधानी मे जाकर होना चाहिए। कन्नौज का राज्य तो राज्यश्री का है। राजकुमार ने कन्नौज का उद्धार किया है, इसके लिए कन्नौज के निवासी उनके कृतज्ञ हैं। परन्तु यह राज्य तो राजकुमार की भगिनी का है।"

यह प्रस्ताव महामात्य पद्मराज के सम्मुख उपस्थित हुआ तो वह आश्चर्यचकित रह गया। महाराज हर्षवर्द्धन ने कहा, "महाराज! हमने तो राज्यश्री को कहा भी था, परन्तु वह मानी नहीं और भिक्षुणी बन गयी।"

"उस समय की और अब इस समय की परिस्थिति मे अन्तर आ गया है महाराज !"

"तो आपका अभिप्राय यह है", पद्मराज ने कहा, "कि उस समय राज्य-भार वहन करना कटकाकीर्ण था। इस कारण महारानी राज्यश्री तैयार नहीं हुई थी।"

"मेरा यही अनुमान है।"

"तो भगवन् ! यदि यह अनुमान सत्य है तो महारानी राज्यश्री इस योग्य नहीं कि राज्य-भार उनके कन्धे पर डाला जाये। कठिनाइयो से डर-कर यदि कोई राज्य का त्याग करता है, तो उसको राज्य-जैसी दुस्तर वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

"इस पर भी हम महारानी राज्यश्री को इतना भीरू नहीं समझते। उन्होने जो मार्ग ग्रहण किया है, वह मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाने से किया है। इस कारण भी यह राज्य तो महाराज हर्षवर्द्धन को ही मिलना चाहिये।"

"मेरा विचार है कि महाराज हर्षवर्द्धन स्थानेश्वर अधिपति तो हैं ही। यहाँ भी वे राज्य-कार्य करें, परन्तु राजसिंहासन राज्यश्री के लिए सुरक्षित रखा जाये। जब भी राज्यश्री की इच्छा हो, वह वापिस आकर अपना कार्यभार सँभाल ले।"

हर्षवर्द्धन इस वाक्जाल मे फँस गया, परन्तु पद्मराज ने स्पष्ट कह दिया, "महाराज ! यह राजनीति नही। राज्यश्री भिक्षुणी है। राज्य आप कर रहे है। अतः राज्याभिषेक आपका ही होना चाहिए। प्रजा के हित के लिए तथा पडौसी राज्यों के साथ सुख-शान्ति के सम्बन्ध बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनके साथ बात करने का आपको अधि-कार हो। यह अधिकार राज्याभिषेक होने से ही बन सकता है।"

"अधिकार तो है ही।" अवलोकितेश्वर जी ने कह दिया। "जब राज्य की पूर्ण बागडोर आपके हाथ मे है और सेना आपको सहयोग दे रही है, तो फिर आप राज्य के पूर्णरूप से अधिकारी तो हैं ही। मै केवल

इतना मार्ग खुला रखना चाहता हूँ कि यदि कभी राज्यश्री की अभि-लाषा हो तो वह इस स्थान को अपने लिए रिक्त पाए।"

पद्मराज ने महाराज हर्षवर्द्धन को अपनी अन्तिम सम्मति दे दी, "महाराज! आप अन्तिम निर्णय करने से पूर्व यह समझ ले कि महा-प्रभु राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। उनका कथन राजनीति के सिद्धान्तो के विपरीत है। मेरी सम्मति मे आपका राज्याभिषेक अविलम्ब हो जाना चाहिये।"

हर्षवर्द्धन ने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया, "हमारा राज्याभिषेक स्थानेश्वर चलकर श्रीकण्ठ राज्य के सिहासनपर होगा। हम अपनी बहिन की सम्पत्ति उससे छीन नहीं सकते। यह हमारा अन्तिम निर्णय है।"

पद्मराज यद्यपि इस निर्णय से प्रसन्न नहीं था, परन्तु वह चुप रहा।

कुछ दिनो के भीतर हर्षवर्द्धन का विवाह मालव राजकुारी मृणा-लिनी से हो गया और पश्चात् स्थानेश्वर चलकर उनका राज्याभिषेक कर दिया गया। कन्नौज मे वे प्रबन्धक के रूप मे ही रहे। इस नवीन प्रबन्ध से राज्य की बौद्ध जनता ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की, परन्तु वैष्णव आदि अन्य लोग किसी अनिष्ट की आशंका करते रहे।

उक्त घटना के कुछ दिन पश्चात् एक दिन बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर शशाक को गृहस्थ वेष मे लेकर महाराज हर्षवर्द्धन के पास आ पहुँचे। उन्होने महाराज से प्रार्थना की कि वे शशाक को पुनः गौड-राज्य के सिहासन पर बैठने का आदेश दे दे।

हर्षवर्द्धन ने अस्वीकार कर दिया। इस पर शशाक ने कहा, "महाराज! कन्नौज के महामात्य ने मुझे यह वचन दिया था कि वे मुझसे मैत्री सम्बन्ध बना लेगे।"

"उन्होंने जो वचन आपको दिया था, वह हमारी अनुमति के बिना था। अतएव उसका हम कुछ भी मूल्य नही समझते।"

"परन्तु महाराज! आपकी अनुमति की आवश्यकता ही नहीं थी?"

"क्यों?"

"इस कारण कि," अवलोकितेश्वर जी ने कहा, "कन्नौज की महारानी राज्यश्री है और आप केवल प्रबन्धक के रूप मे हैं। उस समय महामात्य ने भी आपसे अनुमति लेनी आवश्यक नहीं समझी थी, क्योंकि आपका राज्याभिषेक नही हुआ था। महारानी राज्यश्री ने इन्हे गौड-प्रदेश पर अधिकार करने की अनुमति दे दी है?"

"कैसे पता चले कि राज्यश्री ने इन्हे अधिकार दे दिया है?"

"महाराज! यदि इस पर कोई आपत्ति करेगा, तो आपको इसका प्रमाण दिखा दिया जायगा।"

पद्मराज के सम्मुख जब यह समस्या उपस्थित हुई, तो उसने कह दिया, "महाराज! मैने शशाक को आश्वासन दिया था कि यदि वह गृहस्थी रहता और अपने को मेरे अधीन कर देता तो मैं उसको अभयदान दे देता मै गौड-राज्य मे उसे एक मित्र अधिपति के रूप मे नियुक्त रखने की इच्छा रखता था। इस पर भी आपकी अनुमति के लिए, उसको आपके सम्मुख अवश्य उपस्थित करता। परन्तु शशाक, एक तो गृहस्थ छोड, भिक्षु बन गया था और साथ ही इसने अपने को मेरे समर्पण नहीं किया था। इसने बचने के लिए भिक्षु बनने का ढोग किया अर्थात् हमे धोखा दिया। इसके इस समय के व्यवहार से स्पष्ट है कि यह भय से भिक्षु बना था। उस समय का दिया वचन तो समाप्त हो चुका है। वचन एक शर्त के साथ था और वह शर्त पूर्ण नही हुई।"

"अब वह अपने को महामात्य के अधीन करता है।" अवलोकितेश्वर जी ने कहा।

"महाराज! अब अवसर निकल चुका है।"

"परन्तु राज्य की वास्तविक अधिकारिणी ने इन्हे स्वीकृति दे दी है।"

"वह कौन?"

"महारानी राज्यश्री। वह कन्नौज की महारानी है।"

"उनकी लिखित स्वीकृति चाहिये।" हर्षवर्द्धन ने कहा।

"नहीं महाराज !" पद्मराज ने कहा, "महारानी राज्यश्री का राज्य पर किसी प्रकार से अधिकार नहीं। उनकी स्वीकृति मान्य नहीं हो सकती।"

"महामात्य !" हर्षवर्द्धन ने कहा, "जब हम कह चुके हैं कि हम राज्यश्री को यहाँ की महारानी समझते है, तो फिर इसका कोई अर्थ नही रहता। मैं तो उनका स्थानापन्न-मात्र हूँ। यदि उनकी आज्ञा है तो मुझे माननी ही चाहिये।"

अवलोकितेश्वर जी ने राज्यश्री का पत्र लाकर हर्षवर्धन के सम्मुख रख दिया। इसमें राज्यश्री ने हर्षवर्धन के लिए त्याग और शान्ति का उपदेश दिया था। साथ ही उसने लिखा था कि राज्य का उद्देश्य दूसरे राज्यो को अधीन करने का नहीं होना चाहिए, प्रत्युत् उनको आत्मसात करना ही उचित है। आत्मसात के अर्थ हैं दूसरो को अपने अनुकूल कर लेना।

विषय मन्त्री-मण्डल मे उपस्थित हुआ। पद्मराज ने अपना सशय स्पष्ट रख दिया, "प्रश्न यह नहीं कि यहाँ का राज्य-अधिकार किसके हाथ मे है। समस्या यह है कि महारानी राज्यश्री राज्य की कठिनाइयो और उलझनो से दूर बैठी हुई हैं। उनको यहाँ की परिस्थिति का ज्ञान नहीं। अतः उनकी सम्मति से राज्यकार्य चलाने का अर्थ विनाशकारी हो सकता है।

"इसके अतिरिक्त बौद्ध सम्प्रदाय के लोग शासन को राजनीति के नियमों से नहीं, प्रत्युत् अपने धर्म के नियमो के अधीन चलाना चाहते हैं। इस नीति से पहिले भी राज्य दास बन चुका है। महाराज अवलोकितेश्वर जी मालवराज देवगुप्त के आक्रमण से पूर्व यहाँ की नीति मे हस्तक्षेप करते थे। परिणाम यह हुआ था कि राज्य मे देश की रक्षा करने की क्षमता नहीं रही थी।

"अत्यन्त कठिनाइयो से हम सबने मिलकर देश को स्वतन्त्र किया है। अब पुनः महाप्रभु और उनके साथी धर्म की आड लेकर आक्रान्ताओं

को बचाना चाहते हैं। देवगुप्त और शशाक के पापो पर पर्दा डाल, शशाक के पराजित होने से पूर्व ही उससे सन्धि कराने का यत्न किया गया। शशाक को बन्दी होने से बचाने के लिए उसे भिक्षु बना दिया गया और अब उसे पुनः गृहस्थी बनाकर, राज्य वापिस दिलवाने का षड्यन्त्र किया जा रहा है। महारानी राज्यश्री को भिक्षुणि बनाकर कन्नौज का राज्य, बौद्ध सम्प्रदाय ने अपने हाथ मे कर रखा है।"

हर्षवर्धन का उत्तर था, "राज्यश्री मेरी बहिन है। राज्य उसका है। अतएव इसकी नीति का संचालन वह ही करेगी। उसका बौद्ध सम्प्रदाय मे रहना अथवा वैष्णव सम्प्रदाय मे रहना, यह उसका निजी प्रश्न है। मैं इसमे हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। हाँ, यदि महामात्य यह सिद्ध कर सकें कि राज्यश्री को चैत्य मे रहने के लिए विवश किया जा रहा है, तो मे उसको वहाँ से निकालने का प्रयत्न कर सकता हूँ।"

"ऐसी अवस्था मे मन्त्री-मण्डल मे विचार करने के लिए कोई बात रही ही नही।"

"रही हो अथवा नहीं, यह मेरी मन की भावना है। मै बहिन के राज्य को हड़पना नहीं चाहता।"

परिणामस्वरूप गौड-राज्य पुनः शशाक के अधिकार मे आ गया। और इस प्रकार सिन्धु नदी के तट से लेकर गौड़-देश की सीमा तक और हिमाचल से लेकर नर्मदा के तट तक राज्यकार्य मे पुनः बौद्धो की तूती बोलने लगी।

चतुर्थ परिच्छेद

: १ :

पत्रलता जब पद्मराज को कन्नौज का राज्य अपने हाथ मे ले लेने की प्रेरणा देने मे सफल नहीं हुई, तो उसकी कन्नौज की राजनीति मे रुचि नहीं रही। कुछ दिन तक वह कन्नौज मे ताम्बूलिन का कार्य करती रही। तदनन्तर वह वहाँ से लापता हो गई।

पद्मराज राज्यकार्य और मालवा आदि के झगडो मे लीन रहने के कारण पत्रलता को सर्वथा भूल चुका था। अब, जब शशाक पुनः गद्दी पर बैठ गया और उसने हर्षवर्द्धन से मैत्री कर ली, तो उसे राज्य-कार्य से अवकाश मिलने लगा। वास्तव मे वह वोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी के राज्य-कार्यों में हस्तक्षेप करने से राज्य से तटस्थ होता जाता था। जब महाराज हर्षवर्द्धन उससे किसी विषय मे सम्मति माँगते, तो वह अपनी बुद्धि से विचार कर अपनी सम्मति दे देता। अन्यथा वह सर्वथा चुप रहता।

अब उसको अवकाश मिलने लगा था। इस कारण उसका ध्यान पुनः पत्रलता की ओर चला गया। पत्रलता मे एक गुण था। उसके व्यक्तित्व में एक आकर्षण था; उसकी वाणी मे रस रहता था और उसकी युक्ति में बल होता था। यही कारण था कि पत्रलता के सम्पर्क मे जो कोई भी आता, वह उसे विस्मरण नहीं कर पाता था।

पद्मराज ने एक गुप्तचर पत्रलता की खोज मे लगा दिया। दो मास की खोज के पश्चात् उस गुप्तचर ने सूचना दी, 'पत्रलता को कन्नौज

छोड़े एक वर्ष से ऊपर हो गया है। यहाँ से वह हरिद्वार और ऋषिकेश चली गई थी। वहाँ कुछ दिन रहकर वह मानसरोवर और कैलाश-यात्रा को चली गई है। कैलाश से लौटने का अभी कोई समाचार नही मिला।' कैलाश की यात्रा मे एक वर्ष से ऊपर लगता था, अतएव पद्मराज का अनुमान था कि वह कुछ ही मास मे वहाँ से लौट सकेगी।

एक दिन हर्षवर्द्धन की राज्य-सभा मे पद्मराज बैठा हुआ था और भारत की राजनीति के विषय मे चर्चा चल रही थी। बोधिसत्त्व जी भी विद्यमान थे। चर्चा का विषय था कि काश्मीर में हूणो का आधिपत्य बना रहे तो क्या हानि है! बोधिसत्त्व जी का विचार था कि माणिकन्द हूण, काश्मीर का अधिपति बौद्ध हो गया है। अतएव वह वैसा नहीं रहा, जैसे दूसरे हूण आक्रमणकारी थे। ऐसे व्यक्ति से मित्रता कर लेने मे कोई हानि नहीं।

पद्मराज का विचार था कि तीन-चार गुप्तचर, पृथक्-पृथक् उसके राज्य मे भेजे जायँ और माणिकन्द के जनता के साथ व्यवहार की जानकारी लायें। तब ही यह विचार किया जा सकेगा कि उसके साथ मैत्री की जाय अथवा नहीं।

"परन्तु महामात्य!" हर्षवर्द्धन ने कहा, "माणिकन्द ने हमारे राज्य को किसी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाई। ऐसी अवस्था मे उससे मैत्री न कर शत्रुता क्यो रखी जाय?"

"शत्रुता करने के लिए मैने नही कहा महाराज! मैंने मैत्री का विरोध किया है। मैत्री के अभाव मे शत्रुता होगी ही, यह सिद्ध नहीं हो सकता।"

इस समय अवलोकितेश्वर जी ने पूछा, "मैत्री और शत्रुता के भीतर क्या स्थिति होगी?"

"तटस्थता की।"

"इससे क्या लाभ होगा?"

"वे सब पाप, जो माणिकन्द वहाँ करेगा, उसमे हमारा कुछ भी हाथ

नहीं रहेगा। यदि वे पाप इतने घोर हो गए कि धर्म और न्याय के लिए हमें माणिकन्द से युद्ध करना पड़ा, तो हम कर सकेंगे।"

"यह तो मैत्री की अवस्था मे भी किया जा सकता है।"

"तो भगवन्! मैं मैत्री के अर्थ नहीं समझा। मैं तो मैत्री का अर्थ यह समझता हूँ कि दोनो राज्यो के सुख-दुःख समान हों। दोनो देशो मे हृदय से एक-दूसरे के शुभचिन्तन का सम्बन्ध हो।"

"यह सब वाग्जाल है। राजनीति में मित्रता अथवा शत्रुता सामयिक अर्थ ही रखती है।"

"तो इस समय काश्मीर राज्य के हूण शासक से मैत्री करने की आवश्यकता ही क्या है?"

"आवश्यकता केवल इतनी है कि वह एक चढ़ता सूर्य है। उसकी उष्णता से हम भी उष्णता पा सकेंगे।"

"परन्तु भगवन्! वह चढ़ता हुआ सूर्य है अथवा राहु, यही निश्चय करने के लिए तो मैंने गुप्तचर भेजने के लिए प्रस्ताव किया है। राहु से मैत्री करने से उष्णता नहीं, प्रत्युत् मृत्यु की शीतलता मिलेगी।"

युक्ति मे अवलोकितेश्वर कभी भी पद्मराज को परास्त नहीं कर सका था। परन्तु अवलोकितेश्वर जानता था कि हर्षवर्द्धन भावुक व्यक्ति है और उसे मनोद्गारो की बाढ़ में बहाकर साथ लिया जा सकता है। इस कारण उसने अपना अमोघ शस्त्र छोड दिया। उसने कहा, "हम शान्तिप्रिय हैं। अतः हमें अपनी शान्तिप्रियता की घोषणा करते रहने मे सकोच नहीं करना चाहिये। हमारी मित्रता का हाथ सबके लिए और सदैव खुला रहना चाहिये। हमारी किसी से शत्रुता नहीं।"

इन उद्गारो के अधीन हर्षवर्द्धन ने अपना निर्णय दे दिया, "महामात्य! आप काश्मीर मे शान्ति का सन्देश ले जाने के लिए दूतों का प्रबन्ध कर दे और हूण-अधिपति माणिकन्द के लिए भेंट तथा एक पत्र तैयार कर दे।"

महामात्य ने कह दिया, "जैसी आज्ञा हो महाराज! एक-दो दिन

के भीतर यह सब प्रबन्ध कर दिया जायगा।"

इसी समय प्रतिहार ने सूचना दी, "महाराज! भारतप्रसिद्ध कवि-सम्राट् बाण भट्ट श्रीमान् के दर्शन करने के लिए उपस्थित है।"

"तो वह अभिमानी कवि आ गया है?"

"हाँ महाराज!" बोधिसत्त्व जी ने कहा।

हर्ष ने कहा, "प्रतिहार! इसको बाहर बैठने दो। हम इसका मान-मर्दन करना चाहते हैं।"

"क्या किया है महाराज! इसने?"

"एक समय यह स्थानेश्वर आया था। पूज्य पिताजी ने इसको पुरस्कृत करने के लिए राज्य-सभा मे बुलाया, तो यह अपने साथ एक नर्तकी और मदिरा की सुराही लिये हुए आ पहुँचा।

"पिताजी ने कहा, 'कवि हम तुम्हारी वाणी सुनना चाहते हैं।'

"वह बोला, 'महाराज! आज मेरा मन इस नर्तकी का नृत्य देखने को कर रहा है। आज्ञा हो तो यह अपना नृत्य दिखाए।' पिताजी को इसकी बात पर क्रोध चढ आया और उन्होने इसे धक्के मार-मार कर राज्य-सभा से निकलवा दिया।

"आज यह हमारे पास आया है।"

"वह स्वय नही आया महाराज! मैने इसे इसके भाई चन्द्रसेन के हाथ सन्देश भेजकर बुलाया था।" अवलोकितेश्वर जी ने कहा।

"क्यो?"

"इस कारण कि कवि राज्य-सभा की शोभा होगा। जहाँ महाराज की शान्तिप्रियता, साधुता, शौर्यता की कीर्ति फैलेगी, वहाँ श्रीमान् का विद्वानों, आचार्यों और धर्म-गुरुओ के लिए आदर और मान भी कीर्ति मे कारण बन जायेंगे।"

"अच्छी बात है। उसको बुलाओ।"

प्रतिहार गया और शीघ्र ही एक सुन्दर रूपरेखा वाले युवक को लेकर भीतर आ गया। यह बाण भट्ट था। उसने महाराज को झुककर

प्रणाम किया और कहा,

"सूर्य चन्द्र से आलोकित है जग जैसा।
भारत देदीप्यमान हो रहा है वैसा॥
श्रीकंठ नरेश की शोभा से है जगमग करता।
सकल जगत के सौष्ठव्य का भार है भरता॥
महाराज देव हर्ष से हर्षित सारे।
जन जन के मन पुलकित हो न्यारे न्यारे॥"

महाराज हर्षवर्द्धन ने मुस्करा दिया; परन्तु उन्होंने उत्तर न देकर समीप बैठे मालव-राजकुमार को सम्बोधन कर पूछा, "राजमाता कैसी है?"

"ठीक है महाराज!"

"उनको पत्र लिखो तो हमारा नमस्कार लिखना।"

"जैसी आज्ञा हो महाराज!"

पश्चात् हर्षवर्द्धन महामात्य को सम्बोधन कर कहने लगे, "हमने सुना है कि इन्द्रजालिक नाम की एक नर्तकी इस नगर मे आई हुई है और वह बहुत ही सुन्दर नृत्य करती है।"

"हाँ महाराज!" पद्मराज ने कहा।

"हमारी इच्छा उसका नृत्य देखने की हो रही है।"

"तो चन्द्रसेन प्रबन्ध कर देगा, महाराज!"

"कौन चन्द्रसेन?"

"महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी ने अभी-अभी एक इसी नाम के व्यक्ति का उल्लेख किया है।"

"ओह, समझा। मै समझता हूँ कि रात को नृत्य हो। हमारे महामात्य भी आ जायँ, तो नृत्य की शोभा द्विगुणित हो जायगी।"

"महाराज! यदि भूरी मृदंग बजाने वाले को बुला लिया जाय, तो शोभा सौगुना हो जायगी।"

"मृदग बजाने वाला तो नर्तकी का अपना होगा?"

"इस पर भी भूरी के आने से महाराज ! रंग जम जायेगा।"

"प्रतिहार !" महाराज ने आगार के बाहर खडे प्रतिहार को पुकारा। प्रतिहार के आने पर उन्होने आज्ञा दे दी, "चन्द्रसेन को बुला लाओ।"

प्रतिहार के जाने के पश्चात् हर्षवर्धन अवलोकितेश्वर जी से बोले, "महाप्रभु तो इस नृत्य में सम्मिलित नहीं हो सकेंगे।"

"रात का समय मेरा चिन्तन का होता है। मै उस समय उपस्थित नहीं हो सकूँगा।"

"ठीक है, जो कुछ हम देखेगे, हम कल महाप्रभु को बतला देंगे।"

"इन्द्रजालिक तो भारत को एक विख्यात नर्तकी है। उसके विषय मे महाराज की जो सम्मति होगी, उसका अनुमान मैं अभी से लगा सकता हूँ। वह नर्तकी अभी-अभी दक्षिण पथ का भ्रमण कर आई है। उस ओर के नरेशो से अनेकानेक पुरस्कार, जो इसने पाए है, वे बहुत ही मूल्यवान और सुन्दर हैं।"

इस समय महामात्य पद्मराज ने विस्मय मे पूछा, "ऐसा प्रतीत होता है कि महाप्रभु का इस नर्तकी के विषय में बहुत ही विस्तृत ज्ञान है। क्या यह नर्तकी वही नहीं, जिसने महाराज शशाक को बौद्ध-भिक्षु बनने की प्रेरणा दी थी ?"

"कदाचित् वही है। महाराज शशाक ने भिक्षु मार्ग छोड़ दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नर्तकी ने भी उस मार्ग का त्याग कर अब पुनः सासारिक-जीवन स्वीकार कर लिया है।"

"तब तो महाराज मैंने इसके दर्शन किए हैं।"

"कहाँ ?"

"जब यह नर्तकी मालव-नरेश देवगुप्त की हत्या और उसके साथ ही उसके विरोधी शशाक की हत्या का एकदम दुगुना षड्यन्त्र कर रही थी।"

"तो महामात्य इस नर्तकी को अधिक घनिष्टता से जानते हैं ?"

"इस पर भी जितना परिचय महाप्रभु को इसका प्रतीत होता है,

उतना मुझको नहीं है। उदाहरण के रूप मे मुझको यह ज्ञात नहीं कि यह दक्षिण पथ का भ्रमण कर आई है और वहाँ के नरेशो ने इसे पुरस्कार दिये हैं। न ही मुझे इसका ज्ञान है कि वे पुरस्कार मूल्यवान और सुन्दर है।"

"महामात्य को इतना ज्ञान तो होना ही चाहिये।"

"भगवन्! प्रभुओ तथा महाप्रभुओ के विषय मे इतना कुछ जानने को सदैव बना रहता है कि एक नर्तकी की बाते जानने के लिए अव-काश ही नही रहता। इस पर भी महाराज से मैं क्षमा चाहता हूँ और वचन देता हूँ कि इन्द्रजालिक के विषय मे आज नृत्य से पूर्व पूर्ण विवरण जान जाऊँगा।"

इस समय चन्द्रसेन आ उपस्थित हुआ और बात वहीं समाप्त हो गई। महाराज हर्षवर्धन ने कहा, "चन्द्रसेन! हमारी इच्छा है कि आज रात भारत विख्यात नर्तकी इन्द्रजालिक का नृत्य हो? प्रबन्ध हो सकेगा क्या?

"अवश्य, महाराज!"

"तो जाओ प्रबन्ध करो। रात भोजनोपरान्त एक प्रहर-भर नृत्य होगा।"

: २ :

पद्मराज राज्य-सभा के समाप्त होने के पश्चात् आगार से बाहर निकला तो बाणभट्ट भी महाराज को प्रणाम कर बाहर निकल आया। चन्द्रसेन ने बाणभट्ट को बधाई दी तो पद्मराज के कान खड़े हो गए।

"मुझे तो बधाई की कोई बात प्रतीत नहीं हुई।" बाण कह रहा था।

"महाराज तुमसे बहुत प्रसन्न हैं।"

"उनकी प्रसन्नता का, सिवाय एक बार मुस्कराकर देखने के अति-रिक्त, अन्य कोई लक्षण दिखाई नही दिया।"

"देव अपनी प्रसन्नता का परिचय इसी प्रकार दिया करते हैं। तुम आज रात नृत्य के समय अवश्य आना। इस प्रकार आते-आते तुम अपनी योग्यता की छाप महाराज के मन मे अवश्य डाल सकोगे।"

बाण ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और राज्य-प्रासाद के बाहर की ओर चल दिया। पद्मराज भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ पग जाकर उसने एक व्यक्ति को, जो प्रागण मे खडा था, कह दिया, "देखो, वह एक ब्राह्मण त्रिपुण्ड लगाए जा रहा है। विना उसको पता चले, उसके ठहरने का स्थान पता कर आओ।"

यह कहकर पद्मराज अपने कार्यालय मे चला गया। वहाँ अपने कार्य की देख-भाल कर वह अपने निवास-स्थान की ओर चल पड़ा।

घर पहुँचकर उसे अति विस्मय हुआ, जब उसने देखा कि बाणभट्ट वहाँ खडा है। पद्मराज के वहाँ पहुँचने पर बाण ने उन्हे नमस्कार कर दिया। पद्मराज ने पूछा, "भट्ट जी! कैसे आगमन हुआ है?"

कन्नौज महा के गगना में जगी ज्योति देखी थी न्यारी।
दर्शन उसके करने को तव वाणभट्ट नें की तैयारी॥

"ओह! कहाँ है वह ज्योति?"

"पतग दीपक को कभी कुछ नही कहता। वह तो अपने कर्म से ही दीपक की महत्ता सिद्ध करता है। श्रीमान् के दर्शन की अभिलाषा मुझे यहाँ खीच लाई है।"

"पर मै तो उस महान् ज्योति की, जिसके दर्शन कर तुम गद्‌गद् होकर यहाँ आ रहे हो, एक तुच्छ सेवक-मात्र हूँ।"

"ठीक है। उस महान् ज्योति के दर्शन कर आया हूँ और नर्तकी के नृत्य देखने का निमन्त्रण ले आया हूँ। अब उस महान् ज्योति के सेवक के तुच्छ दर्शन करने चला आया हूँ। पूर्ण आशा है कि श्रीमान् उन तुच्छ दर्शनो से इस पतित जीव को वचित नही रखेगे।"

"तो आइये भट्ट जी, भीतर आ जाइये।"

महामात्य की बैठक में पहुँच बाण भट्ट ने कह दिया, "श्रीमान्! मैं

एक बार पहले भी इस नगरी मे आया था और तब दो ही प्रकाश-पुंज यहाँ देख पाया था। उन सूर्य तथा चन्द्र-रूपी दो प्रकाश-पुंजो को छोड़-कर तो शेष यहाँ अमावस की रात्रि ही दिखाई दी थी। तब तो मनोरंजन ही लक्ष्य था, परन्तु अब कुछ अर्जन करने का विचार है। अब गगन मे सूर्य तो दिखाई दिया है, परन्तु चन्द्र नहीं मिल रहा। मुझको सन्देह हो रहा है कि चन्द्र को केतु ने ग्रस लिया है। क्या श्रीमान् उस चन्द्र को केतु से मुक्त नहीं करा देगे?"

"कवि! कहाँ है तुम्हारा सूर्य? जिसके दर्शन कर हम भी कृत्य-कृत्य हो सके।"

"भगवन्! कोई कितना भी महान् क्यो न हो, वह अपने दर्शन बिना दर्पण के नहीं कर सकता। महाराज! दर्पण सूर्य के सम्मुख उप-स्थित है और सूर्य यदि चाहे तो अपने दर्पण कर सकता है?"

"परन्तु दर्शन विकृत होने से देखने वाले को अपना मुख बहुत बढा-चढ़ाकर दिखा नही रहा क्या?"

"नही महाराज! यह दर्पण विकृत नहीं। इस की परीक्षा की जा सकती है।"

"हाँ, यह ठीक है। भला यह बताओ कि उस महान् ज्योति का कैसा प्रतिबिम्ब बना है दर्पण पर, जिसके दर्शन अभी-अभी करके आए हो?"

"ज्योति वास्तव मे महान् है। भगवान् की विशेष शक्ति उसमे देदीप्यमान है। विशाल भाल पर भाग्य-रेखा अति गहरी और दीर्घ है। परन्तु उस ज्योति पर कृष्ण आवरण चढ़ रहा है। उस आवरण मे से ज्योति का प्रकाश धीमा हो रहा है?"

"तो उस आवरण को उतार फेंक देने के लिए क्या किया जाय?"

"क्या आवश्यकता है इस आवरण को उतारने की?"

"आवश्यकता तो है। भारत-खण्ड मे महा अन्धकार छाया हुआ है। इस अन्धकार को दूर करने के लिए उस ज्योति के प्रकाश की आव-श्यकता है। भारत-खण्ड के कोने-कोने तक प्रकाश पहुँचाने के लिए इस

ज्योति पर के आवरण को उठा देना लाभकारी नहीं होगा क्या ?"

"भगवन् ! यह सम्भव है क्या ? पूर्व दिशा में उदित होते हुए भगवान् अंशुमाली के आगे से मेघमाला को हटा देने पर इस ज्योति की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। दीपक तो रात मे ही कार्य करने के लिए जलाए जाते हैं। प्रभात होते ही इनको बुझा दिया जाता है अथवा बुझ जाने दिया जाता है।"

"परन्तु सूर्य है कहाँ ? भारत-खण्ड के आकाश पर आज सूर्य दिखाई नहीं दे रहा मुझको। इसमे टिमटिमाते कई तारागण हैं, परन्तु सब तारागणों के सामूहिक प्रकाश से भी सूर्य का-सा प्रकाश नहीं मिल सकता। हाँ, उन तारागणों के समूह मे जो ज्योति उदित हुई है, वह मेघाच्छादित न हो, यही मेरा प्रयास है।"

"यह कैसे सम्भव होगा भगवन् ?"

"वेग की बयार चला देने से मेघ छिन्न-भिन्न हो सकेंगे। कवि मल्हार गायगा तो मेघ बरसेंगे और फिर पश्चिम की बयार उन नीर-रहित मेघो को उडाकर ले जायगी।"

एकाएक भट्ट ने वार्तालाप का विषय बदल दिया। उसने कहा, "यह विषय अति गम्भीर है, श्रीमान् ! पश्चिम की बयार तो अपने साथ महामारी भी ला सकती है। इससे तो पुर्वई ही चलने दी जाय। मेघो के आने से समस्या इतनी विकट नहीं बनेगी, जितनी महामारी लाने वाली पश्चिमी बयार के आने से।

"पर श्रीमान् ! एक मेरा इन्दु यहाँ कन्नौज मे था। मैं उसकी खोज मे हूँ। कन्नौज के राज्य-पथ पर एक ताम्बूलिन अपने पूर्ण ओज से पथ पर आने-जाने वालो से अठखेलियाँ करती देखी जाती थी। आज कन्नौज उस मनोहर चितवन से रहित दिखाई दे रहा है। क्यो ? यही जानने के लिए श्रीमान् जी की सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।"

"आश्चर्य की बात है कि इन्दु की खोज मे चकोर यहाँ किसलिये आया है ?"

"इन्दु अपनी आभा जिस सूर्य से पाता था, उसी से तो इस विषय मे पूछा जा सकता है। भगवन्! उसी सूर्य के समक्ष उपस्थित हो यह जानने का यत्न कर रहा हूँ कि श्रीमान् की ज्योति से आलोकित यह मेरा इन्दु कहाँ छुपा हुआ है?"

"ऐसा प्रतीत होता है, कवि! कि इन्दु अपनी परिधि से विचलित हो किसी अन्य सूर्य की परिधि मे घूमने लगा है। परन्तु इतने काल के पश्चात् चकोर को इन्दु का स्मरण कैसे हुआ?"

"चकोर एक बार इन्दु को पाने की अभिलाषा मे द्यूलोक की यात्रा को चल पडा था। इन्दु तो द्यूलोक मे रहा नहीं, प्रभात हो चुका था और आकाश मे अंशुमाली अपनी ओज बिखेरने लगा था। उस ओज के आतप से चकोर के पंख झुलस गए, तो वह उन झुलसे पखो को स्वस्थ करने के लिए पेड की छाया मे जा बैठा था। पंख पुनः सबल हुए हैं, तो चकोर इन्दु के दर्शन के लिए व्याकुल हो, पुनः द्यूलोक की यात्रा को निकल पडा है।"

"तो चकोर-चहचहाये। सम्भव है कि उसके चहचहाने को सुन इन्दु पुनः अपनी परिधि मे आकर भ्रमण करने लगे।"

"ऐसा ही होगा भगवन्! श्रीमान् जी के अनुमान की परीक्षा भी होगी।"

"तो कवि रात नृत्य देखने आयेंगे?"

"इस नर्तकी का नृत्य कवि ने तब देखा था, जब यह अभी बालिका-मात्र थी। इस बात को दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इन दस वर्षों मे नर्तकी ने कितनी उन्नति की है, यह देखने की अभिलाषा हृदय मे उत्पन्न हो गई है। अतएव इस अवसर से कवि लाभ उठाएगा और नर्तकी के दर्शन करने का यत्न करेगा।"

इस पर भी रात्रि को इन्द्रजालिक का नृत्य देखने के लिए कवि नहीं पहुँचा। महामात्य पद्मराज को कवि की अनुपस्थिति से आश्चर्य हुआ था, परन्तु उसने यह प्रकट नहीं होने दिया। महाराज हर्ष ने भी कवि

के विषय मे पूछने की उत्सुकता प्रकट नही की।

: ३ :

बाणभट्ट महामात्य के निवास-स्थान से निकल अपने गृह की ओर जा रहा था कि उसके साथ-साथ एक पीत-वसनधारी भिक्षुक चलने लगा। बाण को सन्देह हुआ कि यह जान-बूझकर उसके साथ चलने लगा है। अपने सन्देह का निवारण करने के लिए वह चलते-चलते मार्ग-तट पर खड़ा हो गया। वह भिक्षु भी खड़ा हो गया। जब बाण पुनः चलने लगा, तो वह भिक्षुक भी साथ-साथ चलने लगा। इस प्रकार यह निश्चय कर कि वह भिक्षुक उसके साथ-साथ ही चल रहा है, उसने उस भिक्षुक से पूछा, "भन्ते! क्या चाहते हो इस निर्धन ब्राह्मण से?"

"निर्धन?" भिक्षुक ने विस्मय प्रकट कर कहा, "तो कवि अभी तक अपने निवास-गृह पर नहीं गया?"

"क्यो, वहाँ क्या हो गया है?"

"वहाँ महाराज हर्षदेव के प्रतिहार कवि की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"क्या चाहते हैं वे कवि से?"

"वे कवि को महाराज द्वारा भेजे पुरस्कार से पुरस्कृत करना चाहते हैं।"

"पर भिक्षुक की इस विषय मे जानकारी और रुचि किस प्रयोजन से है?"

"भिक्षुक को उस पुरस्कार से कोई प्रयोजन नहीं। हाँ, उस पुरस्कृत कवि से अवश्य है। महाप्रभु बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी महाराज कवि को अपना आशीर्वाद भेजते हैं। महाप्रभु की उत्कट इच्छा है कि कवि उनको दर्शन दे।"

"तो पहिले उन्हीं के दर्शन के लिए चला जाय, भन्ते! कवि, महाप्रभु के दर्शन कर कृतकृत्य होगा।"

"मेरा निवेदन है," भिक्षुक ने कहा, "पहिले प्रतिहारो से निपट

लिया जाय। हाथ मे आई लक्ष्मी का निरादर करना बुद्धिमत्ता नहीं। न ही भगवती लक्ष्मी की छत्रछाया में पहुँचने में विलम्ब हितकर हो सकता है।"

"तो वीतराग भिक्षुक लक्ष्मी की महिमा से अनभिज्ञ नहीं? बहुत विचित्र है।"

भिक्षुक साथ चलता-चलता हँस पड़ा। जब बाण उसके हँसने का अर्थ जानने के लिए उसके मुख पर प्रश्न-भरी दृष्टि मे देखने लगा, तो वह बोला, "मै कन्नौज मे दो सौ चैत्यो का भण्डारी हूँ। सब चैत्यो की धन-सम्पद का लेखा-जोखा मेरे ही हाथ मे रहता है। अतः लक्ष्मी की छत्रछाया मे रहने का आनन्द मुझको उपलब्ध है। इस कारण इस सौभाग्य की महिमा कवि जी महाराज के कर्णगोचर की है।"

"तब तो एक अनुभवी व्यक्ति की सम्मति से लाभ उठाना ही चाहिए। प्रभु! मैं अपने निवास-स्थान पर जाकर महाराज द्वारा भेजे पुरस्कार से पुरस्कृत होकर ही भगवान् बोधिसत्त्व जी के दर्शन करने आऊँगा।"

भिक्षुक मुस्कराया और उसके साथ चलता रहा। बाण मन-ही-मन विस्मय कर रहा था कि महाराज जिस रूखेपन से उसकी ओर देखते रहे थे, उससे किसी भारी पुरस्कार की आशा करनी कठिन है। उसका विचार था कि निर्वाह के लिए कुछ वेतन के रूप मे उसको भेजा गया होगा। यह भिक्षुक, जिसने कदाचित् अधिक धनराशि नहीं देखी होगी, उसके वेतन को देख चकाचौंध रह गया होगा। अथवा यह भी सम्भव है कि वह भिक्षुक उसकी हँसी उड़ाने के लिए एक तुच्छ उपहार की महिमा गान करने लग गया है।

एक बात बाण को समझ आई थी कि महामात्य से मिलकर वह उन पर अच्छा प्रभाव डाल आया है। अब बोधिसत्त्व जी महाराज की सेवा में उपस्थित हो, उनका भी आशीर्वाद प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार वह अपनी स्थिति कन्नौज मे सुदृढ़ करने का विचार करने लगा था।

इसी प्रकार के विचारो मे लगा हुआ, वह अपने निवास-स्थान पर जा पहुँचा। वह अभी तक चन्द्रसेन द्वारा नियत गृह मे ही ठहरा हुआ था। चन्द्रसेन बाणभट्ट के पिता का असुर पत्नी से पुत्र था और भगवान् अवलोकितेश्वर जी से भली भाँति परिचित था। वास्तव में महाप्रभु के आदेश से ही उसने बाणभट्ट को कन्नौज में बुलाया था।

जब बाण अपने निवास-स्थान पर पहुँचा, तो उसने देखा कि बाहर एक सुसज्जित राज्य का रथ खड़ा है। रथ मे दो बिल्कुल श्वेत अश्व जुते हुए थे और रथ तथा उसकी छत रंगारंग के भूषणो और आभरणो से सुसज्जित थी। रथ मे एक चाँदी का बड़ा-सा थाल रेशमी वस्त्र से ढँपा हुआ रखा था। रथ की, पाँच सुभट खड्ग धारण किये रक्षा कर रहे थे। प्रतिहार-नायक स्वर्ण-मण्डित वस्त्र पहिने रथ के पास खड़ा था।

बाणभट्ट को आया देख प्रतिहार-नायक ने झुककर प्रणाम किया और कहा, "श्रीमान्! महाराज ने यह पत्र और यह रथ, इस पर की प्रत्येक वस्तु के साथ, आपकी सेवा मे भेजा है।"

बाण ने पत्र हाथ मे लिया, उसको आदर से अपने मस्तक पर लगाया और गृह के भीतर प्रवेश करते हुए कहा, "प्रतिहार-नायक! भीतर जाकर पत्र पढ़कर ही इसका उत्तर महाराज देव की सेवा में भेज सकता हूँ। आओ, भीतर आ जाओ।"

प्रतिहार-नायक के संकेत से प्रतिहारो ने रथ मे रखे थाल को उठाया। थाल वास्तव मे भारी था और सुभट उसे परिश्रम से ही उठा पा रहे थे।

बाण भीतर अपनी बैठक मे पहुँचा, तो प्रतिहार उसके पीछे-पीछे थाल उठाकर भीतर ले आए और उन्होने उसे बाण के सन्मुख रख दिया। बाण ने पत्र खोलकर पढ़ा। लिखा था,

"महाराज स्थानेश्वर-अधिपति, कन्नौज-संरक्षक, उत्तर-पथ विजेता श्री हर्षवर्द्धन की- आज्ञानुसार वत्स-वंश शिरोमणि बाणभट्ट की सेवा मे निवेदन है कि महाराज कवीश्वर को, अपने राज्य की शोभा मान, यह निवास-गृह, जिसमें कवि विराजमान है, भेटस्वरूप देते हैं। साथ ही

यह रथ, सारथि-सहित कवि महोदय की सवारी के लिए प्रदान करते हैं।

"महाराज की उत्कट इच्छा है कि कवि, सभा मे पधारते समय, राज्य के एक उत्कृष्ट व्यक्ति की भाँति भूषण, आभरणो से युक्त पधारे। अतएव इस स्थिति के अनुकूल रहने के लिए कवि को दस सहस्र स्वर्ण भेजते हैं और आज्ञा करते हैं कि प्रतिवर्ष इतना ही धन कवि को अपनी मान-प्रतिष्ठा स्थायी रखने के लिए मिलता रहे।

निवेदक—राज्य-कोषाध्यक्ष।"

बाण महाराज की उदारता देख चकित रह गया। उसने प्रतिहार-नायक की ओर देखा, तो उसके सकेत से प्रतिहारो ने थाल के ऊपर से रेशमी वस्त्र हटा दिए। थाल स्वर्ण-मुद्राओ से भरा हुआ था।

बाण ने सन्तोषपूर्वक मुद्राओ को देखा और कहा, "कोषाध्यक्ष श्री महासेन जी से मेरा निवेदन कर दे कि महाराज की इस कृपा के लिए मैं स्वय महाराज की सेवा मे उपस्थित होकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँगा।"

यह उत्तर पाकर प्रतिहार-नायक तथा अन्य प्रतिहार चले गए। इस समय रथ के सारथि ने झुककर प्रणाम करते हुए कहा, "श्रीमान्! मैं रथ का सारथि हूँ। क्या आज्ञा है मेरे लिए?"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"इल्वल, श्रीमान्!"

"ओह! क्या वेतन पाते हो?"

"दस स्वर्ण मासिक।"

"देखो इल्वल! अभी हम उस भिक्षुक के साथ, जो बाहर खड़ा है, भ्रमण के लिए जायँगे। तुम बाहर हमारी प्रतीक्षा करो। हम आ रहे हैं।"

सारथि गया तो वही भिक्षुक, जो बाण को बोधिसत्त्व जी के पास ले जाने के लिए आया था, भीतर आकर कहने लगा, "अब तो कवि अपने को निर्धन नहीं कहेगा।"

"यह तो भेट का धन है। भेटस्वरूप मिले धन से अपने को धनवान

मानने वाला व्यक्ति तो बुद्धिरहित ही माना जायगा।"

"कवि! यह तुम्हारी प्रतिभा का पुरस्कार है। महाराज ने तुम्हारी 'चण्डिका शतक' पढी है और उसमे के श्लेष और उपमाओ को पढ़कर, गद्गद प्रसन्न हो यह पुरस्कार दिया है।"

"तो भंते! अब बोधिसत्त्व जी महाराज के पास चलें।"

"पहिले इस अर्जित धन को समेट लो, कवि!"

"यह इतना बोझल है कि इसको उठाने का सामर्थ्य मुझ मे नहीं है।"

"तो यह भिक्षुक कवि की सहायता कर सकता है।"

धन का प्रबन्ध कर, बाण भिक्षुक के साथ रथ पर सवार होकर चल पडा। वह अपने सेवक को कहता गया कि वह सूर्यास्त से एक घडी के पश्चात् आयगा।

नगर के बाहर एक विशाल चैत्य मे पहुँच भिक्षुक कवि को बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी के पास ले गया। बोधिसत्त्व जी अपने आगार मे एक उच्च आसन पर, एक बडे से प्रश्रय के साथ ढासना लगाए बैठे थे। कवि ने सामने उपस्थित हो झुककर प्रणाम किया। बोधिसत्त्व जी ने कवि को बैठने को कह, साथ मे आए भिक्षुक को संकेत किया, तो वह दोनों को अकेला छोडकर बाहर चला गया।

"कवि!" अवलोकितेश्वर जी ने कहना आरम्भ किया, "यह तो तुम समझ ही गए होगे कि चन्द्रसेन ने हमारी ही आज्ञा से तुम्हे यहाँ बुलाया है। हमने तुम्हारी 'पार्वती-परिणय' कविता पढी है और पढकर अति हर्षित हुए हैं। उस अद्भुत कविता को लिखने वाले को एक ग्राम मे अपनी आयु व्यर्थ गँवाते देख, हमे बहुत दुःख हुआ। अतएव हमने कविश्रेष्ठ को कन्नौज में बुलाकर एक श्रेष्ठ आसन पर ला बैठाया है।

"हमारी यह अभिलाषा है कि कवि भारत मे धर्म, शान्ति और मुक्ति-पथ की प्रेरणा देने वालो मे सर्वश्रेष्ठ हो। कलह, द्वेष, हिंसा और अशान्ति को जन-जन के हृदय से उन्मूलन करने मे कवि सबल सिद्ध हो।

"भगवान् तथागत ने संसार को दुःखो से मुक्त करने के लिए अवतार लिया था। उन्होंने अपने जीवन के परिशीलन से यह परिणाम निकाला था कि सहिष्णुता, सहनशीलता तथा मन के आवेगो पर नियन्त्रण ही वास्तविक दुःखो के नाश करने मे योग्य है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ही सब दुःखो का मूल है और इनसे मुक्ति ही निर्वाण-पथ की ओर ले जाने वाली हो सकती है।

"अतएव कवि! अपनी वाणी और भाषा मे वह प्रेरणा भर दो, जिससे ससार मे सुख और शान्ति व्याप्त हो।"

बाण को इस भेट का केवल एक ही अर्थ समझ मे आया। वह यह कि उसको समझाया जा रहा है कि महाराज की ओर से जो मान-प्रतिष्ठा और सुख-सुविधा मिलने की आशा प्राप्त हुई है, उसमें बोधिसत्त्व जी का हाथ प्रमुख है। साथ ही यह कि चन्द्रसेन बोधसत्त्व जी के आदेश से ही उसको लेने गाँव गया था।

इस पर भी वह समझता था कि उसको बुलाए जाने का जो उद्देश्य वर्णन किया गया है, वह श्रेष्ठ ही है। परन्तु वह यह भली भाँति समझता था कि कवि अथवा लेखक कृत्रिम रूप मे निर्माण नही किए जाते। ये तो भगवती सरस्वती की प्रेरणा से स्वयमेव प्रस्फुटित होते हैं।

बाण ने बोधिसत्त्व जी के सम्मुख अपना निवेदन कर दिया, "भगवन्! एक कवि तो परमात्मा का मुख-मात्र होता है। विना उसकी इच्छा के एक शब्द भी वह नही कह सकता। यदि यह भगवान् की प्रेरणा के विना कुछ कहता है, तो वह कहा शब्द नीरस, निरर्थक और प्रभावहीन ही रह जाता है। अतएव भगवान् से ही प्रेरणा होनी चाहिए कि वह अपने इस अनुचर से उचित सेवा ले।"

"भगवान्! कौन भगवान्?" बोधिसत्त्व जी ने विक्षुब्ध हो पूछा।

"यह तो मै जानता नहीं। मैने उसको कभी देखा नहीं। इस पर भी मैने ऐसा कुछ अनुभव किया है कि कविता करते समय अथवा लेख लिखते समय कोई अज्ञात शक्ति मेरी लेखनी मे आ बैठती है और

मेरी लेखनी उसके बल से चलती चली जाती है। यह परमात्मा है अथवा निर्जीव प्रकृति की प्रेरणा, मै नहीं बता सकता।"

"यह संस्कार और वातावरण की प्रेरणा होती है। सो कवि! हम तुम्हारा वातावरण और तुम्हारे संस्कार ऐसे उत्पन्न कर देंगे, जिससे शान्ति और सहिष्णुता की गूँज तुम्हारी लेखनी को स्पन्दन करने लगे।"

"इसके लिए यह कवि भगवान् बोधिसत्त्व जी का अत्यन्त आभारी रहेगा।"

: ४ :

अवलोकितेश्वर जी महाराज से प्रेरणा लेकर कवि अपने रथ मे अपने निवास-स्थान की ओर लौट पडा। सारथि रथ के अश्वों के गले मे पड़ी घंटियों की टंकार गुंजाता हुआ रथ को राज्यपथ पर से निर्दिष्ट स्थान की ओर ले जा रहा था। बाण रथ मे रखे प्रश्रय का आश्रय लिए, विचारमग्न अपने चारों ओर चलते-फिरते कन्नौज निवासियों को देख रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि एक स्त्री पर, जो द्रुत गति से राज्यपथ पर एक किनारे-किनारे चली जा रही थी, पड़ी। उसे देख, पहिचान, बाण ने सारथि को रथ रोकने के लिए कहा। रथ रुका तो बाण लपक-कर रथ से उतर पडा और सारथि से बोला, "रथ हमारे निवास-स्थान पर ले जाओ। अश्वों को खोल देना और उनके घास और दाने का प्रबन्ध कर देना। जाओ।"

जब रथ चला गया तो बाण ने उस स्त्री की ओर ध्यान दिया, जिसको देख वह रथ पर से उतरा था। वह स्त्री पथ पर पर्याप्त दूर निकल चुकी थी। बाण लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ उसके पीछे चल पडा। शीघ्र ही वह उसके समीप पहुँच गया। वह स्त्री पत्रलता थी।

पत्रलता अपने साथ एक युवक को चलते देख खड़ी हो उसको देखने लगी और उसे पहिचान अवाक् खडी रह गई। बाण ने कहा, "देवी! यहाँ पथ पर इस प्रकार खडे रहने से तो आने-जाने वालो की भीड़

एकत्रित कर लोगी। चलो, किधर जा रही हो ?"

"पास ही आगे एक वीथिका में।"

"तो चलो मेरे गृह पर।"

"तुम्हारा गृह ! वह कहाँ है ?"

"राज्य-पथ के किनारे चौमुखे मार्ग से कुछ हटकर।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं पडा हुआ कोष पा गए हो अथवा कही डाका डाला होगा।"

"चलकर देखो तो पता चले कि धन पडा पाया है अथवा कहीं डाका डाला है।"

"सत्य ? तो डाका भी डालने लगे हो ! तब तो तुम्हारे घर पर नहीं जाना चाहिए।"

"डाका डालता हूँ पर निस्सहाय अबलाओ पर नहीं। देवी निस्संकोच मुझ पर विश्वास कर सकती है।"

"तो चलो। तुम्हारा विश्वास करना ही होगा।"

दोनो चल पडे। चलते हुए बाण ने कहा, "मैंने सूर्य भगवान से पूछा था कि उनकी ज्योति से प्रतिबिम्बित होने वाला इन्दु कहाँ है, तो सूर्य भगवान् बोले कि ऐसा प्रतीत होता है कि इन्दु अपने पथ से विचलित हो किसी अन्य सूर्य को परिधि मे घूमने लगा है।

पत्रलता मुस्कराई और बोली, "सूर्य बेचारा नहीं जानता कि इन्दु जिस डोर से बँधा हुआ पृथ्वी और सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है, वह सहज टूटने वाली नहीं।"

"ओहो ! तो इन्दु अभी भी सूर्य की परिधि मे ही घूम रहा है ? देखो देवी ! क्या अब ताम्बूल लगाना छोड दिया है ?"

"नहीं श्रीमान् ! यह ताम्बूलिन तीर्थयात्रा पर गई थी। यह कन्नौज की वीथिकाओ मे चक्कर काटती-काटती ऊब, कैलाश-यात्रा के लिए चल पड़ी थी। आज ही यात्रा से लौटी हूँ और अपनी दुकान देखने गई थी कि वह किसके पास है। सुना है कि उस दुकान मे तीन ताम्बूल

बेचने वाले आ चुके हैं और तीनों ही दिवाला निकाल भाग चुके हैं। दुकान इस समय रिक्त है। मैं उसके स्वामी से बात कर चुकी हूँ। कल से दुकान खुल जायगी।"

"और निवास ?"

"निवास का प्रबन्ध तो वही है, जो पहिले था।"

"तो इस सेवक का निवास देख लिया जाय। यदि पसन्द हो तो उस स्थान की शोभा बढ़ाई जाए ?"

"शोभा तो श्रीमान् से उस गृह की पहिले ही बहुत अधिक हो रही होगी। हाँ, तनिक देख लूँ कि श्रीमान को वह गृह किस बाप के उत्तराधिकार मे मिला है। मुझे तो अभी तक वह दिन स्मरण है, जब श्रीमान् के पास एक बीडा पान के दाम देने तक के लिए कुछ नही था। आपको स्मरण होगा कि एक दिन आप मेरी दुकान के सामने, पथ के दूसरे किनारे खडे एक प्रहर तक मुझे देखते रहे थे। जब मैने बुलाकर पूछा था, 'युवक ! वहाँ खडे क्या कर रहे हो ?'

"तो श्रीमान का उत्तर था, 'चाँद की शोभा देख रहा हूँ।'

"मैने हँसकर कहा था, 'चाँद पान बेचने नहीं आता।'

"आपने उत्तर दिया था, 'एक पान इन कर-कमलों से लगा दो तो कृतकृत्य हुआ मानूँगा।'

"जब मैने पान लगाकर दिया तो श्रीमान् पान मुख मे डालकर बोले, 'दाम हिसाब मे लिख लो, एक दिन सब चुका दूँगा।'

"पश्चात् आप एक मास तक लगातार आ, पान लेकर, मार्ग के दूसरे किनारे खडे हो मेरी सूरत देखते रहे। पश्चात् एकाएक आप लोप हो गए।"

"अब मै पिछला सब दाम चुका दूँगा।"

"मैने वह रकम बट्टेखाते मे डाल दी है। अब नहीं लूँगी।"

"तो एक ब्राह्मण को एक ताम्बूलिन के ऋण मे दबा रहना पडेगा ?"

"वह ऋण नहीं रहा। वह तो अब दान-दक्षिणा का रूप हो गया

है। ब्राह्मण तो दान-दक्षिणा लेने का अधिकारी होता ही है।"

इस समय वे बाण के निवास-स्थान पर पहुँच गए थे। सेवक भोजन तैयार कर स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था। जब दोनो बाण के आगार मे पहुँचे तो सेवक ने कहा, "श्रीमान्! भोजन तैयार है।"

"खाने वाले दो हैं।" बाण ने कहा।

"दो नहीं एक।" पत्रलता ने बात बीच मे ही काट कर कहा, "मै बिना यह जाने कि धन कहाँ से आ रहा है, इसका उपभोग नहीं कर सकती।"

"अर्थात् अपना परिचय दूँ?"

"इस समय तो अपने धन का परिचय दीजिए। साधारण परिचय से काम नहीं चलेगा।"

पत्रलता ने जब से उस गृह मे प्रवेश किया था, वह ध्यानपूर्वक गृह को देख रही थी। गृह की सजावट देखकर उसे विश्वास नही आ रहा था कि यह बाण का निवास-स्थान बन सकता है। एकाएक उसे स्मरण हो आया कि यह कन्नौज महाराज का अतिथि-गृह है। इससे वह समझ गई कि बाण कन्नौज महाराज की सेवा मे आ गया है। उसने मुस्करा कर कहा, "प्रतीत होता है कि आज श्रीमान्, कन्नौज महाराज के अतिथि बने हुए हैं।"

"देवी की सूझ बूझ अति श्रेष्ठ है।"

"कदाचित् आप महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी के षड्यत्र से यहाँ पहुँचे है।"

"षड्यन्त्र से?" बाण इस शब्द को सुन चकित रह गया। यही भाव दूसरे शब्दो मे बोधिसत्त्व जी ने स्वय स्वीकार किया था। इस पर भी उसने विस्मय प्रकट कर कहा, "देवी बोधिसत्त्व जी के विषय मे बहुत ही हीन सम्मति रखती है।"

"इसमे हीनता का भास कहाँ से आ गया? श्रीमान्! देखिये, षड्यन्त्र स्वयमेव कुछ बुरी बात नहीं। किसी कार्यसिद्धि के लिए गुप्त

रूप से प्रयास करने को ही तो पड्यन्त्र कहते हैं। षड्यन्त्र शुभ कार्य के लिए भी हो सकता है और अशुभ के लिए भी। अतएव षड्यन्त्रकारी होना बुरी बात नहीं। हॉ, किसी नीच कार्य के लिए पड्यन्त्र करना बुरी बात है।

"पर एक बात सिद्ध हो गई कि आपके इस अतिथि गृह मे ठहरने में अवलोकितेश्वर जी महाराज का हाथ अवश्य है। क्या यह सत्य है?"

"कुछ तो देवी की धारणा ठीक ही है, परन्तु सर्वथा नहीं। सुनो, मै वत्स वशजोत्पन्न बाण भट्ट हूँ। मेरा विचार था कि देवी मेरा नाम जानती होगी।"

"ओह! अब समझी। तो आप ही देशविख्यात बाणभट्ट हैं। मैं कवि महाराज को नमस्कार करती हूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान कन्नौज-नरेश पिछले मौखरी महाराज से अधिक रसिक हैं, जो उन्होंने एक कवि को इतने सुन्दर गृह मे ठहराया है।"

"केवल ठहराया ही नहीं, प्रत्युत् यह गृह दान मे दे दिया है। साथ ही दस सहस्त्र स्वर्ण वार्षिक वेतन निश्चित् किया है।"

"इतना कुछ देकर क्या उन्होंने आपको यह नहीं कहा कि आप कविता किस विषय पर लिखें?"

"महाराज ने तो नहीं कहा।"

"तो किसी और ने कहा है? सत्य बताओ कवि! क्या इस विषय मे पथ-प्रदर्शक बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी नहीं हैं?"

"हैं तो वे ही। इस पर भी देवी जी को यह समझ लेना चाहिए कि बोधिसत्त्व जी केवल पथ-प्रदर्शक मात्र हैं। इसके यह अर्थ नहीं कि उनसे निर्दिष्ट पथ मैंने स्वीकार कर लिया है।"

"किधर का पथ बताया है महाप्रभु ने?"

"निर्वाण का, शान्ति और सहिष्णुता का।"

"बहुत सुन्दर पथ है। पर कवि! शान्ति और सहिष्णुता क्या ध्येय

हैं ? यदि तो ये किसी उद्देश्य के लिए साधन मात्र हैं, तब तो दूसरी बात है और यदि शान्ति स्वयमेव उद्देश्य बन जाए तो जीवन का अन्त ही हो जाएगा। सर्वत्र शान्ति और सहिष्णुता तो शव का धर्म है। क्या पूर्ण समाज को एक शव के तुल्य बनाने के लिए आपको आमंत्रित किया गया है ?"

बाण पत्रलता को युक्ति करते देख चकित रह गया। वह मन मे विचार करता था कि यह पान बेचने वाली ऐसी तार्किक कैसे बन गई। इस पर उसको समझ आया कि जिस सूर्य की परिधि मे यह घूमती है, वह महामात्य है। अतएव इसके मन मे उस महान् सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहा होगा। इतना विचार कर उसने कहा, "शान्ति और सहिष्णुता तो पथ है। परन्तु उद्देश्य-प्राप्ति निर्वाण है।"

"निर्वाण ? यह किस बला का नाम है ? कवि निर्वाण के अर्थ पूछे थे महाप्रभु से ?"

"निर्वाण का अर्थ है महान् प्रशान्त अवस्था।"

"अर्थात्, महान् शान्ति के लिए लघुशान्ति उपाय है। दूसरे शब्दो मे यह कहो कि मीठा खाने के लिए मीठा खाना उपाय है। तो उद्देश्य और साधन अभिन्न हो गए। उद्देश्य और पथ एक हो गए। क्या यही उपदेश महाप्रभु ने दिया है ?"

इस समय पाचक ने पुनः स्मरण कराया, "श्रीमान् भोजन तैयार है।"

"तो परस दो। दो व्यक्तियो के लिए।"

इतना कह बाण ने पत्रलता की ओर देखकर कहा, "अब तो देवी जी को पता चल गया होगा कि यह धन-वैभव चोरी-डाका डालकर उपलब्ध नहीं किया। यह तो महाराज ने अपने सेवक को वेतन-स्वरूप दिया है।"

"महाराज का अन्न तो मै खाती रही हूँ। वह मै अपना ही मानती हूँ।"

"यह कौन? देवी जी का महाराज से क्या सम्बन्ध है?"

"मैं महाराज की प्रजा हूँ। मैं कर देती हूँ और पश्चात् मैं अपनी सेवाएँ देकर, उस कर द्वारा प्राप्त धन में से अपना भाग वापिस ले लेती हूँ। साथ ही उचित अधिकारी द्वारा लेती हूँ। आपके धन में भी वही धन है, इस कारण यह धन पच जायगा।"

भोजन परसा गया और दोनों खाने लगे। वारा ने कहा, "देवी! मुझको यह देख अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि इस गृह में महिला अतिथि वही है, जिसको मैं हृदय से आमन्त्रित करना चाहता था।

"मैं आज प्रातःकाल इस नगर में आया था। आते ही मुझको इस निवास-स्थान पर ठहराया गया और यह कहा गया कि मध्याह्नोत्तर मैं महाराज के दर्शन कर सकूँगा। अतएव पूजा-पाठ इत्यादि से निवृत्त हो पहला कार्य जो मैंने किया, वह देवी जी के दर्शन करने के लिए चौक में जाना था। वहाँ माल की दुकान बन्द देख मैंने पड़ोसियों से पूछा। पता चला कि देवी जी को दुकान छोड़े एक वर्ष से ऊपर हो चुका है और कोई नहीं जानता कि आप कहाँ हैं। इस समाचार से मुझे भारी निराशा हुई थी। मैं यह समझने लगा था कि मेरी यात्रा निष्फल गई है।

"महाराज से भेंट हो चुकने के पश्चात् मैं महामात्य के दर्शन करने गया और उनसे भी मैंने देवी जी के विषय में पूछा। यह मेरा अहोभाग्य है कि कन्नौज में आने के पहिले ही दिन मैं देवी जी के दर्शन कर सका हूँ और इस निवास-स्थान के अपने करने के पहले ही प्रहर में देवी को आमन्त्रित कर सका हूँ। इस गृह में अपने अर्जित वेतन में से यह पहला भोजन करने लगा हूँ। मेरी यह अर्जित वृत्ति कृतकृत्य माननी चाहिए, जो इस समय देवी मेरे साथ बैठकर भोग कर रही हैं।

"मेरी भगवान से प्रार्थना है कि अब शेष जीवन-भर मुझको यह सौभाग्य नित्य और सर्वदा प्राप्त रहे, जिससे मैं देवी की सेवा कर उसको प्रसन्न रख सकूँ।"

पत्रलता इस लम्बी वक्तृता को सुनकर मुस्कराई और बोली, "कवि! क्या बात करते समय भी समास-पर-समास लगाते जाओगे? आपके यह सौभाग्य का बखान, भगवान् की कृपा का आख्यान और आपके मन की आशाओ का आह्वान कब तक चलता जायगा?

"सुनिये, मैं आप जितना पढी-लिखी विद्वान् नहीं हूँ। मैं तो एक शब्द मे अपने मन की बात कहती हूँ कि कल से ताम्बूलिन अपनी दुकान पर पान बेचेगी और अपने ग्राहको को प्रसन्न करने के लिए वढिया-से-बढ़िया पान लगाकर देगी।"

"तो फिर क्या हुआ? यह बात मेरी आशा और अभिलाषाओ मे बाधक तथा विरोधी कैसे बन सकती है?

"देवी! यह इतना बडा गृह रिक्त पडा है। कितने ही आगार हैं इसमे? इनको अपने रहने के लिए प्रयोग क्यो नही कर सकती? पान लगाते-लगाते जब देवी थक जायँगी तो विश्राम के लिए यहाँ प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्राप्त हो सकेगी।"

"यह निमन्त्रण है अथवा आदेश?"

"निमन्त्रण।"

"तो निमन्त्रण की स्वीकृति और उस स्वीकृति की सीमा तथा प्रकार तो निमन्त्रित व्यक्ति की इच्छा पर ही निर्भर करता है न?"

"हाँ! हाँ! यह तो है ही।"

"तो मुझको स्वीकार है। मै जिस समय विश्राम की आवश्यकता समझूँगी, यहाँ आ जाया करूँगी। जितना चाहूँगी, खाऊँगी अथवा नहीं खाऊँगी। क्यो है स्वीकार?"

"हाँ बिलकुल।"

"अतिथि की पदवी के अतिरिक्त और कोई पदवी इस निमन्त्रण के साथ सम्बन्धित तो नहीं?"

"अतिथि स्वतन्त्रता से विचर सकेगा।"

इस प्रकार वार्तालाप मे बहुत रात्रि व्यतीत हो गई और कवि नृत्य

देखने नहीं जा सका।

: ५ :

पत्रलता ने एक-दो दिन मे अपनी दुकान का प्रबन्ध कर लिया। एक दिन वह हाथ मे पान की डोली उठाए हुए महामात्य के घर पर जा पहुँची। सूचना भेजते ही उसे भीतर बुला लिया गया। महामात्य के आगार मे प्रवेश करते ही महामात्य ने उससे पूछा, "पत्रलता! कब आई हो कैलाश यात्रा से?"

"तीन दिन हुए यहाँ पहुँची थी। दुकान का प्रबन्ध करने मे व्यस्त रहने के कारण श्रीमान् जी के दर्शन करने नहीं आ सकी।"

"सुनाओ! यात्रा मे कष्ट तो नहीं हुआ।"

"कष्ट और आराम साथ-साथ चलते हैं। यदि यात्रा मे आनन्द तथा मानसिक सन्तुष्टि न मिले तो इतनी कष्टप्रद यात्रा असम्भव हो जाय। कैलाश जाकर मानव-शरीर के सहन करने की सीमा का ज्ञान हो जाता है और इतना मात्र-ज्ञान भी कम सुखप्रद नही?"

"क्या सीमा है सहन-शक्ति की?"

"सहन-शक्ति असीम है। अभ्यास से इसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं।"

"देखा है कन्नौज को? कुछ परिवर्तन प्रतीत हुआ है यहाँ?"

"हाँ श्रीमान्! पूर्ण नगर मे उथल-पुथल देखी है। पथ सपाट और पक्के हो गए हैं। राजमार्ग चौड़ा कर दिया गया है। बीसियो नये भव्य-भवन खड़े दिखाई देने लगे है। जनता भी पहले से अधिक समृद्ध और सम्पन्न प्रतीत होती है। दुकानो पर पहले से अधिक चहल-पहल दिखाई देती है और साधारण लोग भी भूषण और वस्त्रो से अलकृत दिखाई देने लगे हैं।"

"तो इन दो-तीन दिनो मे तुम यही देख सकी हो?"

"हाँ श्रीमान्!" पत्रलता ने महामात्य के सम्मुख भूमि पर बैठ पान

लगाते हुए कहा, "एक और वस्तु देखी है, जिसने कन्नौज-राज्य में चार चाँद लगा दिया प्रतीत होता है। कल एक नई बात हुई है, जो मेरे जीवन-काल में पहले कभी नहीं हुई। कन्नौज मे कवियो और लेखको का सम्मेलन हुआ था। राज्य-पथ पर एक विशाल भवन के प्रागण मे कन्नौज के लगभग पचास कवि तथा गद्य-लेखक एकत्रित हुए थे। उसमे भारत के एक विख्यात कवि सर्वोच्च आसन पर आसीन थे। कन्नौज के महाराज देव भी उसमे एक साधारण कवि के रूप मे विद्यमान थे। यह एक चमत्कार था, जो मैने पहले कभी नहीं देखा था।"

"तो क्या हमारी पत्रलता भी उस कवि-सम्मेलन मे उपस्थित हुई थी?"

"हाँ श्रीमान्! परन्तु कवि के रूप मे नहीं। केवल पान वितरण करने वाली के रूप में।"

"तब तो पत्रलता! तुम्हें महाराज के इस प्रयास के गुण-अवगुण जानने का अवसर मिला होगा। क्या अनुभव किया है तुमने इस कवि सम्मेलन मे?"

"अभी तो यह आयोजन नितान्त प्रारम्भिक स्थिति मे है। यह प्रथा अभी जड भी नहीं पकड़ पाई। गुण-अवगुण तो पेड़ के फल होते हैं। इस वृक्ष के फल कैसे होगे, अभी कहना कठिन है।"

"महाराज स्वयं एक कवि है। उन्होने अपने अनुभव और ज्ञान की वृद्धि के लिए नगर में कुछ कवियो और लेखको को एकत्रित कर लिया है और उनको प्रतिमास एकत्रित हो अपने-अपने विषय पर विचार विनिमय करने का यह अवसर देना आरम्भ किया है।"

"तो श्रीमान् इससे अति सन्तुष्ट प्रतीत होते है?"

"मैंने ऐसी कोई बात नही कही। मैंने तो केवल वस्तुस्थिति का वर्णन किया है।"

"मैं यह जानना चाहती हूँ कि श्रीमान् का इस आयोजन में कितना हाथ है। इतना जानने के पश्चात् ही तो मैं इस विषय मे अपना मत

निवेदन कर सकूँगी।"

इस समय महामात्य ने पत्रलता के हाथ से पान लेकर मुख में रख लिया था। पान को चबाते हुए उन्होंने कहा, "पत्रलता! आज लग-भग दो वर्ष पश्चात् ऐसा पान खाने को मिला है। क्या मिलाती हो इसमे?"

"मिलाती तो साधारण कत्था, चूना, सुपारी और कुछ सुगन्धित द्रव्य हूँ, परन्तु यह तो आप सरीखे श्रीमानो की अनुकम्पा मात्र ही है, जो इस ताम्बूलिन की तुच्छ कला की सराहना होती है।"

"तो पान लगाना भी एक कला है?"

"हाँ श्रीमान्! वास्तव मे संसार मे प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक कार्य कलामय ही होता है, परन्तु सबका मूल्य एक समान नहीं होता। किसका मूल्य कितना लगता है और फिर कौन उसका मूल्य लगाता है, यही उस कला की श्रेष्ठता का माप-दण्ड हो सकता है।"

महामात्य कुछ विचार मे डूबा हुआ पत्रलता के मुख पर देख रहा था। उसको इस प्रकार अपनी ओर निहारते देख पत्रलता ने पूछा, "श्रीमान् किस विचार मे डूब गए हैं?"

"हम तुम्हारे इस सिद्धान्त पर विचार कर रहे हैं कि क्या सत्य ही सृष्टि मे प्रत्येक प्राणी का कार्य कला ही है!"

"तो श्रीमान् को इसमे सन्देह है क्या?"

"हम तो कला के अर्थ वह कार्य समझे हैं, जो इन्द्रियो को प्रसन्न रखने की क्षमता रखता हो।"

"तो श्रीमान् ने ठीक ही समझा है।"

"परन्तु मनुष्य का प्रत्येक कार्य तो इन्द्रियो को प्रसन्न करने वाला नहीं होता। एक कुली का बोझा ढोना किस प्रकार उसकी इन्द्रियो को तुष्टि प्रदान कर सकता है?"

"कुली को बोझा ढोने से धन मिलता है और यह उसकी क्षुधा-तृप्ति मे सहायक होता है। इस प्रकार उसका बोझा ढोना भी उसकी

इन्द्रियों को सुख देने वाला सिद्ध होता है। वह यह बोझा कभी न ढोए, यदि उसको विश्वास हो जाए कि उसके इस कार्य से उसको कभी कुछ सुखकारक वस्तु नहीं मिलेगी। परन्तु बोझा ढोने से किसी-न-किसी रूप में आनन्द तो मिलता ही है। अतएव यह भी एक कला हुई, यद्यपि बहुत ही छोटी श्रेणी की।"

"परन्तु बोझा ढोने से कष्ट भी तो होता है?"

"जी हाँ। यह इस कारण कि बोझा ढोने से फल-प्राप्ति उतनी नहीं होती, जितनी वह कुली आशा रखता है। अतएव उसका कार्य कला न रहकर भार-रूप हो जाता है। यह बात तो श्रीमान्! सब कलाओं में है।

"अब आपकी बात ही लें। कविता करना तो कला है ही। इसमें तो किसी को संदेह करने को स्थान नहीं। परन्तु यदि कवि को कविता करने पर बाध्य किया जाय और उसके लिए विषय का निर्वाचन और कविता की रूपरेखा और फिर उसका पुरस्कार देना हो, तो वह कविता करना भी भार-रूप बन जायगा। उसको तो कविता करना न कहकर बोझा ढोना ही कहना उचित होगा।"

"ओह! तो तुम कवि-सम्मेलन के आयोजन में छिद्र देखती हो?"

"हाँ श्रीमान्! मेरी धारणा तो एक कवि के विषय में भिन्न है। वह आपके महाराज तथा बोधिसत्त्व जी की धारणा के विपरीत है। मैं तो यह समझती हूँ कि कवियों को यहाँ नगरों में बिठाकर उनको प्रतिमास मिलकर कविता अथवा गद्य-लेख पढ़ने को कहना, उनको बोझा ढोने के लिए कहना है। इस पर एक कठिनाई यह है कि उनको विषय, जिस पर वे लिखें, संकेत कर दिया जाता है। कल के सम्मेलन में एक कवि को पुरस्कृत किया गया था। वह कवि शान्ति की व्याख्या करने में सर्वश्रेष्ठ माना गया था।"

"क्या कहा था उसने?"

"जिन शब्दों में उसने कहा था, वे तो मैं दुहरा नहीं सकती। हाँ,

भाव कुछ ऐसे थे,

'निर्वाण सकल संसार को गति से शून्य करना है। महाप्रभु, महाप्रबुद्ध, महान् पथ-प्रदर्शक महात्मा गौतम के पथ पर चलते हुए ससार को अन्त पूर्ण शान्ति, पूर्ण निस्तब्धता और पूर्ण निश्चलता उत्पन्न होना है। जब पशु-पक्षी, वनस्पति अथवा मानव सब एक स्तर पर हो, ऊँच-नीच से रहित हो, एक-सार, एक-रस, एक-भाव और एक-रूप हो, तब ही निर्वाण-सिद्धि समझनी चाहिए। जब पूर्ण जगत् एक आलोक से ओत-प्रोत एक ही हो जाय, तो ससार की निर्वाणावस्था माननी चाहिए।

'मनुष्य संसार की सकीर्ण जटिलता है; यह प्रकृति की नवीनतम गाँठ है; यह जल मे गम्भीर भंवर है, यह आदि प्रकृति की अवस्था से अति दूर की वस्तु है, इसी कारण यह प्रारम्भिक शान्तावस्था से अति दूर अशान्तिमय समस्या बनी हुई है। भगवान् इसको निर्वाण-पथ का अनुगामी करे। इत्यादि-इत्यादि।' "

"और तुम, क्या इसको कवि की एक उच्चतम भावना नहीं मानती? मैं समझता हूँ कि कवि ने कल्पना की डोर को बहुत दूर तक खीचा है। यह वास्तव मे ही पुरस्कृत होने के योग्य था।"

"मै तो श्रीमान्! एक अनपढ़ ताम्बूलिन हूँ। अतएव मेरी उस विद्वान् मण्डली की विवेचना अनधिकृत कार्य ही है।' इस पर भी एक अन्य युवा कवि थे। नाम था मयूर। मुझे तो उसकी कविता पसन्द थी। उसने गाया था,

'वनों मे मोर नाचते है। उनको यह पृथ्वी अति सुन्दर और हर्ष-दायिनी प्रतीत होती है।

'वह निश्चलता, निस्तब्धता और अकर्मण्यता को पसन्द नहीं करता। उसको भय है कि ऐसा होने से उसमें कोयल के मधुर गीत, बादलों का घोर गर्जन, चन्द्र की शीतल चन्द्रिका, प्रेयसी के प्रिय कथन और फिर भगवान् तथागत के प्रबुद्ध प्रवचन सुनने की शक्ति नहीं रह जायगी।

इ— 'वह जानता है कि माँ के गर्भ मे नौ मास पर्यन्त मल-मूत्र मे
ए विचरना अति भयानक और गदी अवस्था है, परन्तु उसके सहन करने में भी वह हर्ष अनुभव करता है, क्योंकि उसको पता है कि नौ मास के अनन्तर जब उसके चक्षु खुलेंगे, उसके कर्ण श्रवण कर सकेंगे और उसकी अन्य इन्द्रियाँ तथा मन इस ससार के सौन्दर्य, वैभव और माधुर्य को अनुभव कर सकेंगे, तो उसको नौ मास की यत्रणा के फलस्वरूप यह सौ वर्ष का आनन्द पाने के योग्य हो जाना अच्छा प्रतिकार प्रतीत होगा।

'वह मनुष्य को एक दुस्तर गाँठ नही समझता, प्रत्युत् उसको भगवान् और प्रकृति के संयोग की सर्वोत्कृष्ट विभूति मानता है। वह इसको मोक्ष-प्राप्ति की अन्तिम सीढी समझता है। मकडी के अपने तार के अन्तिम पग पर पहुँचने के समान, वह मनुष्य-जीवन का उद्देश्य आत्मा के परम ध्येय के समीप पहुँचा समझता है।'

"श्रीमान्! मयूर की इस कृति को जब सब कवि लोग सुन-सुन कर गद्गद् हो रहे थे, तो मैं समझी थी कि उस दिन का पुरस्कार वह प्राप्त कर गया है, परन्तु पुरस्कार मिला मनुष्य को प्रकृति की दुस्तर गाँठ बताने वाले को, जो इस संसार को विकृत मानता है और इससे दूर भागने को सत्कार्य मानता है, जो अकर्मण्यता को कार्य समझता है।"

महामात्य हँस पडा और उठते हुए बोला, "पत्रलता! हम तुम्हारे प्रति अत्यन्त आभारी हैं, जो तुम इतने स्वादिष्ट और स्फूर्तिदायक पान खिलाती हो। इस पर भी हमको आश्चर्य है कि कल वाले कवि-सम्मेलन में तुम्हारे पान केवल मयूर को ही स्फूर्ति दे सके।"

पत्रलता भी अब उठ खडी हुई थी। उसने कह दिया, "श्रीमान्! यह मेरे पानो का दोष नहीं। पान खाने वाले तो सुन्दरी के सौन्दर्य, मयूर के नृत्य, जूही-चम्पा की सुगन्धि और सुरा की मस्ती को अनुभव करते थे। परन्तु पान न खाने वाले भी बैठे थे, जिनको इन सासारिक वस्तुओ में सार प्रतीत नहीं हुआ था। मैंने यत्न किया था कि एक दक्षिणी पान उनके अधरो को भी रगीन कर दे, परन्तु उनको इससे

घृणा प्रतीत होती थी। इस कारण उनका निर्णय महाशान्ति के पक्ष में रहा।"

महामात्य ने एक स्वर्ण पत्रलता की पान की डोली मे डालते हुए कहा, "इस समय हमको राज्य-परिषद् मे जाना है। हम आशा करते हैं कि देवी पत्रलता नित्य इसी समय पान लेकर आया करेगी, जिससे हमारे विश्राम का यह समय अत्यन्त रुचिकर एवं उपयोगी तथा ज्ञान-युक्त बातो मे व्यतीत हो सके।"

पत्रलता ने एक पत्ते मे पाँच पान लपेटकर महामात्य के सेवक को देते हुए कहा, "पुण्डरीक! यह महामात्य जी को राज्य-सभा मे जाने से पूर्व अवश्य खिला देना।"

महामात्य हँस पड़ा और पूछने लगा, "यह क्यो?"

"इसलिए श्रीमान्! कि आप राज्य-परिषद् मे श्मशान भूमि की निस्तब्धता को रोकने में सबल हो सके।"

: ६ :

राज्य-परिषद् मे उस दिन कई अति गम्भीर विषयो पर निर्णय होने वाले थे। अतएव महाराज हर्षवर्धन की प्रार्थना से बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी भी राज्य-सभा मे उपस्थित थे। सबसे महत्वपूर्ण विषय यह था कि शशाक पुनः सीमा पर छुट-पुट आक्रमण करने लगा था और निर्धन, निस्सहाय कृषको के धन-माल को लूटने लगा था। महाराज के पास इस प्रकार के समाचार आने लगे थे कि शशाक के सैनिक कन्नौज-राज्य के मगध प्रान्त मे घुस, वहाँ से स्त्रियो का अपहरण कर ले जाते हैं और फिर उन्हे गौड-राज्य के धनीमानी जनो की सेवा के लिए बेच देते हैं।

महामात्य ने राज्य-परिषद् मे इन समाचारो की एक लम्बी सूची पढ़कर सुनाई। तत्पश्चात् इन समाचारो के निराकरण का उपाय बताया। "महाराज! मै राज्य-परिषद् से यह आदेश चाहता हूँ कि गौड़-राज्य के

इन कुकृत्यो को रोकने के लिए तथा इनका प्रतिकार लेने के लिए हमारे सैनिक सीमा पर सदैव भ्रमण करते रहे।"

"कितने सैनिक इस कार्य के लिए चाहिए?" महाराज का प्रश्न था।

"सीमा तीन-सौ कोस लम्बी है। प्रति पाँच कोस पर एक सैनिक शिविर बनेगा। उन साठ शिविरो मे छः सहस्र अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित सैनिक रहेगे। पाँच-पाँच सौ के आठ दलो मे वे सदा सीमा पर भ्रमण करते रहेंगे।"

"इस सबमे कितना व्यय पडेगा?"

"दस सहस्र सैनिको का भोजन तथा वस्त्रो का व्यय दो सहस्र स्वर्ण मासिक अर्थात् वार्षिक व्यय चौवीस सहस्र स्वर्ण। इनका वेतन तो पहिले ही राज्य के व्यय मे सम्मिलित है।"

"महाराज! यह तो बहुत भारी व्यय है।" अवलोकितेश्वर जी बोले।

"चौवीस सहस्र स्वर्ण तो केवल पुण्ड्र के चैत्यो का वार्षिक व्यय है।" महामात्य ने कहा, "हमारे राज्य मे इस समय एक सहस्र से ऊपर चैत्य हैं, जिनका व्यय राजकोष से दिया जाता है। पुण्ड्र के महान् चैत्यो के स्तर के पचास चैत्य और है। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि राज्य, जो चैत्यो जैसी राज्य के लिए अनावश्यक वस्तु के लिए इतना धन व्यय कर सकता है, उसके लिए प्रजा की रक्षा के लिए चौवीस सहस्र स्वर्ण तो कुछ भी नहीं।"

"परन्तु महामात्य! इतने मे तो हम दो अन्य चैत्य खोल सकते है। दस अन्य भव्य भवन निर्माण कर सकते है। प्रजा के लिए सैकडो नित्य नए मनोरजन के साधन जुटा सकते हैं।"

"ये तो महाराज! होते ही रहेगे; परन्तु इस समय तो प्रजा की लुटेरो से रक्षा का प्रश्न है। मनोरंजन तथा अन्य सुविधाओं की तुलना मे, प्रजा की रक्षा अधिक मूल्य रखती है। सुरक्षा से अधिक सुख कोई नहीं।

साथ ही राजा कर लेता है, तो प्रजा की रक्षा के लिए न कि मनोरंजन के लिए। मनोरंजन तो मनुष्य अपनी-अपनी रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार और अपने-अपने ढग पर स्वयं कर सकते हैं और करेंगे। परन्तु अपनी-अपनी रक्षा प्रत्येक मनुष्य पृथक्-पृथक् नहीं कर सकता।

"राज्य का गठन सुरक्षार्थ है, मनोरंजन राज्य के लिए गौण वस्तु है।"

"देखो महामात्य!" अवलोकितेश्वर जी ने कहा, "होगा यह कि यदि हमारी सेना सीमा पर गई तो दोनो राज्यो मे मुठभेड हो जाएगी। इसका अर्थ युद्ध भी हो सकता है। युद्ध का अत क्या होगा, कहना कठिन है। हाँ, इसमे सैकडो मनुष्य मृत्यु के घाट उतारे जाएँगे। परिणाम यह होगा कि सैकडो स्त्रियाँ विधवा हो जाएँगी, अनेको माताए पुत्र-विहीन हो जाएँगी। भूमि पर अन्न-अनाज पैदा करने वाले न रहने से भूमि बंजर हो जाएगी और शेष जो बच रहेंगे, उनके लिए खाने-पहिरने का अभाव हो जाएगा। यह मूल्य देना पडेगा, उन सीमावर्ती कुछ कृषको के किंचित् मात्र कष्ट का प्रतिकार लेने का।"

"तो फिर महाप्रभु क्या उपाय बताते हैं?"

"मेरा तो यह कहना है कि मनुष्य मे अच्छाई पर भरोसा रख कर शशाक के पास दूत भेज कर वार्तालाप किया जाए और उनसे जो कठिनाइयाँ हमारी प्रजा को हो रही हैं, कहकर दूर कराने का यत्न करना चाहिए।"

"ऐसा तो अभी पिछले वर्ष शशाक से मैत्री-सन्धि के समय विचार-विनिमय हो चुका है। उस समय मैत्री के लोभी शशाक ने हमारी प्रत्येक बात मान ली थी, परन्तु उन बातो पर कार्य नहीं हुआ।

"शशाक के गौड-राज्य मे लौटने के पश्चात् केवल दो-तीन मास ही शान्ति से व्यतीत हुए है, परन्तु उस काल के पश्चात् ये छुटपुट आक्रमण होने लगे। पहिले मास तो एक-दो स्थानो पर ही हुए। दूसरे मास आठ स्थानो पर और अब पिछले मास मे बीस बार से भी अधिक गौड-सैनिक हमारे राज्य मे सीमोल्लंघन कर, हमारी प्रजा को कष्ट पहुँचा चुके है।"

"महामात्य !" हर्षवर्धन ने आदेश दे दिया, "शशाक के पास दूत भेजकर इस विषय में वार्तालाप की जाए।"

"महाराज की आज्ञा का पालन किया जाएगा। इस पर भी मेरा निवेदन है कि इस वार्तालाप में काफी समय भी लग सकता है। इतने समय के लिए तो सीमावर्ती गॉवो की रक्षा के लिए सेना भेजनी चाहिए।"

"हम प्रजा की कठिनाई को अनुभव करते हैं, परन्तु एक महान् दुर्घटना अर्थात् युद्ध से बचने के लिए, प्रजाजनो का थोडा-बहुत कष्ट सहन करना हम उचित समझते हैं। यही बुद्धिमत्ता है।"

"महाराज ! पश्चिमोत्तरी सीमा से कुछ समाचार आए हैं, वह मै आपके सम्मुख रखना चहता हूँ। आज ही प्रातःकाल काश्मीर से समाचार आया है कि काश्मीर नरेश हूण माणिकन्द ने क्रुद्ध होकर श्रीनगर में काश्मीर की जनता पर हूण सैनिक छोड़ दिए और उन्होंने एक महान् हत्याकाण्ड सम्पन्न कर दिया। दस सहस्र से ऊपर नागरिक मृत्यु के घाट उतार दिए गए हैं और उनकी सहस्रो युवा स्त्रियाँ सैनिको ने दासियाँ बना ली है।"

"तो हमारा इससे क्या सम्बन्ध है ?"

"महाराज ! वहाँ की जनता शैव है। हूण-नरेश ने उनको बौद्ध हो जाने को कहा और युवा बालको और स्त्रियो को वहाँ चैत्य मे बल-पूर्वक डालना आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि जनता रुष्ट हो गई। यह सम्भव है कि जनता ने इसके प्रतिकार मे कुछ किया हो और इस पर यह हत्या-काण्ड रच दिया गया हो।"

"तो जॉच के लिए अपने राजदूत को लिखा जाय और पूर्ण विवरण मंगवाया जाय।"

"महाराज ! कन्नौज-राजदूत और उसके सब साथी मौत के घाट उतारे जा चुके हैं। क्यो ? इसका पता नही चला।"

"तो हमारे राजदूत ने भी शैव जनता के साथ विद्रोह आदि कुछ किया होगा।"

"इसका हमें कुछ भी ज्ञान नही हुआ । महाराज ! किसी भी राज्य मे कभी किसी राजदूत से कोई अनुचित बात हो जाय, तो नियम यह है कि राजदूत को वापिस अपने राज्य मे भेज दिया जाता है और उस राजदूत के अनुचित कार्यों का विवरण लिखकर राजा के पास भेज दिया जाता है।"

"वे तो जंगली हैं ही। उनको लिखा जाय कि प्रत्येक राज्य-कर्मचारी की हत्या की क्षति-पूर्ति प्रति व्यक्ति पाँच सहस्र स्वर्ण और राजदूत की हत्या के लिए एक लक्ष स्वर्ण अविलम्ब भेज दिया जाय, अन्यथा दोनो राज्यों मे शत्रुता की अवस्था वन जायगी।"

"इतने मात्र से कुछ भी प्रभाव नही होगा, महाराज!"

"तो महामात्य क्या करना चाहते हैं?"

"मैं यह चाहता हूँ कि काश्मीर-हूण दूत, जो कन्नौज मे विद्यमान है, बंदी बना लिया जाय और पश्चात् हूण-नरेश को यह सन्देश भेजा जाय कि यदि हमारे राजदूत तथा अन्य कर्मचारियो की हत्या की हानि की पूर्ति एक मास के भीतर न की गई, तो उनके राजदूत को मृत्यु-दण्ड दिया जायगा।"

"यह न्याय है क्या?"

"उसको वदी वना लेना सर्वथा न्यायोचित है। हाँ, मृत्यु की धमकी अवश्य असंगत प्रतीत होगी। परन्तु महाराज! वे लोग जगली है। उनसे सभ्य मनुष्यो का-सा व्यवहार उनको उचित मार्ग पर लाने मे सवल नहीं हो सकता। अतः जब तक कोई प्रबल धमकी न दी गई, उनका मस्तिष्क ठीक हो सकेगा क्या, कहना कठिन है।"

अब पुनः अवलोकितेश्वर जी ने कहा, "हमारे विचार मे राजदूत को बंदी कर लेना पर्याप्त है। कन्नौज-स्थित हूण दूत माणिकन्द की पत्नी का सगा भाई है। अतः उसके वदी बना लेने मात्र से ही हमारा कार्य चल जायगा।"

"ठीक है।" महाराज ने निर्णय दे दिया, "हूण राजदूत और उसके

साथियो को बंदी बना लिया जाय और माणिकन्द को पत्र लिख दिया जाय।"

इसके पश्चात् अवलोकितेश्वर जी ने पिछले दिन हुए कवि-सम्मेलन की चर्चा चला दी। उन्होने कहा, "महाराज! सुभद्र को, जिसे कल पुरस्कार मिला है, राज्य-कवि के पद पर विभूषित किया जाय।"

महाराज हर्षवर्द्धन ने बात बदलकर कहा, "हमे भारी शोक है कि महामात्य कल के कवि-सम्मेलन मे उपस्थित नही हुए। कवि-सम्मेलन अत्यन्त सफल रहा।"

"महाराज! मुझको सूचना ही नहीं थी कि ऐसा कोई सम्मेलन होने जा रहा है, जिसमे श्रीमान् भी भाग लेने वाले हैं।"

"तो महामात्य को इसकी सूचना नहीं मिली?"

"नही महाराज! इस पर भी जो कुछ वहॉ हुआ, वह मुझको सूचित कर दिया गया है।"

"किसने सूचित किया है?"

"मेरे सेवकों ने सुभद्र के पुरस्कृत किए जाने की सूचना दी है।"

"यह ठीक है। सुभद्र की कविता सुन सब अश्रुपात करने लगे थे।"

"तब तो वहॉ उपस्थित न हो सकने का मुझे वास्तव मे शोक है। मनुष्य जैसे जटिल, सकीर्ण और कठिन गॉठ की बुरी अवस्था पर मैं भी दो अश्रु गिरा सकता। महाराज! आपके आगामी कवि-समारोह पर अवश्य आमन्त्रित किया जाऊँगा, ऐसी आशा करता हूॅ।

"मयूर के विषय मे मेरे गुप्तचर ने बहुत ही प्रशसात्मक बात कही है।"

"वह तो विदूषक प्रतीत होता था। उसकी बात सुन सब श्रोतागण हॅस-हॅसकर दुहरे हो रहे थे। इस पर भी उसकी कविता मे कुछ विशेष भाव नहीं था।

"हमने बाणभट्ट से यह कहा है कि वह हमारी जीवनी लिखे। इस महाकवि मे एक बात विलक्षण है। वह जब लिखता है, तो शब्द, वाक्य

और पश्चात् पूर्ण गद्य एक अटूट धारा-सी बन जाती है। उस धारा में न कहीं पूर्ण-विराम होता है और न अर्ध-विराम। परिणाम यह होता है कि वाक्य के आरम्भ से चल अन्त तक पहुँचने तक पाठक यह भूल जाता है कि वाक्य कहाँ से आरम्भ हुआ था।"

"महाराज! इसी कारण उसकी कृतियाँ सर्व-साधारण मे प्रचार नहीं पा सकेंगी।"

"तो महाराज! उसको आदेश दे दिया जाय कि श्रीमान् का चरित्र सरल भाषा मे लिखा जाय।" अवलोकितेश्वर जी ने कहा।

"यह कह दिया गया है। देखें कैसा लिखता है।"

: ७ :

पत्रलता प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न तक नगर के विशेष-विशेष व्यक्तियो के घरो मे पान देने जाया करती थी। इनमे बाण और पद्मराज का घर भी था। महामात्य पद्मराज के घर पर, जहाँ वह राजनीति और इतिहास की चर्चा करती थी, वहाँ महामात्य की लडकी अलकनन्दा से चित्रकला के विषय मे वार्तालाप भी करती थी। अलकनन्दा अब बाईस वर्ष की युवती थी। अभी तक उसका विवाह नही हुआ था। अलकनन्दा स्वयं तो चित्रो मे इतनी लीन रहती थी कि उसको विवाह की सुध-बुध तक नहीं थी। साथ ही उसके ऊपर किसी युवक की दृष्टि भी नहीं टिकी थी, जो उससे विवाह का प्रस्ताव करता। पत्रलता प्रायः नित्य अलकनन्दा के आगार मे जाती और उसको तूलिका लिये किसी चित्र पर चलाते देख, उसके समीप बैठ, उसको एक बीडा पान दे, कभी उसकी कला पर एक-आध टिप्पणी कर चली आती थी। अलकनन्दा को पत्रलता की टिप्पणियाँ अति शिक्षाप्रद प्रतीत होती थीं।

जब से पत्रलता कैलाश-यात्रा से लौटी थी, अलकनन्दा उससे यात्रा का विवरण पूछती रहती थी। पत्रलता का स्वभाव था कि वह अपनी समालोचना मे सभ्यतापूर्वक, परन्तु निर्भीकता से अपनी सम्मति दिया

करती थी।

अलकनन्दा पार्वती-सहित शिव का चित्र बना रही थी। इस चित्र पर कार्य करते हुए उसे कई मास व्यतीत हो चुके थे। पत्रलता के वर्णना-नुसार उसने शिव तथा पार्वती के पीछे कैलाश पर्वत चित्रित किया था। आज वह समझ रही थी कि उसका चित्र पूर्ण हो चुका है। इस कारण वह पत्रलता की प्रतीक्षा कर रही थी। पत्रलता जब महामात्य से उलझी, तो तीन घडी-भर वहाँ बैठी रही। उसको इतनी देर तक अपने पिता के आगार मे बैठे देख, वह उकता गई और उसको बुलाने वहाँ जा पहुँची।

पत्रलता महामात्य को राजनीति के विषय मे अपनी सम्मति दे रही थी। उसका कहना था, "श्रीमान्! एक दुर्बलात्मा को भारत का सम्राट बनाकर भारी भूल हुई है।"

"ठीक है पत्रलता!" महामात्य का कहना था, "परन्तु एक बात तुम नही समझतीं कि कौन है किसी को सम्राट् बनाने वाला? कोई सम्राट् बनता है तो वह अपने पूर्व-जन्म के कर्मों के फल से बनता है। हम विद्वान् लोग तो एक बात कर सकते हैं कि इन महापुरुषो के विचार और कार्यों को ठीक दिशा मे चलने की प्रेरणा देते रहे। वह मै नित्य करता हूँ, परन्तु इस भाग्यशाली सम्राट् की भाग्यरेखा का मार्ग-दर्शन करने वाला एक अन्य महापुरुष उपस्थित है। वह है बोधिसत्त्व अवलो-कितेश्वर। जब-जब भी मैं कोई ऐसी सम्मति देता हूँ, जिसमे किञ्चित् मात्र भी संघर्ष की सम्भावना प्रतीत होती हो, तो महाप्रभु उस संघर्ष के परि-णामो को इतने भयानक रूप मे वर्णन कर देते हैं कि महाराज संघर्ष से भागकर शान्ति का मार्ग ग्रहण करने लगते है।"

"श्रीमान् जी ठीक कहते होगे। मुझको श्रीमान् के प्रयत्नो मे अविश्वास नही। मै तो यह कह रही थी कि भारत देश पर काले बादलों की घटाएँ उमड़ती चली आ रही हैं। गाधार देश के हूण, वाह्लीक देश पर आक्रमण कर वहाँ की प्रजा को लूट-पीटकर सिन्धु पार लौट जाते

हैं। काश्मीर के हूण तो अब पुनः श्रीकंठ मे ऊधम मचाने पर उतर आए हैं। हूणो ने अब एक नवीन विधि अपने राज्य-प्रसार की निकाली है। वे एकाएक आक्रमण करते हैं। लूट मचाकर लोगो को पकड दास-दासियाँ बना यहाँ से ले जाते है। अपने देश मे पहुँच वे कुछ बौद्धो को मुक्त कर यहाँ भेज देते है। ये बौद्ध हूणो की प्रशंसा के पुल बाँध देते है। परिणाम यह हो रहा है कि श्रीकंठ तथा वाह्नीक देश मे जनता हमारे राजा की अकर्मण्यता देख विदेशी राजाओ की प्रशंसक होती जा रही है। साथ ही भारत की बौद्ध जनता के मन मे बौद्ध हूणो के लिए सहानुभूति उत्पन्न हो रही है।

"श्रीमान्! यह एक भयकर स्थिति है। इसका प्रतिशोध अविलम्ब होना चाहिए।"

"मैं विवश हूँ पत्रलता!"

"क्यो? आपके मार्ग मे बाधा क्या है? बाणभट्ट की सम्मति है कि महाराज हर्ष तो देवता है, सरल चित्त है और शूरवीर भी हैं। केवल वे किसी दुष्ट प्रभाव में आकर विपरीत मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं।"

"वह दुष्ट प्रभाव है अथवा श्रेष्ठ, मैं इस पर टीका-टिप्पणी नहीं कर सकता। जो कुछ भी है, वह बोधिसत्त्व जी का प्रयत्न ही है।"

"तो इस प्रभाव को दूर करने का उपाय श्रीमान् नही जानते क्या?"

"मै यत्न करता रहता हूँ। परन्तु दिन-प्रतिदिन महाराज पर महाप्रभु का प्रभाव बढता जाता है। इस बढते हुए प्रभाव मे कुछ मेरा भी हाथ है, यद्यपि सीधे रूप में नही।

"राज्यान्तर्गत पूर्ण व्यवस्था मेरे हाथ मे है—कर-प्राप्ति, कर-वृद्धि, कर-वितरण और फिर राज्य भर के नागरिको की सुख सुविधा का प्रबन्ध, बौद्ध-चैत्यो पर उचित व्यय तथा मन्दिरो और देवालयो की सहायता, ये सब-कुछ कार्य मैं कर रहा हूँ। मैंने नगरो को विशाल और सुन्दर बनाने मे, जनता के रहने के लिए सहस्रो गृह-निर्माण करने में, बालकों की

शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कराने मे, रुग्णालय और पशुशालाएँ खुलवाने मे और अन्य अनेको उपकारी कार्यों में राज्य का धन व्यय किया है। जनता यह सब देखकर राजा का गुणानुवाद करती है। इस राज्यान्तर्गत उन्नति, शान्ति और सुव्यवस्था को इस बात का प्रमाण माना जाता है कि राज्य की विदेश-नीति सफल है। महाप्रभु का कहना है कि यह सब-कुछ तभी सम्भव हो सका है, जब राज्य बाहर के सब राज्यो से मित्रता रखे हुए है। यदि राज्य अन्य राज्यों से युद्ध मे उलझ गया तो यह सब उन्नति रुक जाएगी।

"इस प्रकार अपने राज्य की विदेश-नीति की प्रशसा करने में मैं भी एक साधन बन रहा हूँ; इस पर भी मै यह अपना कर्तव्य मानता हूँ कि जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैं प्रजा हित के कार्यों मे लगा रहूँ।"

"परन्तु श्रीमान्! यह सुख-सुविधा, यह धन-वैभव, यह आमोद-प्रमोद सबके-सब धरे रह जाएँगे, जब विदेशी सेना के पाँव तले यह आमोद-प्रमोद मे संलग्न जनता कुचली जाएगी।

"काश्मीर मे हूण सैनिको ने जो कुछ भी अत्याचार किया है, उसको श्रवण कर तो दुःख और ग्लानि से मन भर जाता है। वही कुछ अन्य राज्यो में भी हो सकता है।"

"पत्रलता! यह राजनीति है। इसको उचित मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न तो हो सकता है, परन्तु फल भगवान् के अधीन है।

"साथ ही समाज और राष्ट्र के सुख और दुःख में एक-आध व्यक्ति का कार्य कारण नहीं होता। महाराज अशोक का राज्य एक महान् ढोंग था। वह एक ढोंग के आश्रय चलता रहा। उसके चलने मे प्रजा के विचार तथा सामयिक सुख-लालसा एक भारी कारण था। उसका परिणाम भी प्रजा को सहन करना पड़ा। पूर्ण देश सीथियनो और शकों के पाँव तले कुचला गया। यहाँ की स्त्रियाँ गाधार तथा दमिष्क के बाजारो में नीलाम की गई। सती-साध्वी स्त्रियाँ वेश्याओं का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य की गई। यह अशान्ति और दुःख उस क्षणिक शान्ति

और सुख का परिणाम था, जिसके लिए जनता एक भ्रममूलक विचारधारा की उपासिका बनी रही।"

"ठीक है श्रीमान्! परन्तु प्रजा को भ्रममूलक विचारधारा से निकाल कर वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान कराना किसका काम है?"

"यह कार्य है ब्राह्मण-वर्ग का। आज ब्राह्मण वर्ग तेजहीन, बुद्धि-क्षीण और लोभी हो रहा है। ब्राह्मण समाज व्यर्थ के देवालयो और मन्दिरो मे पूजा कीर्तन करने मे लगा हुआ है। वह भक्तिमार्ग को ही सब कुछ मान, कर्म-मार्ग को हीन समझ, इसका त्याग करता जाता है। कर्म का त्याग तो हो नहीं सकता, त्याग हुआ है श्रेष्ठ कर्मों का और ग्रहण हुआ है विकृत, दूषित और दुखदाई कर्मों का। भोग-विलास की लालसा बढ़ गई है और तपस्या दुस्तर होने से त्याज्य हो गई है।"

पत्रलता इस वार्तालाप से सन्तुष्टि अनुभव नहीं करती थी। एक बात वह समझ रही थी कि बौद्ध सम्प्रदाय पापो को शान्त करने के प्रयास में मनुष्य मे मानवता ही शान्त करने का कार्य करने लगा है। वह समझती थी कि निर्वाण कर्म हीनता है। इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने से कर्महीनता बढ़ जाती है। महामात्य के कथनानुसार कर्मरहित होना असम्भव होने से, श्रेष्ठ कर्म, जो कठिनता से सम्पन्न होते हैं, छूटते जाते हैं और वे कर्म, जिनको करने मे कम कठिनाई और अधिक सुख प्राप्त होता है ग्रहण किए जा रहे हैं।"

वह उदास मुख नमस्कार कर महामात्य के आगार से निकली तो द्वार पर उसने हाथ मे तूलिका लिये अलकनन्दा को देखा। पत्रलता को उठते देख अलकनन्दा ने कहा, "सखी! आज मेरी चित्रशाला मे नहीं आओगी?"

"क्यो नहीं! जब सखी आमन्त्रित करती है तो क्यों नहीं आऊँगी? चलो।"

अलकनन्दा ने चलते हुए कहा, "मेरा पार्वती तथा शिव का चित्र पूर्ण हो चुका प्रतीत होता है। चलकर देखो। मैं तुम्हारी सम्मति

जानने के लिए व्याकुल हूँ।"

पत्रलता चुपचाप अलकनन्दा के साथ चल रही थी। अलकनन्दा ने अपना कहना चालू रखा, "जैसा तुमने कैलाश का वर्णन किया था, वैसा ही मैंने चित्रित करने का यत्न किया है। देखो, ठीक बैठा है अथवा नहीं।"

इस समय दोनो चित्रशाला मे जा पहुँचीं। सत्य ही अलकनन्दा ने एक भव्य दृश्य चित्रित किया था। कैलाश के दृष्य का वर्णन करने मे पत्रलता ने अपने पूर्ण ज्ञान का परिचय दिया था और अलकनन्दा ने उसको चित्रपट पर अंकित करने मे अपनी पूर्ण कुशलता का प्रयोग किया था। यह तो थी पृष्ठभूमि। वास्तविक चित्र था महादेव का समाधिस्थ अवस्था मे और पार्वती का उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए नृत्य-मुद्रा मे। पत्रलता चित्र को देख मुग्ध खडी रह गई। चिरकाल तक अध्ययन करने के पश्चात् उसने कहा, "सखी अलकनन्दा! सत्य ही तुम बधाई की पात्र हो। बहुत सुन्दर चित्र बनाया है तुमने।

"परन्तु एक बात है। यह चित्र वही प्रेरणा दे रहा है, जो अन्य अनेको कलाकार, लेखक, कवि आदि आज दे रहे है। इससे तुम्हारी कृति अति सुन्दर होते हुए भी विशेषताहीन है। देखो सखी! कला के दो रूप है। एक इन्द्रियो को प्रसन्न करना। यह तो तुम्हारे चित्र मे विविध रंगो के सम्मिश्रण से भली भाँति स्पष्ट हो रहा है। बहुत ही सुन्दर और आकर्षक चित्र बन पाया है। परन्तु कला का एक दूसरा रूप भी है। वह है प्रेरणा का। कला एक सबल प्रेरणा है। यदि किसी कला मे केवल मनोरंजन ही हो तो वह निष्प्राण ही मानी जानी चाहिए। फिर प्रेरणा भी हो और वह सबल भी हो, परन्तु दूषित दिशा की ओर हो तो कला सप्राण तो होगी, परन्तु एक बोझा बन समाज को दुःख सागर मे डुबो देने मे सबल हो जायगी।

"आज समाज मे कवि है तो शान्ति के गुण गाते है, लेखक है तो अकर्मण्यता की सराहना करते है और चित्रकार समाधि और भक्ति के

चित्र बनाते हैं। ये सब प्रेरणाएँ समाज को अशुद्ध मार्ग की ओर ले जा रही हैं। परिणाम विनाशकारी ही हो सकता है।

"सखी! कुछ ऐसा चित्र बनाओ, जिसमे शिव ताडव करता दिखाई दे, जिसमे महादेव राक्षसो का दमन करता प्रतीत हो। पार्वती और गगा के स्थान दुर्गा और काली का निर्माण करो, जिससे दुष्टों का दमन करने की प्रेरणा मिले, न कि वास्तविक अशान्ति मे शान्ति की।"

"क्या अशान्ति को दूर करने मे शान्ति सबल नहीं है?" अलकनन्दा ने पूछा।

"सखी! शान्ति की स्थापना के लिए प्रत्येक उपाय शुभ है। सब उपायो मे भेद और दण्ड अन्तिम हैं। इनके प्रयोग की प्रेरणा देने वाला भी तो कोई कलाकार चाहिए। मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह तुम बन जाओ।"

: ८ :

पत्रलता तीसरे प्रहर कन्नौज के राजमार्ग के चौक मे दुकान पर बैठती थी। उसके दुकान खोलते ही नगर के सैकडो युवक पान लेने आते और उसके अलौकिक सौन्दर्य और पान लगाने के चातुर्य की प्रशंसा करते।

यह कार्य एक पहर रात्रि तक चलता था। इस समय वह दुकान बन्द कर, अपने पानो की डोली उठा अपने घर चली जाती। वह कन्नौज की एक वीथिका मे, वहाँ के एक विख्यात विद्वान् आचार्य वाराहमित्र के गृह पर रहती थी। यद्यपि बाण उसको अपने गृह मे रहने का निमन्त्रण दे चुका था और वह बाण को बहुत पसन्द भी करती थी, इस पर भी वह उसके गृह मे उसके साथ रहने के लिए अपने मन को तैयार नहीं कर सकती थी।

जिस दिन वह अलकनन्दा को प्रेरणा देकर आई, उस दिन अपनी दुकान पर अन्यमनस्क भाव मे बैठी एक यन्त्र की भाँति पान लगाती रही। ग्राहक आते, पान लेते और उसके सामने एक टका से लेकर एक

रजत तक पान का दाम देकर चले जाते थे। पत्रलता का यह स्वभाव था कि दाम की ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखती थी कि कौन क्या दे गया है। कभी कोई एक रजत देकर शेष वापिस लेना चाहता, तो स्वय ही गिनकर उठा लेता। पत्रलता को इतना अवकाश ही नहीं मिलता था कि वह गिनती-मिनती में पड़े।

इस दिन बाण भट्ट भी उसकी दुकान पर आ पहुँचा। पत्रलता अपने विचारो मे इतनी लीन थी कि उसे पता ही नहीं चला कि बाण आया है। बाण ने उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए पूछा, "देवी! कई दिनो से दर्शन नहीं हुए। स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"ओह!" पत्रलता ने आँख उठाकर बाण को देखते हुए कहा, "नहीं।"

"तो चिकित्सा होनी चाहिए। मेरे ज्ञान मे एक सिद्ध चिकित्सक आए हैं। उनके दर्शन नहीं करोगी?"

"क्या होगा दर्शनो से?"

"यहाँ यह पान लगाने से क्या हो रहा है? कन्नौज के धनियो के कर्महीन युवा पुत्र तुम्हारे कमल नेत्रों को एक बार देखने के लोभ मे दीप-शिखा पर पतंगो की भाँति मँडराते रहते है। तुम उनको अपने तेज मे झुलसा-झुलसाकर जलाती हो और उनको जलते देख आनन्द लेती हो। यह भी भला कोई कार्य है!"

इस समय कन्नौज के एक धनकुबेर का पुत्र अपनी प्रेमिका के साथ पान लेने आ खड़ा हुआ। युवक की प्रेमिका ने कहा, "पत्रलता! आज ऐसा पान खिलाओ कि रात-भर आँखो मे झपकी मात्र न आ सके।"

"देवी!" पत्रलता ने हँसकर कहा, "ऐसा यदि प्रणयी को खिला-ओगी तो वह ऊब कर किसी दूसरी प्रेयसी का रस-स्वादन करने चला जायगा और यदि स्वयं खाओगी तो काम ज्वर से सन्तप्त रात-भर बिल-खती रहोगी।"

"तो हम दोनो ही खाएँगे।" धनी युवक ने कहा, "जिससे तुम्हारी दोनो भविष्यवाणियाँ असत्य हो जायँ।"

पत्रलता हँस पड़ी और बोली, "भगवान् तथागत् तुम्हारा कल्याण करें।"

बाण पत्रलता के आशीर्वाद भरे वचन सुनकर हँसते हुए पूछने लगा, "देवी! पान का दाम तो मिला आधी रजत और इस शुभ कल्याण-कामना का क्या मिला तुमको?"

इस पर युवक की प्रेमिका ने कह दिया, "इस कल्याण कामना के प्रतिकार मे हम कामना करते हैं कि ताम्बूलिन का प्रणयी आज रात इससे रूठ जाय, जिससे यह किसी अन्य के कल्याण मे संलग्न हो सके।"

"तुम्हारी शुभ कामना के लिए धन्यवाद देवी!" पत्रलता ने कहा।

जब वे चले गए तो बाण ने कहा, "इन मूर्खों को पान खिलाने से और अपनी युवावस्था को इस प्रकार जलाने से क्या लाभ हो रहा है तुमको?"

"भद्र! तुम इस बात को समझ नही सकोगे। इस पर बातचीत से कुछ लाभ नहीं। बताओ तुम्हारे सिद्ध चिकित्सक कौन हैं? कहाँ से आए है?"

"वे तुषार शैल भू प्रदेश के रहने वाले हैं। महाकाल भैरव के उपासक अघोरी बाबा हैं।"

"तो उन्होंने मुझको स्मरण किया है?"

"तो देवी! तुम उनको जानती हो?"

"हाँ, नगर से पाँच कोस के अन्तर पर एक टूटी दीर्घिका के तट पर एक भैरव का मन्दिर है। कहीं वही दीर्घिका वाले ही तो नही?"

बाण हँस पड़ा। इस पर पत्रलता ने अन्यमनस्क भाव मे कहा, "मेरी रुचि उन बाबा से मिलने की नही है।"

"क्यो?"

"मुझे वह कोई मायावी व्यक्ति प्रतीत होता है। वह दूसरो के हृदय

की बात जान लेता है, परन्तु अपने हृदय की बात कहता नहीं।"

"तो इसमें वैचित्र्य क्या है ? दूसरो के हृदय की बात जानने के लिए अपने हृदय को उसके हृदय से सुस्वर करना पड़ता है न ! यदि ऐसा कर सकोगी तो तुम भी जान जाओगी।"

"उसके हृदय से सुस्वर होने के लिए तो उसकी सेवा मे अपना सब-कुछ अर्पण कर देना पड़ता है। यह मै नही कर सकती। न ही मेरी ऐसी इच्छा है। नर-कपाल मे मद्य सेवन करते हुए मैंने एक बार उसे देखा था और देखते ही मेरा मन ग्लानि से भर गया था और मै वहाँ से चली आई थी। उसका आग्रह था कि मैं भी उस मद्य मे से पान करूँ। इसके पश्चात् एक सप्ताह तक मैं उस ग्लानि को अपने मन मे से निकाल नहीं सकी थी।"

"देवी ! आज बाबा ने मुझको बताया है कि तुम चित्त मे उद्विग्न बैठी हो। वे इसका कारण और इसकी चिकित्सा जानते है। उनका आदेश है कि मै तुमसे कहूँ कि तुम उनसे आज मध्य-रात्रि से पूर्व मिलो।"

"तो यहाँ से पाँच कोस की यात्रा करूँ ?"

"नही, देवी को इस सेवक के गृह तक चलना पड़ेगा। आधी घड़ी में पहुँच जाओगी। आधी घड़ी वापिस आने में लगेगी।"

"और क्या उन बाबाजी का भैरवी से आमोद-प्रमोद देखूँ ?"

"आश्चर्य है कि देवी प्रत्रलता इन बाबाजी के विषय मे बहुत-कुछ जानती है।"

"इस ज्ञान पर भी चित्त को वैसी शान्ति नहीं, जैसी उस वाम-मार्गी बाबा और उनकी भैरवी मे है। वह भैरव-स्थान है, वहाँ श्मशान की-सी निस्तब्धता है। नर-मास की, जो आग पर भूना जाता है, दुर्गन्धि और मदिरा, जो नर-कपाल मे पी जाती है, अगर-तगर आदि द्रव्यो के जलने की सुगन्धि, यह सब एक ऐसा मिश्रण-सा प्रतीत होता है, जिसको देख और अनुभव करने पर वमन करने को चित्त करने लगता है।"

भाव से कार्य करने वालो का प्रभाव रहना चाहिए। जब से यह प्रभाव उठा है, तब से ही देश की दुर्व्यवस्था हुई है। इस प्रभाव की पुनः स्थापना, हमारा कर्तव्य होना चाहिए।"

"देखो पत्रलता! इसमे दोषारम्भ हुआ है कहे जाने वाले ब्राह्मणो के अपने ज्ञान को, जन्म के ब्राह्मणों तक सीमित रखने के प्रयत्न से। देश में राक्षस संस्कृति का आगमन हुआ और उसका वैदिक संस्कृति के साथ संघर्ष हुआ। हमको अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता उनके मन पर अंकित करनी चाहिए थी। इसके लिए तो उस संस्कृति के विद्वानो को अपने धर्म-शास्त्र, ज्ञान, विज्ञान और आचार-विचार का ज्ञान कराना था। हमारे विद्वानो ने ऐसा करने से इन्कार किया, परन्तु जनसाधारण को राक्षस सस्कृति के साथ समझौता करने का अवसर दिया।

"दोनों सस्कृतियो का जो समझौते से मिश्रण बना, वह एक अतिभद्दा और निरर्थक रूप था। हमने लिग की उपासना स्वीकार की और उसको महादेव का प्रतीक माना। हमने परमात्मा को मानते हुए भी प्रकृति की अर्थात् शक्ति की उपासना की। हमने लिग-पूजा और शक्ति-पूजा को पर्यायवाचक माना। परिणाम में वाम मार्ग का प्रादुर्भाव हुआ।

"राक्षस सस्कृति मे दो मुख्य बाते थीं। एक तो राजा ही धर्म-रक्षक हो सकता है, अर्थात् उसमे राज्यसत्ता और विद्वत्ता को पर्यायवाचक समझा जाता था। हमने धीरे-धीरे इस धारणा को स्वीकार किया।

"साथ ही राक्षस सस्कृति मे सर्वसाधारण जनता के मत को विद्वत्-मण्डली के मत से अधिक बलशाली माना जाता था। जहाँ हमारे यहाँ क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए ब्राह्मण को अपना मस्तिष्क मानने का आयोजन है, वहाँ राक्षस सस्कृति मे राजा सर्वे-सर्वा माना जाता था और राजा को जनमत का आदर करना होता था।

"इसमे भी हमने राक्षस सस्कृति से समझौता किया और जहाँ एक ओर वाममार्ग का प्रचलन हुआ, वहाँ दूसरी ओर गणतन्त्र बने, जिनको धर्मशास्त्र-निर्माण का अधिकार भी प्राप्त हो गया।

"वैदिक काल के गणतन्त्रो में और इन मध्यकालीन गणतन्त्रो मे अन्तर यह था कि मध्यकालीन गणतन्त्र शासन के कार्य के साथ-साथ विधि-विधान मे परिवर्तन का कार्य भी करने लगे। धर्म-व्यवस्था अर्थात् व्यक्तिगत और समष्टिगत आचरण का विधान ब्राह्मणो के हाथ से निकल कर गणतन्त्रों के हाथ में चला गया, जिनमे साधारण योग्यता और साधारण ज्ञान के लोग रहते थे।

"अब गणतन्त्रो को स्थानाच्युत कर हमने सम्राट् निर्माण किये। परन्तु सम्राटो ने वह अधिकार, जो गणतन्त्रो ने ब्राह्मणो से छीन लिए थे, अर्थात् धर्म-व्यवस्था करने का, वह पुनः विद्वानो के हाथ मे देने के स्थान अपने हाथो में ले लिया है।

"इसके साथ बौद्ध सम्प्रदाय के राज्य पर प्रभाव बढने से एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। बौद्ध गुरुओ ने, जो गुरु इस कारण नहीं हैं कि वे विद्वान और बुद्धिशील हैं, प्रत्युत इस कारण हैं कि वे महात्यागी है, विद्वानो का स्थान लेना आरम्भ कर दिया है। केवल बौद्ध शान्ति और बौद्ध त्याग को मानने वाले इस सम्प्रदाय मे गुरु माने जाते हैं और उनका राज्य पर प्रभाव स्थापित हो गया है। बौद्ध गुरु अपना राज्य पर प्रभाव जन-बल के द्वारा बना रहे हैं।

"परिणाम यह हो रहा है कि राज्य बुद्धि और ज्ञान के अवलम्बन से दूर होता जा रहा है और विनाश अवश्यभावी है।"

"मैं तो पण्डित यज्ञशात जी से कहूँगी कि वे दक्षिण पथ मे अपना कार्य ढूँढे। काश्मीर एक स्वास्थ्यप्रद स्थान हो सकता है, परन्तु वर्तमान परिस्थिति मे यह सुरक्षा-प्रद नहीं।"

"क्या सब जनो के लिए सुरक्षित स्थानो पर रहना ही उचित है? यदि सब तुम्हारी सम्मति पर ही आचरण करने लगें तो उत्तर पथ के सब देश जन-शून्य हो जाएँगे और दक्षिण पथ के देशो मे रहने को स्थान नहीं रहेगा।

"पहिले ही श्रीकण्ठ, काश्मीर और गाधार के बहुत से ब्राह्मण अपने

"इस पर भी देवी को यह ज्ञान होना चाहिए कि बाबा बहुत पते की बात कहते हैं।"

"हॉ, यह चमत्कार तो देखा है। मै कैलाश-यात्रा से लौट रही थी। कन्नौज आते हुए उस टूटी दीर्घिका तक पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। भैरव-स्थान को मै शिव-मन्दिर समझ भीतर चली गई। उस स्थान को निर्जन पा, मैने अपने ऑचल से थोड़ा-सा स्थान साफ किया और रात्रि वही व्यतीत करने का निश्चय कर लेट गई।

"थकावट से शीघ्र ही निद्रा मे लीन हो गई, परन्तु बहुत देर तक नही सो सकी। जहॉ सोई थी, उसके सामने एक प्रागण मे किसी के अट्टहास को सुन मै जाग पड़ी। मेरी ऑख खुली तो देखा कि ऑगन मे अग्नि प्रज्वलित थी। एक गाढ-गौरिक वस्त्रधारिणी स्त्री हाथ मे त्रिशूल लिये उस प्रज्वलित अग्नि को हिला रही थी। इस समय सड़े मास की दुर्गन्ध को मैने अनुभव किया। मैं समझ गई कि वह मास भून रही है।

"मन मे आया कि उठकर भाग जाऊ, परन्तु इस भय से कि इस निर्जन स्थान पर इस पिशाचिनी द्वारा परलोकगामिनी न बन जाऊँ, चुपचाप लेटी रही। अग्नि धक-धक जल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मास की मेद उस अग्नि मे होम हो रही है और उस अग्नि को अधिक-अधिक प्रज्वलित कर रही है।

"इस प्रकाश मे मैने देखा कि उस स्त्री के खुले पिगल-वर्ण केश गुल्फो तक लटके ऐसे लग रहे थे, मानो सायकालीन अरुण मेघ-मण्डल मे विद्युत् की शाखाएँ अचचल होकर रुक गई हैं। उस स्त्री का सुनहरा मुख-मण्डल उन जटाओ में अग्नि के प्रकाश मे द्विगुण दीति से चमक रहा था।

"स्त्री के नेत्र रक्त-वर्ण थे और उनमे से एक विशेष प्रकार की चमक निकल रही थी। इस समय प्रागण के दूसरी ओर एक दालान मे से पुनः अट्टहास सुनाई दिया और मेरी दृष्टि उस ओर गई। इस समय अग्नि के प्रकाश से दालान जगमगा रहा था। मैने देखा कि एक तेजोमय जटा-

जूटधारी, शरीर से नग्न, केवल कमर तक व्याघ्र-चर्म लपेटे हुए और व्याघ्र-चर्म के आसन पर वैठा एक विशालकाय व्यक्ति है, जो नर-कपाल को हाथ मे लिए उसमे से कुछ पी-पीकर हँस रहा है। खूब हँसकर उसने कहा, 'ओ भैरवी! भोज तैयार हुआ?'

'अभी कुछ देर है बाबा!'

'आधी रात्रि व्यतीत हो गई। साधना का समय व्यतीत हो रहा है।'

'बस आई बाबा!'

'देखो, वह सामने के दालान मे एक भक्तिनी भूखी विश्राम कर रही है। यह कालभैरव का प्रसाद उसको भी देना है।'

"मै इस बात से सन्न रह गई। मेरा विचार कि मैं वहाँ अनदेखी लेटी हुई हूँ, असत्य सिद्ध हुआ। अब वहाँ लेटा रहना ठीक न समझ मैं उठकर बैठ गई। इस पर मुझको अनुभव हुआ कि मेरे पूर्ण अंग शिथिल और शक्तिहीन हो रहे है और मैं वहाँ से उठकर भागने मे असमर्थ हूँ।

"मैंने यत्न किया कि उठकर मन्दिर के बाहर हो जाऊँ, परन्तु कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि मुझको कोई पकड़कर बैठाये हुए है। मै चुपचाप बैठी रही। इतने मे उस स्त्री ने त्रिशूल पर उस मास के पिण्ड को अग्नि से बाहर निकाला। देखने से यह किसी मनुष्य की जाँघ प्रतीत होती थी। मैं यह देख काँप उठी। उस स्त्री ने अपनी कमर से एक छुरी निकाली और मास-पिण्ड मे से टुकड़े काट-काटकर कर ढाक के पत्ते के डूनों में डालने लगी। चार डूने थे। चारों मे उसने मास के टुकड़े डाले। जब मास-पिण्ड पूर्ण काट डाला गया और टाँग की लम्बी हड्डी मात्र रह गई तो उसने वह हड्डी मेरी ओर फेंक दी। मैंने देखा कि वह वास्तव में नर-जाँघ की हड्डी थी।

"मेरे पूर्ण शरीर से पसीना छूटने लगा। मैने एक बार फिर यत्न किया कि उठूँ। इस बार मैं उठने मे सफल हो गई। इस समय सामने के दालान में बैठे बाबा ने कहा, "बिटिया! प्रसाद लिए बिना मत

जाना, अन्यथा घोर अमंगल होगा।"

"मै मूर्तिवत् खडी रह गई। उस स्त्री ने चारो दूने उठाए और बाबा के सम्मुख ले गई। तदनन्तर क्या हुआ मै कह नही सकती। मेरे पॉव उठे और अनायास ही उस दालान की ओर चल पडे, जिधर वह बाबा बैठा था। जब मै दालान मे पहुँची तो मुझे दालान की दीवार के साथ भैरव की मूर्ति दिखाई पडी। अग्नि के प्रकाश मे, जो अब मेद के जल चुकने से कुछ धीमा पड गया था, काल-भैरव की विकराल मूर्ति लम्बी जिह्वा निकाले, श्वेत आँखो से मेरी ओर मुस्कराती हुई प्रतीत हुई। मैं समझ रही थी कि वहाँ की दुर्गन्ध से मेरा मस्तिष्क विचार-शून्य हो रहा है, परन्तु मै विवश थी और वहाँ से लौटना चाहते हुए भी हट नही सकी। मैं मान-युक्त मुद्रा मे उस मूर्ति के सम्मुख खडी थी।

"भैरवी ने चारो दूने मूर्ति के सम्मुख रख दिए। पश्चात् उसने एक कोने मे पडे चार नर-कपालो को उठाकर, झाड-फूँककर सामने रख, उनमे एक मटकी में से मद्य, जिसकी तीव्र गन्ध दालान मे फैल रही थी, डाली। अब भैरवी एक ठीकरे पर अग्नि मे से कुछ अगार उठा लाई और उनको मूर्ति के सम्मुख रख, हाथ जोड खडी हो गई। इस समय बाबा अपने आसन से उठकर भैरवी के समीप आ खड़ा हुआ। वे दोनो मुझसे कुछ आगे परन्तु एक ओर हटकर खडे थे। बाबा ने एक चुटकीभर कुछ द्रव्य अंगारो पर फेका। वह द्रव्य ऐसे जलने लगा, जैसे कपूर जलता है, परन्तु वह कपूर नहीं था। उसके जलने से कुछ ऐसी गन्ध उठी जो न तो सुगन्धि कही जा सकती थी और न ही दुर्गन्ध। साथ ही मुझको कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह दालान जगमग-जगमग करने लगा है। मैं अचेत नहीं हो रही थी, इस पर भी मुझे ऐसा अनुभव होने लगा था कि मै स्वप्न मे हूँ और उस स्वप्न मे वहाँ प्रकाश देख रही हूँ। वह भैरवी और बाबा भी वहाँ थे, परन्तु अत्यन्त सुन्दर आभरण पहिने हुए। न तो भैरवी गेरुए वस्त्र पहिने थी और न ही बाबा व्याघ्र चर्म पहने था। बाबा की वे जटिल जटाएँ, अब सुन्दर घुँघराले केश दिखाई देने

लगे थे। बाबा कोई ओजस्वी युवक प्रतीत होता था
कोई अत्यन्त सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर चुकी थी।

"इस समय सामने की प्रतिमा ने हाथ पसारा और एक
उसने मास अपने मुख में डाल लिया। पश्चात् एक नर-कपाल
कर वह प्रतिमा मद्य पी गई। उस समय इस सबमे मुझे कुछ
अनुभव नहीं हुई थी; कुछ देर पश्चात् उस द्रव्य के जल चुकने पर
अन्धकार हो गया और इसके साथ ही मुझे फिर सब-कुछ वास्तविक रूप
में दिखाई देने लगा। मैंने अनुभव किया कि मेरे मे पुनः चपलता आ गई है और मेरे अंग-प्रत्यग थकावट से मुक्त हो चलने के लिए तैयार हो गए हैं।

"मैंने भैरव बाबा की ओर देखा। वह और भैरवी अपने पूर्व वस्त्रो और रूपरेखा में दिखाई दे रहे थे। मैने डूनो की ओर देखा। तीन डूने मास वाले और तीन नर-कपाल मदिरा से भरे हुए थे। एक खाली डूना मूर्ति के चरणो में पडा था और खाली नर-कपाल मूर्ति के हाथ मे, लुढ़क कर गिरते-गिरते अटका लटक रहा था।

"मैं इस चमत्कार को देख आश्चर्य और विस्मय मे डूबी हुई वहाँ खडी थी।"

: ६ :

"बाबा ने कहा, 'भक्तिनी! यह डूना और यह मदिरा उठा लो। बाहर की दीर्घिका के जल मे इनको प्रवाह दो। प्रवाह करते समय मन मे यह कह देना।

'अरुणइव पुर सरो रवि पवन इवातिजवो जलागमम्।
शुभम्शुभमथापिवा नृणां कथयति पूर्व निदर्शनोदयः॥'

"मै इस आदेश को पा मन में अति प्रसन्न हुई और तुरन्त दोनों वस्तुओ को उठाकर मन्दिर से बाहर आ गई। यह अमावस की रात्रि थी और बाहर पूर्ण अन्धकार छा रहा था। तारो के प्रकाश मे मै मार्ग टटोल-टटोलकर दीर्घिका के तट पर पहुँची और डूना और नर-कपाल,

दोनो दीर्घिका में फेंक ! वही बैठ गम्भीर विचार में पड़ गई । मैं सोचती थी कि मैंने जो-कुछ देखा था, क्या वह स्वप्न है ? परन्तु मैं सोई हुई नहीं थी और मैं देख रही थी कि मास के दूने और नर-कपाल के जल मे फेंकने से जल अभी भी तरगित हो रहा था । सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि मुझको अपना पेट किसी भारी वस्तु के खाने से भरा हुआ प्रतीत होता था । मै तृप्ति अनुभव कर रही थी ।

"अमावस की रात्रि होने के कारण मुझको मार्ग का ज्ञान नहीं हो रहा था । अतएव मैने वहीं दीर्घिका के तट पर बैठे-बैठे रात्रि व्यतीत कर दी ।

"सूर्योदय होने पर मै वहाँ से चलने के विचार से उठी । इस समय मेरे मन में लालसा उठी कि देखूँ कि रात्रि की घटना क्या वास्तव में घटित हुई थी अथवा मेरा स्वप्न अथवा भ्रम-मात्र था ? यद्यपि मै भीतर जाने से डरती थी, इस पर भी मैं अपनी उत्सुकता मिटाने से अपने को रोक नहीं सकी । मै भीतर गई और वहाँ रात्रि की घटना के सब चिह्न देख चकित रह गई । नर-जाँघ की हड्डी वही पडी थी, जहाँ फेंकी गई थी । दालान मे दो दूने खाली पडे थे । एक दूना मूर्ति के चरणो पर पड़ा था । मूर्ति के मुख पर मास खाने के लक्षण थे । एक नर-कपाल अभी भी मूर्ति के हाथ मे उँगली से अटका हुआ लटक रहा था ।

"दालान के बीच अग्नि जलने के स्पष्ट लक्षण थे । बाबा और भैरवी वहाँ नहीं थे । मन्दिर सुनसान था ।

"मैं इस सब घटना पर विचार करती हुई लौट आई । नर-मास के भूनने और नर-कपाल मे मद्य की बात स्मरण कर मेरे रोंगटे खडे हो जाते हैं । जब मुझको उस काल की तृप्ति का ज्ञान होता है तो वमन करने को जी करता है ।"

"देवी !" बाण ने कहा, "आज तीसरे पहर वह बाबा मेरे पास आया और कहने लगा, 'बेटा ! महाकाल भैरव की आज्ञा हुई है कि तुम देवी पत्रलता को यहाँ ले आओ ।'

"मुझको उसके कथन पर सन्देह हुआ तो उसने मुझको समीप बैठाकर कहा, 'देखो, उस खिड़की में क्या है ?' वह खिड़की प्रांगण मे खुलती थी, परन्तु मुझे उसमे से प्रांगण दिखाई नहीं दिया। मुझको तुम वहाँ खड़ी दिखाई दीं। तुम अपनी दुकान पर बैठी पान लगा रही थी। बाबा ने कहा, 'इस भक्तिनी को बुला लाओ। भगवान् को इससे काम लेना है।'

"मैं अभी भी संशयात्मक भाव मे तुम्हे खिड़की मे से देख रहा था। एकाएक क्या देखता हूँ कि महाप्रभु बोधिसत्त्व जी महाराज तुम्हारे सामने आ खड़े हुए हैं और तुम उनको पान लगाकर देने लगी हो। वे पान लेकर प्रसन्न हुए और तुमको आशीर्वाद देकर चले गये।

"इस समय खिड़की में से यह दृश्य लोप हो गया और प्रांगण की वस्तुएँ दिखाई देने लगी। इस पर बाबा ने कहा, 'देखो बेटा! कल यह होने वाला है। उससे पूर्व इस देवी से मुझे मिलना है। उसको कहना कि दीर्घिका के तट पर महाकाल भैरव मन्दिर वाले बाबा उसको बुलाते हैं।'

"सो मैं तुम्हे बुलाने चला आया हूँ।"

पत्रलता ने पूछा, "कब चलना होगा ?"

"आज मध्य-रात्रि से पूर्व। पश्चात् वह कन्नौज से चला जाना चाहता है।"

"तो अभी चलना चाहिए।"

पत्रलता ने यह कहकर अपनी दुकान के भीतर आवाज दी, "प्राण!"

एक सुकुमार बालक भीतर से निकल आया। उसके हाथ पान लगाने के कारण चूने-कत्थे से लाल हो रहे थे। पत्रलता ने उससे कहा, "देखो प्राण! आज मैं एक विशेष कार्य से जा रही हूँ। तुम दुकान समेटकर घर चले जाओ और वहाँ आचार्य जी से कह देना कि मै रात्रि को देर से वापिस आऊँगी, वे सो जाएँ, परन्तु द्वार खुला ही रहने दे।"

इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई। दुकान के भीतर जाकर, कौशेय

उत्तरीय पहिन, बाहर आकर बाण के साथ चलने को तैयार हो गई।

बाण ने पूछा, "यह दुकान पर जो धन पड़ा है, वह यहीं पड़ा रहेगा क्या?"

पत्रलता ने मुस्कराकर बाण की ओर देख कहा, "यह मेरा नहीं है। जिसका है, उसके पास चला जाएगा।"

दोनो चल पड़े। बाण ने चलते हुए पूछा, "किसका है?"

"जिसकी मैं हूँ।" पत्रलता ने मुस्कराकर कहा।

बाण ने विस्मय मे पूछा, "और देवी पत्रलता किसकी है?"

"उनका नाम मैं नही लेती।"

"अर्थात् तुम्हारे पतिदेव है।"

"यह मैने कहा है क्या?"

"नाम न लेने से तो यही अनुमान लग सकता है।"

"कवियो के अनुमान है न!"

"देवी! सत्य बताओ। तुम्हारा विवाह हो चुका है क्या?"

"यह कैसा प्रश्न है? कवि! भला कुँवारी लडकियो से कोई ऐसे पूछता है?"

"तो तुम कुँवारी हो। भगवान् का धन्यवाद है।"

"भला यह बात धन्यवाद की कैसे हो गई? मेरी आयु पच्चीस वर्ष के लगभग है। मै कुँवारी हूँ और आपको यह बात अच्छी लग रही है। कैसी बात विचार कर रहे हैं आप?"

"मै विचार कर रहा हूँ कि देवी पत्रलता को मै यदि अपने गृह की शोभा के लिए ले जा सकूँ तो अपने को कृतकृत्य मानूँगा। जब देवी ने कहा कि वह कुँवारी है तो मुझे अपने विचार की पूर्ति मे आशा दिखाई दी। इसी कारण तो भगवान् का धन्यवाद किया था।"

"केवल मात्र मेरे कुँवारी होने से कवि की आशा पूरी हो गई और मै कवि के घर जा बैठूँगी, यह अनुमान निराधार नहीं है क्या?"

"तो देवी जीवन-पर्यन्त कुँवारी रहने का प्रण ले चुकी हैं?"

"ऐसी कोई बात नही। इस पर भी मुझको कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि मैं आपके घर की शोभा बनूँ।"

"इसमे कोई बाधा है क्या?"

"है, परन्तु बाधा कवि मे ही है। कवि से बाहर कुछ नहीं।"

"अर्थात् तुम मेरे मे किसी बात का अभाव देखती हो?"

"वह तो है ही, परन्तु यह मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है, जो मै उसका निरूपण कर सकूँ। कदाचित् मै स्वयं ही इसे समझ नहीं सकती।"

"यह देवी का भ्रम-मात्र भी तो हो सकता है।"

"भ्रम जब तक भी रहता है, सत्य बनकर रहता है। भ्रम निवारण होने पर ही वह भ्रम की सज्ञा प्राप्त करता है।"

"तो इस भ्रम के निवारण का प्रयत्न कैसे किया जाय? जब तक यह पता न चले कि अभाव क्या है, कहाँ है, तब तक उस विषय का भ्रम दूर नहीं हो सकता।"

"ऐसी अवस्था मे भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह मेरे मन के सशयो का निवारण करे और मेरे मन मे प्रकाश दे, जिससे यह भ्रम दूर हो सके।"

"तो देवी! यही बता दो कि भगवान् को कहाँ ढूँढू।"

"जहाँ धन्यवाद करने के लिए ढूँढा था। तनिक विचार कर देखिये कि यह भगवान् को न जानना ही तो कहीं वह अभाव नहीं, जो मेरे मन मे खटक रहा है?"

"अर्थात् मेरा नास्तिक्य मेरा अभाव है, जिस कारण मै देवी को रुचिकर नही?"

"मैने यह नहीं कहा। कवि! मै अपने मन की बात नही जानती। जब मैं तीर्थ-यात्रा से लौटी और यहाँ पहुँचने के पहिले ही दिन कवि के दर्शन हुए तो मै बहुत प्रसन्न हुई थी। कवि ने अपने गृह मे मुझे ठहरने का

निमन्त्रण भी दिया था, परन्तु जब मुझको ज्ञात हुआ कि इस निमन्त्रण के पीछे मुझे गृहस्थिन बनाने की इच्छा प्रेरणा कर रही है, तो मैंने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। मैंने अपने एक पूर्व-परिचित आचार्य श्री वाराह मित्र के गृह मे निवास ले लिया है। वे मुझसे अपनी लड़की के समान व्यवहार रखते है। वहाँ माताजी भी है और उन विदुषी देवी की छत्रछाया मे रहते हुए मुझको किसी प्रकार का कष्ट नहीं।

"आचार्य जी का कहना है कि मुझको अभी अपना पूज्य देव नहीं मिला।"

"देवी के आचार्य कहाँ रहते हैं?"

"क्या करेंगे जानकर?"

"उनका शिष्य बनूँगा। कदाचित् वे अपने शिष्य को उसके अभाव का दर्शन करा सके और फिर उसको दूर करने का उपाय भी बता दे।"

"ठीक है। नगर के चौक में से, जहाँ मेरी दुकान है, राज्य-प्रसाद को जाते हुए, दाहिने हाथ पाँचवीं वीथिका मे आचार्य जी का घर है। उनके घर के बाहर एक मैना, स्वेच्छा से, बिना पिंजड़े मे बन्द, एक आलने मे बैठी वेद-मन्त्र गान किया करती है।"

"तो वह मैना उड़ नहीं जाती?"

"कदाचित् उसको वन मे उड़ने से अधिक स्वतन्त्रता उस आलने मे प्राप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ऊँचे वृक्ष पर बैठकर विचरने से जो रजा वह अनुभव करती है, उससे कहीं अधिक वह आलने मे पाती है। तभी तो वह कभी उड़कर, आकाश-भ्रमण कर भी वहाँ लौट आने मे अपना कल्याण मानती है।"

"तब तो उन महापुरुष के दर्शन करने ही होगे।"

"यह तो चमत्कार माताजी का है। घर मे माता जी का राज्य है और घर के सब प्राणी माता जी की आज्ञा के नीचे रहते हैं।"

"तो और प्राणी भी हैं वहाँ?"

"हाँ, उस मैना के अतिरिक्त एक मैं भी तो हूँ। वह प्राण भी है,

जिसको दुकान मे पान लगाते छोड़ आई हूँ। और भी हैं, सब प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं।"

: ६ :

अघोरी बाबा बाणभट्ट के गृह के प्रागण मे डेरा डाले बैठे थे। जब पत्रलता और बाण वहाँ पहुँचे तो बाबा भोजन कर रहे थे। भट्ट का सेवक भोजन करा रहा था। शाक-भाजी, मिष्ठान्न, रोटी, भात, चटनी, अचार जो कुछ पाकशाला मे था, वह सब बाबा जी के सामने ला-लाकर रखा जा रहा था और बाबा जी उसे चट्ट करते जाते थे।

बाण और पत्रलता बाबाजी के सम्मुख भूमि पर जा बैठे। बाबा ने उनको देख कहा, "बैठो बिटिया! भगवान् कालभैरव ने तुमको स्मरण किया है। तुम्हारी उससे भेंट अभी कराता हूँ। पहिले इस कवि भट्ट के पाचक का अभिमान चूर कर दूँ।"

बाण ने सतर्क हो पूछा, "क्या हुआ है, महाराज! क्या धृष्टता कर दी है इसने, जो इस पर कोप निकाला जा रहा है?"

"भट्ट! उसने तुम्हारे आदेश से भोजन लेने का आग्रह किया। मैंने कहा कि इच्छा नहीं। इस पर इसने पुनः आग्रह करते हुए कहा कि इस गृह में सदैव दस-बारह व्यक्तियों के भोजन का प्रबन्ध रहता है। मैंने कहा कि यह व्यर्थ की बात करता है। वह तो ईश्वरेच्छा के बिना एक को भी पेट भरकर खिला नहीं सकता। इस पर भी इसने अभिमान-पूर्वक कहा कि वह एक वर्ष से यहाँ कार्य कर रहा है और नित्य कवि के भोजन के पश्चात् पन्द्रह-बीस भिक्षुओं को बढ़िया-बढ़िया पकवान बाँटे जाते हैं। मैंने विचार किया कि इस अभिमानी पाचक को बता दूँ कि देने वाला न वह है, न कवि। भगवान् देता है। तुम दोनों तो साधन-मात्र हो। इस कारण कह दिया कि आज यह एक ही अतिथि का पेट भर दे तो जानूँ। वह पकाने लगा है। सेवक खिला रहा है। अब तक सारा अन्न समाप्त हो चुका प्रतीत होता है।"

बाण और पत्रलता हँस पडे। भैरव बाबा सामने रखी रोटियो को, एक-एक रोटी का एक-एक ग्रास बनाकर निगल रहा था। पत्रलता को कालभैरव के मॉस के डूने को मुख मे उडेलने का दृष्य स्मरण हो आया। लगभग वैसे ही वह भैरव बाबा रोटी-पर-रोटी मुख मे डाल रहा था। इस समय सेवक रोटियो की एक थई एक थाली मे रख ले आया। उनको बाबा के सम्मुख रख बाणभट्ट के मुख की ओर देख बोला, "स्वामी! घर मे अन्न समाप्त हो चुका है। आज्ञा हो तो बाजार से और ले आऊँ?"

बाण ने हँसकर कहा, "पाचक को बुला लाओ।"

बाबा अभी भी एक-एक रोटी को ले, पूनी की भाति लपेट मुख में रख, एक-दो बार चबाकर निगल रहा था। इस समय पाचक आया और साष्टॉग प्रणाम कर बोला, "महाराज! क्षमा कर दे। पाकशाला मे सब कुछ समाप्त हो चुका है।"

भैरव बाबा हँस पडा और बोला, "क्षमा किया। उठो और देखो। देने वाला भगवान् है। सदैव नम्रता से अतिथि की सेवा किया करो। जाओ जीवन-भर सुख और शान्ति पाओगे।"

पाचक उठा तो बाबा ने भी खाना समाप्त कर दिया। सेवक बर्तन उठाकर ले गया। बाण स्वय लोटे मे जल ले आया और बाबा के हाथ धुलाने और कुल्ला कराने लगा।

पश्चात् सब लोग बैठक मे चले गए। बाबा अपने व्याघ्र-चर्म को बिछाकर उस पर बैठ गया। पत्रलता ने भी बैठते हुए पूछा, "बाबा! क्या आज्ञा है?"

"बेटी! आज प्रातःकाल महाकाल भैरव ने यह आदेश दिया है कि तुमको मिलकर कल होने वाली एक घटना का सकेत दे आऊँ। तुम आ गई हो। भगवान् कालभैरव की अत्यन्त कृपा है। घटना इस प्रकार होगी। यह देखो।"

बाबा ने सामने दीवार से टँगे एक चित्र की ओर उँगली कर दी।

पत्रलता और बाबा दोनो उस चित्र की ओर देखने लगे। वह चित्र महाराज हर्षदेव का था, परन्तु बाबा के उस ओर सकेत करने पर वह एक सफेद पट के समान दिखाई देने लगा।

एकाएक श्वेत पट पर कुछ हिल रहा प्रतीत होने लगा। पत्रलता को विस्मय हुआ, जब उसने देखा कि उस पर वह स्वय अपने हाथ मे पान की डोली लिए चली जाती दिखाई दे रही है। धीरे-धीरे उस पट पर और भी कुछ दिखाई देने लगा। यह कन्नौज-बाजार का चित्र था और वह बाजार मे पान की डोली हाथ मे लिये हुए चली जा रही है। कुछ दूर जाने पर महामात्य का निवास-गृह दिखाई देने लगा। वह उस गृह मे प्रवेश कर गई। भीतर गृह की बैठक मे वह चली गई। वहाँ महामात्य और महाप्रभु बोधिसत्त्व बैठे गम्भीर वार्तालाप मे मग्न दिखाई दिये। पत्रलता उन्हें देखकर लौटने ही लगी थी कि महामात्य ने उसे बुला लिया। वह बैठक मे प्रवेश कर उनके सामने जा खडी हुई। महामात्य ने कहा, "पत्रलता! पान नहीं खिलाओगी, आज?"

पत्रलता वही बैठ गई और डोली खोल पान लगाने लगी। पान लगाकर जब उसने महामात्य को दिया, तो महामात्य ने वह पान महाप्रभु की ओर बढ़ाते हुए कहा, "भगवन्! इस देवी के हाथ का पान लीजिये। यह अपनी कला मे अत्यन्त प्रवीण है।"

"यह कौन है?"

"कन्नौज की सुविख्यात ताम्बूलिन, देवी पत्रलता।"

"ओह! समझ गया। लाओ देवी! आज तुम्हारे हाथ का लगा पान खाकर देखूँ कि वास्तव मे तुम्हारे पान की महिमा है अथवा तुम्हारे रूप-लावण्य की।"

महाप्रभु ने पान लेकर मुख मे डाल लिया और चबाने लगे। पत्रलता ने दूसरा पान लगाकर महामात्य को दे दिया। पश्चात् वह उन दोनो की वार्तालाप मे विघ्न न डालने के लिए उठ खडी हुई। तदनन्तर वह चित्र धुँधला होने लगा और हर्षवर्द्धन का चित्र पुनः दिखाई

पड़ने लगा।

पत्रलता इस भ्रममूलक दृश्य को देख उस रात्रि के महाकाल भैरव के मन्दिर के दृश्य को स्मरण करने लगी। उसको दोनों मे समानता प्रतीत हुई। इससे वह बोली, "बाबा! यह क्या नाटक करते हैं आप? उस रात भी आपने कुछ दिखाया था और आज भी। मैं इस सब को मस्तिष्क का विकार समझती हूँ।"

"बेटी! मैं यह कुछ नहीं जानता। मेरा तो कहना है कि काल एक अति प्रबल प्रवाह है। उसको रोकने की सामर्थ्य किसी मे नहीं। जो लोग उसको रोकने का यत्न करते हैं, वे स्वयं इस चक्की मे पिस जाते हैं। कुछ भी कार्य करना हो तो काल के प्रवाह के साथ-साथ बहते हुए ही किया जा सकता है। देखो देवी! उस दिन तुमने जो देखा था, वह सत्य था, भ्रम नहीं था। केवल उसका आलंकारिक रूप ही दृष्टिगोचर हुआ था। आज भी जो तुमने देखा है, वह आलंकारिक रूप में सत्य है और कल जो तुम देखने जा रही हो, वह भी सत्य ही होगा।

"महाकाल भैरव के आदेश से तुमको यह अद्भुत वस्तु देने आया हूँ। कल तुमने जो पहला पान महामात्य के हाथ मे देना है, उसमे यह अद्भुत द्रव्य डालकर देना है। यदि तुमने इसके कुछ भी विपरीत किया, तो भारी अनिष्ट हो जाने की सम्भावना है।"

इतना कह बाबा ने एक पुड़िया मे कुछ श्वेत द्रव्य बँधा हुआ पत्रलता को दे दिया। पत्रलता ने उस पुड़िया को खोलकर देखा और पूछा, "बाबा! यह क्या है? कहीं विष तो नहीं?"

बाबा हँस पड़ा और पुड़िया में से आधी चुटकी ले, मुख में डालकर निगल गया। पुड़िया मे से एक विशेष प्रकार की सुगन्धि आ रही थी। बाबा ने कहा, "देखो, यह विष नहीं है। यह महाकाल भैरव का प्रसाद है। महाप्रभु से भगवान् भैरव कुछ कार्य सिद्ध कराना चाहता है। यह क्या कार्य है, मै स्वयं नहीं जानता। न ही मैं जानता हूँ कि यह किस प्रकार सिद्ध होगा। मै तो एक क्षुद्र अनुचर के रूप मे आया हूँ और

उनका सन्देश तुम्हे दे रहा हूँ।"

"जब तक मुझको पता न चले कि इससे क्या कार्य-सिद्धि होगी, मैं इसका प्रयोग नहीं करूँगी।"

"तुम नास्तिक प्रतीत होती हो। आश्चर्य तो यह है कि भगवान् किस-किस से अपना कार्य सिद्ध करवाता है।"

"पर बाबा! यदि महाकाल भैरव इतना कुछ कर सकता है, तो वह मुझको ही क्यो नही बता देता कि वह क्या कार्य सिद्ध करवाना चाहता है? वह मेरे मन को प्रेरणा क्यो नही देता कि यह कार्य की सिद्धि मानव-कल्याण के हेतु है? जैसे उसने कल की होने वाली घटना को दिखाया है, वैसे ही उसके आगे की बात क्यो नही दिखा देता? देखो बाबा! मै समझती हूँ कि आप सिद्धि-प्राप्त व्यक्ति हैं। आपकी सिद्धि यही है कि अपने मन के भावो को दूसरो के मस्तिष्क मे ऐसा अंकित करते हैं कि वह दूसरा व्यक्ति वैसा ही देखने लगता है, जैसा आप चाहते हैं। उस दिन जो आपने दिखाया, वह अपने सम्मोहन के प्रभाव से दिखाया था। मैं सम्मोहित हुई वही कुछ देख रही थी, जो कुछ आप दिखाना चाहते थे। आज भी आपने अपने मन की बात मुझको दिखा दी है। आप जो कुछ दिखाते है, सत्य ही होगा और जो कुछ इस पुड़िया का प्रभाव होने वाला है, वह होकर ही रहेगा, इस पर मुझे विश्वास नहीं आता। मै न तो परिस्थितियों और घटनाओं की दासी हूँ और न ही मै किसी आदेश को, बिना उसका कारण और परिणाम जाने, पालन करूँगी।"

"देखो बिटिया! उस दिन तुमको बिना प्रसाद खाए आधार हो गया था, क्या वह भी कल्पना थी?"

पत्रलता यह सुन आश्चर्यचकित रह गई। बाबा ने आगे कहा, "देखो, तुम इस पुड़िया को रखो। यदि तुम्हारा मन माने तो इसका प्रयोग करना और यदि न माने तो मत करना। इतना मैं कह देना चाहता हूँ कि जो कुछ होने वाला है, वह हुए बिना नही रहेगा। तुम

और मै उसको रोक नहीं सकेंगे। केवल इतना कहना चाहता हूँ कि यदि सत्य हृदय से भगवान् से प्रार्थना करोगी, तो वह तुमको इस सब का रहस्य भी बता देगा। वह तुम्हारे मन मे प्रवेश करेगा और फिर तुम्हे प्रेरणा देकर तुमसे कार्य सम्पन्न करायेगा।"

"परन्तु मुझसे ही भगवान् ऐसा क्यो करायेगा ? भगवान् बिना मेरे अथवा किसी अन्य की सहायता के भी तो अपना कार्य सिद्ध कर सकता है। वह ऐसा कर क्यो नही लेता ? मैं तो एक बुद्धिशील प्राणी हूँ और बिना सोचे-समझे कोई कार्य नही कर सकती।"

"मैं यह सब नही जानता। तुमको कुछ दूर तक भविष्य मे होने वाली घटना का दर्शन मिला। भगवान् की कृपा होगी तो उससे भी आगे होने वाली बात का पता चल जाएगा।"

बाण बाबा की सब बातो से अत्यन्त ही प्रभावित हुआ था। पत्रलता पर भी प्रभाव तो पड़ा था, परन्तु अभी तक वह मन मे अपने कर्तव्य का निश्चय नही कर सकी थी। वह गम्भीर विचार मे लीन हो गई। बाण ने बाबा से पूछा, "बाबा ! यह आपको किसने बताया था कि मैं इस देवी से परिचित हूँ।"

"भगवान् महाकाल ने।"

"उसने यह भी बताया है क्या कि मेरा इस देवी से क्या सम्बन्ध है ?"

"हाँ, भगवान् का कहना है कि तुम इस देवी के पिछले जन्म के पति हो, परन्तु इस जन्म मे एक महापुरुष के श्राप के कारण तुम्हारा समागम नहीं हो सकता।"

बाण का मुख यह सुन उतर गया। पत्रलता अवाक् बैठी रह गई। कुछ काल तक दोनों गम्भीर विचार मे बैठे रहे। पश्चात् पत्रलता ने एकाएक कहा, "मुझको यह न सिद्ध हो सकने वाला वक्तव्य मात्र ही प्रतीत होता है।"

बाण ने बाबा से अति दु:खित मन से पूछा, "मैने उन महापुरुष

का क्या अनिष्ट किया था, जो उन्होंने मुझे श्राप दिया ?"

"यह जानना असम्भव नही बेटा !" बाबा ने कहा, "परन्तु यह तुम्हारी निज की बात है। तुम ही इसके रहस्य को जान सकते हो। महाकाल भैरव की उपासना करो। वह त्रिकालज्ञ है और तुमको सब-कुछ दिखाने की सामर्थ्य रखता है।"

"उसकी उपासना किस प्रकार की जा सकती है ?"

"इसको जानना और सीखना चाहते हो तो भैरवी को तुम्हारे पास भेज दूँगा। उसको प्रसन्न करोगे तो वह तुमको बता देगी।"

"महाराज ! आपने मुझे अपने भूतकाल मे झाँकने का अवसर दिया है। मै जीवन-भर आपका आभारी रहूँगा। मुझे आगे भी मार्ग दिखाइए।"

इस समय राज्य-प्रासाद से मध्य-रात्रि का घड़ियाल बजा और बाबा खड़ा हुआ। उठते हुए उसने कहा, "बेटा ! अब मैं चलता हूँ। कार्य किसी अन्य स्थान पर मेरा आह्वान कर रहा है।"

इतना कह, बिना कवि अथवा पत्रलता को कुछ भी कहे, घर से निकल कर वह अन्धकार मे विलीन हो गया। पत्रलता और बाण दोनो अपने-अपने विचारो मे लीन बैठे रहे।

कितनी ही देर तक वे वैसे ही बैठे रहे। बाण अपने भूतकाल और श्राप के विषय में विचार कर रहा था और पत्रलता बाबा द्वारा दी गई भभूति के प्रयोग के विषय मे सोच रही थी। आखिर बाण ने शान्ति भग की। उसने कहा, "देवी ! तुम क्या समझती हो ?"

"किस विषय में ?"

"तो तुम किस विषय पर विचार कर रही हो ?"

"महाप्रभु को पान मे भभूत देने के विषय मे ?"

"वाह ! यह भी भला कोई विचार करने की बात है। देखो पत्रलता ! बाबा ने जो चित्र कल की घटनाओं का बताया है, उसमे तुम्हारे पान खिलाने से पूर्व बहुत-सी बाते पहिले होंगी। यदि वे सम्पन्न हुई तब तो

तुमको समझ लेना चाहिए कि किसी अदृष्य प्रेरणा के अधीन सब-कुछ हो रहा है। उस अदृष्य प्रेरणा मे तुम्हे बाधा बनने का अधिकार नहीं। उसमे लाभ-हानि की भी तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इससे होने वाले पाप-पुण्य की तुम भागी नहीं होगी।

"परन्तु मैं तो अपने और तुम्हारे सम्बन्ध के विषय मे विचार कर रहा था।"

: ११ .

"देखो पत्रलता! मैं तुम्हे अपना अनुभव बताता हूँ। मै अभी बालक-मात्र था कि मुझको पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो गई। मै एक बार जो कुछ पढता था, वह मुझे कण्ठस्थ हो जाता था। मेरे पिता कहा करते थे कि मुझे सरस्वती का वर प्राप्त है। मैं जब पन्द्रह वर्ष की आयु का हुआ तो मै घर से निकल पडा। नए-नए नगर तथा तीर्थस्थान और प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थान देखने की लालसा प्रबल हो उठी थी। मैंने कन्या-कुमारी और रामेश्वर से लेकर कैलाश तक की यात्रा की है। इतने काल मे मैंने अनेको नाटक लिखे, कविताएँ लिखीं और गीत बनाए। इस काल मे मैने अनेको नर्तकियो और सुन्दर ललनाओ का भोग किया, परन्तु जब मैं कन्नौज पहुँचा और तुम्हारी दुकान के सामने से निकला तो तुम्हारे दर्शन कर मूर्तिवत् खडा रह गया। पश्चात् मै नित्य तुम्हारे दर्शन करने जाने लगा और घण्टो ही तुम्हारी दुकान के सामने खडा हो तुम्हारी चेष्टाएँ देख-देख आनन्द और उल्लास अनुभव करने लगा। इस पर भी मेरा तुम्हारे साथ बात करने का साहस नहीं होता था।

"इसके पश्चात् एक दिन तुमने मेरा आह्वान किया। तुम मुझे उधार पान देने लगीं। एक दिन मुझे विचार आया कि तुम से सम्बन्ध बनाना चाहिए। इस कारण मै सीधा तुम्हारे पास पहुँचा। मैंने उस समय कहा था, 'ताम्बूलिन! तुम इतनी निधि की स्वामिनी होते हुए भी यह टके-टके का पान बेचकर अपना यौवन व्यर्थ गँवा रही हो।'

"तुमने उत्तर दिया था, 'मेरी निधि को लूटने वाला अभी कोई नहीं उत्पन्न हुआ। इसको छूने की किसमे सामर्थ्य है ?"

"मैने कहा था, 'देवी ! तनिक आँख उठाकर देखो। कौन खड़ा है ? तुम्हारी निधि लूटने वाला नहीं, प्रत्युत् इस निधि की रक्षा करने वाला।'

"तुमने मुस्कराकर कहा था, 'पथिक ! पहिले सामर्थ्य पैदा करो। तुम अपनी निधि की तो रक्षा नही कर सके, मेरी क्या रक्षा कर सकोगे।'

"मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारे इसी कथन ने मेरी काया-पलट कर दी। मैं उसी दिन कन्नौज से वापिस घर लौट गया। घर पहुँच मैंने 'पार्वती परिणय' नाटक लिखा। मैंने मद्य-मास और नारी का सम्पर्क त्याग दिया। मेरे मन में यह दृढ़तम-लालसा उत्पन्न हो गई थी कि तुम्हारी रक्षा का सामर्थ्य अपने मे उत्पन्न करूँ। इसके पश्चात् ही मैं तुमसे मिलूँगा। मेरे 'पार्वती परिणय' नाटक ने मेरी साहित्य-ससार में धूम मचा दी और आज जो कुछ मुझे कन्नौज मे प्राप्य है, वह इसी नाटक के कारण है।

"देवी ! यह तुम्हारी ही कृपा का फल है कि मै अब इस अवस्था मे हूँ। मैं दिन-प्रतिदिन तुम्हारी आँखो मे अपने प्रति अनुराग बढता हुआ देख रहा हूँ। मुझे आशा थी कि एक-न-एक दिन तुम मुझे अपनाओगी, परन्तु यह अघोरी बावा तो कुछ और ही बता गया है।"

"कवि ! मुझे इस बात की कभी चिन्ता नही हुई कि मेरा विवाह किससे होगा और कब होगा। यह जीवन अति क्षुद्र है। इसमे मै किसी अन्य कार्य मे लगी हुई हूँ और उसकी पूर्ति मे मुझको विवाह जैसी बात पर विचार करने का अवकाश ही नहीं है।"

"तभी बाबा कह गया है कि मै शापित हूँ।"

"यह तो मैं नहीं जानती। मै अपने विषय मे इतना जानती हूँ कि मै भाग्यवान् हूँ, जो मुझे कुछ ऐसा काम करने को मिला है, जो मै कर रही हूँ।"

"क्या कार्य कर रही हो ?"

"यह मै बता नहीं सकती। वास्तव मे यह एक प्रकार की सिद्धि है। आचार्य जी ने उस सिद्धि की प्राप्ति का मार्ग बताया है और उसमे मैं सलग्न हूँ।"

"यह आचार्य जी कौन हैं?"

"जानना चाहेंगे उनको? तो एक दिन घर पर आओ न।"

"तब तो आना ही पड़ेगा।"

"ठीक है, परन्तु एक बात का ध्यान रखना। जो कोई उस घर मे प्रवेश करता है, वह सर्वथा परिवर्तित होकर वहाँ से निकलता है।"

"यह मेरा अहोभाग्य होगा। देवी के दर्शन-मात्र और एक कटाक्ष-मात्र से यह आवारा कवि एक राज कवि पद पर जा पहुँचा है। देवी के आचार्य की कृपा होगी तो क्या कुछ नहीं हो सकता, कहना कठिन है। मैं इसके लिए तत्पर हूँ।"

"तो ठीक है। किसी दिन सूर्योदय से एक मुहूर्त के भीतर आओ, आचार्य जी मिलेंगे।"

एकाएक पत्रलता उठ पडी और जाने के लिए तैयार हो गई। कवि ने कहा, "ठहरो देवी!

"देवी! मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

"कहा?"

"तुम्हे घर तक पहुँचा आऊँगा।"

"क्यो?"

"बाहर मार्ग मे अन्धकार है और मधुशालाओ से मदमस्त युवक घरो को लौट रहे होगे।"

"नहीं कवि! तुम विश्राम करो। मुझको कभी भी भय नही लगा। कन्नौज के युवको मे इतना साहस नही कि भगवान् वाराह की भक्तिनी की ओर आँख उठाकर भी देख सके।"

इस पर भी बाण उसके साथ हो लिया। उसने कहा, "और कुछ नहीं तो तुम्हारी सगत कुछ और समय तक प्राप्त हो जायगी।"

बाण पत्रलता को उसके घर तक छोड़ने गया। उसने देखा कि घर के द्वार पर दीपक जल रहा है। दीपक के प्रकाश मे उसने आलने मे एक छोटे-से पक्षी को भी सोये देखा। पत्रलता ने द्वार खटखटाया तो वही बालक, जिसको पत्रलता दुकान पर छोड़ आई थी, द्वार खोलने आया। द्वार खोलते समय उसके हाथ मे एक दीपक था। उसने पत्रलता को देखा तो कहा, "दीदी! आचार्य जी तुमसे मिलना चाहते है। उनका कहना है कि प्रातः महामात्य जी के गृह को जाने से पूर्व उनसे अवश्य मिलकर जाना।"

"माँ कहाँ है?" पत्रलता ने पूछा।

"सो गई है। मुझे द्वार खोलने के लिए कह गई थी।"

"प्राण! तुम बहुत ही अच्छे बालक हो। तुम्हे इस सेवा का पुरस्कार अवश्य मिलेगा?"

"मैं पुरस्कार के लिए यह सब-कुछ नही करता। अच्छा दीदी! चलो अब तो सवेरा होने वाला है।"

"ओह! ठीक है चलो। अच्छा कवि!" बाण की ओर देख पत्रलता ने कहा, "अब तुम जाओ।"

पत्रलता अभी एक-दो झपकी ही ले सकी थी कि आचार्य जी की पूजा का शंख बज उठा। पत्रलता उठ खडी हुई और शीघ्रता से नित्य-कर्म से निपटकर पूजा-गृह मे जा पहुँची। आचार्य जी वाराह भगवान् की मूर्ति के सम्मुख पद्मासन लगाए बैठे थे। उनके पीछे कुछ अन्तर पर उनकी धर्मपत्नी बैठी थीं। पत्रलता भी उनके पास जाकर बैठ गई।

पूजा समाप्त हुई तो आचार्य जी ने पुनः शंख बजा दिया। इससे पत्रलता तथा आचार्य जी की पत्नी उठीं और भगवान् की आरती उतारने लगीं। आरती के पश्चात् आचार्य जी ने पत्रलता से पूछा, "रात कहाँ गई थीं तुम?"

"उस अघोरी बाबा ने बुला भेजा था, जिसको मैंने नर-माँस खाते देखा था।"

"तो वह भैरवी भी साथ थी उनके ?"

"नहीं पिताजी !"

"तो उसने तुम्हे कुछ आज्ञा दी है ?"

पत्रलता ने विस्मय मे आचार्य की ओर देखा। वह समझ नही सकी कि इसकी सूचना आचार्य जी को कैसे पहुँच गई। उसको विस्मय मे चुप खड़े देख आचार्य जी ने कहा, "पत्रलता ! इसमे विस्मय करने की कोई बात नहीं। भैरव, वाराह, वासुदेव आदि सब भगवान् के भिन्न-भिन्न रूप हैं। भगवान् जो कुछ करना चाहता है, वह, उसके रूपो मे भिन्नता होते हुए भी, भिन्न नही होती।"

"तो मुझको उसका आदेश पालन करना चाहिए ?"

"यह तो तुम्हारी इच्छा पर है। भगवान् ने इस कार्य के लिए तुमको साधन बनाया है, तो मैं बीच मे कौन हूँ जो तुम्हे सम्मति दूँ।"

"परन्तु पिताजी ! आपको भगवान् ने क्या कहा है ?"

"मै तुम्हारे मध्य रात्रि तक न आने के कारण चिन्तित था। मैं जानता था कि कवि तुम्हारा प्रेमी है। मुझे चिन्ता लग गई कि कहीं वह तुम्हारा अनिष्ट न कर दे। परन्तु इसी समय भगवान् की कृपा से मन मे यह प्रकाश उठा कि कोई चिन्ता की बात नहीं। मन में यह बात स्फुरित हुई कि तुम जिस कार्य के लिए गई हो, वह भगवान् का कार्य ही है।

"इससे निश्चिन्त हो मैं सोने चला गया। सोते समय मैने प्राण से कह दिया था कि वह तुम्हारी प्रतीक्षा करे और तुम्हे कहे कि जाने से पूर्व मुझसे मिलकर जाए।"

: १२ :

पत्रलता को आचार्य के कथन से मन में शान्ति मिली। जब वह महामात्य के घर पान की डोली लेकर चली, तो उसने अघोरी बाबा की भभूत एक पान मे डाल ली। जब वह महामात्य के गृह पर पहुँची तो

उसने देखा कि महाप्रभु की पालकी बाहर खडी है। कुछ भिक्षुगण बाहर द्वार पर खडे थे, जो महाप्रभु के साथ आए थे। यह सब देखते ही उसे अघोरी बाबा की सभी बाते स्मरण हो आई। वह समझ गई कि कोई चमत्कार होने वाला है।

गृह के भीतर प्रवेश कर वह बैठक में जा पहुँची। बैठक के द्वार पर भी एक भिक्षुक खड़ा था, परन्तु उसने पत्रलता को रोका नही। पत्रलता मुस्करा कर भीतर चली गई। भीतर महामात्य और महाप्रभु गम्भीर वार्तालाप में मग्न थे। पत्रलता उन्हे बातो में लीन देख, बैठक से बाहर निकलने लगी। इसी समय महामात्य की दृष्टि उस पर पड़ गई और उसने पुकारा, "आओ पत्रलता! पान नही खिलाओगी आज?"

पत्रलता यन्त्रवत् घूमी और दोनो के सामने जाकर भूमि पर बैठ गई। पश्चात् उसने अपनी डोली मे से भभूत वाला पान निकाला और महामात्य के हाथ में दे दिया। महामात्य ने वह पान लेकर महाप्रभु की ओर बढाकर कहा, "भगवन्! यह पान खाइये और मुझे अनुगृहीत कीजिए।"

महाप्रभु ने पत्रलता की ओर देखा तो महामात्य ने उसका परिचय दे दिया, "आप इसे नहीं जानते क्या? यह कन्नौज की विख्यात ताम्बूलिन पत्रलता है। भगवन्! इसके हाथ का बना पान एक बार खा लेने पर बार-बार खाने की अभिलाषा हो जाती है।"

"ओह! देवी का नाम तो सुना है और प्रशसा भी सुनी है। आज पान खाकर देखूँगा कि यह इसके पान का चमत्कार है अथवा इसके सौन्दर्य का।"

पत्रलता महाप्रभु के ये वचन सुनकर मुस्कराई। महाप्रभु ने पान हाथ में ले लिया और मुख में डाल लिया। पत्रलता ने एक और पान निकाल कर महामात्य के हाथ दे दिया।

महाप्रभु ने पान खाते हुए कहा, "देवी, तुम्हारा यह ओज या तो तुम्हें श्राविका बनाकर छोडेगा, अथवा किसी राजकुल मे रानी।"

"महाप्रभु !" पत्रलता ने कहा, "मैं तो ताम्बूलिन ही बने रहने मे अपना अहोभाग्य मानती हूँ।"

"ठीक है। परन्तु कोई किसी इच्छा से बनता-बिगडता नहीं। जो होना होता है, वह होकर ही रहता है।"

पत्रलता महाप्रभु के मुख पर पान का प्रभाव देखने लगी। पान चबाते हुए महाप्रभु ने कहा, "सुगन्ध तो वास्तव मे अद्भुत है।"

पत्रलता ने कहा, "महाप्रभु के दर्शन हुए और मेरा बना पान पसन्द आने की बात सुनकर, मै कृत-कृत्य हो गई। परन्तु भगवन्! आपको प्रतिदिन पान खिलाने के लिए मुझे नित्य चैत्य मे जाना पडेगा। कदाचित् यह मै न कर सकूँगी।"

"तो एक बात तो कर सकोगी ? तुम चैत्य मे ही रहना आरम्भ कर दो। मै तुम्हारा वहाँ प्रबन्ध करवा दूँगा।"

"मै आपकी अत्यन्त आभारी हूँ भगवन्! परन्तु मुझे चैत्य का जल-वायु कभी अनुकूल नहीं पडा।"

इस पर महामात्य ने विस्मय मे पूछा, "तो पत्रलता! तुम किसी विहार मे रह चुकी हो ? क्या भिक्षुणी के रूप मे वहाँ रही हो ?"

"नहीं श्रीमान्! मै श्राविका कभी भी नही हुई। कौशाम्बी मे भगीरथ नाम के चैत्य मे मेरा एक भिक्षुणी के पेट से जन्म हुआ था। मेरी चौदह वर्ष की आयु तक मेरी माँ जीवित रही। वे विदुषी थी। उन्होने मरने से पूर्व अपनी जीवन-कथा लिखकर मुझे दी थी और साथ ही यह आदेश दिया था कि जब मै बाईस वर्ष की हो जाऊँ, तब इसे पढूँ।

"अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् दो वर्ष-पर्यन्त मै उस चैत्य मे रही। परन्तु एक दिन मै वहाँ से निकाल दी गई। सब भिक्षुक एव भिक्षुणियाँ मुझसे अत्यन्त प्रेम करते थे, मानो मैं कोई देवी का अवतार होऊँ। मेरे इतने प्रभाव से महाप्रभु अत्यन्त चिन्तित हो उठे और उन्होने मुझे आज्ञा दी कि या तो मै भिक्षुणी बन जाऊँ अथवा चैत्य छोड़ दूँ। मैने चैत्य छोडना उचित समझा। मैं अपनी माँ का अन्तिम पत्र लेकर चैत्य

छोड आ गई ।

"भाग्य से कौशाम्बी की एक ताम्बूलिन की दृष्टि मुझ पर पड गई। उसने मुझे अपने पास रखा। मुझको अपना धन्धा सिखाया। पश्चात् मुझे ग्राहकों के पास बेचने का यत्न किया। परन्तु मुझे यह पसन्द नहीं था। इस कारण उसकी मनोकामना पूरी होने से पूर्व ही मै वहाँ से भाग निकली। मै कन्नौज पहुँची। यहाँ मुझे पूज्य आचार्य वाराह मित्र जी का आश्रय मिल गया। उन्होंने मुझे पुत्री समान रखा और मुझे शिक्षा-दीक्षा दी। मै अभी भी उनके पास रहती हूँ।

"जब मैं बाईस वर्ष की हुई तो मैंने माँ का पत्र पढा। उससे और आचार्य जी की शिक्षा के प्रभाव से मेरे मन मे चैत्यो के वातावरण से ग्लानि उत्पन्न हो गई है।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी माँ का चैत्यो के विषय मे अनुभव कुछ अच्छा नहीं रहा।"

"मेरा अपना अनुभव भी कुछ श्लाघनीय नही है।"

महाप्रभु हँस पडा और कहने लगा, "इस लडकी के विषय मे मैने जैसा सुना था, वैसा ही इसे पाया है। यह बहुत ही वाचाल है।"

महामात्य भी हँस पडा, परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। पत्रलता ने उठते हुए कहा, "मैं महाजनो की वार्तालाप मे विघ्न बनने की धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

"हमारी वार्तालाप समाप्त हो चुकी है। तुम बैठो।" महाप्रभु ने उठते हुए कहा। पश्चात् वे महामात्य से बोले, "मै विचार करता हूँ कि आपका दृष्टिकोण भी विचारणीय है। मुझे एक-दो दिन का अवसर दीजिए। मै विचार करूँगा और पश्चात् पुनः इस विषय मे बातचीत करूँगा।"

महामात्य आश्चर्य से महाप्रभु का मुख देखने लगा। पश्चात् उसने कहा, "ठीक है, परन्तु मै तैयारी करने की आज्ञा दे रहा हूँ।"

महाप्रभु कुछ विचार मे पड गया। पश्चात् इस विषय मे कुछ न कहकर पत्रलता से कहने लगा, "देवी! तुम्हारा बनाया पान वास्तव में अत्यन्त स्फूर्तिदायक है। क्या फिर कभी इसके खाने का सौभाग्य प्राप्त नही होगा?"

"भगवान्! मैं तो सेविका मात्र हूँ। परन्तु इतनी दूर पहुँचने मे असुविधा होगी। मेरा दिन-भर का कार्यक्रम बिगड जायगा। हाँ यदि किसी विशेष दिन महाप्रभु स्मरण करेंगे तो इन असुविधाओं को पार कर आपकी सेवा के लिए अवश्य उपस्थित होऊँगी।"

महाप्रभु गए तो पत्रलता बैठ पुनः पान लगाने लगी। महामात्य ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि महाप्रभु भी एक सुन्दर स्त्री के सम्मोहन से बचा नही रहा। पत्रलता! यदि तुम कुछ पहले आ जाती तो आज बहुत काम बन गया होता।"

"श्रीमान् आज्ञा भेज देते तो सेवा में शीघ्र ही उपस्थित हो जाती।"

"तुम्हारे आने से पूर्व महाप्रभु कह रहे थे कि जीवन के विषय मे इनका एक विशेष दृष्टिकोण और नीति है। वह इसके अनुसार जीवन को चलाने का दृढ संकल्प किये बैठे हैं। मैं सब प्रकार की युक्तियाँ और धमकियाँ देकर हार चुका था। तुम्हारे आने से पूर्व मैं अपने मन मे निर्णय कर चुका था कि महाराज से पूर्ण परिस्थिति का वर्णन कर महामात्य पद से त्यागपत्र दे दूँ। जब तुमने पान दिया तो वह पान चबाते-चबाते ही अपने निश्चय से हटकर कहने लगा कि मेरा दृष्टिकोण भी विचारणीय है। मैंने जब कहा कि मैं अपनी योजना की तैयारी करने जा रहा हूँ, तो वह मुझे उत्तर देने के स्थान तुम्हारे पान की प्रशसा करने लगा।"

"बहुत आश्चर्यजनक है, श्रीमान्!"

"छोडो इस बात को। पत्रलता! तुमने अपने पूर्व जीवन की एक झाँकी आज उपस्थित की, जो मेरे बार-बार कहने पर भी तुमने कभी नही बताई। इस झाँकी से मेरी उत्सुकता और भी बढ गई है, शान्त नहीं हुई।"

"जी ! बात यह है कि उस काल के साथ महाप्रभु के धर्मावलम्बियो का घना सम्बन्ध था। इस कारण उसकी झलक अनायास ही मुख से निकल गई। अन्यथा मैं अपने जीवन के उस काल की बात आपसे अथवा किसी से भी नही कहना चाहती थी। इससे मुझे सुख नहीं मिलता।"

"परन्तु पत्रलता······।" महामात्य कहता-कहता रुक गया और गम्भीरतापूर्वक पत्रलता का मुख देखने लगा। पत्रलता महामात्य को इस प्रकार अपने मुख की ओर देख व्याकुलता अनुभव करने लगी। महामात्य ने कहा, "पत्रलता ! मै एक बात और पूछना चाहता हूँ। यदि बताने की कृपा करोगी, तो मै तुम्हारा बहुत ही आभारी होऊँगा।"

पत्रलता को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि महामात्य के स्वर मे कम्पन उत्पन्न हो गया है। वह अपने को संभाल न सकी। उसका धीरज छूट गया और उसकी आँखो से अश्रु बहने लगे। महामात्य ने कहा, "एक बार तुमने कहा था कि तुम्हारा जन्म एक प्रतिष्ठित परिवार का रहस्य है। मुझे ऐसा लग रहा है कि यह रहस्य मेरा अथवा मेरे परिवार का है। क्या तुम मेरी बहिन सुलक्षणा को जानती हो?"

"मै आपकी पुत्री हूँ।"

महामात्य कदाचित् यही सुनने की आशा कर रहा था। पद्मराज की छोटी बहिन सुलक्षणा बौद्ध-भिक्षुणी बन गई थी। वह कौशाम्बी मे भगीरथ नाम के चैत्य मे रहती थी। लगभग तेरह वर्ष पूर्व उसका देहान्त हो चुका था। जब पत्रलता ने यह बताया था कि उसकी माँ भगीरथ-चैत्य मे भिक्षुणी थी और उसका जन्म चैत्य मे हुआ था, तभी से महा-मात्य को सन्देह हो गया था। अब पत्रलता के यह कहने पर कि वह उनकी पुत्री है, वह स्तब्ध रह गया। उसने पूछा, "इसका तुम्हें कब से पता था?"

"तीन वर्ष पूर्व जब मैंने माँ का अन्तिम पत्र पढा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि मैं किसकी लड़की हूँ और किस प्रकार उनको मेरी हत्या

कर देने के लिए कहा गया था। परन्तु माँ की ममता के कारण वे विहार छोड़ने के लिए तैयार थीं। अनेकानेक कष्ट सहन कर उन्होंने मेरी पालना की।"

"क्या नाम है तुम्हारे पिता का?"

"मैं समझती हूँ कि यह आप न ही पूछें तो ठीक है।"

महामात्य चुप कर गया। पत्रलता ने पान बनाकर महामात्य को दिया तो उसने कहा, "पत्रलता! यदि तुमको यह विदित हो गया था कि तुम मेरी पुत्री-तुल्य हो, तो तुमको मेरे पास यहाँ आकर रहना चाहिए था। यह ठीक है कि आचार्य जी तुम्हारे संरक्षक हैं, इस पर भी तुम्हारा यहाँ रहना ही ठीक था।"

"मैं तो अब भी आपके पास आकर रहना उचित नहीं समझती। अलकनन्दा को उसकी बूआ की लज्जा की बात बताना मैं उचित नहीं समझती।"

"अच्छी बात है। इस विषय पर पुनः कभी विचार कर लेंगे।"

: १३ :

पद्मराज महाराज से मिलने गया तो वहाँ एक अन्य चमत्कार साक्षात् हुआ। महाराज हर्षवर्द्धन ने उससे कहा, "काश्मीर, वाह्लीक और गांधार के समाचारों से तो मेरे मन के भाव कुछ बदल गए हैं। मैं समझता हूँ कि तीन वर्ष तक हमने इन राज्यों को अवसर दिया था कि हमसे मैत्री का भाव रखें और हम भी उनसे वैसा ही भाव रखेंगे, परन्तु उन्होंने हमारे इस कथन को हमारी दुर्बलता समझ रखा है।"

"महाराज! महाप्रभु जी से इस विषय पर आज वार्तालाप हुई थी और उन्होंने भी यह माना है कि मेरे दृष्टिकोण में भी कुछ सार है। वे एक-दो दिन में इस विषय में अपना निश्चित मत देंगे। परन्तु हमको तो समर की तैयारी की आज्ञा दे देनी चाहिए।"

"परन्तु महामात्य!" हर्षवर्द्धन ने विस्मित होकर कहा, "कल रात्रि

ही वह कह रहे थे कि इस मिथ्या संसार के लिए सत्य की आहुति नहीं दी जा सकती।"

"हाँ महाराज! मैने उनको समझाने का यत्न किया है कि सत्य की रक्षा अब खड्ग धारण करने से ही होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि काश्मीर मे बौद्धो की हत्या का वर्णन उनके मन मे बुरी तरह चुभा है। कुछ भी हो, मुझे पूरी आशा है कि वे अब समर के पक्ष में हो जाएगे।"

"तो महामात्य! शीघ्र तैयारी आरम्भ कर दी जाए। मै इन हूणों के बच्चो को भारत-सीमा से पार किए बिना सुख की सास नहीं लूँगा।"

"महाराज! अभी कुछ ही समय पूर्व दक्षिण से एक समाचार आया है कि चालुक्याधिपति कृष्णन ने मालव की महारानी से सन्धि कर ली है। इस सन्धि की एक शर्त यह है कि दोनो राजाओ की सेनाएँ एकत्रित होकर समर करेंगी और जो कुछ भी उन समरो मे प्राप्त होगा, आधा-आधा बाँटा जायगा।"

"इस सन्धि का क्या प्रभाव होगा?"

"महाराज! वे सौराष्ट्र पर अधिकार करना चाहते हैं। इससे उनके अधिकार मे समुद्र-तट आ जाएगा। समुद्र द्वारा वे अपना व्यापार विस्तृत करना चाहते हैं। साथ ही वे विदेशी राजाओ से सन्धि करने के प्रयत्न मे हो सकेंगे। इस सन्धि मे भारत के पूर्ण राज्यो को, विशेष रूप मे श्रीकंठ और काश्मीर राज्य को भी सम्मिलित करना होगा, अन्यथा यह सन्धि दक्षिण-पथ को तो सुरक्षित कर देगी, परन्तु भारत-खण्ड के अन्य राज्य, विशेष रूप से श्रीकंठ, इन विदेशी कुत्तों के सन्मुख उनकी दया पर रह जाएगे।"

"सौराष्ट्र मे इस समय शैवो का राज्य है। शैव अपने भक्ति-भजन आदि मे इतने लीन हैं कि उनको न तो विदेशियो से सम्पर्क उत्पन्न करने की लालसा है और न ही विदेशियो से देश की रक्षा की।"

हर्ष ने कहा, "ठीक है। पहले पश्चिमोत्तरी सीमा की समस्या हम सुलझाना चाहते है, पश्चात् हम दक्षिणी राज्यो से भी निपट लेगे।"

"तो महाराज ! आज ही नवीन भर्ती की आज्ञा हो जानी चाहिए। हमें एक लक्ष नवीन सैनिक चाहिएँ। साथ ही हमे घोषणा कर देनी चाहिए कि जो युवक देश और धर्म की रक्षा के लिए भर्ती होगे, हम उनकी शौर्यता के लिए उन्हे पुरस्कृत करेंगे।"

"ठीक है आज्ञा लिख दी जाए।"

"एक-एक पत्र इन राज्यो को भेज देना चाहिए कि श्रीमान् भारत के महाराजा है, भारत के सब राजा आपको कर देते हैं। अतः श्रीमान् की आज्ञा है कि पिछले वर्ष का कर तुरन्त भेज दिया जाय।"

हर्षवर्द्धन ने महामात्य को उचित निर्देश दे दिए। अधीनस्थ राज्यो को उसी दिन धन और सैनिक भेजने के लिए पत्र लिख दिये गए।

परिणाम यह हुआ कि राज्य की नीति बदलते ही विद्युत् की भाँति राज्य की नस-नस मे नव-जीवन का संचार होने लगा। अखाडे लगने लगे। नकली द्वन्द्व बाजारो, वीथिकाओ और उद्यानो मे होने लगे। लोहारो की भट्टियाँ अस्त्र-शस्त्रो के निर्माण के लिए धधकने लगीं। युवको के मन उल्लास से भर उठे। अभिप्राय यह है कि पूर्ण देश मे सिंह-गर्जना का-सा नाद बजने लगा।

अगले दिन महाप्रभु महाराज हर्षवर्द्धन से मिलने आए और देश मे युद्ध की तैयारी पर वार्तालाप होने लगी।

महाप्रभु ने कहा, "हर्ष! राज्यश्री ने जब काश्मीर मे भिक्षुणियों पर अत्याचार की कथा सुनी तो रोने लगी। मै उसकी बात कह रहा हूँ। वह कह रही थी कि अपने भाई हर्ष को रक्षा बन्धन बाँधने के लिए वह आयेगी।"

हर्षवर्द्धन मन मे विचार करता था कि जब देवगुप्त मालवाधिपति ने दस सहस्र भिक्षुणियो और गृहस्थ युवतियो को अपनी सेना की दया पर छोड़ दिया था, तब महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी का मन द्रवित नहीं नहीं हुआ था। अब एक दूरस्थ देश मे उससे कम सख्या मे युवतियो के साथ हुए अत्याचार से ही महाप्रभु का मन उद्विग्न होने लगा है।

क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं ? इस पर भी इस विषय मे कुछ न कह उसने पूछा, "तो महाप्रभु की सम्मति है कि इन दुष्टो को दण्ड देने के लिए हम तैयारी करे।"

"यह तो करना ही होगा। साथ ही वहाँ पर विदेशियो के राज्य को हटाकर अपना राज्य स्थापित करना होगा ?"

"तो ठीक है महाप्रभु! हम समझते हैं कि दो वर्ष के भीतर ही हमारी समर-नीति का शुभ परिणाम निकल आएगा।"

महाप्रभु ने बात बदल दी। उसने कहा, "महाराज! कल मैं महामात्य के निवास-गृह पर गया था। वहाँ मुझे देवी पत्रलता के पान खाने का अवसर मिला। ऐसा बढिया पान महाराज! मैने अपने जीवन में कभी नही खाया। अभी तक उसकी स्फूर्ति मेरे मस्तिष्क में विद्यमान है। मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, मानो आकाश मे उड रहा हूँ।"

"सत्य ? तो महामात्य से कहना चाहिए कि ऐसे बढिया पान का प्रबन्ध हमारे लिए भी कर दे।"

"पत्रलता नगर-चौक मे ताम्बूलिन की दुकान करती है।"

"तो भगवन्! इच्छा हो तो पत्रलता को पान देने के लिए यहाँ बुला भेजा जाए ?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ, महाराज!"

हर्षवर्द्धन ने बैठक के बाहर खडे प्रतिहार को बुलाकर आदेश दिया, "शीघ्र चौक मे पत्रलता ताम्बूलिन की दुकान पर जाकर कहो कि महाराज उसके पान खाने की इच्छा करते है।"

प्रतिहार गया और कुछ ही काल के पश्चात् पान के छः बीडे लेकर आ गया। पान देते हुए उसने कहा, "महाराज! ताम्बूलिन ने कहा है कि आप इन्हे स्वीकार करे। उसको महाराज की सेवा से अत्यन्त प्रसन्नता हुई है।"

"तो वह स्वयं नहीं आई ?" महाप्रभु ने पूछा!

"भगवन्! इस समय उसकी दुकान पर कन्नौज के युवकों की पान

खाने के लिए भारी भीड़ एकत्रित रहती है।"

"फिर क्या हुआ?" महाप्रभु ने कहा, "जाओ, उसको कहो कि महाराज का आदेश है कि पान लेकर वह शीघ्र आवे।"

"ऐसे नही भगवन्!" हर्ष ने कहा, "प्रतिहार! जाओ, उसको कहो कि महाराज ने उसके पानो को बहुत पसन्द किया है। वे देवी से आग्रह करते हैं कि वह नित्य राज्य-प्रासाद मे पान दे जाया करे।"

महाप्रभु मुस्कराया, परन्तु चुप कर रहा। प्रतिहार गया तो महाराज ने महाप्रभु को पान भेंट किया। महाप्रभु ने पान मुख मे डाल चबाते हुए कहा, "समझ नहीं आ रहा महाराज! भगवान् तथागत ने मास खाने का विरोध तो किया नहीं, परन्तु पान खाने का विरोध क्यों किया?"

हर्ष ने अवलोकितेश्वर जी की बातो से उत्साहित होकर कहा, "भगवन्! इसी प्रकार अन्य कई बाते हैं, जो हम क्षुद्र जन्तुओ की बुद्धि से दूर हैं। उदाहरण के रूप मे मास खाने के लिए तो पशु की हत्या स्वीकार कर ली, परन्तु धर्म और सत्य की रक्षा के लिए सेनाओ द्वारा शत्रुओ से युद्ध उचित नही माना।"

बोधिसत्त्व जी ने मुस्कराकर कहा, "इससे यही सिद्ध होता है कि हमारी बुद्धि उस स्तर तक नहीं पहुँची, जिस तक भगवान् की पहुँची थी।"

हर्ष भी मुस्कराकर चुप कर रहा। इस समय प्रतिहार ने आकर पत्रलता का सन्देश दे दिया। उसने कहा, "महाराज! पत्रलता ने कहा है कि दासी पानो की सराहना से अति अनुगृहीत हुई है। महाराज की आज्ञा के अनुरूप वह कल महाराज की सेवा मे भोजनोपरान्त उपस्थित होकर पान भेंट कर सकेगी। इस समय वह जनता की सेवा मे संलग्न है।"

प्रतिहार के चले जाने के पश्चात् हर्ष ने कहा, "भगवन्! यदि पान खाने की इच्छा हो तो इस क्षुद्र प्राणी के गृह पर कल मध्याह्न का भोजन करने का कष्ट करे।"

"ठीक है। पान की इच्छा होगी तो राज्य-प्रासाद मे भोजन भी करना पडेगा। परन्तु महाराज! आप तो महारानी के साथ बैठकर भोजन करते हैं और महारानी इस भिक्षुक से रुष्ट प्रतीत होती हैं।"

"भोजन के लिए तो वे आपको मना नहीं करेंगी।"

"परन्तु उनके कोप का भाजन बनना भी तो हमे स्वीकार नहीं।"

"तो महाप्रभु की महारानी से मैत्री की सन्धि करा दी जायगी।"

"महाराज! सन्धि कराने के लिए महामात्य जैसे योग्य व्यक्ति की आवश्वयता है।"

"तो महामात्य की सेवाएँ इस कार्य के लिए उपलब्ध हो जायँगी।"

"तब तो मैं भोजन के लिए आने मे हानि नहीं समझता।"

: १३ ·

पत्रलता अगले दिन महामात्य के गृह पर पान देने गई तो महामात्य अन्तःपुर मे अपनी पत्नी विरोचना और लडकी अलकनन्दा के साथ बातचीत कर रहा था। पत्रलता ने जब गृह-द्वार मे प्रवेश किया तो द्वार पर खडी दासी ने कहा, "श्रीमान् महामात्य जी ने आपको अन्तःपुर मे बुलाया है।"

"क्यों?"

"यह तो देवी स्वयं ही उनसे पूछ सकती हैं। इस गृह मे श्रीमान् महामात्यजी की आज्ञाओं में कारण जानने की प्रथा नही है।"

पत्रलता मुस्कराकर भीतर अन्तःपुर मे प्रवेश कर गई। विरोचना देवी के आगार मे पूर्ण परिवार एकत्रित था। महामात्य ने पत्रलता को आते देखा तो उसे भीतर बुला लिया। अलकनन्दा के समीप ही एक उच्च रिक्त आसन पर उसे बैठने के लिए कहा गया। पत्रलता समझ गई कि उसका रहस्य अब इनमे रहस्य नहीं रहा। इससे उसका मुख लज्जा से लाल हो गया। वह खडे-खडे ही कहने लगी, "श्रीमान्! दासी के लिए इतना मान तो अनादर का सूचक हो जायगा।"

अलकनन्दा ने पत्रलता की बाँह पकड़कर उसे अपने समीप बिठा लिया और कहा, "वाह, अब मेरे समीप बैठने मे अनादर मानने लगी हो सखि ! पहले क्यों नहीं बताया कि मै तुम्हारी छोटी बहिन हूँ?"

"अपने कलुषित जीवन से कन्नौज के अति प्रतिष्ठित परिवार को अलिप्त रखने के लिए ऐसा ही मुझे आवश्यक समझ मे आया था। कल महाप्रभु जी के दर्शन से मन मे कुछ एसी ग्लानि उत्पन्न हुई कि यह चिर रक्षित रहस्य फूट निकला। इस धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

इस पर अलकनन्दा ने पत्रलता के गले मे बाँह डालकर, उसे अपने समीप खींच अपने अंग लगा लिया। पद्मराज ने कहा, "पत्रलता ! मैं तो यह विचार कर रहा हूँ कि तुमको अब ताम्बूलिन के कार्य से पृथक् कर कैसे परिवार मे आत्मसात करूँ। यदि यह बात तुमने तब ही बता दी होती, जब तुमको पता चली थी, तब तुम्हे इस कार्य से पृथक् करने मे कठिनाई न होती। अब तो तुम राज्य-भर मे और राज्य-परिवार मे भी ताम्बूलिन के रूप मे परिचित हो चुकी हो। महाप्रभु तक तुम्हारा पान खाने के लिए व्याकुल रहने लगे हैं। दूसरी ओर बाण भट्ट तुम्हारे घर पर आचार्य जी से मिल आया है। मै इस सब झमेले मे से तुमको निकालना चाहता हूँ।"

"पर श्रीमान् ! मेरे विषय में आप यह सब जानकारी रखने का कष्ट क्यों कर रहे हैं ? मैं तो एक पक्षी की भाँति स्वच्छन्द रहना चाहती हूँ।"

"ठीक है, यह भी विचारणीय है। देखो पत्रलता ! तुम्हारी मामी विरोचना का यह आदेश है कि आज से तुम पान देने के लिए अन्तःपुर मे आया करोगी। दुकान पर पान बेचने के लिए धीरे-धीरे समय कम देना आरम्भ करोगी और कुछ दिन मे ही दुकान बद करनी होगी। अभी तुम आचार्य जी के घर पर ही रहोगी और दो-चार गृहो के अतिरिक्त और कहीं पान देने नहीं जाओगी। मुझको अभी पता नही चला कि बाण कवि ने आचार्य जी से क्या बातचीत की है और तुम्हारे विषय मे

उसे आचार्य जी ने क्या उत्तर दिया है। साथ ही मैं यह भी नहीं जानता कि तुम्हारा कवि के विषय मे क्या विचार है। यह सब कुछ जानने के पश्चात् ही तुम्हारे भविष्य का सचालन हो सकेगा।"

"तो मैं पिंजडे मे बन्द कर दी गई हूँ।" पत्रलता ने मुस्कराते हुए और आँखे भूमि पर टेकते हुए कहा।

"तो क्या तुम्हारे आचार्य जी के घर के द्वार पर बैठने वाली मैना पिंजडे मे बन्द है? मैं तो समझता हूँ कि वह स्वेच्छा से वहाँ रहती है। पत्रलता! पिजडा किसी को बन्दी बनाने मे सफल नही होता। मन की प्रेरणा ही किसी को कहीं ठहरने के लिए विवश कर सकती है। विरोचना का विचार है कि अब तुम यहाँ रहना पसन्द करोगी। उसका विधान तो तुमको एक जीवन से दूसरे जीवन मे ले जाने का क्रम-मात्र है।

"खैर छोडो, इस बात को। क्या आज हमे पान खाने को नहीं मिलेगा? देखो, तुम अपनी मामी को भी पान लगाकर दो। यहाँ से तुमको महाराज के प्रासाद मे जाना है। वहाँ महाप्रभु तुम्हारे पान की प्रतीक्षा में बैठा है। मुझको भी वहाँ पहुँचने का आदेश है। इस कारण तुम मेरे साथ ही चलोगी।"

"तो श्रीमान् के साथ रथ पर चलूँगी? इससे तो कन्नौज मे श्रीमान् की ख्याति पर कलक लग सकता है।"

"हमने इस विषय पर विचार कर लिया है। विरोचना देवी की पालकी मे तुम प्रासाद में जाओगी। तुमसे पूर्व ही मैं रथ मे वहाँ पहुँच जाऊँगा। भविष्य मे विरोचना देवी की पालकी तुम्हारी सेवा मे रहेगी।"

"तो अब कन्नौज की ताम्बूलिन महामात्य की पत्नी की पालकी मे घूमा करेगी?"

"नहीं पत्रलता! विरोचना देवी यह पालकी और इसके उठाने वाले कहार अपनी लडकी पत्रलता को भेट मे दे रही है। आज से यह पालकी तुम्हारी है और अपनी पालकी मे तुम्हे आने-जाने में संकोच नहीं करना चाहिए।"

इतना कह महामात्य राज-प्रासाद के लिए रवाना हो गया। पत्रलता भी पालकी मे बैठ चल दी। राज्यप्रासाद के बाहर पालकी रख दी गई और पत्रलता उसमे से पान की डोली हाथ मे लेकर बाहर निकली। द्वार पर महारानी की दासी उसको महारानी के पास ले जाने के लिए तैयार खडी थी।

दासी पत्रलता को जानती थी। उसे पालकी मे बैठ आते देख कर वह विस्मित हुई। पश्चात् आगे बढ़ कहने लगी, "महारानी जी ने देवी पत्रलता को स्मरण किया है।"

"तो पहले महारानी जी की सेवा मे जाऊँ अथवा महाराज की?"

"दोनो अन्तःपुर में है। महाप्रभु बोधिसत्त्व जी भी वहाँ विद्यमान हैं।"

पत्रलता इस विशिष्ट सम्मेलन के समाचार से अन्यमनस्क भाव मे खडी रह गई। पश्चात् कुछ विचारकर बोली, "चलो।"

दासी पत्रलता को अन्त.पुर की ओर ले गई। पत्रलता अन्तःपुर मे कई बार आ-जा चुकी थी; परन्तु मालव राजकुमारी का महाराज से विवाह होने के पश्चात् उसके लिए यह पहला ही अवसर था। उसने मालव राजकुमारी को अब तक देखा नहीं था। इस कारण उसे देखने की उत्सुकता लिये वह अन्तःपुर में प्रवेश कर गई।

दासी उसको लेकर एक अति सुसज्जित आगार मे जा पहुँची। वहाँ एक अन्य दासी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। पहिली दासी पत्रलता को वहीं छोड बाहर चली गई। दूसरी दासी पत्रलता को लेकर साथ के आगार मे जा पहुँची। इस आगार मे महाराज हर्षवर्द्धन, महारानी मृणालिनी, महाप्रभु और महामात्य तथा सुरक्षा मन्त्री बैठे थे। पत्रलता ने जब आगार मे प्रवेश किया तो महाराज एक क्षण उसे देख आश्चर्य-चकित रह गए। पत्रलता सुन्दर तो थी ही, साथ ही उसके मुख पर सरलता की आभा थी।

पत्रलता ने महाराज को अपनी ओर निहारते देख कहा, "यदि

श्रीमान् भोजन कर चुके हो तो पान लगाऊँ ?"

"हाँ देवी ! भोजन हो चुका है। महाप्रभु तुम्हारे पानो पर इतने मुग्ध हुए हैं कि इनको भिक्षुक बनने पर पश्चात्ताप लगने लगा है। ये कह रहे थे कि पत्रलता जैसी स्त्री के लिए निर्वाण-प्राप्ति को एक जीवन तक के लिए पीछे करने को वे तैयार है।"

: १४ :

पत्रलता भूमि पर बैठ गई और अपनी डोली खोल पान लगाने लगी। पान लगाते-लगाते वह बोली, "महाराज ! मैंने यह पान लगाने का कार्य व्यवसाय के रूप मे नही किया। अपने रिक्त समय को अरिक्त करने के लिए ही यह करती हूँ। परन्तु इस कार्य से मुझको कन्नौज तथा अन्य देशो के महाजनो के दर्शनों का सौभाग्य मिलता रहा है। उसी सौभाग्य की शृंखला में यह आज का अवसर भी स्मरणीय बना रहेगा।"

महारानी ने अवसर देखा तो कहा, "देवी पत्रलता के उस कार्य का विवरण, जो उसने हमारे पूज्य पिता देवगुप्त और उनके मित्र शशाक को परस्पर लडाने मे किया था, राज्य-प्रासाद की दासियो से हमने सुना था। आज उस चतुर स्त्री को साक्षात् सामने बैठे देख इस बात को जीवन की चिर-स्मरणीय घडी ही मानेंगे। हमको अति प्रसन्नता होगी यदि देवी नित्य हमको भी अपनी इस पान लगाने की कला का रसास्वादन कराने का यत्न करेंगी।"

"तब तो महारानी जी ! मुझे बाजार से दुकान उठा लेनी पडेगी। कन्नौज के सहस्रो व्यक्ति मेरे कौशल से वचित रह जायेंगे। राज्य-प्रासाद में सेवा के लिए आने पर मेरे पास समय ही नहीं रहेगा कि जनता की भी सेवा कर सकूँ।"

इस पर महाप्रभु कहने लगे, "ठीक तो है। वहाँ क्या मिलता होगा देवी को ?"

"भगवन् ! वहाँ स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता और सुहृदयता मिलती है।"

"वह सब-कुछ यहाँ भी मिल जायगा।"

"यहाँ एक महान् व्यक्ति के आश्रय और सम्पर्क मे रहने से मन की अनेकानेक भावनाओं को दबाकर रखना होगा। वहाँ पान लगाने की कला और कलाकार के अनेको प्रशंसक होने से किसी को भी शिष्टता की सीमा उल्लघन करने का साहस नहीं होता। यहाँ यह हो सकेगा क्या? संदेहात्मक है, प्रभु! वहाँ अनेको से व्यवहार होने पर एक के रुष्ट हो जाने की कभी चिन्ता नहीं होती। यहाँ एक ही व्यक्ति से व्यवहार होने पर, उसके रुष्ट हो जाने का भय और चिन्ता सदैव मन को त्रसित करती रहेगी।"

"तो देवी को हरजाई बने रहने मे अधिक आनन्द अनुभव होता है?" महारानी मृणालिनी ने माथे पर त्योरी चढाकर पूछा।

"महारानी जी, कदाचित् हरजाई के अर्थ ही नहीं जानतीं। तभी तो कला जैसी पवित्र वस्तु का उस पतित वस्तु से मेल कर रही है।"

"तो पत्रलता! हरजाई के अर्थ समझती है?"

"भली भाँति महारानी जी! कन्नौज की वीथिकाओं मे रहने वाली तथा बौद्ध-विहार मे पालन-पोषण पाई हुई पत्रलता इसके अर्थ भली-भाँति समझती है। एक राज्य-परिवार की कन्या के लिए यदि इस दिशा मे जानने की उत्सुकता हो, तो इस ताम्बूलिन से अधिक ज्ञान महाप्रभु बोधिसत्त्व जी महाराज दे सकेंगे।"

इस समय पत्रलता ने पाँच बीड़ा पान लगा लिए थे। उसने सबसे पहिले महारानी जी को देते हुए कहा, "इस पर भी मेरा निवेदन है कि नगरों की गंदगी को टटोलने से कहीं अच्छा कार्य भगवान् ने श्री महा-रानी जी के लिए नियत कर रखा है। अपने समय के सदुपयोग के लिए महारानी जी को हम क्षुद्र जीवों की ओर ध्यान करने की आवश्यकता नहीं।"

महाप्रभु पान चबाते हुए पान की प्रशंसा करते हुए पूछने लगे, "देवी! यह कला तुमने कहाँ से सीखी है?"

"भगवन्! कौशाम्बी की एक ताम्बूलिन से।"

"वह जीवित है क्या?"

"स्वाभाविक रूप में वह अभी जीवित होनी चाहिए। इस पर भी मुझे उससे मिले चिरकाल हो गया है।"

महारानी मृणालिनी को इन व्यर्थ की बातो मे कुछ रस नहीं मिल रहा था। उसको दासियो ने पत्रलता के कार्य का विवरण, जो उसने देवगुप्त और शशाक में झगडा कराने के लिए किया था, बताया था और वह उसको ही अपने पिता की हत्या का कारण समझती थी। पत्र-लता ने उसके प्रथम व्यंग्य से समझ लिया था कि वह उसे अपना शत्रु समझती है। इससे वह सतर्क थी। उसने संकेत से कह दिया था कि महारानी जी को उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं, परन्तु महारानी ने अपनी बात पुनः कहने के लिए बात बदलते हुए कहा, "एक बात दासी बेचारियाँ नहीं जानतीं। क्या पत्रलता उस पर प्रकाश डालेगी? मै यह जानना चाहती हूँ कि क्या हमारे महाराज के ज्येष्ठ भ्राता पत्रलता के षड्यन्त्र से ही ठीक समय पर राज्य-प्रासाद में प्रवेश पा सके थे? वे स्त्री का रूप धारण कर भीतर आए थे अथवा योद्धा के रूप मे?"

पत्रलता ने देखा कि महारानी शिष्टता की सीमा का उल्लघन कर गई हैं और उसके ऊपर कटाक्ष करते-करते अपने पति के ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करने लगी हैं। पत्रलता ने, इस कटाक्ष के परिणामस्वरूप महाराज के मुख की मुद्रा, एक क्षण के लिए दृढ होते देखी थी। महामात्य भी वार्तालाप के इस बहाव पर चकित था। अतएव उसने बात को सीमा से बाहर न जाने देने के लिए कहा, "महारानी जी को उस समय की परिस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हुआ। उस समय कन्नौज मे पाँच षड्यन्त्र चल रहे थे और पाँचो षड्यन्त्रकारियों को अन्य षड्यन्त्रो का ज्ञान नहीं था। एक तो मालव-नरेश देवगुप्त शशांक की हत्या का षड्यन्त्र कर रहे थे। इसमें इन्द्रजालिक नाम की एक नर्तकी

मुख्य कार्य कर रही थी। दूसरा, शशांक कन्नौज मे अपना राज्य स्थापित करने के लिए अपने गुप्तचरों द्वारा मालव-सेना मे अव्यवस्था उत्पन्न कराने का षड्यन्त्र कर रहा था। इस षड्यन्त्र की बागडोर नाभर नाम के एक चतुर सेनानायक के हाथ मे थी। तीसरा, नगर के वासुदेव मन्दिर के पुजारी विष्णुकान्त कुछ नागरिकों के बल पर कन्नौज मे विप्लव खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे। ये लोग तो शुद्ध देश-भक्ति के विचार से ही कन्नौज को स्वतन्त्र कराने के लिए षड्यन्त्र मे भाग ले रहे थे। इसमें इनका कुछ भी स्वार्थ निहित नही था। चौथा षड्यन्त्र पण्डित भगीरथ तथा महाराज ग्रहवर्मन के गुप्तचर-विभाग के मुख्याधिकारी मंगलेश्वर जी कर रहे थे। ये, मालव-नरेश महाराज देवगुप्त के कन्नौज की जनता तथा स्त्री-वर्ग पर अत्याचार से पीडित होकर इस षड्यन्त्र मे संलग्न हुए थे। पाँचवाँ षड्यन्त्र वर्तमान कन्नौज अधिपति के ज्येष्ठ भ्राता राजकुमार राज्यवर्द्धन अपने पाँच सौ सैनिकों के बल पर चला रहे थे।

"महाराज शशांक का षड्यन्त्र तो नाभर की हत्या से निस्तेज हो गया था। नाभर की हत्या अनजाने मे मुझसे हो गई थी। मै स्थानेश्वर से लौटकर अपने परिवार की टोह ले रहा था कि नाभर मुझे कोई गुप्तचर समझ मेरा पीछा करने लगा। मै कन्नौज मे चोरी-चोरी आया था और नाभर से पीछा छुड़ाने के विचार से एक अँधेरी वीथिका मे प्रवेश कर गया। उसने उस वीथिका मे मेरे पीछे प्रवेश किया और पश्चात् वह मेरे हाथों मारा गया। महाराज देवगुप्त का शशांक की हत्या का षड्यन्त्र देवी पत्रलता के प्रयत्नों से विफल हो गया। शेष जो-कुछ हुआ उसमें देवी पत्रलता का हाथ कदापि नहीं था। राजकुमार राज्यवर्धन अपने बल और युक्ति से राज्य-प्रासाद में प्रवेश पा गए और महाराज देवगुप्त की हत्या उनसे द्वन्द्व-युद्ध करते समय हुई। यह तो दैवी घटना थी कि महाराज राज्यवर्धन और भगीरथ दोनों अपने-अपने प्रयत्नों से लगभग एक ही समय राज्य-प्रासाद में प्रविष्ट हुए और दोनों महाराज देवगुप्त के आगार में भिन्न-भिन्न मार्गों से पहुँचे।"

महामात्य पद्मराज के इस परिस्थिति के वर्णन के पश्चात् हर्षवर्द्धन ने कहा, "कुछ भी हो। हमने भी देवी पत्रलता के विषय मे अनेको किंवदन्तियाँ सुनी हैं। हमारा मन भी उन सब बातो को जानने को कर रहा था। महामात्य के वृत्तान्त से पूर्ण चित्र स्पष्ट हो गया है। इससे हम यह समझ पाए हैं कि उस समय कन्नौज मे बहुत-सी शक्तियाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रही थीं। इनमे कुछ शक्तियाँ कार्य करती हुई परस्पर समर्थन कर सफल हुई। इनको एक सूत्र मे पिरोने के लिए देवी पत्रलता ने प्रयत्न किया। हम देवी पत्रलता के आभारी है। इन शक्तियो के संगठित होने से ही हम राज्यासीन हुए है तथा महारानी मृणालिनी जैसी सुन्दरी के पति होने का हमें सौभाग्य मिला है।

"आज की इस गोष्ठी मे हम एक अन्य शुभ समाचार देना चाहते हैं। महाप्रभु जी ने कन्नौज की भिक्षुणी महारानी राज्यश्री का एक पत्र हमे लाकर दिया है। उसमे राज्यश्री ने लिखा है कि वे आज से राज्य-भार से मुक्त हो रही है और हमे कन्नौज का राज्याभिषेक लेने की स्वीकृति देती हैं।"

"तब तो महाराज को हमारी बधाई हैं। कब आयोजन किया जाए इस अभिषेक का?" महामात्य का प्रश्न था।

पत्रलता इस परिवर्तन मे भी अघोरी बाबा की भभूत का प्रभाव देखती थी। इस पर भी अपने सन्देह की पुष्टि के लिए वह कहने लगी, "महा-राज! यह समाचार कन्नौज की पूर्ण जनता के लिए हर्ष का विषय होगा और कन्नौज राज्य-भर मे इससे महाराज की जय-जयकार हो उठेगी। यदि धृष्टता क्षमा करे तो महाप्रभु इस पर प्रकाश डाल सकेंगे कि महा-रानी राज्यश्री का यह निर्णय महाप्रभु की सम्मति से हुआ है अथवा महारानी राज्यश्री की स्वतन्त्र सम्मति से?"

"क्या करोगी यह जानकर?" महाप्रभु ने संशित मन से पूछा।

"कन्नौज की प्रजा यह जानकर हर्षित होगी कि इस शुभ निर्णय में भगवान् बोधिसत्त्व जी का समर्थन और सहयोग है। जहाँ श्रीमान् महा-

राज के लिए प्रजा के मन से शुभ कामनाएँ उठेंगी, वहाँ महाप्रभु जी के लिए शीघ्र निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएँ होंगी।"

महाप्रभु हँस पड़ा और बोला, "इस परिवर्तन का वास्तविक स्रोत जानना चाहती हो तो सुनो। इसका श्रेय, यदि यह शुभ कार्य है तो, मुझको नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूँ मेरी मस्तिष्क की बनावट में पिछले तीन-चार दिनों से अन्तर आना आरम्भ हो गया है और इस आरम्भ का श्रीगणेश देवी के पान खाने से हुआ है।

"उस दिन महामात्य जी के गृह पर जब मैंने पहिली बार पान खाया था तो मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरी आँखों के आगे से पर्दा हटने लगा है। मुझको महामात्य की युक्तियाँ सारपूर्ण प्रतीत होने लगीं। मुझको संसार में एक नवीन सौन्दर्य का भास होने लगा। स्वयं देवी पत्रलता मुझे एक विशेष आलोक से आलोकित दिखाई देने लगीं।

"उस रात्रि मुझे नींद नहीं आई और रात्रि-भर मैं भारत देश और समाज की अवस्था पर विचार करता रहा था। मुझको यह समझ आया कि मैं अकेला इस देश और समाज की प्रगति में बाधक बना हुआ हूँ। मैंने तब ही निश्चय कर लिया था कि मैं एक ओर हटकर इस प्रगति के मार्ग को प्रशस्त कर दूँगा।

"अपने इन विचारों के अनुरूप ही मैंने महाराज को चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करने की अनुमति दे दी है। इसी कार्य की सिद्धि के लिए मैंने राज्यश्री से कहकर महाराज हर्षवर्द्धन को कन्नौज की राजगद्दी पर आरोहण की स्वीकृति दिलाई है और आज मैं एक और निश्चय की घोषणा कर रहा हूँ। वह यह कि आज से बौद्ध चैत्यों में युवा भिक्षुणियों को प्रवेश न दिया जाय।

"देवी पत्रलता ने अपने जन्म की जो कथा महामात्य के निवास-गृह पर सुनाई थी, उससे मेरे मन में ऐसा आघात पहुँचा है कि मैं अपने पूर्ण जन्म के कार्य पर सन्देह करने लगा हूँ।"

महामात्य और पत्रलता महाप्रभु के इस कथन पर अत्यन्त आश्चर्य-

चकित रह गए। यह एक अनहोनी घटना थी। महाराज हर्षवर्द्धन ने, महाप्रभु के कथन पर कि पत्रलता के पान खिलाने के पश्चात् ही यह सब परिवर्तन हुआ है, पत्रलता की ओर अत्यन्त प्रेम-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा, "तो हमको इस वर्तमान सौभाग्य और सुविधा के लिए भी पत्रलता का ही आभारी होना चाहिए। देवी! मैं सत्य हृदय से तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। चिरकाल से मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि मैं कन्नौज और स्थानेश्वर की सीमाओ मे सीमित रहकर अपनी शक्तियो पर तुषारपात कर रहा हूँ। अब मेरी शृखलाएँ ढीली हुई हैं और मैं अपने भुजदण्डो मे क्षत्रिय रक्त स्पन्दित होता अनुभव कर रहा हूँ। मेरे लिए मेरा जीवन-कार्य खुल गया है और महाप्रभु जी की सहायता से तथा भगवान् तथागत की कृपा से मै इस कार्य को सम्पन्न करूँगा।

"इस पर भी महाप्रभु जी के अनुसार इस परिवर्तन का स्रोत पत्रलता के पान को मानते हुए, हम देवी को, उसकी इस पान लगाने की कला से प्रसन्न होकर पुरस्कृत करते हैं। माँगो देवी! क्या चाहती हो?"

"महाराज! मैं नही जानती कि इस परिवर्तन मे मेरा कितना भाग है? भगवान् गोधिसत्त्व जी के कथनानुसार यदि यह मान भी लिया जाय कि वास्तव मे ही मेरे इस तुच्छ प्रयास का इतना विस्तृत प्रभाव हुआ है, तो मेरा यह निवेदन है कि आज से मुझको पान न लगाने की आज्ञा प्रदान की जाए और मुझको अपना शेष जीवन छिपकर ससार के किसी अज्ञात कोने मे व्यतीत करने की अनुमति दी जाए।"

"तब तो किसी चैत्य मे प्रवेश लेना पडेगा।" महाप्रभु बोले।

"नही भगवन्! वहाँ की चंचलता, अस्थिरता और उच्छृङ्खलता का दर्शन मैंने किया है। बाहर से शान्त किन्तु भीतर से ज्वालामुखी की भाँति प्रज्वलित वासनाओ का भण्डार मैंने वहाँ पाया है और आप तो अभी आदेश दे चुके हैं कि युवा-स्त्रियो को चैत्यो मे न लिया जाये। मुझको स्वीकृति दी जाय कि मै अपने लिए अपने छिपने का स्थान स्वय ढूँढूँ। मैं तो यह चाहती हूँ कि मुझे अब स्वेच्छा से विचरने की स्वीकृति हो।"

पंचम् परिच्छेद

: १ :

महाराज हर्षवर्द्धन की सेना के साथ उनका संधि-विग्रह अधिकृत मन्त्री सदैव साथ रहता था। वह मन्त्री बौद्ध था। यही कारण था कि जिस-जिस राजा ने हर्षवर्द्धन की अधीनता स्वीकार की, उससे प्रथम कर प्राप्त कर और वार्षिक कर नियत कर सन्धि कर ली गई।

श्रीकण्ठ से चलकर प्रथम मोर्चा प्रमथम (सिन्ध) की सीमाओं पर लगा। प्रमथम पर एक शूद्र वंश के राजा का राज्य था, जो बौद्ध हो गया था। प्रमथमाधिपति ने युद्ध करने के स्थान कर देना लाभप्रद माना। दूसरा मोर्चा गान्धार देश के विरुद्ध लगा। महाराज के प्रयत्न से युद्ध करने का अवसर ही नहीं आया। सेना को इस प्रकार बाँटा गया और चलाया गया कि छोटे-छोटे युद्धों से ही गांधार सेना को सिन्धु नदी से धकेलकर सुमेरु पर्वत के पार कर दिया गया। इस प्रकार के समर में समय तो लगा, परन्तु पूर्ण विजय प्राप्त हुई और कापिश (काबुल) मे हर्षवर्द्धन की विजय-पताका गाढ दी गई। विजय के पश्चात् गान्धार राज्य एक बौद्ध आयुक्तिक के हाथ सौंप दिया गया। वहाँ से श्रीकण्ठ की सेना काश्मीर की ओर चली। काश्मीर मे हूणों का अधिकार था। काश्मीर हूण-नरेश माणिकन्द को हिमालय पार कर तिब्बत मे धकेल दिया गया। हूण, जो काश्मीर मे रह गए थे, वे सब बौद्ध धर्मानुयायी हो गए थे और उन्होंने हर्ष के अधीन रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ भी सामन्त एक बौद्ध हूण को बना कर राज्य का कार भार उसको सौंप दिया गया। काश्मीर के पश्चात् हर्ष ने

अपनी दृष्टि तुषार शैलभू (नैपाल) की ओर की। इसकी पराजय के पश्चात् हर्षवर्द्धन धन-धान्य से लदा हुआ स्थानेश्वर, तदनन्तर कन्नौज लौटा। इस समय बाण ने हर्षवर्द्धन को सकलोत्तरपथ की उपाधि दी।

इस समर मे छः वर्ष लग गए और छः वर्ष तक श्रीकण्ठ तथा कन्नौज की राज्य-व्यवस्था पद्मराज के हाथ में रही। स्थानेश्वर और कन्नौज मे पूर्ण उत्तर पथ के देशो का धन-सम्पद एकत्रित होने लगा और जनता धन-धान्य से पूर्ण हो गई।

राज्य मे व्यापार और कला-कौशल का विस्तार होने लगा। विदेशो से भी धन इन राज्यो में एकत्रित होने लगा।

जब महाराज हर्षवर्धन इस समर पर गये हुए थे, तो पत्रलता अपने भावी जीवन-पथ के विषय मे विचार कर रही थी। जब हर्ष उत्तर पथ विजय कर लौट रहा था तो पत्रलता कन्नौज से चले जाने का विचार कर बैठी। एक दिन वह बाण से मिलने गई। बाण ने उसके मुख पर अवर्णनीय ओज देखा तो चकाचौध हो देखता रह गया।

"कवि!" पत्रलता ने उसको सचेत करने के लिए कहा, "क्या आज शिष्टाचार भी भूल गए? बैठने को भी नहीं कहोगे?"

"ओह! देवी! क्षमा करना। इस व्यवहार मे त्रुटि का मैं दोषी नही हूँ।"

"तो कौन दोषी है?"

"यदि देवी सत्य बात सुनना चाहती हैं तो मैं कहता हूँ। आज देवी के मुख पर अद्वितीय आलोक दिखाई देता है। यह क्षुद्र प्राणी इस आलोक का अद्भुत प्रकाश देखने मे अपने को भूल गया था।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि कवि को अशिष्ट बनाने का अपराध मैने किया है।"

"मैं इसको अपराध नही कह सकता। यदि इसे अपराध कहूँ तो प्रत्येक सुन्दरी अपराधिन बन जाएगी। मै तो यही कहूँगा कि देवी का सौन्दर्य मुझ जैसे साधारण व्यक्ति पर सम्मोहन का-सा प्रभाव किए हुए

था। इस पर भी देवी! आओ, विराजो। क्या सेवा करूँ?"

"धन्यवाद!" पत्रलता ने संकेत किये हुए आसन पर बैठते हुए कहा, "मैं आज कवि से अन्तिम भेंट करने आई हूँ। मैं कन्नौज छोड़ कर जा रही हूँ।"

"कहाँ?"

"किसी अलक्षित लक्ष्य-स्थल पर। मैं इस संसार से विलुप्त हो जाना चाहती हूँ।"

"पर क्यों?"

"इसलिए कि मैं एक अबला नारी हूँ। मुझे अपने-आपको सबल बनाना है। एक महात्मा कहते हैं कि ज्ञान शक्ति है। ज्ञान-प्राप्ति से ही मनुष्य अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

"उन ज्ञानवान महात्मा जी की सेवा में मैं कई वर्ष रह चुकी हूँ। जब भी वे मुझको ज्ञान प्राप्त करने को कहते हैं तो मैं पूछती हूँ कि क्यों ज्ञान प्राप्त करूँ? वे कहते हैं कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए। जब मेरा प्रश्न होता है कि मोक्ष क्या है? वे कुछ इतना धुँधला-सा चित्र मोक्ष का खींचते हैं कि उससे न तो सन्तोष होता है और न ही वह प्राप्ति योग्य वस्तु समझ में आती है।

"एक कवि हैं। वे मुझको कहते हैं कि संसार की सृष्टि भगवान् ने भोग करने के लिए बनाई है। वे इस सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट वस्तु नारी के उपासक हैं और मेरी उपासना करना चाहते हैं। मैं पूछती हूँ, कवि महाराज! यह सांसारिक भोग कब तक चल सकता है?

"उनका उत्तर है, 'यौवनावस्था तक, अर्थात् जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं।'

"मेरा कहना है कि यह तो इतना न्यूनकाल है कि उसके लिए अपनी शक्ति का ह्रास कर जरा का आह्वान करना कुछ बुद्धिमत्ता प्रतीत नहीं होती। इन्द्रिय-सुख क्षणभंगुर और फीका पड़ जाने वाली वस्तु है।

"एक कर्म-योगी से मेरा वास्ता पड़ा है। वे कहते हैं कि निष्काम कर्म

करने से मोक्ष सिद्ध होता है। उनको युक्ति मे परास्त न कर सकने पर भी कर्म करते-करते ऊब गई हूँ। मूर्ख ससार को पान खिलाने मे कुछ भी लाभ दिखाई नही पड रहा। वे कर्मठ अपनी तीन-चौथाई आयु तक राज्य की सेवा में व्यतीत कर चुके हैं। जब-जब भी वे कोई नवीन योजना चलाते हैं तो उनकी युक्तियो, अनुभवो और प्रमाणो का उत्तर न रखते हुए भी लोग, विशेष रूप मे अधिकारी उनकी योजनाओ को विफल करने लगते है।

"महाराज को अनेक युक्तियो, प्रलोभनो और प्रमाणों से निरुत्तर कर इस उत्तर पथ की विजय के लिए भेजा था, परन्तु परिणाम वह नहीं हुआ जो होना चाहिए था।

"वे कर्मयोगी चाहते थे कि महाराज समर पर जायें और पीछे से उनकी सहायता धन, जन और साधनों से की जाए। समर का उद्देश्य महाराज की धन-धान्य में वृद्धि नहीं थी। भारत और भारतीयता की सुरक्षा उनका ध्येय था। सब-कुछ होने पर भी कर तो बहुत एकत्रित होगया, परन्तु भारत और भारतीयता की सुरक्षा का प्रबन्ध नहीं हुआ। समर का उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। प्रमथम मे शूद्र राज्य बना रहा। यह राज्य भारत का द्वार है। इसका अर्थ यह हुआ कि देश का द्वार उस शूद्र के हाथ मे रहा, जिसने महाराज की अधीनता एक बूँद रक्त बहाए बिना स्वीकार कर ली। वह न केवल शूद्र है, प्रत्युत बौद्ध भी है। वह भीरू है। किसी भी विदेशी आक्रमणकारी के सम्मुख वह वैसे ही नतमस्तक हो जाएगा, जैसे महाराज हर्षवर्द्धन के सम्मुख हो गया था।

"गाधार विजय किया गया। कापिश मे विजयपताका गाढ दी गई, परन्तु गाधार को कन्नौज का प्रान्त न बनाकर स्वतन्त्र देश ही रहने दिया गया। इस पर भी वहाँ के वीर राजा को शासन की बागडोर न देकर, एक विदेशी को वहाँ का अधिपति बना दिया गया।

"काश्मीर मे से माणिकन्द को तो निकाल दिया गया, परन्तु माणिकन्द के भाई के पुत्र को वहाँ का आयुक्तिक बना दिया गया।

"इसी प्रकार तुपार-शैलभू पर भी उनका ही राज्य रहने दिया गया, जो तिब्बत देश से पुनः अपने सम्बन्ध बनाकर भारत का द्वार विदेशियो के लिए खोल देगे।

"मेरे कहने का अर्थ यह है कि छः वर्ष के अतुल प्रयास के पश्चात् भारत तथा भारतीयता वैसी-की-वैसी ही अरक्षित रही, जैसी पहिले थी।

"कवि ! इस कर्मठ महानुभाव का पूर्ण आयोजन मै असफल होते देख आई हूँ। इससे अब तो कर्म में भी विश्वास नही रहा।

"इस कारण ज्ञान, कर्म, योग तीनो को व्यर्थ मान अपने जीवन के लिए कोई अधिक कल्याण का मार्ग ढूँढने जा रही हूँ।"

पत्रलता का वक्तव्य समाप्त होने पर कवि खिलखिलाकर हँस पड़ा। कुछ देर तक हँसकर उसने कहा, "देवी ! मै कहता हूँ कि जो कुछ तुमने वर्णन किया है, वह सत्य ही अज्ञान का सूचक है। मेरा विचार है कि तुम सोचती बहुत अधिक हो और करती कम हो। भला बताओ कालिदास पढ़ा है तुमने ?"

"कैसी असगत बातें करते हो कवि ! कालिदास ने संसार के चित्र खीचे। वे चित्र अलौकिक हैं। उनमे भाषा और भाव अद्भुत हैं। इस पर भी वे किसी लक्ष्य की ओर सकेत नही करते। वे लक्ष्यहीन हैं। सुन्दर भाषा, सुन्दर कल्पना और सुन्दर उपमा सब ठीक है, परन्तु प्रयोजन क्या है, यह उनमे दिखाई नही पड़ता।"

"दिखाई पड़ता क्यो नही ? देखने वाले को चक्षु खोलकर पढना चाहिए। सुनो देवी ! कैसा सुन्दर लिखा है—

'अपरक्षित् कोमलस्य यातकुसुमस्येव'

"देखा, कितना सुन्दर वर्णन किया है मन की चाहना का !"

"क्या सौन्दर्य है इस कथन मे ? एक कामी पुरुष की उच्छृङ्खलता पूर्ण वाणी को तुम कवि लोग कवित्व कहते हो। इसी कारण तो मेरा मन संसार से ऊब रहा है। क्या अर्थ है आपकी कविता करने का ? उस दिन मैं यहाँ आई थी, तो आपके कुछ अभिलेख यहाँ चौकी पर पड़े

दिखाई दिये। कवि पूजा-पाठ के लिए पूजा-गृह मे थे। अतः भेंट करने के लोभ मे यहाँ बैठी तो अभिलेख पढ़ने लगी। एक पत्र पर लिखा था—

"राज-गृह मे कर्ण-परम्परा से सुना जाता है, परिजन भी ऐसा ही बताते हैं, बाहर के लोग भी ऐसा ही कहते हैं, दिगन्तरों मे भी यही बात प्रचलित है और यह ही हमने सुना है कि कादम्बरी की ताम्बूलवाहिनी तमालिका के साथ प्रेम मे फँसा परिहास नाम का तोता, काम के वश होकर भी यह नहीं जानता था कि दिन किस प्रकार व्यतीत होते हैं। इसलिए यह दुराचारी, निज-कलत्र त्यागी निर्लज्ज इसके साथ रहे, परन्तु कादम्बरी को क्या यह उचित है कि ऐसी चपला दुष्ट दासी को नहीं रोकती। अथवा देवी ने प्रथम ही इस बेचारी कालिन्दी को ऐसे अविनयी तोते को देकर अपनी निस्नेहता स्पष्ट कर दी है। अब यह बेचारी क्या करे··· ·····" इस प्रकार पन्ने-पर-पन्ने पढ़ती गई और जब लेख का कुछ सिर पैर समझ नहीं आया तो विचार करने लगी कि कवि महोदय ने कैसी सुन्दर गद्य लिखी है। गद्य के शब्द और अलंकारो मे फँसी हुई, मै दो घडी-भर उस अभिलेख के जजाल मे भटकती रही, परन्तु अन्त मे अपने को वहीं पाया, जहाँ आरम्भ मे थी।

"मन मे आया कि आप पूजा-गृह से उठकर आएँ तो पन्ने आपके मुख पर दे मारूँ और कहूँ, 'राज्य का धन किस अर्थ खा-खाकर गन्दा कर रहे हो? कवि!' परन्तु यह विचार कर कि इसमे आपका दोष ही क्या है, यथा राजा तथा प्रजा वाली बात ही है, चुप कर रही। राजा को अनेकानेक प्रयत्नों से कार्य मे सलग्न किया और वह कार्य करते-करते उसको अधूरा छोड चला आया। राजा ने यह समझा कि संसार उसके चारो ओर घूम रहा है। वह ससार का अनुचर नही, प्रत्युत संसार उसकी महिमा गान करने के लिए बना है। उसके कार्य राज्य अथवा जनता के हित में नहीं हैं, प्रत्युत् जनता उसका हित करने के लिए बनी है। अब करोडो स्वर्ण-मुद्रा प्रजा से कर-रूप में प्राप्त कर समर पर गए भी, परन्तु प्रजा तो वहाँ-की-वहाँ ही रही, जहाँ समर के आरम्भ मे थी।

"फिर विचार करती हूँ कि राजा का भी क्या दोष है ? प्रजा भी यही चाहती है। प्रजा यह देखती है कि अकर्मण्यता से देश रसातल में जा रहा है। इस पर भी अकर्मण्यता के भाव को पसन्द करती है।

"जब कोई दुष्ट उनके धन-दौलत को लूटता अथवा उनकी बहू-बेटियो को अपमानित करता है, तो वे यह अनुभव करते हैं कि उनकी मानसिक स्वतन्त्रता पर छापा डाला जा रहा है। तथा जब उनको ज्ञान होता है कि वे अयुक्ति-युक्त बातो को करने पर विवश किए जा रहे हैं, तो वे चटपटा उठते हैं और कर्म पर आरूढ़ हो कार्य करने के लिए विचार करने लगते हैं; परन्तु दूसरे ही क्षण उनको धर्म तथा शान्ति के नाम की निर्वाण के आवरण मे लपेटी अहिफेन खाने को दे दी जाती है। वे उसे मजे मे खाते हैं और सो जाते हैं। वे भ्रम मूलक शान्ति के लोभ में शताब्दियों से सचित निधि का त्याग कर बैठते हैं।

"प्रजा जो चाहती है, कवि वही लिखता है; कवि जो लिखता है, राजा वही करता है और प्रजा के साथ जब अन्याय और दुराचार होते हैं, तो राजा कवि को दोष देता है, कवि प्रजा को दोष देता है और प्रजा राजा को दोष देती है।

"मैं इस घेरे से बाहर निकलना चाहती हूँ। कैसे निकलूँ, यही जानने की लालसा में कन्नौज से जा रही हूँ।"

बाण एक गम्भीर विषय मे डूबा हुआ पत्रलता के मुख पर देख रहा था। आज उसके अभिलेखो पर टीका-टिप्पणी करने वाली एक स्त्री उत्पन्न हो गई है। उसने उसको झकझोरकर बताया है कि वह राज्य का धन खा-खाकर उसे गन्दा कर रहा है। वह विचार करता था कि क्या यह सत्य है ? परन्तु उसके मन मे साहित्य का एक लक्षण बना था और वह उसी लक्षणा वाले साहित्य को लिखता था। यह कौन स्त्री है, जो शताब्दियों से चली आ रही साहित्य की परम्परा को अशुद्ध बता रही है ? वह उससे झूझ जाने का विचार कर रहा था और इस स्त्री को अपने स्थान पर बैठाकर सिद्ध करना चाहता था कि वह अनधिकार

ष्टा कर रही है।

पत्रलता भी गम्भीर विचार मे मग्न थी। इस समय आगार के बाहर किसी के अट्टहास का स्वर सुनाई दिया। दोनो सतर्क हो बाहर की ओर देखने लगे और उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब अघोरी बाबा और उसकी भैरवी ने उस आगार में प्रवेश किया।

: २ :

बाण ने बाबा को देखा तो आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए कहा, "आइये महाराज! अहोभाग्य हैं हमारे जो आज आप दोनो के दर्शन हुए हैं।"

बाबा और भैरवी को आसन पर बैठाकर, बाण हाथ जोड पूछने लगा, "क्या सेवा करूँ महाराज?"

"बेटा! दूध मँगवा दो। आज हमने अन्न नहीं लेना है।"

बाण ने प्रतिहार चेतक को बुलाकर दूध लाने का आदेश दे दिया।

बाबा ने भैरवी की ओर देखकर कहा, "भैरवी! इनको बताओ कि हम किस कारण हँस रहे थे?"

भैरवी ने हँसकर कहा, "कल अमावस की रात्रि थी। दीर्घिका पर के मन्दिर मे पूजा का आयोजन था। काल-भैरवी की पूजा कर जब हम निवृत्त हुए तो दिन निकलने वाला हो गया था। बाबा बोले, 'भैरवी! नगर मे कोई आह्वान करता प्रतीत होता है।'

"मैंने कहा, 'बाबा! मैं तो आज की प्रक्रिया से थक गई हूँ और विश्राम करना चाहती हूँ।'

"इस पर बाबा बोले, 'नहीं! आज तो चलना होगा और यदि तुम थकी हो तो गॉव के श्मशानिये की बैलगाडी पर चलेंगे। परन्तु मै देख रहा हूँ कि भक्तिनी के जीवन ने करवट ली है। वह जीवन-मार्ग नहीं पा रही। चलो, भक्तिनी को सन्मार्ग पर लगावे।'

"मैं कई वार बाबाजी से पूछ चुकी हूँ कि वे इस भक्तिनी के पीछे

क्यो पडे हैं ? यह तो काल भैरव की उपासिका नही। उसके गुरु आचार्य-जी तो वाराह के पुजारी हैं।

"बाबा का कहना है, 'संसार में भगवान् एक है। ये सब उसी महाशक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कौन किसकी उपासना करता है, यह उसके अपने मन की भावना पर निर्भर है। इस कारण कोई किसी सुन्दरी के सौन्दर्य पर आसक्त है अथवा कृष्ण-मेघो की श्यामल छटा पर मोहित है, कोई किसी चचल चपला के नृत्य मे पायलो की झंकार सुन मुग्ध हो जाता है अथवा कोई कोयल की कू-कू सुनकर नाचने लगता है; कोई सरस्वती वीणा-पाणि के प्रिय दर्शन पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है, कोई महावाराह भगवान् के आश्रय पर चित्त को शान्ति देता है। अभिप्राय यह है कि यह सब उस महान् शक्ति के, जिसके बल से सकल जगत् का कार्य होता है, भिन्न-भिन्न रूप हैं। कोई उसको शक्ति कहता है, कोई भगवान् का नाम देता है, कोई उसको इहलोक मानता है और कोई परलोक कहकर सुधारने का यत्न करता है। वास्तव में सब एक ही है। अतएव भक्तिनी किसकी उपासिका है, यह देखने की आवश्यकता नहीं। जानने योग्य बात यह है कि वह निष्ठावान, दृढ़ सकल्प, स्वार्थ-रहित उद्देश्य-प्राप्ति में सलग्न है। यही तो कर्म है। शेष तो कार्य-सिद्धि के उपकरण मात्र हैं।'

"इतना समझा कर बाबा मुझको लेकर चल पडे। श्मशानी की बैलगाड़ी पर सवार हो, पॉच कोस की यात्रा कर हम यहाँ आ पहुँचे हैं। मार्ग मे बाबा कह रहे थे, 'भक्तिनी चल पडी है अपने प्रेमी को जली-कटी सुनाने। वह उससे प्रेम करती है, परन्तु किसी कारण-विशेष से दोनों भिन्न-भिन्न दिशाओ की ओर मुख किये बैठे हैं और दोनो एक-दूसरे को न देखने से समझ नहीं रहे।'

"हम इस आगार के बाहर आकर आप दोनो का विवाद सुन रहे थे और जब भक्तिनी कह रही थी कि राजा कवि को दोष देता है, कवि प्रजा को और प्रजा राजा को, तो हम इन गोलाकार रेखाओ के पुनः

अपने जन्म-स्थान पर पहुँचने की बात पर, इसको विस्मय करते देख हँस पड़े थे।"

पत्रलता बाबा की भविष्य देखने की शक्ति से परिचित थी। इस कारण अपने भविष्य मे पुनः इस सिद्ध को चिन्ता करते देख विस्मय मे उनका मुख देखती रह गई।

अघोरी बाबा पत्रलता को अवाक्-मुख से अपनी ओर निहारते देख पूछने लगा, "तो क्या मेरी बात का अभी भी तुमको विश्वास नहीं होता? क्या और कुछ देखना चाहती हो? तो देखो सामने क्या है?"

पत्रलता और बाण दोनों सामने देखने लगे। वे यह देख चकित रह गए कि आगार की दीवार पर एक मरु-भूमि का दृश्य बन गया है। एक पंक्ति मे ऊँट, जिन पर बड़े-बड़े गट्ठरों मे माल लदा है, चले जा रहे हैं। सबसे आगे के एक ऊँट पर एक प्रौढावस्था का पुरुष, सिर पर श्वेत चादर की पगडी लपेटे और कन्धे पर मोटा श्वेत कम्बल डाले हुए बैठा है।

ऊँटो की पंक्ति मे अन्तिम ऊँट पर एक सोलह-सत्रह वर्ष का ओजस्वी बालक बैठा है। बालक अपने विचारों में लीन ऊँट के चलने से हिचकोले लेता हुआ चला जा रहा है।

"यह क्या है बाबा?" पत्रलता का प्रश्न था।

"एक बीत चुकी घटना का चित्र है। यह ऊँटों का 'कारवाँ' दमिष्क नाम के एक नगर मे जा रहा था। पहिले ऊँट पर मालिक बैठा था। अन्तिम पर स्वामी का सेवक। यह सेवक प्रकृति के एक केन्द्र मे भारी हलचल का कारण होने वाला सिद्ध हुआ है।"

"यह देखो।" बाबा ने पुनः कहा। दीवार पर वह चित्र परिवर्तित हो गया। एक पुष्करिणी के किनारे वही बालक, जो ऊँटों की पंक्ति मे सबसे अन्तिम ऊँट पर था, खड़ा एक पत्थर पुष्करिणी में फेंक रहा है। पत्थर जल मे गिरता है और फिर उसमे से तरंगें उठने लगती हैं। ये तरंगे पत्थर गिरने के स्थान से चलकर पुष्करिणी के दूर-दूर किनारों तक पहुँचती

हैं। वहाँ से टकराकर लौटती हैं और पुनः अपने केन्द्र स्थान पर जा पहुँचती हैं। पश्चात् पुनः किनारो की ओर चल पड़ती हैं।

"क्या अर्थ है इसका बाबा ?"

"यह 'कारवाँ' जब दमिष्क मे पहुँचा, तो स्वामी का देहान्त हो गया। माल बेचने पर सब धन उस लड़के को मिल गया। इस प्रकार लाखो मुद्राओ का स्वामी बन वह बालक विचार करने लगा कि इस धन का क्या करे। उसके मन मे विचार आया कि किसी मन्दिर मे जाकर देवता को प्रसन्न कर इस धन के विषय में जानने का यत्न करे।

"वह एक यहूदी मन्दिर मे पहुँचा। वहाँ मन्दिर खाली पड़ा था, परन्तु उसमे से ध्वनि आ रही थी कि, 'परमात्मा एक है। वह सब-कुछ देखता है। उससे कुछ छुपा नहीं।'

"यह एक पत्थर था, जो बालक के हाथ मे इस अदृश्य से आई ध्वनि ने दिया था। इस बालक ने वह पत्थर अरब की पुष्करिणी मे फेंक दिया है और उसमे से तरगे उठने लगी हैं और पुष्करिणी के दूर-दूर किनारो तक पहुँच रही हैं तथा सब विघ्न-बाधाओ को तोड़कर वे यहाँ तक पहुँचने वाली है।"

"तब क्या होगा बाबा ? प्रत्यक्ष रूप मे तो परमात्मा एक है। परमात्मा महान् है। वह सब-कुछ देखता है। यह ध्वनि किसी प्रकार से भी चिन्ता का विषय नहीं हो सकती। यदि ससार इस प्रकार से तरंगित होने वाला है, तो शुभ ही है।"

"यदि ऐसा हो सकता, तो सत्य ही चिन्ता का विषय न होता। परन्तु वह पत्थर अर्थात् 'परमात्मा एक है का विचार' तो पुष्करिणी मे डूबकर वहीं जल की तह मे जा बैठा है और तरगे तो उस जल मे उठ रही हैं, जो जल उस पुष्करिणी मे विद्यमान था। पुष्करिणी का जल शुद्ध-पवित्र होता, तो इन तरगो से शुद्धता तथा पवित्रता ससार मे फैलती। वास्तव मे अरब देश की समाज अत्यन्त ही पतित है और पिछड़ी हुई है और दुर्दैव से पत्थर फेंका गया है उसमे। तरंगे उठ रही हैं उस दूषित

जल मे और उस जल की गंदगी ही तो ससार मे फैलेगी।

"इस महानात्मा का प्रयास ऐसे माध्यम मे प्रयोग हुआ है, जो संसार में वह उथल-पुथल मचाएगा, वह अत्याचार और अनाचार का रंग लाएगा, वह दुःख और क्लेश उत्पन्न करेगा कि संसार के लोग दाँतो-तले उँगली देने लगेगे।

"उधर देखो।" वे पुनः उसी दीवार पर देखने लगे। एक भव्य नगर का दृश्य था। बाबा ने कहा, "यह है बगदाद।"

तंग बाज़ार और ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं। पत्थर के फ़र्श और संगमरमर के फव्वारे थे। बडी-बडी पगड़ियाँ और चोगे पहिने पुरुष थे और बुर्का ओढ़े स्त्रियाँ थीं।

"यह क्या है बाबा!" पत्रलता ने सिर से पाँव तक कपडो में लिपटी एक चलती-फिरती वस्तु की ओर संकेत कर पूछा।

"ये स्त्रियाँ हैं। इनको उस सुन्दर और ओजस्वी युवक ने दासता की शृंखलताओ मे जकड़ दिया है। इसने आज्ञा दी है कि उसकी राह पर चलने वाले पुरुषों के घरो की स्त्रियाँ सदैव पर्दा किया करे। वे अपने शरीर के किसी भाग को भी किसी पर-पुरुष को देखने न दे।"

"क्यो?"

"इस कारण कि कहीं वे उन पर मोहित हो, पथ-भ्रष्ट न हो जायँ।"

बाण हँस पडा और बोला, "यदि यह प्रथा यहाँ भी चल पडी, तब तो बहुत कठिनाई हो जाएगी। अभी तो पुरुष सुन्दर स्त्रियो पर ही आसक्त होते हैं, तब तो चलते-फिरते इन खेमो पर भी आसक्त हो जाया करेंगे। आसक्ति का विषय सौन्दर्य न रहकर स्त्री हो जाएगा।"

"यह तो दूर भविष्य ही बताएगा। परन्तु अभी तो निकट भविष्य की बात देखो, वह देखो क्या है?"

दीवार के दृश्य में पुनः परिवर्तन हुआ। एक विशाल भव्य भवन मे, एक उच्च आसन पर, एक अधेड आयु का व्यक्ति बैठा था। उसके सामने दो पक्तियों मे अन्य अनेक व्यक्ति सम्मान-युक्त मुद्रा में खडे थे।

सब लोग अत्यन्त बढ़िया एव मूल्यवान वस्त्र पहिने हुए थे। उन दो पक्तियों में खड़े पुरुषों के मध्य में से कुछ लोग भारी गट्ठर उठाये हुए आए और उन गट्ठरों को उस उच्चासन पर विराजित व्यक्ति के सम्मुख रख खोलने लगे। एक-एक गट्ठर खोलकर, उसमे की वस्तुएँ दिखाने लगे। उसमें से हीरे, मोती, माणिक्य तथा अन्य मूल्यवान रत्न निकाल कर दिखाये गए। उच्चासन पर बैठा व्यक्ति उन वस्तुओ को देखकर प्रसन्न हुआ।

बाबा ने कहा, "यह उस बालक का, जिसको तुम पुष्करिणी में पत्थर फेंकते देख चुके हो, खलीफा है। वह युवक वृद्ध हो अब संसार से उठ चुका है? अब उसका खलीफा बग़दाद मे राज्य करता है और पत्थर के पुष्करिणी में फेंके जाने से उठने वाली तरंगो से लाभ उठा रहा है। वे तरगे यह धन-दौलत, सीरिया, फिलिस्तीन, मिश्र, ईरान इत्यादि देशों से ला रही हैं। यह वह कुछ है, जो विजित देशो के अमुसलमानों से कर के रूप में एकत्रित किया गया है। उधर देखो वह क्या हो रहा है।"

कुछ युवा लड़कियाँ, जिनके हाथों को रस्सी से बाँधा हुआ था, घसीट कर उस उच्चासन पर बैठे व्यक्ति के सम्मुख लाई गई।

"ये कौन हैं?" उस खलीफा ने पूछा।

"हजरत! यह शाह मिश्र की लड़कियाँ हैं। फौज के साथ के मुफती ने इन्हे हुक्म दिया था कि ये इस्लाम कबूल कर लें। इन्होंने इनकार कर दिया है।"

इस पर खलीफा ने पूछा, "क्यो लड़कियो! तुम इस्लाम कबूल क्यों नहीं करतीं?"

इस पर सब लड़कियाँ चुप रहीं। केवल एक, जो सबसे बड़ी थी, कहने लगी, "हम बादशाह की लड़कियाँ हैं। हम चाहती हैं कि हमारे साथ हमारे ओहदे के मुताबिक सलूक किया जाय।"

"इस दुनिया में बादशाह एक है। वह है खुदा। वली उल इस्लाम हजरत मुहम्मद उस शाहन्शाहो के शाह के पैगम्बर हैं। यह गुलाम, जो

म्हारे सामने बैठा है, उसका खलीफा है। इसलिए हुक्म खुदा का है।
ली उल इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने उस हुक्म का बखान किया है।
इस पर ईमान लाओ और तुमको सब तरह की इज्ज़त और आराम
मिलेगा।"

"जिस खुदा के हुक्म से काहिरा की गलियाँ आदमियों के खून से
लथपथ की गई हैं, जिस खुदा के बन्दो ने मिश्र की सब कुँवारी लडकियो
से बलात्कार किया है, जिस खुदा की फौजो ने निहत्थे लोगो पर अन्याय
और जुल्म ढाए हैं, जिस खुदा के हुक्म मे इन्सान और इन्सान में फर्क
आ गया है, उस खुदा पर हम ईमान नहीं ला सकतीं।"

"लडकी!" खलीफा ने कहा, "देखो, किसके सामने खड़ी हो?"

"एक अन्यायी, अत्याचारी, दुराचारी खुदा के गुलाम के सामने।
हम को रिहा कर दिया जाय।"

"जल्लाद! इस लडकी को नापाक जिस्म से रिहाई दे दी
जाय।"

एक अति भयानक आकृति का व्यक्ति हाथ मे खड्ग लिए आगे
बढ़ा और उसने एक ही वार मे उस लडकी का सिर धड से पृथक् कर
दिया। रक्त के छींटे उडे और अन्य लडकियो पर पडे। इस पर वे तीव्र
स्वर मे चीत्कार कर भागने का यत्न करने लगी।

"लडकियो!" खलीफा ने कहा, "क्या चाहती हो? बोलो मौत
या ईमान?"

"हमे बचाओ। हमे माफ कर दो।" सब लडकियो ने चिल्लाकर
कहा।

इस पर खलीफा मुस्कराया और अपने समीप खडे एक व्यक्ति से
कहने लगा, "इनको हमारे हर्म मे भेज दो। इनको माफ कर दिया गया
है।"

पत्रलता यह दृष्य देख काँप उठी। उसकी आँखे तरल हो गई। अब
बाबा ने पुनः कहा, "उस पुष्करिणी मे फेंके पत्थर से उठी तरगे भारत-

खण्ड की सीमाओं को पार कर यहाँ भी आने वाली हैं। भक्तिनी! जानती हो इन तरंगों को रोकने का उपाय क्या है? उस पुष्करिणी को सीमित कर दो और उसके किनारों को भारत की सीमा से बाहर रहने दो। सीमाओं को इतना सुदृढ़ करो कि तरंगें वहाँ से टकराकर वापिस लौट जायँ।"

"परन्तु बाबा! इसका मुझसे क्या सम्बन्ध है?"

"तुम संसार से भागकर जा रही हो? मैं तुमको इस भगदड़ से मना करने आया हूँ। भारत के एक महान् पुरुष ने एक बार कहा था, 'कर्म करने से कोई नहीं बच सकता। इस कारण अच्छे कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवन व्यतीत करो, महाकाल भैरव का कथन है, समय व्यतीत हो रहा है और वे तरगें जिनका दर्शन भगवान् की कृपा से मैंने कराया है, यदि एक बार इस पुण्य भूमि की सीमाओं को पार कर, इस समाज में घुस आईं तो सहस्रों वर्षों तक यहाँ की समाज दुःख-यन्त्रणा से त्राही-त्राही करती रहेगी।"

इस समय बाण का सेवक दूध का प्रबन्ध कर लाया। उसने सबके सामने चौकियों पर दूध रख दिया। बाण ने कहा, "बाबा! आप दूध पीजिए। भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान की बात करिए। कौन जानता है कि कल क्या क्या होगा! आज की बात तो समझ आती है। कल की चिन्ता न केवल निरर्थक प्रत्युत् दुखकारी भी है।"

: ३ :

बाबा तथा भैरवी ने दूध पिया और पश्चात् उठकर चल दिए। बाबा को मायावी प्रदर्शन और भविष्य की चिन्ता करते देख बाण तथा पत्रलता दोनों पर इसका भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ा था। बाबा के चले जाने के पश्चात् बाण ने कहा, "भविष्य का ज्ञान अति दुःखकारी होता है। यह ज्ञान सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। परन्तु दुःख तो सत्य होता है।"

"परन्तु कवि ! यदि सत्य ही यह होने वाला है, तो इससे बचने का उपाय किया जाना चाहिये।"

"क्या उपाय हो सकता है ?"

"भारत की सीमाओं पर सुदृढ़ छावनियाँ बनवा दी जायें। जिससे उस भगवान् के तथा उसके पैगम्बर के अनुयायी इन सीमाओं को पार न कर सके। एक बात बाबा जी ने दिखाई है। इस नवीन पन्थानुयायियो की सेनाएँ पहले किसी देश को विजय करती हैं, पीछे वे अत्याचार होते हैं, जिनका हमने चित्र देखा है।"

"परन्तु मैं पूछता हूँ कि तुम भारत-खण्ड की सेना हो अथवा सेना-नायक हो ? भला तुम कैसे इन उठ रही तरगों को रोकने मे सामर्थ्यवान हो सकती हो ?"

"एक बार इसी बाबा ने भभूत दी थी। वह मैंने महाप्रभु को पान मे खिलाई थी। उसका चमत्कारिक प्रभाव हुआ था। उसके खाने के कुछ ही काल पश्चात् महाप्रभु की बुद्धि मे अन्तर आने लगा था। उस अन्तर का परिणाम यह हुआ कि महाराज हर्षवर्द्धन वर्तमान् समर पर चल पडे थे।

"महाराज हर्षवर्द्धन अति ओज और बल के स्वामी हैं, परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इस ओज और बल पर तुषारपात करने वाला कोई अन्य व्यक्ति इनके साथ गया हुआ है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि भारत-खण्ड की सीमाएँ अभी भी उसी प्रकार अरक्षित हैं, जैसे पहले थीं। वहाँ पर अभी भी उन लोगो का आधिपत्य है, जो न तो भारत के साथ किसी प्रकार का अनुराग रखते हैं और न ही यहाँ की संस्कृति को श्रेष्ठ मानते हैं। इस परिस्थिति का परिणाम भयकर होने वाला है।"

"तो ?"

"बाबा जी का आदेश यह प्रतीत होता है कि मैं ससार छोड़कर न जाऊँ। यहीं रहूँ और अपने जीवन-काल में इस प्रयत्न में लगी रहूँ कि यहाँ पर बुद्धिवाद का बोलबाला हो और भावुकता निर्मूल हो।"

"तब तो ठीक है देवी ! बाबा जी के आशीर्वाद से तुम यहाँ रहो और थोड़ा-सा मेरा कहा मान लो कि मेरे गृह को अपने वास से सुशोभित करो। मेरे प्रेम को सफल करो और भगवान् के विधान को चरितार्थ करती हुई पुत्र-पौत्रों से इस गरीब ब्राह्मण के घर को भरपूर करो।"

पत्रलता हँस पड़ी। उसने कहा, "इस विषय पर मैं चिरकाल से विचार करती आ रही हूँ। इस पर भी अन्तिम निर्णय नहीं कर पा रही। क्यों ? मैं जानती नहीं। जानने का यत्न तो किया है, पर अभी तक जान नहीं सकी। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् को यह स्वीकार नहीं।"

"देखो देवी ! तुमको अपने अयुक्तिसंगत व्यवहार में भगवान् को धकेलते देख मुझे भगवान् से घृणा होने लग गई है। मैं उसके विधान को अस्वीकार करता हूँ और कहता हूँ कि तुम भी उसका अवलम्बन छोड़कर, मेरे कन्धे पर हाथ रख लो। मैं तुमको इस संसार-रूपी दुस्तर सागर से पार कर दूँगा।"

"अच्छा कैसे करोगे ? तनिक समझाओ तो।

"मैंने अघोरी बाबा द्वारा दी गई भभूत, पान मे रखकर महाप्रभु को दी थी और उनकी मति में परिवर्तन होगया था। परन्तु इसका साथ ही परिणाम यह हुआ है कि वे अस्वस्थ रहने लग गए हैं। सम्भव है यह उसी भभूत के कारण हुआ हो। कुछ भी हो। कदाचित् किसी दिन यह रहस्य खुल जाय और मुझे इस अपराध मे पकड़ लिया जाए। यदि मैं आपके साथ रहने लगी तो सम्भव है आपको भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित समझ लिया जाए और पुरुष होने के कारण आपको फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दिया जाए।

"साथ ही मैं बौद्धों द्वारा राज्य-कार्य मे हस्तक्षेप पसन्द नहीं करती। मेरा यह अनुमान है कि महाराज की यह लंगड़ी नीति सेना मे किसी बौद्ध विचार-धारा से प्रभावित व्यक्ति की सम्मति पर चल रही है। मान लो, मैं अपने विचार की पूर्ति मे कोई यत्न करूँ और उस प्रयत्न में राज-

द्रोह के अपराध मे पकड ली जाऊँ तो श्रीमान् मेरे पति होने के नाते फॉसी पर लटका दिए जा सकते हैं।

"आप मुझे इस दुस्तर सागर से पार करते-करते स्वयं इसमें डूब जाएँगे।"

बाण पत्रलता के विचारो को सुन कॉप उठा। वह अपना जीवन-कार्य तो केवल हर्ष के गुणानुवाद करना और स्त्रियो के सौन्दर्य, देवताओ के वैभव, तथा प्रकृति की शोभा का वर्णन करना और भाषा मे वैचित्र्य लाना मात्र समझता था। पत्रलता ने जो कार्य उसके सामने रखा था, वह तो राजनीति से सम्बन्धित था। इस पर भी उसने कहा, "मे समझता हूँ कि जब तक तुम कुँवारी रहोगी, ऐसे विचार तुम्हारे मस्तिष्क मे उठते रहेगे। ये विकार तुम्हे टेढ़े-मेढ़े रास्तो पर ले जाने की प्रेरणा देते रहेगे। जहॉ तुमने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया और सौभाग्य से एक-दो बालको की मॉ बन गयी, तो यह षड्यन्त्र अथवा धर्म और संस्कृति का ज्वर और सम्प्रदायो मे विवाद पीछे रह जाएँगे, उनकी ध्वनि दूर पीछे छूट जाएगी और समय पा दूर नकारो के शब्द के समान फीकी पड जाएगी।"

"इसीलिए तो मै गृहस्थ मे प्रवेश करने से भय खाती हूँ। मैं अपने जीवन-लक्ष्य को छोड़ना नहीं चाहती। विवाह करने से यह जीवन-कार्य दूर के ढोल-ढमकीरे मात्र रह जाएँगे। मै यह जानती हूँ और इसी कारण मैं ऐसा नहीं चाहती।"

इतना कह पत्रलता उठ खडी हुई। बाण उसके मुख पर गम्भीरता-पूर्वक देख रहा था। पत्रलता ने आगार से बाहर निकलते हुए कहा, "मैं तो अन्तिम भेट करने आई थी, परन्तु यहॉ तो बात ही दूसरी निकली। मै कर्म से भाग नही सकती।"

बाण भी उठ खडा हुआ था और उसके साथ चलने के लिए आगार से बाहर निकल कर आया। उसने पूछा, "देवी, किधर जा रही हो?"

"महामात्य के गृह पर। मैं उनसे विदा लेकर आई थी। परन्तु अब तो कार्यक्रम बदल गया है। अतएव सबसे पहले उन्हे ही इन बदले

हुए विचारो से सूचित करना चाहती हूँ।"

"चलो, मै भी उस ओर ही चल रहा हूँ।"

दोनो वहाँ से निकल महामात्य के गृह की ओर चल दिए। चलते हुए पत्रलता ने पूछा, "महाराज का जीवन वर्तमान काल तक लिख दिया है क्या?"

"नहीं, अभी नहीं। महाराज राज्यवर्धन के शशाक की भगिनी के साथ विवाह पर जाने तक पहुँचा हूँ।"

"बहुत धीरे-धीरे लिखते हो कवि!"

"महाराज दीर्घायु हो। उनका जीवन लिखने के लिए अभी बहुत समय है।"

"तो दिन भर क्या मक्खियाँ मारा करते हो?"

"नहीं एक गद्य-काव्य 'कादम्बरी' के नाम से लिख रहा हूँ।"

"ओह! वही जो मैं एक दिन पढ गई थी।"

"हाँ, वास्तव मे जब तक तुम पूरी कथा नहीं पढ लेतीं, तब तक तुम्हे उसमे रस नहीं आएगा।"

"रस तो आया था, परन्तु वह कटु रस था। कवि! तुमने भारत युद्ध का इतिहास पढा है?"

"हाँ पढ़ा है।"

"महर्षि वेद-व्यास की भाषा की सरलता पर कभी विचार किया है।"

"किया है?"

"तो वैसी भाषा क्यो नहीं लिखते? देखो कवि! कैसी सुन्दर बात कैसी सरल भाषा में लिखी गई है—

अष्टौ पूर्व निमित्तानि नरस्य विन शिष्यता
ब्रह्मणाम प्रथम द्वेष्टि ब्राह्मणेश्च विरुध्यते
ब्रह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणश्च जिधांसति
रमते निन्दया चैषां प्रशंसो नाभिनन्दति

नैनाम् स्मरति कृत्येषु याचि तश्चा भ्यसूयति
एतान् दोषान् नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसर्जयेत् ॥

"और यदि इससे भी सुन्दर लेख देखना है तो महर्षि वाल्मीकि का 'रामचरितमानस' पढ़ लो। क्यो अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हो? एक निम्न कोटि के पुरुष के गुणगान कर और वह भी ऐसी भाषा मे, जिसको विरले ही पढ़ पाएँगे।"

"तो तुम मेरी भाषा को पसन्द नहीं करती?"

"मै तो यही कह रही हूँ कि कुछ ऐसा लिखो कि भारत की जनता में वीर रस का सचार हो उठे। कुछ ऐसी बात बताओ, जिससे वास्तविक शान्ति की स्थापना हो सके। वह शान्ति, जो श्रेष्ठ, सत्यवक्ता और धर्म-परायण लोगो के हृदय को शान्त करे न कि इनको छोड़कर दुष्ट दुराचारी, पतित और मूर्खों को आनन्द देने वाली हो।

"वह दुर्गन्धयुक्त, दूषित और रोगकारक जल मे उठ रही तरगे भारत मे आ रही हैं। कुछ ऐसा आयोजन विचार करो कि जिससे तरगे भारत-खण्ड की सीमाओ से पार ही टकराकर लौट जाये।"

"पत्रलता! मैं तो समझा था कि बाबा ने तुम्हे आसक्ति का मार्ग बताकर मेरा कल्याण किया है, परन्तु यह तो तुमने आसक्ति मे विरक्ति का सचार करना आरम्भ कर दिया है।"

"हाँ, मैं भूल कर रही थी। मै भूल गई थी कि—

"काम्यानां कर्मणां न्यास सन्यासं कवयो विदुः ॥"

: ४ :

बाण और पत्रलता महामात्य के निवास गृह पर पहुँचे तो बोधिसत्त्व जी की पालकी द्वार पर खडी देख समझ गए कि महाप्रभु भीतर विद्यमान हैं। पत्रलता ने बाण से कहा, "आप भीतर सूचना भेजकर प्रतीक्षा करें, तब तक मैं विरोचना देवी से मिलकर आती हूँ।"

बाण ने अपना और पत्रलता का नाम भीतर भेज दिया और दर्शनो

की अभिलाषा प्रकट कर दी। भीतर महाप्रभु और महामात्य हर्षवर्द्धन के विजय के उपलक्ष्य में महाराज के स्वागत में एक समारोह के प्रबन्ध पर विचार कर रहे थे।

बोधिसत्त्व जी ने बाण को भीतर बुला लाने के लिए आदेश दे दिया। महामात्य ने प्रतिहार को कह दिया कि बाण कवि को भीतर ले आया जाए।

बाण को केवल अपने बुलाए जाने पर आश्चर्य हुआ, परन्तु भीतर जाने पर उसका आश्चर्य मिट गया। बाण को बैठाकर महाप्रभु कहने लगे, "कवि! हम महाराज की विजय-यात्रा के उपलक्ष्य मे तथा उनके कन्नौज वापिस आने की प्रसन्नता में एक महान् उत्सव करना चाहते हैं। हमारी इच्छा है कि इस उत्सव मे नृत्य, सगीत, नाटक, नट-कला तथा अन्य मनोरंजन के कार्यों का भार तुम अपने ऊपर ले लो। हम चाहते हैं कि कल मध्याह्न तक तुम तीन दिन की इस विषय की योजना बनाकर महामात्य को दिखा दो। महाराज एक-दो दिन में समर से लौटने वाले हैं। परन्तु यह उत्सव तो सेना के यहाँ पहुँचने पर ही मनाया जाएगा। इसको लगभग दो मास लग जायँगे।

"सो कवि! यह कार्य तुम्हारे उत्तरदायित्व पर छोड़ रहा हूँ। अब तुम जा सकते हो।"

बाण चुपचाप उठकर चला गया। उसके जाने के पश्चात् महाप्रभु ने कहा, "अब पत्रलता को बुला लीजिए। चिरकाल से उसके हाथ का बना पान खाने का सौभाग्य नहीं मिला।"

महामात्य ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "महाप्रभु! उसने ताम्बूलिन का कार्य छोड दिया है। वह अब संन्यासिन् होने जा रही है।"

"सत्य! तब तो उसको बुला लीजिए। तनिक हम भी उसकी सहायता कर दें। किस चैत्य मे वह जाकर रहना चाहती है?"

महामात्य हँस पडा। हँसते हुए उसने कहा, "जहाँ तक मुझको विदित है, वह अभी बद्रीनारायण की यात्रा पर जाएगी। वहाँ से लौटकर

निर्णय करेगी कि वह कहाँ पर और किस रूप मे अपना शेष जीवन व्यतीत करना चाहती है। इस पर भी यदि भगवन् चाहे, तो उसे बुला ले। हमारा परामर्श-कार्य तो समाप्त हो गया है।"

"पत्रलता की बाते सत्य ही अत्यन्त रोचक होती हैं। उसे बुला लीजिए। कुछ समय के लिए मन बहलाव हो ही जाएगा।"

पत्रलता के आने पर महाप्रभु ने उसे बैठने का सकेत करते हुए कहा, "देवी! हमे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि तुम सन्यास लेने जा रही हो।"

"हाँ, भगवन्! परन्तु अब विचार बदल गया है।"

"ओह!" महामात्य ने आश्चर्यचकित हो पूछा, "क्या पुनः कवि के लिए प्रेम उमड आया है, जो ससार की निःसारता मे सार प्रतीत होने लगा है?"

"कवि से मेरा प्रेम तो जन्म-जन्मान्तर का है, परन्तु कवि से विवाह के लिए अभी भी रुचि उत्पन्न नहीं हुई। मै श्रीमान् से कह कर गई थी कि मैं बद्रीनारायण के लिए प्रस्थान कर रही हूँ, परन्तु अभी कुछ काल पूर्व एक घटना घटी है, जिसने मेरे जीवन की दिशा बदल दी है। मैं अभी कुछ काल तक कन्नौज मे रहना चाहती हूँ।"

"परन्तु वह कौन-सी घटना है, जिसने हमारी पुत्री-तुल्य पत्रलता को संन्यास-मार्ग से विचलित कर दिया है?" बोधिसत्त्व जी महाराज ने पूछा।

"भगवन्! उसको आप जानकर क्या करेंगे? आप तो भगवान् तथागत की पदवी तक पहुँचने वाले व्यक्ति है। आपको तो सासारिक तत्त्वो मे कुछ सार प्रतीत नहीं होता। लाखों मरते है अथवा दुखित है, इनसे आपको कोई सरोकार नही। आपके पास तो संसार की प्रत्येक विकृति का एक उपाय है। वह है, 'शान्तं पापं, शान्त पापं!' परन्तु भगवन्! जाप करने से पाप शान्त नहीं होते। प्रत्येक पाप को शान्त करने की अपनी-अपनी विधि है। आप कदाचित् उन विधियों से परि-

चित नहीं, अथवा उनके लिए साहस नहीं रखते ?"

"बहुत नाराज़ हो हमसे बेटा !"

"क्षमा करें भगवन्! आपने क्या किया है, जिससे यहाँ के रहने वाले कोटि-कोटि जन-साधारण की वेग से आ रही आँधी मे रक्षा हो सके ?"

"कहाँ है आँधी ? कैसी बाते कर रही हो तुम ?"

"एक जानकार व्यक्ति ने बताया है कि मदीना से उठी आँधी बगदाद तक आ गई है। 'अल्लाह एक है, अल्लाह महान् है' का नारा लगाकर उसने संसार की दूषित शक्तियो को संगठित कर लिया है और वे शक्तियाँ अब शीघ्र ही ससार मे वह हलचल मचाने वाली हैं, जिससे भू-तल पर अबलाओ और असहायो का वह चीत्कार मचेगा, जैसा कि आज तक कभी नही मचा।"

"महामात्य ! देवी की चिकित्सा करानी होगी। किसी ने इस पर मोहनी मंत्र फूँका है, जिससे यह बौखला उठी है।"

"प्रभु !" महामात्य ने कहा, "हमारे गुप्तचरो ने कुछ ऐसी ही सूचना दी है। मैंने लगभग दो वर्ष से गुप्तचरो का एक विदेश-विभाग खोला हुआ है। यहाँ से पडौसी देशो मे कई गुप्तचर भेजे जा चुके है। उनकी सूचना है कि अरब देश मे एक महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ है और वहाँ के लुटेरे, जो पहले परस्पर झगडा किया करते थे, एक-दूसरे की पत्नियाँ और लडकियाँ चुराया करते थे, जिनकी दिनचर्या केवल मात्र छापा डालना थी, इस महापुरुष के सम्मोहन मे एकत्रित हो रहे हैं और वह महापुरुप उन लोगो की शक्ति से ससार को विजय करने का स्वप्न देखने लगा है।"

पत्रलता को अघोरी बाबा द्वारा मायावी ढंग से दिखाई घटनाओ पर, महामात्य के कथन से कोई सन्देह नही रहा। इस विषय मे उसने और जानने के लिए पूछा, "क्या यह सत्य नहीं श्रीमान् ! कि वह महान् व्यक्ति अत्यन्त ओजस्वी है और उसने यह सगठन करने की योजना मूसाइयो से सीखी है ?"

"हाँ ! उस महानात्मा का इतिहास हमारे पास आ चुका है। वह मदीना के एक सौदागर का सेवक था। सौदागर के मरने पर उस सेवक ने उसकी पत्नी, जो उससे बीस वर्ष अधिक आयु की है, विवाह कर लिया है। इस विवाह से वह लाखो की सम्पत्ति का स्वामी बन गया है। इस सम्पत्ति के आश्रय वह जीविकोपार्जन से निश्चिन्त हो कुछ काल तक एकान्तवास कर एक नवीन पन्थ की स्थापना कर रहा है।

"अरब जैसे देश में, जहाँ किसी भी नारी के नयनो के एक कटाक्ष पर सैकडो का रक्त बहाया जा सकता है, एक सगठन का निर्माण सत्य ही भयकर बात हो जायगी। जनता के चरित्र को सुधारे बिना, उसमे सगठन करना एक महान् भय की वस्तु हो जाती है। जैसे एक चोर उतनी हानि नहीं पहुँचा सकता, जितनी डाकुओ का एक सगठित दल। इसी प्रकार चरित्रहीन जनता का संगठन भी संसार मे अति भय की बात माननी चाहिए।

"राजनीतिक विस्तार बिना मानसिक तथा आत्मिक उत्थान के एक भयकर परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है।"

"तो देवी की सूचना सत्य है ?" बोधिसत्त्व जी का प्रश्न था।

"हाँ भगवन् ! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे किसी गुप्तचर से देवी की भेंट हो गई है और उसने देवी को कोई भयकर बात कहकर डरा दिया है।"

पत्रलता ने कहा, "श्रीमन् ! मुझको आपके किसी गुप्तचर से इन बातो का पता नहीं मिला। एक सिद्ध योगी ने मुझे वहाँ हो रही घटनाओ का वास्तविक चित्र दिखाया है। साथ ही इस नवीन आन्दोलन से आज से चालीस-पचास वर्ष पश्चात् मिश्र, रूस, बगदाद, ईरान मे क्या-क्या होने वाला है, उसका दिग्दर्शन कराया है।"

"क्या दर्शन कराया है ?"

"उस महापुरुष के प्रयत्न से पन्थ और राजनीति का एक भयानक मिश्रण होने वाला है। कही यह सम्मिश्रण उन्नत होने लगा तो संसार

में वह उथल-पुथल मचेगी, जिसकी उदाहरण वह स्वयं ही होगी ।

"यह शाश्वत सत्य है कि परमात्मा एक है, वह पूर्ण चराचर का स्वामी है और उसकी तुलना कोई नही कर सकता । यह विचार एक पुष्करिणी मे एक पत्थर के समान फेका गया है । उस पत्थर ने पुष्करिणी में तरगें उत्पन्न कर दी हैं । परन्तु सच्चाई तो पत्थर के समान जल की सतह मे डूब गई है और अब केवल तरंगे रह गई हैं । इन तरंगों से दूषित जल के अवगुण, जहाँ-जहाँ तरगे जाएँगी, वहाँ-वहाँ पहुँच जायँगे । सच्चाई, जो अरब रूपी पुष्करिणी मे पत्थर की भाँति डूब गई है, वह तो वहाँ ही रह गई, परन्तु उसके बल से तरंगित जल इधर को चला आ रहा है ।

"अरब देशो मे विरोधियो की बहू-बेटियो को दासियाँ बना लेने की प्रथा तो गई नहीं, हाँ विरोधी के लक्षण बदल गए हैं । पहले कबीले परस्पर शत्रुता भाव रखते थे और विरोधी माने जाते थे । अब दूसरे धर्म वाले विरोधी माने जाने लगे हैं । इस भावना के साथ एक और भावना उत्पन्न हो गई है । विरोधियो से लड़ते-लडते मर जाने से जन्नत अर्थात् स्वर्ग प्राप्त होगा, जहाँ मद्य और हूरे, अंगूर और पलाओ मिलेगा । इसके विपरीत विरोधियो पर विजय प्राप्त कर लेने वाला दीनदार विरोधी का धन और उसकी बहू-बेटियों का मालिक हो जायगा ।

"यह एक ऐसी भयकर मीमासा है, जिसके मानने वाले के यहाँ आ जाने से देश मे त्राहि-त्राहि मच जाएगी ।

"श्रीमान् ! केवल यही नहीं प्रत्युत् उस सिद्धात्मा ने यह भी दिखाया है कि इस प्रकार के प्रलोभन से प्रेरित कोटि-कोटि जनो से सयुक्त सेना इस भारत-खण्ड की सीमाओ को तोड़-फोड यहाँ घुस आएगी और यहाँ की जनता, जो शान्ति-शान्ति के अहिफेन खाकर मस्त हो रही होगी, अपनी धन-सम्पदा को, अपनी बहू-बेटियों को, अपनी चिर-सचित ज्ञान-विज्ञान की उन्नति को और सहस्रों वर्षों से अनुभूत सस्कृति को खोकर हाथ मलती रह जाएगी ।"

"तो उस महात्मा ने यह नहीं बताया कि इस दुर्भाग्य से बचने का उपाय क्या है ?" महाप्रभु ने पूछा ।

"बताया है । उसने बताया है कि झूठी शान्ति के प्रचार का परित्याग करो । शान्ति वह है जो 'परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय चदुष्कृताम्' मे सहायक हो । इसी शान्ति की स्थापना के लिए देवताओ का सगठन करो और असुरो का विघटन करो ।"

महाप्रभु विस्मय मे पत्रलता को देख रहा था। महामात्य देख रहा था कि बताते समय पत्रलता का मुख विशेष ओज से चमकने लगा है ।

महाप्रभु ने सन्देह-निवारणार्थ पूछा, "परन्तु देवी ! साधु कौन है और दुष्कृत्य करने वाला कौन है ? उस महा पुरुप के अनुयायी तो यह समझते होंगे कि वे ही स्वयं साधु हैं और जो उस महान् पुरुष को अपना पथ-प्रदर्शक नहीं मानते वे असुर है । अतः जो वे करते हैं, वह भी तुम्हारे सिद्धान्तानुसार पुण्य ही कर रहे हैं । वे भी, परित्राणाय साधुनाम् कर रहे हैं ।"

पत्रलता मुस्कराकर बोली, "भगवन् ! आपके लिए यह युक्ति अकाट्य है । कारण यह कि आपने कभी दर्शन-शास्त्र का अध्ययन नहीं किया । साधु-असाधु मे भेद की चिन्ता आपको नहीं होती ।

"साधु वह है, जो प्राणी-मात्र मे कल्याण के लिए यत्नशील है । अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का अहित करने वाला असाधु होता है । जब कोई राजा अथवा सैनिक समर पर इस कारण चढता है कि उस समर से उसकी धन-सम्पदा में वृद्धि होगी अथवा वह दूसरों की लडकियो का भोग करेगा, तो वह असाधु है । ऐसी प्रेरणा देने वाला साधु नहीं हो सकता । ऐसे का विनाश ही शान्ति-स्थापना मे सहायक हो सकता है ।

"देखिए भगवन् ! महाराज हर्षवर्द्धन गए थे भारत की सीमाओ को सुरक्षित करने, परन्तु सामयिक शान्ति के लोभ मे प्रमथम के शूद्राधिपति से कुछ स्वर्ण के टुकड़े, कर के रूप में, लेकर वापिस चले आए । उस शूद्र बौद्ध सामन्त ने महाराज से सन्धि की, परन्तु उसी समय अपने

दूत ईरान में इस कारण भेज दिए कि वह वहाँ की शक्ति से अपने को सबल बनाना चाहता था।"

"तो यह भी सिद्ध महात्मा ने तुम्हें बताया है?"

"चिन्ता इस बात से नहीं मिट जाती कि एक द्रोही मित्र हमारे विरुद्ध दूसरे से सहायता पाने मे असमर्थ हुआ है। चिन्ता का कारण यह है कि जिसको हम साधु समझ अपना हितैपी मानते हैं, वह वास्तव में असाधु है। वह हमको धोखा दे रहा है और उसको हमारी पीठ मे छुरा घोपने की सामर्थ्य देने वाले भी हम ही हैं।"

"पर हो ही क्या सकता है? कैसे पता चले कि जो व्यक्ति हमारी मैत्री का दम भरता है, वह मन मे कुछ अन्य विचार भी कर रहा है?"

"फिर वही बात भगवन्! ज्ञान-प्राप्ति के लिए कुछ नियम हैं। आपने उन नियमो का पालन किया नही, इस कारण आप साधु-असाधु मे, मित्र-अमित्र मे, विश्वस्त-अविश्वासी मे भेद नही समझ पा रहे।

"महाराज हर्पवर्द्धन के साथ रहने वाले सम्मतिदाता का यह कार्य था कि वह इसे जाने। जो कुछ वर्प तक के भविष्य की बात का अनुमान नही लगा सकता, वह एक शक्तिशाली महाराज का परामर्शदाता कैसे हो सकता है।"

: ६ :

"पत्रलता!" महाप्रभु ने कहा, "मैं समझता हूँ कि तुमको स्वयं अपने पान खाने की आवश्यकता पड गई है, अन्यथा तुम इतनी उत्तेजना मे बात नहीं करतीं। बिना उस व्यक्ति की बात सुने, जिसने महाराज को प्रमथम के सामन्त से मैत्री करने की सम्मति दी है, उस पर आलोचना करना तो अशान्त मन की बात ही कही जा सकती है।

"अब देवी पान नहीं बनातीं क्या?"

"बनाने छोड़ दिए थे, परन्तु अब पुनः आरम्भ करने वाली हूँ।

सिद्ध योगी महाराज की आज्ञा हुई है कि मेरा कार्य कर्मभूमि छोड़ तुषार-शैलों पर जाकर गल जाना नही, प्रत्युत् इस ससार मे रहते हुए, इसको उचित मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करना है। उनका कहना है कि इस प्रकार ही मे ऋषि ऋण से मुक्त हो सकती हूं।"

"भला कन्नौज के चौक मे ताम्बूलिन की दुकान पर बैठ यहाँ के रसिक युवको को पान खिलाते हुए तुम ससार का उद्धार कर रही अनुभव करोगी? यह बात तो समझ मे नही आई, देवी!"

"भगवन्! जब महाप्रभु उज्जयिनी मे बैठे देवगुप्त के महामात्य का आतिथ्य ग्रहण कर रहे थे तो पत्रलता कन्नौज के चौक में बैठी, युवको को पान खिलाती हुई, इस कन्नौज के उद्धार में सफल यत्न कर रही थी। इस कथा को वासुदेव के मन्दिर के पुजारी विष्णुकान्त ही बता सकते हैं अथवा वे युवक जानते हैं, जो पान खाते-खाते देश के लिए लड़ मरने पर तैयार हो गए थे। आपकी नीति असफल रही थी और आप निराश हो अपने चैत्य मे छुपकर जा बैठे थे। उस समय कन्नौज के रसिको को पान खिलाने वाली इस ताम्बूलिन ने जो-कुछ किया था, वह आपको पता नहीं चल सकता। कुछ-कुछ भास आपकी शिष्या इन्द्रजालिक को हुआ था, जब वह अपने षड्यन्त्र में सफल न हो सकी और अपनी जान बचाकर यहाँ से भाग गई थी।"

महाप्रभु उस काल के काले इतिहास में अपने भाग को समझ लज्जित हुआ, परन्तु अपनी बात पर हठ करते हुए कहने लगा, "देवी! वह सब उत्पात तुम्हारे जैसे विचारों को मानने वाले देवगुप्त और शशाक के कारण हुआ था। मैने उस उत्पात को शान्त करने के लिए यत्न किया, परन्तु आसुरी प्रवृत्तियाँ अधिक बलशाली थी और सुमति उन तक नहीं पहुँच सकी। अब तुम भी वही कुछ कर रही हो, जो शशाक और देवगुप्त कर रहे थे।"

पत्रलता के मस्तक पर त्यौरी चढ गई। महामात्य ने यह देख लिया और विवाद को समाप्त करने के लिए कहा, "भगवन्! इस समय तो

मुझे राज्य-कार्यालय जाना है। देवी पत्रलता से इस विषय पर पुनः किसी दिन विचार करेंगे। अब मुझे स्वीकृति दीजिए। एक बात का तो मुझे सन्तोष है कि देवी पत्रलता के हाथ का बना पान खाने का सौभाग्य अभी बना रहेगा। देवी! कब से यह कार्य आरम्भ कर रही हो?"

"मेरी पान की डोली आचार्य जी के गृह पर रखी है। यहाँ से उधर ही जाने का विचार है। वह निकलवाऊँगी और पश्चात् महाप्रभु जी की सेवा में शीघ्रातिशीघ्र पान समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त करने का यत्न करूँगी।"

महाप्रभु ने प्रसन्न होकर कहा, "मैं देवी की बातों से रुष्ट नहीं हूँ। मैं तो इनसे लाभ उठाता हूँ। यदि देवी कल मध्याह्न के समय महामात्य जी के गृह पर पधारें तो मै पान खाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँगा।"

महाप्रभु के जाने के पश्चात् महामात्य ने कहा, "पत्रलता! तुम्हारे संन्यास न लेने के निर्णय से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। जब से मुझे तुम्हारे साथ अपथे सम्बन्ध का ज्ञान हुआ है, मै तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्य को समझता हूँ। इस कारण तुम्हें अपने समीप देख अपने कर्तव्य-पालन में सुगमता पाता हूँ।

"इसी कारण मैं यह कहूँगा कि तुमको चौक में पान बेचने की आवश्यकता नहीं। जो-कुछ तुम करना चाहती हो, उसका प्रबन्ध अन्य प्रकार से भी हो जायगा।

"तुम विरोचना देवी से मिल लो। वह तुमको एक अति शुभ समाचार सुनाएगी।"

"सुन आई हूँ। बहिन अलकनन्दा का विवाह आचार्य वाराहमित्र के सुपुत्र श्री यज्ञशातसे हो रहा है। मुझको इससे बहुत प्रसन्नता है, यद्यपि यज्ञशात विवाह के पश्चात् काश्मीर चले जाना चाहते हैं, तो भी यह संयोग अच्छा ही है।"

"तुम काश्मीर जाना पसन्द नहीं करतीं क्या?"

"नहीं। कारण स्पष्ट है कि वहाँ का राजा अभी भी हूण है और

वह मलेच्छ है। मलेच्छ के राज्य में रहकर सुख की आशा बहुत क्षीण है।"

"परन्तु इस समय तो दक्षिण के चालुक्य-राज्य के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा राज्य नहीं, जिसको हम आर्य-राज्य कह सके। वह राज्य भी सुसंस्कृत है, कहना कठिन है।"

"यूँ तो पृथ्वी-भर मे कोई राज्य आदर्श रूप मे होगा, ऐसी सम्भावना नहीं। इस पर भी न्यूनाधिक मात्रा का विचार करना ही होगा। काश्मीर मे एक भद्र परिवार का रहना सम्भव नहीं। पिछला राजा बौद्ध था। उसने बलपूर्वक जनता को बौद्ध धर्म स्वीकार कराना चाहा। परिणाम यह हुआ कि अबौद्धो ने बौद्धो में हत्याकाण्ड रचा दिया। पश्चात् वहाँ अबौद्ध हूण राजा हुआ है। महाराज हर्ष ने उसके राज्यारोहण मे सहायता दी है और इसके राज्याभिषेक के समय उसको आशीर्वाद दिया है। परन्तु सुना है कि वह चीन के सम्राट् को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दे रहा है।"

"पत्रलता! तुम्हे ये सब बाते कौन बता जाता है?"

"यह सब मुझको पान खाने वाले बता जाते हैं। कदाचित् आपके गुप्तचरो के मुख से निकली बातें उन तक पहुँच जाती है।"

महामात्य पत्रलता के यह सब चित्रण करने पर गम्भीर विचार में पड गया। पश्चात् उसने एक लम्बी साँस खींचकर कहा, "पिछले छः वर्षों का यह युद्ध-प्रयास सर्वथा विफल गया है। परन्तु हम कर क्या सकते थे! मै देश की आन्तरिक स्थिति को ठीक रखने के कारण महाराज के साथ नहीं जा सका। हमारे सन्धि-विग्रहकर्ता आमात्य सोमभद्र भी इसमें कितने दोषी है, कहा नहीं जा सकता। हम अभी भी इतने अरक्षित हैं, जितने इस समर से पहिले थे।"

"ठीक है, इसमे इक्का-दुक्का व्यक्ति

में राज्याधिकार जब अयोग्य व्यक्तियों

स्थिति उत्पन्न होती है। राज्य पर

उज्ज्वल कर दिया गया था। नगर के उत्तरी द्वार से लेकर राज्य-प्रासाद के द्वार तक सैकड़ों विजय-द्वार खड़े किये गए थे, जिन पर गोटा-किनारी और मणि-माणिक्य से सजावट की गई थी।

पूर्ण नगर में दीपावली का आयोजन था। नगर के एक सहस्र से अधिक नागरिकों द्वारा, महाराज की विजयी सेना का नगर-द्वार पर स्वागत का प्रबन्ध था। मार्ग में स्थान-स्थान पर भी नागरिकों द्वारा महाराज और सेना के स्वागत का प्रबन्ध किया गया था।

तीन दिन तक राज्य की ओर से पूर्ण जनता को भोजन का निमंत्रण था। मुहल्ले-मुहल्ले में हलवाई बैठा दिये गए थे, जो पूरी-मिठाई और साग भाजी बिना मूल्य के वितरण करने लगे थे।

पत्रलता ने चौक से दुकान उठा ली थी और अब वह केवल महानन्द, महाराज हर्ष और महाप्रभु तथा बाणभट्ट को ही पान देने जाया करती थी। उन स्थानों के लिए पान देने का समय निश्चित था और वह कार्य उसका मध्याह्न तक समाप्त हो जाता था। महारानी मृणालिनी की एक दासी आचार्य जी के गृह पर आकर महारानी के लिए उससे पान ले जाया करती थी। नित्य मध्याह्नोत्तर वह महामात्य के निवास-गृह में विरोचना देवी के दर्शन के लिए जा पहुँचती थी। वहाँ अलकनन्दा के विवाह की तैयारियाँ अति वेग से चल रही थीं।

इस तैयारी में अलकनन्दा भी अति व्यस्त थी। वह अपने भावी कर्पटिक की कल्पना करती रहती थी। इस कल्पना से उसकी चित्रकला शिथिल पड़ रही थी। उसके रंगों के पात्र और तूलिकाओं पर धूल जम रही थी।

पत्रलता आती तो वह भी अपनी कल्पनाओं के क्षेत्र से निकल वास्तविकता में आकर विचरने लगती। बहुत बातें होतीं।

आचार्य जी का सुपुत्र यज्ञदत्त श्रीनगर में गुरुजी के पास शिक्षा ग्रहण करने गया हुआ था। वहाँ से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वह अपने माता-पिता से मिलने जब कन्नौज आया तो यहाँ उसे एक दिन महा-

मात्य ने अपने गृह पर निमंत्रण दिया था। वहाँ उसका अलकनन्दा से साक्षात्कार हुआ था और पश्चात् परस्पर विवाह निश्चित हो गया था।

विवाह की तिथि विजयोत्सव समाप्त होने के दो दिन पीछे रखी गई। महामात्य तब तक उत्सव के प्रबन्ध से मुक्त हो जाना चाहता था। यज्ञशात का विचार श्रीनगर मे मार्कण्डेय ऋषि के पुण्य आश्रम पर विद्यालय चलाने का था। वास्तव मे वह आचार्य जी से इसी विषय पर सम्मति और आशीर्वाद लेने आया था कि यहाँ विवाह-बन्धन मे बँध जाने का यह संयोग हो गया।

इस सम्बन्ध से दोनों परिवार प्रसन्न थे ही। साथ ही वर-वधू भी इस सम्बन्ध के सम्पन्न होने से आनन्द-विभोर हो रहे थे। दूसरे-तीसरे दिन यज्ञशात अपनी भावी पत्नी से मिल काश्मीर के विषय मे अपनी योजना पर विचार-विनिमय कर जाया करता था।

आज पत्रलता आई तो यज्ञशात अलकनन्दा के आगार मे बैठा ऐसे ही स्वप्नो का ताना-बाना चला रहा था। पत्रलता इनको इस प्रकार बातचीत करते देख विरोचना देवी के आगार की ओर चल पडी; परन्तु उसको अलकनन्दा ने देख लिया। इस कारण उसने आवाज दे दी, "दीदी! दीदी!! कहाँ भागी जा रही हो?"

पत्रलता लौट आई और अन्दर आकर कहने लगी, "मैने विचार किया था कि क्यो आपकी मधुर वार्तालाप में विघ्न डालूँ। सो माताजी के पास जा रही थी।"

"पत्रलता बहिन!" यज्ञशात ने कहा, "हम तुम्हारे विषय में ही विचार कर रहे थे।"

"क्या विचार कर रहे थे?"

"यही कि तुम्हें निमन्त्रण दे कि तुम हमारे साथ काश्मीर चलो। कदाचित् वहाँ कोई ऐसा माली मिल जाए, जो पत्रलता को सींचकर, इसको फल-फूलो से भर सके।"

पत्रलता हँस पड़ी। उसने उनके सम्मुख बैठते हुए कहा, "क्या

अपने फलने-फूलने का प्रबन्ध कर लिया है, जो यह सौभाग्य दूसरो को बॉटना आरम्भ कर दिया है ?"

"हमारा प्रबन्ध तो भगवान् ने कर ही दिया मालूम होता है।"

"और मेरे लिए भी भगवान् कर देगा, जब उसकी रुचि होगी। भैया यज्ञशात ! मैं आऊँगी, परन्तु अभी नहीं। पहिले मेरी छोटी बहिन की बेल हरी-भरी हो ले।"

"यह तो बहुत बडी शर्त है।" अलकनन्दा ने लजाते हुए कहा, "विशेष रूप से बडी बहिन की बेल को रुण्ड-मुण्ड देख तो छोटी बहिन की बेल फूलेगी, इसमे सन्देह ही है।"

"फूलेगी अवश्य। क्या भगवान् पर लाछन लगाते हुए कि उसका आयोजन निरर्थक होने वाला है, लज्जा नही लगती ? देखो अलकनन्दा ! मुझको कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं इस जन्म मे फलूँगी नहीं। इस कारण मेरी जैसी लता के साए मे तो लगी बेल भी फलने से रह जाएगी।

"अच्छा बताओ, पत्र कैसे भेजा करोगी ?"

"पिताजी को लिखा करूँगी और उसके साथ माताजी को और तुमको भी लिखूँगी।"

"जब तुम्हारा पत्र आएगा कि तुम्हारी गोद हरी-भरी हो जायेगी, तो मैं अमरनाथ की यात्रा पर आऊँगी।"

"वचन रहा ?"

"हाँ।"

इस समय विरोचना देवी की दासी राज्य-प्रासाद की एक दासी को लेकर उनके आगार मे आ गई। सब प्रश्न-भरी दृष्टि से उसको देखने लगे, तो विरोचना की दासी ने कहा, "यह राज्य-प्रासाद से आई है और देवी पत्रलता से मिलना चाहती है।"

"आओ, क्या नाम है ?" पत्रलता ने पूछा, "मैंने तुमको वहाँ पहिले कभी नहीं देखा ?"

"हम वहाँ नये आए हैं।"

"हम ? क्या अर्थ है तुम्हारा ?"

"मै हूँ और मेरे साथ अन्य चार दासियाँ हैं और......।"

इसके पश्चात् वह चुप कर गई।

"और कौन ?" पत्रलता ने पूछा।

"आपमे देवी पत्रलता कौन हैं ?" उस दासी ने पूछा।

"मैं हूँ।"

"तो आपसे पृथक् बात करूँगी।"

पत्रलता उसको साथ लेकर आगार के बाहर आ गई। आगार के बाहर प्रागण मे खुले स्थान पर खडे हो, जहाँ कोई सुन न सके, दासी ने धीरे से कहा, "मैं देवपुत्र तुवर की दासी हूँ। भाग्यवश मैं और सामन्त देवपुत्र की कन्या राजकुमारी मलिन्द महाराज हर्षवर्द्धन के राज्य-प्रासाद में आ पहुँचे हैं। मलिन्द आपको स्मरण करती है। इससे अधिक मुझे इस समय आपको बताने की स्वीकृति नहीं।"

"कब मिलना चाहती हैं ?"

"यदि देवी जी को कुछ विशेष असुविधा न हो तो इसी समय।"

पत्रलता कुछ समय तक विचार करती रही। पश्चात् बोली, "चलो, मैं इन लोगो से विदा ले लूँ, तब चलेंगे।"

चौथाई घडी मे ही पत्रलता उस दासी के साथ राज्य-प्रासाद जा पहुँची। पत्रलता के लिए राज्य-प्रासाद कोई नवीन स्थान नहीं था। यद्यपि महाराज हर्षवर्द्धन के, बहुत काल के पश्चात् समर से लौटने के उपलक्ष मैं विशेष सफाई और सजावट की गई थी, परन्तु राज्य-प्रासाद मे कुछ परिवर्तन, परिवर्द्धन, परिशोधन नहीं हुआ था।

दासी पत्रलता को राज्य-प्रासाद के उस कक्ष मे ले गई, जहाँ कभी शशांक को देवगुप्त ने ठहराया था। पत्रलता ने समझा कि कदाचित् यह लोग भी वहीं ठहरे हुए हैं। परन्तु वह समझ नहीं सकी कि मलिन्द तथा उसकी दासियाँ वन्दी रूप में हैं अथवा स्वतन्त्र रूप मे। यदि वन्दी

हैं तो दासी इतनी स्वतन्त्र क्यो है? शशांक के काल मे इस कक्ष मे आने मे अत्यन्त कठिनाई पडती थी। अब तो कोई बाधा नहीं थी।

एक छोटे-से द्वार मे से प्रासाद मे प्रवेश कर एक सँकरे मार्ग मे से चलते हुए और कई प्रागणो को, जिनमे चाय-चेटियाँ (स्त्री निरीक्षकाएँ) बैठी हुई पहरा दे रही थी, को पार कर ये सीढियो पर चढ़ने लगीं। उन सीढियो पर भी चाय-चेटियाँ पहरा दे रही थी। उन सबको वहाँ बैठे देख पत्रलता को विश्वास हो गया कि हर्षवर्द्धन देवगुप्त से अधिक चतुर पुरुष है। देवगुप्त ने जो प्रहरी बैठाये हुए थे, वे प्रायः पुरुष और अस्त्र-शस्त्र-धारी थे। अब प्रायः स्त्रियाँ थी और बिना अस्त्र-शस्त्र के थी। वे सब ध्यानपूर्वक पत्रलता को देखती थीं और मुस्कराकर एक ओर हट मार्ग छोड देती थी। पत्रलता को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ था कि या तो ये स्त्रियाँ किसी बन्दीगृह की रक्षिका नही, अन्यथा ये अति चतुर हैं और किसी प्रकार से भी बन्दीगृह की निरीक्षिका होने का सन्देह नहीं होने देना चाहती।

इस प्रकार विचार करती हुई वह दासी के साथ ऊपर चढ, एक अति विशाल आगार मे जा पहुँची। यह वह आगार था, जहाँ राज्य-वर्द्धन और देवगुप्त मे द्वन्द्व-युद्ध हुआ था। आज इस आगार मे चाय-चेटियाँ स्थान-स्थान पर खडी परस्पर बातचीत कर रही थीं। पत्रलता को जाते सबने देखा, किसी ने सामने से और किसी ने घूमकर। उसको देख सब मुस्करा उठती थी। पत्रलता इस मुस्कराहट का अर्थ समझ नही सकी थी।

इस विशाल आगार को लाघकर ये एक छोटे-से आगार मे, जो किसी अन्य आगार की ड्योढी मात्र ही कहा जा सकता था, पहुँच गई।

जिस द्वार से वे आई थीं, उसके सामने एक अन्य द्वार था। वह बन्द था, परन्तु उसके अन्दर से वीणा की झंकार आ रही थी—टुं.... टुं.. टुं। वीणा बज रही थी। पत्रलता के साथ आई दासी ने कह दिया, "आपको यहाँ कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी पडेगी।"

इस आगार में चाय-चेटियाँ नहीं थीं। दासी के संकेत से पत्रलता एक चौकी पर बैठ गई। दासी उसके समीप ही खड़ी रही।

: ८ :

सामने के आगार से वीणा के मधुर स्वर झंकार कर रहे थे। पत्र-लता ध्यान से सुनने लगी। स्वर थे—स-निध नि प म प नि प नि स। स रे मग् ग् म म प नि प मग् ग् म रे स।

इन स्वरों के साथ कोई गाता सुनाई देने लगा। वह गा रही थी—

'आ.....अ.....आ।'

अब साथ ही पाठ भी आरम्भ हो गया।

'ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महा वराह स्फुट पद्मलोचनाः
रसातला दुत्पल-पत्र सन्निभिः समुत्थितो नील इवाचलो महान्
इह पढमं महु यासो जणस्य ही अ आ इं कुणई मिवुलाई
पच्चा विढई कायो लद्धय्य सदेहि कुसम बाणे हि
जलौ मग्ना सचरा चरा धरा विषाण कोट्या खिल विश्व पूर्तिना
समुद्धृतायेन वराह रूपिणा समे स्वयंभू भगवान् प्रसीदतु॥
वराह महाप्रभु तारन हारो देवन देव सदा शरण तिहारो
सचराचरा धरा सागर तल से, दिव्य पराक्रम से पार निकारो,
मैं पापिन भारी दीन हीन हूँ, भवसागर से अब पार उतारो॥'

पत्रलता को इन स्वरों ने और इस वाणी मे अधीरता और व्यग्रता प्रतीत हुई। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो कोई वियोगिनी अपने प्रियतम से दूर होने के कारण आतुरता मे यह वियोग-गीत गा रही है।

कितने ही समय तक यह संगीत चलता रहा। स्वरों में सहानुभूति उत्पन्न करने की शक्ति थी और पत्रलता के आँसू अनायास ही उसकी गालों पर टपकने लगे। इस पर भी वह संज्ञाहीन, अपने गिरते आँसुओं से सर्वथा अनभिज्ञ उस संगीत-प्रवाह को सुन रही थी।

संगीत समाप्त हुआ। पत्रलता को चेतनता हुई। उसको समझ आने लगा कि वह कहाँ बैठी है। अभी वह अपने कपोलों से अश्रु पोछ ही रही थी कि वही दासी आई और पत्रलता को अश्रु बहाते देख विस्मय में उसके सामने खड़ी रह गई। पत्रलता आँचल से आँसू पोछ रही थी और उसकी आँखें लाल हो रही थीं।

दासी ने पूछा, "देवी! क्या बात है?"

"कुछ नहीं।" इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई। दासी ने कहा, "राजकुमारी पूजा कर चुकी हैं। चलिए।"

पत्रलता उसके साथ आगार के भीतर चली गई। एक चौकी पर महावाराह की मूर्ति रखी थी। उसके आगे धूप और दीया जल रहा था। पूजा की चौकी के सामने भूमि पर राजकुमारी, जो सोलह-सत्रह वर्ष की प्रतीत होती थी, गम्भीर-मुख बैठी भगवान् के चरणों मे देख रही थी।

पत्रलता उसके पीछे आकर खड़ी हो गई। उस राजकुमारी ने पीछे किसी के आकर खड़े होने की आहट सुनी तो दोनों हाथ जोड़ भगवान् के सम्मुख शीष नवा दिया। पश्चात् वह उठी और घूमकर पत्रलता की ओर देखने लगी। पत्रलता राजकुमारी का सौंदर्य देख चकित रह गई। वह अद्वितीय सुन्दरी थी। इसके साथ ही उसकी शोक-मुद्रा उसके सौन्दर्य को और भी बढ़ा रही थी। कितनी ही देर तक उसकी रसीली मद-भरी आँखों की ओर देखती हुई पत्रलता चुपचाप खड़ी रही। पत्रलता को शान्त खड़े देख राजकुमारी ने कहा, "बैठो, बहिन! तुम आई हो, इससे मेरे इस मुर्झाए हृदय मे पुनः आशा का अंकुर जमने लगा है। बैठो।"

वह स्वयं बैठी तो पत्रलता भी उसके सम्मुख भूमि पर बैठ गई। इस पर उसने पूछा, "मेरा परिचय मिला है?"

"हाँ, राजकुमारी जी! श्रीमान् देवपुत्र तुवर की सुपुत्री राजकुमारी मलिन्द के दर्शन करने का सौभाग्य मिल रहा है।"

"ठीक, और मैं कन्नौज की सुविख्यात ताम्बूलिन देवी पत्रलता को अपने सामने देख रही हूँ। ठीक है न?"

"आपका अनुमान ठीक है, राजकुमारी! किसलिए स्मरण किया है मुझे?"

"तुमने देखा है कि मैं किस परिस्थिति मे हूँ।"

"देखा तो है, परन्तु मुझे इसमे कुछ विशेषता का भास नहीं हुआ। राजकुमारियाँ राजाओं के गृहो को सुशोभित करती ही हैं।"

"परन्तु क्या कन्नौज में राजकुमारियो की रक्षा के लिए पाँच-पाँच सौ चाय-चेटियाँ नियुक्त रहती हैं और क्या राजकुमारियाँ कहीं घूमने जायँ, तो इन चाय-चेटियो की एक सेना उनके आगे-पीछे रहती है?"

"ऐसा होना राजकुमारी जी! अति सम्मान का सूचक माना जाता है।"

"पर क्या इस आर्यावर्त देश मे," राजकुमारी ने माथे पर त्यौरी चढाकर कहा, "किसी स्त्री को उसकी इच्छा के बिना बाँधकर रखा जाता है?"

"पर राजकुमारी! क्या किसी ने आपको यहाँ बाँधा हुआ है? बन्धन तो दिखाई नहीं पड रहे।"

"यह दिखाई इस कारण नहीं दे रहे कि ये अति सूक्ष्म, परन्तु अति सुदृढ हैं। साधारण दृष्टि वाले को दिखाई नही देते। इस पर भी यह टूटते नहीं।"

"अच्छी बात है। यदि राजकुमारी जी इन सूक्ष्म बन्धनो को अनुभव करती है, तो वास्तव मे ही चिन्ता की बात है। मुझको यह स्वीकार करना ही होगा कि राजकुमारी कन्नौज के राज्य-प्रासाद मे एक बन्दी के रूप मे रखी हुई हैं। मै क्या कर सकती हूँ? क्या आज्ञा है इस ताम्बूलिन के लिए?"

राजकुमारी इस रुक्ष वार्तालाप से भौचक्की हो कुछ देर तक पत्रलता को देखती रही। पीछे उसको समझ आया कि दोनो की वार्ता समीप खड़ी दासी सुन रही है और कदाचित् इस कारण पत्रलता खुल नहीं रही। इस कारण उसने दासी को संकेत किया और दासी आगार से

वाहर चली गई। इस पर पत्रलता ने राजकुमारी के निकट होकर धीरे से फुसफुसाकर पूछा, "तो क्या राजकुमारी मुझसे कोई गुप्त वार्ता करना चाहती हैं?"

"हाँ।" राजकुमारी ने भयभीत होकर कहा।

"तब तो यह स्थान ठीक नहीं।" पत्रलता ने उसी प्रकार धीमे स्वर मे कहा।

"क्यों?"

"यह स्थान न तो गुप्त है और न ही सुनने का यत्न करने वालों से सुनाई देने के अन्तर से दूर है।"

"क्या कहती हैं, देवी पत्रलता?"

"मैं सत्य कहती हूँ। मुझको विश्वास है कि आपकी प्रत्येक वात यहाँ से किसी-न-किसी प्रकार सुनी जाकर महाराज के कानो तक पहुँच जाती है।"

"तो?"

"यह आपका प्रयास विफल जायगा।"

"अच्छी वात है, मैं कोई ऐसा स्थान ढूँढूँगी, जहाँ मै पृथक् वात-चीत कर सकूँ।"

"देखिए, आप एक गीत और गा दीजिए।"

"क्यो?"

"इस कारण कि मुझे आपसे पुनः मिलने का अवसर मिल जाया करेगा।"

"परन्तु मै कोई संगीतज्ञ नहीं हूँ।"

"परन्तु आप संगीत की विद्यार्थिनी तो हैं। मै आपके संगीत की समालोचक वन सकती हूँ।"

राजकुमारी इसका अर्थ समझने के लिए पत्रलता का मुख देखने लगी। पश्चात् उसने कुछ विचार कर वीणा हाथ मे उठा ली और उसे झंकार देकर एक गीत गाने लगी। उसने एक धुन छोड़ दी।

'स ग ध् म पध् म ग् रे स । स नि ध् नि स ।'

अब उसने गाने के बोल आरम्भ कर दिए।

'टेर टेर रसना थकी हारी
बिनती करूँ गिरिधारी ॥
मन मन्दिर में आन विराजो
सदा रहूँ बलिहारी, टेर-टेर रसना थकी हारी ॥
इस पतिता के इस मानस को
अब उभारो, व्रज बिहारी ॥'

सगीत के साथ-साथ तानालाप भी चलता रहा।

पत्रलता बीच-बीच मे प्रशंसात्मक शब्द कहती जाती थी। एक-आध बार उसने राजकुमारी के आलाप-सशोधनार्थ स्वय आलाप कर दिखा दिया।

इस प्रकार दो घडी तक यह सगीत चलता रहा। पश्चात् पत्रलता ने कान के समीप मुख कर कहा, "राजकुमारी संगीत-समालोचना चाहती हैं और मेरे पान खाने की इच्छुक हैं। मैं संगीत की समालोचना करने और पान बेचने वाली हूँ।"

इतना कह पत्रलता उठ खडी हुई और उच्च स्वर से कहने लगी, "मैं कल पुनः पान लेकर आऊँगी।"

इस पर राजकुमारी ने ताली वजाई। दो दासियाँ भीतर आ गई तो राजकुमारी ने कहा, "देखो देवी पत्रलता को छोड आओ और कल इसी समय इन्हे पुनः ले आना।"

पश्चात् उसने पत्रलता को सम्बोधन कर कहा, "देवी पत्रलता! मैं तुम्हारी वहुत ही कृतज्ञ हूँ। यदि तुम नित्य पान लेकर आ सको तो मैं तुम्हारी वहुत ही कृपा मानूँगी।"

"यत्न करूँगी राजकुमारी!"

इतना कह पत्रलता उस दासी के साथ, जो उसे लेकर आई थी, वाहर चली गई। वाहर जाते समय जो उसने विशेप वात देखी, वह यह

थी कि इस समय चाय-चेटियो के मुख गम्भीर थे। पत्रलता इस पर विचार करती हुई राज्य-प्रासाद से बाहर निकल गई।

: ६ :

चाय-चेटियों के गम्भीर मुखो का उसे अर्थ तब समझ आया, जब अपने गृह पर जाकर उसे बताया गया कि उसे महाराज ने बुलाया है।

पत्रलता गृह पर पहुँची तो उसे यज्ञशात मिला। गृह पर उसके विवाह की धूम-धाम से तैयरियाँ चल रही थी। यज्ञशात भी प्रबन्ध मे लगा हुआ था। पत्रलता को आया देख वह अपना कार्य छोड उसके पास आया और कहने लगा, "क्या कार्य था बहिन पत्रलता को राज्य-प्रासाद में ?"

"वहाँ एक अतिथि आये हुए हैं। उनको मेरे पान खाने की आवश्यकता थी।"

"बहुत विचित्र है।" यज्ञशात ने कहा, "न जाने कन्नौज वालो को तुम्हारे पान में क्या रस आता है कि दिन-रात उसकी प्रशंसा करते-फिरते हैं।"

"मैं स्वयं इस बात को समझ नही सकी। पान उत्पन्न होते हैं खेतो में, खदिर आता है विन्ध्याटवी वन से। सुपारी आती है चालुक्यान्र्गत वनो से। केशर काश्मीर से आता है। कस्तूरी तुषार-शैल-भू से। ये सब सामग्रियाँ कोई भी एकत्रित कर सकता है और पान लगा सकता है।"

"मै तो समझता हूँ कि कन्नौज के लोगो के, महाराज से लेकर साधारण निर्धन युवक तक, मस्तिष्क मे कुछ खराबी है और यह खराबी बहिन पत्रलता को कष्टदायक बन रही है।"

पत्रलता हँस पडी। हँसते हुए उसने कहा, "कुछ भी हो भैया! पत्रलता का जीवन रसमय बना हुआ है। यदि यह पागलपन न होता तो कदाचित पत्रलता स्वयं विषण्णता के रोग से ग्रसित हो दुखी हो जाती।"

"पर देखो न, अभी-अभी तुम राज्य-प्रासाद से आ ही रही हो कि वहाँ से दो पृथक्-पृथक् सन्देश तुम्हे बुलाने के लिए आ चुके है।"

"अच्छा, कौन आया था?"

"एक महाराज का प्रतिहार। वह तो सन्देश देकर चला गया है। एक महारानी मृणालिनी की चाय-चेटी आई है। वह भीतर माताजी के पास बैठी है।"

"ठीक है। तो मैं चलती हूँ। पहले महारानी की चाय-चेटी से बात कर लूँ।"

पत्रलता मन-ही-मन इस नई परिस्थिति के उत्पन्न होने मे आनन्द अनुभव करने लगी थी। वह यह अनुभव कर रही थी कि मलिन्द अपने-आपको राज्य-प्रासाद मे बन्दी अनुभव करती है। वह यह अनुभव करती थी कि मलिन्द से उसकी भेट की सूचना महाराज तथा महारानी दोनो को मिल चुकी है और वे दोनो इस विषय मे उससे जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। अतः मन मे एक योजना बनाती हुई वह महारानी की चाय-चेटी को साथ लेकर राज्य-प्रासाद में जा पहुँची।

पत्रलता महारानी के आगार मे पहुँची तो उसे यह देख अत्यन्त विस्मय हुआ कि महारानी उसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही है। पत्रलता के आगार में प्रवेश करते ही महारानी उठी और उसे अपने साथ ले अपने शयनागार मे चली गई। वहाँ जाकर पत्रलता को एक आसन पर बैठाकर और स्वय उसके सामने एक उच्च आसन पर बैठ कहने लगी, "देवी पत्रलता! मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम राजकुमारी मलिन्द से मिलने गई थीं। क्या यह सत्य है?"

"हाँ महारानी जी! आपको किसी ने ठीक सूचना दी है। केवल अन्तर यह है कि राजकुमारी ने मुझे बुला भेजा था। मैं आपने-आप नही गई थी।"

"क्यो?"

"वे मेरे से पान लेना चाहती थी।"

"उससे किसने तुम्हारे पान की प्रशसा की है ?"

"यह मैं नहीं जानती ।"

"तो फिर तुमने पान दिया था उसको ?"

"जी हाँ, महारानी जी !"

"परन्तु तुम्हारे जाने के पश्चात् भी उसके अधर खदिर रंग से रंजित नही हुए थे ?"

"वे कहती थी कि रात्रि सोते समय खाएँगी ।"

"ओह ! परन्तु दो घड़ी पूर्व ही पान मँगवाने की क्या आवश्यकता थी ?"

"इसका कारण अभी मुझको पता नहीं चला ।"

"पत्रलता ! तुम्हे एक बात का ज्ञान होना चाहिए । तुम्हारे पान के अतिरिक्त भी तुम्हारी आवश्यकता पड सकती है ।"

"महारानी जी ! मैं जानती हूँ कि मैं एक स्त्री हूँ और एक स्त्री की किसी पुरुप को पान खाने के अतिरिक्त भी आवश्यकता पड सकती है । परन्तु मै जिसके पास गई थी, वह पुरुप नहीं प्रत्युत् मेरी ही भाँति एक स्त्री है ।"

मृणालिनी हँस पडी और कहने लगी, "पत्रलता ! तुम अपने एक अन्य गुण को छिपाने का यत्न कर रही हो । वह है षड्यन्त्र करने मे चतुरता ।"

"परन्तु उस गुण की अब आवश्यकता नहीं रही । महाराज कन्नौज प्रजा के मनोनीत शासक हैं । इनके राज्य मे प्रजा को अपार सुख मिल रहा है और मैं महाराज के प्रशसको मे से हूँ ।"

"इस पर भी महाराज मनुग्य हैं और भूल करना मनुष्य का स्वभाव है ।"

"जिसको महारानी जी भूल समझती हैं, उसे कोई अन्य उचित कार्य भी समझ सकता है । अभी तक तो मुझे महाराज की किसी भूल का ज्ञान नही हुआ ।"

"क्या मलिन्द ने बताया नहीं कि वह उस आगार मे बन्दी है।"

"बताया था, परन्तु मुझे विश्वास नहीं आया।"

"मान लो कि वह बन्दी है, तब क्या करोगी?"

"उसको मुक्त कर देने का महाराज से निवेदन करूँगी। आर्य-सस्कृति में किसी स्त्री को बन्दी बनाना अधर्म है।"

"परन्तु महाराज आर्य है क्या?"

"इसमें महारानी जी को सन्देह है क्या? वे आर्यावर्त के रहने वाले हैं। यहाँ के जन साधारण जिस आचार विचार को अपनाएँगे, उसको वे भी मानेंगे।"

"उनके पिता ने किसी समय मालवा के दो राजकुमारो को बन्धक के रूप में रखा हुआ था और अब वे मलिन्द को रखे हुए हैं।"

"सत्य? मुझको इस बात का ज्ञान नहीं।"

"यह बात सत्य है। मलिन्द देवपुत्र तुवर के आचरण को अनुकूल रखने के लिए बन्दी की गई है।"

"तो माहारानी जी! आप महाराज से कह कर उसे मुक्त करा दीजिए। यह तो पाप है।"

"तुम महाराज से यह कहो। मुझको पता चला है कि तुमने एक पान खिलाकर महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी की मति बदल दी थी। क्या महाराज मे यह चमत्कारिक परिवर्तन नही हो सकता?"

"महारानी जी से मेरा निवेदन है कि यह बात, कि मेरे पान से महाप्रभु मे परिवर्तन हुआ है, सत्य नहीं है। वास्तव मे महाप्रभु पहले बच्चो की-सी सरल बातें किया करते थे, धीरे-धीरे उनको संसार का ज्ञान हो गया और उनके विचार बदल गए। इस परिवर्तन का श्रेय मुझको नहीं है।"

"यह बात तो महाप्रभु ने स्वय स्वीकार की है।"

"यह उनका भ्रम भी हो सकता है।"

"कुछ भी हो। महराज को इस विषय मे समझाना चाहिए।"

"महारानी जी से क्षमा चाहती हूँ। मैं इस विषय मे दूत का कार्य तब तक नहीं कर सकती, जब तक इस विषय में मुख्य व्यक्ति मुझे महाराज से जाकर कहने के लिए न कहे।"

"तो मलिन्द ने तुम्हें इस विषय में कुछ नहीं कहा?"

"कहा होता तो मैं विचार करती। राजकुमारी ने यह अवश्य कहा था कि वे बन्दी हैं, परन्तु मुझको विश्वास नहीं आया। वे पश्चात् मुझको वीणा सुनाने लगीं। मैंने उनके वीणावादन तथा संगीत की समालोचना की तो वे मुझको पुनः आकर उसके अभ्यास में सहयोग देने के लिए कहने लगीं।"

"तो कल तुम पुनः वहाँ जाओगी?"

"हाँ! पान देने।"

"तो वह, एक-दो दिन पश्चात् बन्धन-मुक्त कराने के लिए तुम्हे प्रयत्न करने को कहेगी।"

"यदि कहेगी तो मै विचार करूँगी कि मैं महाराज और उसके भीतर किस प्रकार समझौता करा सकती हूँ।"

"परन्तु यदि महाराज नहीं माने तो?"

"तो फिर मैं क्या कर सकती हूँ?"

"तो तुम किसी प्रकार उस निस्सहाय बालिका की सहायता नहीं करोगी?"

"मुझको तो कुछ ऐसी विधि समझ में आती नहीं, जिसका प्रयोग मैं महाराज को समझाने के लिए करूँ।"

"विचार करो देवी पत्रलता! मैं समझती हूँ कि तुम्हारा मस्तिष्क इस दिशा में बहुत काम कर सकता है।"

"विचार करूँगी महारानी जी! परन्तु क्या मैं पूछ सकती हूँ कि महारानी जी को इस कार्य में रुचि क्यों है?"

"मेरी रुचि का कारण स्पष्ट है। वह लड़की अत्यन्त सुन्दर है। मुझको महाराज के, उसके साथ दूसरा विवाह कर लेने की सम्भावना

प्रतीत होती है।"

"तो फिर क्या हुआ?"

"हुआ यह कि मैं किसी दूसरी स्त्री को कन्नौज की महारानी बनते नहीं देख सकती।"

"पर महारानी जी! आप बड़ी हैं। इस कारण पटरानी तो आप ही रहेगी। फिर कोई दूसरी रानी बन यहाँ आती है तो हानि ही क्या है?"

"नहीं पत्रलता! तुम नहीं जानती। मैं अभी तक निस्सन्तान हूँ। मेरे सन्तान होने की आशा भी कम है। मैं अपनी पदवी किसी दूसरे के साथ नहीं बाँट सकती।"

"क्या महारानी जी को कुछ पता है कि इस दिशा मे राजकुमारी मलिन्द के क्या विचार है?"

"मैं निश्चय नहीं कह सकती। इतना जानती हूँ कि राजकुमार की माँ बनने का प्रलोभन कोई भी स्त्री अवहेलना की दृष्टि से नहीं देख सकती।"

"सत्य? यह बात भी मेरे जानने की है। मेरा एक कवि से परिचय है और वे नारी को मन्दिर का रूप समझते हैं। इसके अन्दर देवता की स्थापना मानते हैं। उनका विचार है कि देवता लोभ, मोह इत्यादि विकारों से ऊपर होते है।"

"बहुत ही भोले हैं वे कवि! नारी एक प्रलोभनो का भण्डार है। उसमे एषणाओ का निवास है। लोभ, मोह आदि उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं।"

पत्रलता मुस्कराकर बोली, "महारानी जी का ज्ञान मुझसे अधिक है। इस कारण मुझको अपनी अनुभवहीनता स्वीकार कर महारानी जी की विवेचना माननी ही पड़ेगी।

"इस पर भी यदि राजकुमारी मलिन्द कन्नौजाधिपति से विवाह के लिए मान गई तो मै इस बात में हस्तक्षेप नहीं करूँगी। महारानी जी को विदित होना चाहिए कि यद्यपि मैं स्वयं विवाह नहीं कर रही, तो भी

दूसरो का विवाह होते देख मुझको प्रसन्नता अवश्य होती है। आचार्य जी के सुपुत्र का महामात्य जी की लड़की से विवाह हो रहा है और न जाने क्यो, जब से मैंने इस विवाह का समाचार सुना है, मै प्रसन्नता से उतावली हो रही हूँ।"

: ६ :

पत्रलता महारानी के आगारो से निकल महाराज के आगारो मे जा पहुँची। वहाँ महाराज को अपने आगमन की सूचना भेज द्वार पर खड़ी हो प्रतीक्षा करने लगी। इसी समय उसने देखा कि वह दासी, जो उसे मलिन्द के पास ले गई थी, इन्हीं आगारो मे घूम रही है। पत्रलता समझ गई कि यह भी मलिन्द के समाचार महाराज के पास पहुँचा रही है। इसी समय एक प्रतिहार महाराज के आगार मे से निकला और उसको देख मुस्कराता हुआ निकल गया। पत्रलता समझ गई कि महाराज मलिन्द को फँसाने का कोई षड्यन्त्र करना चाहते है।

आधी घड़ी-भर प्रतीक्षा करने के पश्चात् एक प्रतिहार उसके पास आया और कहने लगा कि महाराज उसको बुला रहे हैं।

पत्रलता उस प्रतिहार के साथ महाराज की बैठक में जा पहुँची। वहाँ महाराज को झुककर नमस्कार कर खड़ी हो गई। प्रतिहार उसे वहाँ छोड़ चला गया।

प्रतिहार के जाने पर महाराज ने पत्रलता को बैठने के लिए संकेत किया। पत्रलता वहाँ, महाराज के सम्मुख भूमि पर बैठ गई और महाराज के कहने की प्रतीक्षा करने लगी। महाराज ने पत्रलता के मुख पर कुछ देर तक देखने के पश्चात् कहा, "देवी! जब से मै समर से लौटा हूँ, तुम्हारे पान खाने का सौभाग्य नहीं मिला।"

"महाराज! उत्तर पथ प्रदेशो मे पान नही खाया जाता। मैने यह समझा कि कदाचित् महाराज पान खाने का व्यसन उन प्रदेशो मे रहकर छोड़ चुके हैं और इसी कारण कदाचित् इस ताम्बूलिन को कभी स्मरण

भी नहीं किया।"

"यह बात नहीं देवी! पान तो हम काश्मीर जैसे देश मे भी लेते रहे है। इस पर भी यहाँ आकर देवी को पान देने के लिए बुलाने मे संकोच करते रहे हैं। कारण यह कि जब से देवी का महामात्य से सम्बन्ध का ज्ञान हुआ है, तब से ताम्बूलिन के रूप मे देवी को बुलाने का साहस नहीं हुआ। हाँ, यदि हमारी कोई छोटी बहिन होती तो जैसे उससे हम पान माँग सकते थे। वैसे ही माँगने का अधिकार अब भी रखते हैं।"

"महाराज की इस कृपादृष्टि की मैं अत्यन्त आभारी हूँ। अतएव महाराज के लिए इस नाते पान देने मे मैं अपना कर्तव्य माना करूँगी। इस पर भी यह जान कि मेरे जन्म की कथा प्रचारित हो रही है, मुझको प्रसन्नता नहीं होती, महाराज! अपनी माँ तथा मामा के नाम इत्यादि का ध्यान कर मै चाहती थी कि यह कथा सर्वसाधारण से ओझल ही रहे।"

"हम देवी को विश्वास दिलाते हैं कि इस कथा को किसी पर प्रकट नहीं करेंगे। वास्तव मे हमे यह कथा अवलोकितेश्वर जी महाराज ने बताई थी और वे यह भी कह रहे थे कि उन दिनो वे कौशाम्बी मे एक साधारण भिक्षुक के रूप मे रहते थे।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि मुझे महाप्रभु की सेवा मे उपस्थित होकर उनसे यह निवेदन करना पडेगा कि वे मुझ अबला पर अपनी कृपादृष्टि रखें।"

"परन्तु पत्रलता! जो कुछ तुम्हारे विषय में कन्नौज में विख्यात हो रहा है, उसको जान तुम्हे अबला कहने से तो शब्दकोष मे इस शब्द के अर्थ को बदलना पडेगा। तुम तो राज्य मे उथल-पुथल मचाने की शक्ति रखती हो। तुम तो कन्नौज के रसिक युवकों को अपनी तर्जनी उठाने मात्र से भगा देती हो। बाण जैसे अत्यन्त सुन्दर युवक के प्रेम-प्रयासो को तुम वर्षों से ठुकरा रही हो। तुम अबला कैसे हो?"

"महाराज! इन सबमे मै करने वाली कौन हूँ। भाग्य और

भगवान् ही इसमे साधन हुए थे और होते रहे हैं। मेरे मन मे तो केवल एक भावना रही है और अब भी वही भावना कार्य कर रही है। मैं अपने भाई बान्धवो, मित्र-सम्बन्धियो, पडौसियो और देशवासियो को सुख-सम्पदा-सम्पन्न और हर्षानन्द से उल्लसित देखने की उत्कट अभिलाषा रखती हूँ। मेरी इस इच्छापूर्ति मे जो कुछ प्रेरणा मुझे भगवान् की मिलती है, मैं उसी से प्रेरित होकर अपना कार्य-क्रम निश्चित् करती हूँ।"

"अच्छा यह बताओ, तुम राजकुमारी मलिन्द से मिलने के लिए किस प्रेरणा से गई थीं?"

पत्रलता इतनी देर से इसी प्रश्न की प्रतीक्षा कर रही थी। महाराज ने साधारण वार्तालाप में इस आवश्यक प्रश्न को ऐसे रख दिया, मानो वह इसे कुछ भी महत्व न देते हो। महाराज के इस चातुर्य को देख पत्रलता समझ रही थी कि महारानी मृणालिनी तो सर्वथा फूहड़ बुद्धि रखती है। पत्रलता इस प्रश्न का उत्तर मन मे विचार कर चुकी थी। इस कारण मुस्कराकर कहने लगी, "राजकुमारी मलिन्द से मिलने से पूर्व मै उनके विषय में कुछ नहीं जानती थी। मुझको तो उनके राज्य-प्रासाद मे उपस्थित होने का भी ज्ञान नहीं था। जब वहाँ उनके पास गई तो राजकुमारी ने मुझे बताने का यत्न किया कि वे बन्दी हैं। मुझको उनके इस कथन पर सन्देह हुआ, क्योकि वहाँ बन्दी होने के कोई लक्षण नहीं थे। इस कारण वे पान खाने की इच्छा करने लगीं। वे मेरी सखी बनना चाहती थीं। किसी की इस इच्छा को, बिना किसी आपत्ति का ज्ञान प्राप्त किए, मै ठुकरा नहीं सकी। मैंने उनसे कहा कि सखी-भाव कोई ठेकेदारी नहीं है। राजकुमारी जी मुझको अपने से मिलने का अधिक और अधिक अवसर दें, तो सखी-भाव उत्पन्न हो सकता है। इस पर उन्होने मुझे अपना सगीत सुनाया और साथ ही वीणा-वादन भी। मैंने उनकी इन दोनो योग्यताओ पर टीका-टिप्पणी की। इस अर्थ वे मुझे पुनः बुलाने को कहती थीं।"

"तो देवी को मलिन्द के बन्दी होने के लक्षण दिखाई नहीं दिए?"

"प्रत्यक्ष रूप मे तो कोई नहीं दिखाई पड़ा।"

"परन्तु देवी ! वे मेरी वास्तव मे बन्दी हैं। वे बन्दी है अपने सौन्दर्य के कारण।"

"बहुत विचित्र है। भला आर्यावर्त मे किसी का सौन्दर्य बन्दी बनाए जाने मे कारण कैसे हो सकता है ?"

"इस पर भी यह सत्य है। इसमें कारण है। मैं चाहता हूँ कि मेरा उसके परिवार से सम्बन्ध हो जाय।"

"तो उसके पिता से श्रीमान् जी ने उसे क्यो नहीं मॉग लिया ?"

"विवाह भी होगा, परन्तु वह मलिन्द के मान जाने पर। अब यदि देवी पत्रलता उसके मन को इस अर्थ तैयार कर सके, तो हम बहुत प्रसन्न होंगे। हम देवी के इस प्रयत्न का प्रतिकार देने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।"

"प्रतिकार अथवा पुरस्कार का विचार छोड़ देने पर भी मुझको श्रीमान् जी की सेवा करने मे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। परन्तु यदि मै और श्रीमान् दोनों उसको विवाह के लिए तैयार करने में सफल न हुए, तो फिर उसका क्या होगा ?"

"भला यह कैसे हो सकता है ? वह तैयार क्यो नहीं होगी ? क्या मैं इतना कुरूप और श्री-विहीन हूँ कि मैं उसको नितान्त अरुचिकर होऊँगा।"

"आशा तो बहुत है कि वह मान जायगी। मैंने तो इस सम्भावना को इस कारण पूछा है कि असफलता की अवस्था मे क्या होगा ?"

"इसका निर्णय तो असफल होने पर ही किया जायगा।"

"मुझको इस विषय में प्रयत्न करने मे भारी प्रसन्नता होगी।"

"हम चाहते हैं कि देवी इस विषय मे आज से ही प्रयत्न आरम्भ कर दे। हमे देवी की चतुराई पर पूर्ण विश्वास है।"

इतना कहकर महाराज अपने आसन से उठ खडे हुए। परिणाम-स्वरूप पत्रलता भी उठ खडी हुई और महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी। महाराज चुपचाप आगार से बाहर निकल गए। पत्रलता भी वहाँ से निकल आई।

राज्य-प्रासाद से निकल वह पालकी मे बैठ सीधी महामात्य के निवास-गृह पर जा पहुँची। वहाँ पहुँच उसको पता चला कि महामात्य उसके विषय मे चिन्ता कर रहे हैं। अलकनन्दा ने उसके आते ही कहा, "दीदी! पिताजी तुमसे मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे?"

"मन्त्रि-मण्डल मे बैठे है। उनका कहना है कि तुम उनसे मिले विना मत जाना।"

अलकनन्दा ने एक दासी के हाथ महामात्य को सूचना भेज दी कि पत्रलता आ गई है। दोनो के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि महामात्य मन्त्रि-मण्डल की बैठक से उठकर आ रहे है।

पत्रलता अभी विस्मय मे महामात्य जी का मुख ही देख रही थी कि वे कहने लगे, "पत्रलता! मेरे साथ इधर आओ।" यह कह महामात्य उसे साथ के आगार में ले गए। वहाँ पत्रलता को बैठाकर और उसके सामने स्वय बैठकर पूछने लगे, "क्या बातचीत हुई है मलिन्द से तुम्हारी?"

"बहुत ही विचित्र बात है, श्रीमान्! मैं मलिन्द से मिलने गई और कन्नोज-भर मे धूम मच गई है। महारानी मृणालिनी, महाराज और महामात्य और कदाचित् पूर्ण मन्त्रि-मण्डल को इसकी चिन्ता लग गई है कि मैं एक वन्दी राजकुमारी से मिली हूँ। यह क्या है?"

"तो महारानी जी ने भी बुलाया था तुमको?"

"जी हाँ।"

"और मलिन्द के विपय मे बातचीत की थी उन्होने?"

"जी।"

"क्या कहा था?"

पत्रलता इस प्रश्न से चकित रह गई। वह समझती थी कि चूँकि महारानी और महाराज दोनो भिन्न-भिन्न दिशाओ मे कार्य कर रहे हैं, उसको अधिकार नही कि उनमे से किसी एक के रहस्य को प्रकट करे।

अब महामात्य के, जिनको वह अपने पिता-तुल्य समझती थी, इस प्रकार प्रश्न करने पर वह द्विविधा में पड़ गई। वह एक क्षण तक विचार कर पूछने लगी, "यह प्रश्न कन्नौज के महामात्य कर रहे हैं अथवा मेरे पिता-तुल्य मामा ?"

पद्मराज इस उत्तर पर चकित रह गया। यद्यपि वह इससे चिन्ता करने लगा था, तो भी वह प्रसन्न था। यह पत्रलता मे एक चरित्र-विशेष की उपस्थिति का द्योतक था, जिसका अनुमान लगाकर वह अति प्रसन्न था। इस पर भी वह समझता था कि इससे उसकी योजना मे बाधा पड रही है।

जब पत्रलता ने प्रश्न-भरी दृष्टि में उसकी ओर देखा तो उसने कहा, "पत्रलता ! मै आठों प्रहर राज्य का सेवक हूँ। अतएव प्रतिक्षण कन्नौज का महामात्य हूँ।"

"पर पिताजी ! मैं महामात्य की पुत्री नहीं हूँ। मै श्रीमान् पण्डित पद्मराज की लडकी-समान हूँ। न मैं राज्य की सेविका हूँ। अतएव यदि यह प्रश्न मुझसे न पूछा जाय, तो ठीक नहीं रहेगा क्या ?"

पद्मराज ने कुछ विचारकर कहा, "पत्रलता किस रूप मे राज्य-कार्य में सम्मिलित हो सकती है ?"

"किसी रूप मे भी नहीं।"

"पत्रलता ! यह तो देश-द्रोह हो जायगा।"

"देश-द्रोह तब होगा, जब कोई यह सिद्ध करेगा कि मेरे महारानीजी के मन की बात न बताने से देश को हानि पहुँच रही है। मै जानती हूँ कि महारानी जी देश-द्रोही नहीं हैं। अतएव मै उनकी बात बिना उनकी स्वीकृति के न बताने से देश-द्रोह नही कर रही।"

महामात्य समझता था कि पत्रलता पर देश-द्रोह का आरोप लगाने का अर्थ है कि महारानी को देश द्रोही कहना। यह वह कर नहीं सकता था। इस कारण वह चुप रहा। इस पर पत्रलता ने कहा, "क्या महामात्य आठो प्रहर में एक क्षण के लिए भी पिता अथवा कुछ अन्य नहीं हो सकते ?"

"हो सकता हूँ, परन्तु केवल उन बातो मे, जो देश और राज्य के साथ सम्बन्ध न रखती हों।"

"क्या महाराज अथवा महारानी का विवाह राज्य के सम्बन्ध की बात है?"

"हाँ।"

"तब तो ठीक है, पिताजी! मैं केवल इतना कह सकती हूँ कि महारानी जी ने कुछ ऐसी बात बताई है, जो उनके आन्तरिक विचारो से सम्बन्ध रखती है। इस विषय में किसी राज्याधिकारी को बताने का अधिकार स्वयं महारानी जी को ही है। उनसे ही पूछ लिया जाय।"

महामात्य इस परिस्थिति से गम्भीर विचार मे मग्न हो पुनः मन्त्रि-मण्डल की बैठक मे चला गया।

मन्त्रि-मण्डल मे क्या विचार हो रहा था और उसमे महारानी जी के विचार जानने की क्या आवश्यकता आ पड़ी थी, पत्रलता समझ नहीं सकी।

रात भोजन के समय तक विरोचना देवी ने उसको रोक रखा। पत्रलता को सन्देह हो रहा था कि महामात्य के कहने पर ही उसे रोका हुआ है। उसका यह विचार सत्य सिद्ध हुआ।

: ११ :

भोजन करते समय महामात्य ने बात आरम्भ कर दी। उसने कहा, "महाराज का देवपुत्र तुवर की कुमारी लड़की को पकड़कर ले आना कन्नौज-राज्य की स्थिति को डाँवाडोल कर देने वाला है। इससे भारत-खण्ड मे एक ऐसा बवंडर उठ सकता है कि कदाचित् महाभारत की पुनरावृत्ति हो जाए।"

पत्रलता चुपचाप सुनती रही। बात विरोचना ने आगे चलाई, "क्या हुआ है श्रीमान्?"

"हुआ यह है कि देवपुत्र तुवर से हमारी मैत्री की सन्धि है। महा-

राज तुषार-शैल-भू से लौटते समय तुवर के राज्य मे से होकर आ रहे थे कि वहाँ गगा के तट पर कुछ लड़कियाँ खेलती दिखाई दीं। उनमे से एक को देख महाराज उस पर मोहित हो गए और उसको अपनी सखियो सहित पकड़ कर ले आए है। अभी तक देवपुत्र तुवर को पता नहीं चला कि उनकी लड़की कहाँ गई है। आज पहले दिन यह समाचार राज्य-प्रासाद से बाहर आया है कि एक अति सुन्दर लड़की वहाँ बन्दी है। उस पर दो सौ से ऊपर चाय-चेटियाँ पहरा दे रही हैं।

"आज पत्रलता उसको मिलने गई थी। यह समाचार महाराज तथा महारानी को मिल गया और पत्रलता को दोनो ने बुला भेजा। हम मन्त्रियो ने इस समस्या पर विचार करने के लिए अपने मण्डल की गुप्त बैठक बुलाई थी। अभी तक हम इस समस्या को सुलझाने के लिए किसी सुझाव पर नहीं पहुँच पाए। कारण यह है कि इस नाटक के मुख्य पात्रो मे से हमारे साथ कोई भी सम्पर्क नहीं रखे हुए है।"

अब पत्रलता ने मुख खोला। उसने कहा, "वास्तव में श्रीमान्! यह एक अति भयंकर परिस्थिति है। मलिन्द ने मुझको कहा था कि वह बन्दी है। मैंने उसका विश्वास नहीं किया। अब पिताजी के कहने पर उसके कथन की सत्यता प्रतीत होने लगी है।"

"ऐसी परिस्थिति मे मन्त्रि-मण्डल क्या करना चाहता है?" विरोचना देवी का प्रश्न था।

"मन्त्रि-मण्डल ने अभी कोई निर्णय नही किया। मेरा मन कहता है कि मलिन्द महाराज से विवाह करना स्वीकार कर ले तो समस्या सुगमता से सुलझ सकती है।"

"सुझाव तो अच्छा है परन्तु यह विवाह विना दोनो की अनुमति के कैसे हो सकता है? क्या महाराज इस विवाह के लिए तैयार है?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ पत्रलता! हमारे साथ दोनो मे से किसी का भी सम्पर्क नही है।"

"मैं कल मलिन्द से मिलने जा रही हूँ। क्या आप उससे सम्पर्क

बनाना चाहेंगे ?"

"यह तो बहुत ही अच्छा होगा।" महामात्य ने प्रसन्नता से खिलते हुए कहा।

"यह सम्पर्क बन जायगा। यदि महामात्य एक बात स्वीकार कर सकें कि वे मलिन्द की कोई बात महाराज अथवा मन्त्रि-मण्डल के सम्मुख न रखेंगे, जब तक कि राजकुमारी से उसकी स्वीकृति न ले लें।"

"यह मैं वचन देता हूँ।"

"तो उसके मन की इच्छा मैं आपको बता दूँगी।"

"कल किस समय जाओगी।"

"जब उसकी दासी मुझको लेने आएगी।"

"ठीक है, तो कल उससे मिलकर मुझसे मिलने आना।"

"आऊँगी।"

पत्रलता को अपनी स्थिति अत्यन्त विकट प्रतीत हुई। वह अपने को एक जाल मे फँसते हुए अनुभव करने लगी थी। इस कारण उसने सबसे पहली बात यह विचारने का यत्न किया कि किस प्रकार वह मलिन्द के चारों ओर गुप्तचरों के जाल को तोड़ सकती है।

वह रात्रि-भर इसी समस्या पर विचार करती रही। इसके परिणाम-स्वरूप वह एक योजना बना सकी।

अगले दिन जब मलिन्द की दासी आई तो पत्रलता ने पहले उससे ही पूछना आरम्भ किया। उसने पूछा, "दासी! तुम्हारा नाम क्या है?"

"कामिनी।"

"ओह! तो कल महाराज ने तुमसे राजकुमारी के विषय मे पूछ-ताछ की थी?"

"राजकुमारी के विषय मे नहीं, आपके विषय में पूछा था।"

"क्या पूछा था?"

"वे जानना चाहते थे कि आप वहाँ किस कार्य से गई थीं।"

"और तुमने सब-कुछ बता दिया।"

"वे मुझे मार डालने को तैयार हो गए थे।"

"पर तुमने झूठ क्यों कहा? मैंने तो राजकुमारी को कुछ सिखाया-पढ़ाया नहीं था।"

"नहीं देवी! मैंने सिखाने के विषय मे कुछ नहीं कहा। मैंने तो केवल यह कहा था कि आप कुछ धीरे-धीरे बाते कर रही थीं, जो मै सुन नही सकी।"

"तो तुमने यह नहीं कहा कि मैंने राजकुमारी को भाग जाने के लिए प्रोत्साहन दिया है?"

"नहीं देवी! ऐसी कोई बात नही कही। मैंने तो केवल यह कहा था कि आप दोनो कुछ कानाफुसी करती रही है, जो मैं सुन नही सकी।"

"देखो कामिनी! महाराज ने मुझको कहा है कि राजकुमारी की एक दासी ने उन्हे बताया है कि मै राजकुमारी के साथ कुछ षड्यन्त्र कर रही हूँ। यह सब तुमको किसने बताया है?"

"मैंने ऐसी कोई बात नहीं की। किसी ने आपको मेरे विरुद्ध भड़का दिया है।"

"अच्छी बात है, चलो।"

"पर देवी! राजकुमारी से इस विषय मे कुछ मत कहियेगा।"

"अभी तो कुछ नही कहूँगी, परन्तु तुम पर सन्देह होते ही कि तुम झूठमूठ की बाते कह सकती हो, मैं तुमको यमलोक का द्वार दिखा दूँगी। अब चलो।"

आज भी राजकुमारी पूजा के आगार मे पूजा कर रही थी। वीणा उसके सम्मुख रखी थी। पत्रलता जब वहाँ पहुँची तो दासी उस आगार से बाहर निकल गई। पत्रलता ने वह द्वार बन्द कर लिया और सकेत से मलिन्द को उठाकर किसी अन्य आगार मे चलने को कहा। साथ ही उसने मुख पर अगुली रख चुप रहने का भी सकेत कर दिया।

जब राजकुमारी चलने लगी तो पत्रलता ने उसकी वीणा उठा ली।

राजकुमारी कुछ कहना चाहती थी, परन्तु पत्रलता ने उसे संकेत द्वारा बोलने से मना कर दिया। दोनो वहाँ से निकल भीतर शयनागार मे जा पहुँचे। पत्रलता को वहाँ भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने हाथ के संकेत से वहाँ से भी निकल आने को कहा। वहाँ से वे साथ वाले आगार मे चले गए। पत्रलता ने सब द्वार तथा गवाक्ष आदि बन्द कर दिए और दीवारों को ठोक-ठोक कर देखा। द्वार गवाक्षादि बन्द करने से आगार मे अन्धेरा हो गया था। मलिन्द ने दीपक जलाया। पत्रलता और मलिन्द कमरे के बीचो-बीच बैठ गए। पश्चात् पत्रलता ने कहा, "राजकुमारी! यहाँ की दीवारे भी गुप्तचर का कार्य करती हैं। आपको पता होना चाहिए कि कल की हमारी वार्तालाप महाराज के कर्णगोचर हो गई थी। कल मुझे अपने गृह से बुलवाकर महाराज ने मुझे सब-कुछ बता दिया था। इससे मैं समझ गई कि राजकुमारी चारो ओर से गुप्तचरो से घिरी हुई हैं।"

"परन्तु ऐसा क्यो है?"

"यह मैं क्या जानूँ? यह तो राजकुमारी ही बता सकती हैं कि उन्होंने क्या अपराध किया है, जिससे वे इतना कड़ा दण्ड पा रही हैं।"

"अपनी जानकारी मे मैंने कुछ नहीं किया। एक दिन गंगा तट पर मै अपनी दासियो के साथ विहार कर रही थी कि महाराज अपने सैनिको के साथ वहाँ पहुँच गए और मुझको दासियो सहित यहाँ ले आए।"

"ओह! परन्तु एक बात तो बताइये, राजकुमारी को ये महानुभाव कैसे जँचे हैं?"

"बहुत सुन्दर कलेवर मे कोई घोर नारकीय आत्मा प्रतीत होती है।" यह कहते-कहते राजकुमारी ने घृणा से नाक सिकोड़ ली।

"ओह! क्या नारकीय कार्य किया है कन्नौजाधिपति ने?"

राजकुमारी मलिन्द एक क्षण तक विस्मय में पत्रलता का मुख देखती रही। तदन्तर कहने लगी, "मैंने देवी पत्रलता के विषय मे यह सुना था

कि वे अति दयालु और प्राचीन आर्य-परिपाटी को मानने वाली हैं। इसी से आशा कर बैठी थी कि मेरा उद्धार करेंगी। परन्तु यह आज मै क्या सुन रही हूँ, देवी! क्या एक कुँवारी कन्या का अपहरण बिना उसकी तथा उसके माता-पिता की इच्छा के, नारकीय कार्य नही है।"

"किसी कार्य की अच्छाई-बुराई, उस उद्देश्य से जानी जाती है, जिसके लिए वह कार्य किया गया है। मै यह बात अभी समझ रही हूँ कि महाराज के इस कार्य मे उद्देश्य क्या हो सकता है।"

"तो महाराज से देवी ने पूछा नही?"

"पूछा है। उन्होने बताया भी है। परन्तु मैं उसका समर्थन राजकुमारी के मुख से सुनना चाहती हूँ।"

"क्या महाराज मेरा अपहरण करना किसी श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए मानते हैं।"

"हाँ, वे आपको अपनी महारानी बनाना चाहते है।"

"जैसे रावण सीता को बनाना चाहता था?"

"सीता पूर्व-विवाहिता थी, राजकुमारी!"

"मैं किसी अन्य से प्रेम करती हूँ।"

"प्रेम करना तथा विवाह हो जाना दोनो भिन्न-भिन्न बाते है।"

"जहाँ तक शरीर का सम्बन्ध है, देवी का कथन ठीक है। प्रेम आत्मा का विषय है। यह बन्धन विवाह से भी अधिक सुदृढ़ होता है।"

"क्या प्रेम के बिना विवाह नहीं हो सकता?"

"देवी पत्रलता क्या समझती है?"

"मैने तो प्रेम किया है, परन्तु विवाह नहीं किया। इस कारण मै दोनो को पृथक्-पृथक् समझती हूँ।"

"मेरा इस विषय में देवी से मत-भेद है। मै विवाह का अर्थ जैसा समझती हूँ, वह बिना प्रेम के अनुचित मानती हूँ। परन्तु कन्नौज के महाराज द्वारा मुझ को इस प्रकार बन्दी बनाकर रख छोड़ने के कारण मैं उनसे घृणा करती हूँ। मै यह पसन्द नहीं करती कि मेरा विवाह उससे

हो, जिससे मैं घृणा करती हूँ।"

"तो महाराज से राजकुमारी विवाह पसन्द नही करती।"

"देखो देवी! रावण ने सीता का अपहरण किया था और उसका सर्वनाश हुआ था। भीष्म पितामह ने काशीराज की लडकियो का उनकी इच्छा के बिना अपहरण किया था। भीष्मपितामह के वंश का भी सर्वनाश हो गया था। आज इस पापी ने मेरा अपहरण किया है, इसके परिवार का भी सर्वनाश होगा ही।

"एक बात और सुन लो, देवी! राजा देश की जनता का प्रतिनिधि होता है। यदि प्रजा उसके द्वारा लूट-मार किए हुए धन का उपभोग करती है, तो उसके पापो की वह भी भागी होगी। आज भारत, विशेपरूप में उत्तर-पथ के देशो मे इस मूर्ख राजा की महिमा गाई जाती है, तो महिमा गाने वाले शताब्दियो तक इस भूल का फल पाएँगे।"

"तो यह राजकुमारी श्राप दे रही है हम सब को?"

"यह श्राप नहीं। यह अति दुखित मन की हूक है। यह भस्म कर देगी इस ससार को।"

पत्रलता कुछ काल तक विचारमग्न बैठी रही। एकाएक पत्रलता के कान खडे हो गए। उसने मुख पर अँगुली रख मलिन्द को चुप रहने का सकेत किया। पश्चात् वह उसको हाथ से पकड कर एक अन्य आगार मे ले गई। वहाँ लेजाकर उसने धीरे से कहा, "मुझको कुछ ऐसा भास हुआ था कि भूमि के नीचे कोई सरक रहा है। यह भ्रम भी हो सकता है। देखिए राजकुमारी जी! मैं आपके मन की भावना को समझती हूँ। किसी भी कुमारी को विवश कर उससे विवाह करना तो किसी भाँति भी उचित नहीं। मै आपकी सहायता करना चाहती हूँ, परन्तु मैं आपको बताती हूँ कि आपकी अपनी दासियाँ भी विश्वास-योग्य नहीं। कामिनी पर भी भरोसा मत कीजिएगा। कल वह महाराज के सामने स्वेच्छा से अथवा विवशता से उपस्थित होकर बहुत कुछ बता आई है। इस परिस्थिति में मैं क्या सहायता कर सकती हूँ, यह एक अति कठिन और विचारणीय

बात है। इस समय मै इस विषय मे आपको तुरन्त कुछ नहीं कह सकती। मैं चाहती हूँ कि आप मेरे साथ भविष्य में लिखकर विचार-विनिमय किया करे। इसके लिए मैं आपके पास नित्य आया करूँगी। आपके लिखे का उत्तर मैं अगले दिन स्वयं लिखकर आपको दे जाया करूँगी। वह उत्तर पढ़कर आप पत्र को जलाकर भस्म कर दे। इस प्रकार हम परस्पर विचार कर सकेगे। यहाँ पर तो आपको यदि सगीत सुनाने की रुचि हो तो सुना दिया करें। आप मुझे कल लिख कर दीजिएगा कि आप चाहती क्या हैं। तदनन्तर मे आपको लिखकर बता सकूँगी कि मैं क्या सहायता कर सकती हूँ।

"एक बात स्मरण रखे। लिखा हुआ पत्र पढने के पश्चात् अवश्य जलाकर भस्म कर दें। अच्छी अब मै चलती हूँ। कल लिख कर आप बताएँ कि आप क्या चहती हैं।"

: १२ :

विजयोत्सव का दिन समीप आ रहा था और नगर की शोभा बढती जाती थी। राज्य-पथ के दोनो ओर के गृहो के स्वामियो को आज्ञा दी गई थी कि वे अपने गृहो को सफेदी कराएँ और महाराज की सवारी के पूर्व मार्ग को पुष्प मालाओ और तोरनो से विभूपित कर दें। मार्ग के बडे-बडे दुकानदारो को कह दिया गया था कि वे महाराज तथा विजेता सेना पर, जो सवारी के साथ होगी, पुष्प-वर्षा करे तथा नागरिको को यह आदेश दिया गया था कि वे अपने बच्चों सहित नवीन रगारंग के वस्त्र पहिन राज्य पथ के दोनो ओर खडे रहे। पथ के दोनो ओर बॉस गाड कर उनके साथ रंगारग की पताकाओ की लडियाँ बॉध दी गई थी। बॉसो पर सुनहरी तथा रूपहरी कपडे लपेट दिए गए थे।

इस दिन का कार्यक्रम यह था कि महाराज अपनी विजयी सेना के एक मुख्य भाग के साथ नगर के उत्तरी द्वार से नगर मे प्रवेश करेंगे और एक कोस से अधिक नगर के राज्य-पथ पर चल कर, राज्य-प्रासाद के

बाहर जा पहुँचेगे। राज्य-प्रासाद के बाहर खुले मैदान मे सर्वसाधारण मे खुली सभा होगी। उसमे वे कुछ घोषणाएँ करेंगे। मध्याह्न के भोजन के पश्चात् राज्य-सभा होगी, जिसमे राज्य के प्रमुख विद्वान्, व्यापारी, सुभट्ट तथा शूद्र वर्ग के लोग आएँगे। महाराज वहाँ अपने राज्य की नीति घोषित करेगे। मध्याह्नोत्तर राज्य-प्रासाद के बाहर एक मेला लगेगा। इसमे बाजार लगेगा तथा मनोरंजन के अड्डे बनाए जाएँगे। नट-नटनियाँ खेल दिखाएँगी, नर्तकियो का नृत्य होगा; बाजीगर अपने मायावी खेल दिखाएँगे। जनसधारण को इस मेले मे विचरने की तथा क्रय-विक्रय करने की स्वीकृति होगी।

सायंकाल एक महान् भोज होगा, जिसमे सर्वसाधारण को निमन्त्रण होगा। इस भोज के अतिरिक्त नगर-भर के हलवाइयो की दुकानो पर मिष्ठान्न विना मूल्य के मिलने का प्रवन्ध था। निर्धनो को, उत्सव के एक दिनपूर्व वस्त्र वितरण करने का प्रवन्ध था, जिससे पूर्ण जनता रंगारंग के वस्त्रो मे राज्य-पथ पर उपस्थित होकर स्वागत की शोभा वढ़ा सके।

इस के साथ ही वाणभट्ट के तीन नाटको के रंग मंच पर खेलने का आयोजन था। एक दिन कवि सम्मेलन का भी अयोजन किया गया था। इसके साथ ही धनुर्विद्या, खड्ग चलाने की तथा अन्य कई खेलो की प्रतियोगिता भी रखी गई थी।

इस प्रकार राज्य भर के लोग इस उत्सव को सफल बनाने तथा इसमे भाग लेने की तैयारी कर रहे थे।

वाण ने अपने तीनो नाटको के लिए सैकडो नाटककार तैयार किए थे और उसके नाटको का, राज्य-भर में बीसियो स्थानो पर खेलने का प्रवन्ध किया गया था। राजधानी मे भी तीन भिन्न-भिन्न स्थानो पर इसके लिए मंच तैयार किये गए थे और उन मचो पर खेलने का प्रबन्ध था।

उत्सव के लगभग एक सप्ताह पूर्व पत्रलता वाण के नाटको के खेले जाने का अभ्यास होता देखने आई। बाण ने जब उसे देखा तो अपना कार्य छोड उसके पास आ खड़ा हुआ और पूछने लगा, "देवी! क्या

देख रही हो ?"

"मै यह देख रही हूँ," पत्रलता ने कहा, "कि आपने कर्म और ज्ञान मे सघर्ष बहुत ही योग्यता से रंग-मंच पर उपस्थित किया है। कर्म का अन्त सगठन मे होता है। सगठन का परिणाम विजय और अधिनायकवाद है। ज्ञान का अर्थ आत्म-विश्लेशण है, जिसका अन्त शून्य मे है।"

"पत्रलता! तुम ठीक ही समझी हो। मेरे इस नाटक की पाडुलिपि अवलोकितेश्वर जी महाराज ने पढी है परन्तु वे इसको इस प्रकार नही समझ सके। उनको यह बौद्ध-मीमासा का समर्थक प्रतीत हुआ है।"

"जब मच पर खेल देखेंगे तो समझ जाएँगे कि बौद्ध मीमासा की हँसी उड़ाई गई है।"

"कुछ भी हो। मेरा आशय स्पष्ट है। मैं यह प्रकट करना चाहता हूँ कि इस संसार की गाडी के दो चक्के हैं। एक कर्म और दूसरा भक्ति। इन दोनो चक्को पर चलने वाली गाडी का सारथि है ज्ञान। जब कर्म और भक्ति के दोनो चक्के टूट जाते हैं तो ज्ञान बेचारा चलने मे अशक्त हो जाता है और आत्म-विश्लेषण मे लीन हो जाता है। इस विश्लेषण मे वह पाता है कि सब कुछ मिथ्या है और वह स्वय भी मिथ्या भ्रम-मात्र है।

"मेरा कहना है कि इस नाटक के खेलने के पश्चात् आप का पत्ता कन्नौज मे से कट गया समझना चाहिए।"

"देवी! यह कट जाए तो वास्तव मे मेरा उद्धार हो जायगा।"

"क्यो! यह वैभव और सुख-सुविधा आपको कहाँ मिलेगी?"

"पत्रलता! तुम लेखिका नहीं हो। होतीं तो समझ जातीं कि मैं कितनी बडी यन्त्रणा को सहन कर रहा हूँ।"

"सत्य? मै नही जानती कवि! क्या आप बता सकेंगे कि आपको इस धन से समृद्ध नगर मे क्या कष्ट हो रहा है? सकलोत्तर-पथ के विजेता, अधिपति की राजधानी में विजेता के मुख्य कवि को क्या यह धन-समृद्धि

और मान-प्रतिष्ठा चुभने लगी है ?"

"इसमे अधिपति का दोष नही। वे तो मुझको आवश्यकता से अधिक देते हैं, परन्तु उनके अधिकारी लोग चाहते हैं कि मैं लिखूँ तो उनकी इच्छा के अनुसार। अधिपति दयालु, कृपालु, उदार और सज्जन होता हुआ भी उन अधिकारियों को इस बात से मना नहीं कर सकता।

"महाराज की दिग्विजय को मैंने व्यर्थ खोया हुआ अवसर का नाम देकर, उनकी जीवनी के कुछ पृष्ठ लिखे थे। कहीं अवलोकितेश्वर जी की दृष्टि उन पर पड़ गई और उन्होने हँसते हुए मेरे लेख को फाड़ डाला। मैंने इस पर विस्मय प्रकट किया, तो कहने लगे कि राज्य मुझको इतना स्वर्ण इसलिए नहीं देता कि मैं उस राज्य के अधिपति की आलोचना करूँ।

"मैंने निवेदन किया कि मै राज्याधिपति का दिया अन्न नहीं खाता, प्रत्युत् राज्य का अन्न खाता हूँ और मेरा लेख राज्य अथवा देश के हित मे है।

"वे पूछने लगे, 'कैसे ?'

"मैंने बताया, 'महाराज की इस समर-यात्रा मे युद्ध तथा यात्रा में, ऋतु और रोगो के कारण सहस्रो सैनिक मर गए हैं। महाराज ने इस यात्रा मे तीन सौ करोड़ स्वर्ण व्यय किया है परन्तु इस यात्रा से राज्य को लाभ कुछ भी नही हुआ। न तो राज्य की एक उँगली-भर भूमि बढ़ी है और न ही राज्द की प्रजा पहिले से अधिक सुरक्षित हुई है। यह समर-यात्रा महाराज की कीर्ति-प्रसार के लिए नही की गई थी। यह तो भारत की और विशेप रूप मे श्रीकंठ तथा कन्नौज राज्य की प्रजा को, भारतखण्ड की पश्चिमोत्तरी सीमाओ के पार की म्लेच्छ जातियो के आक्रमण के भय से दूर करने के लिए थी।"

"मैंने आगे कहा, 'महाराज की ख्याति बढी है अथवा घटी है, मै इस पर विवेचना नहीं करना चाहता। मै तो केवल यह कहना चाहता हूँ कि राज्य को तथा भारत की जनता को इस समर-यात्रा से कुछ भी

लाभ नहीं हुआ।'

"अवलोकितेश्वर जी कहने लगे, 'कवि! इस सुन्दर, विशाल, सुसज्जित और सुख-सुविधा सम्पन्न आवास मे रहने और अपने गॉव के उस कच्चे, गन्दे तथा सकीर्ण आवास मे अपने आधी दर्जन भाई-बहिनो के साथ रहने मे अन्तर देख लो।'

"पश्चात् उनका ध्यान नाटको की ओर चला गया और मेरे विषय मे बात समाप्त हो गई। नाटक मे वे ज्ञान और कर्म की मीमासा सुन अति प्रसन्न हो चले गए।

"मै ससार मे किसी का भी अधिकार नहीं समझता कि वह लेखक को आदेश दे कि वह क्या लिखे और क्या न लिखे। इस कारण अब महाराज हर्ष का चरित्र अधूरा ही रहेगा। मै इसमे एक पंक्ति भी और नही लिखूँगा।"

पत्रलता भौचक्की हो कवि का मुख देखती रह गई। बाण ने धीरे से कह दिया, "मैंने इस नाटक पर बहुत परिश्रम किया है। इसी कारण मैं यहाँ टिका हूँ। इससे अवकाश पाते ही यहाँ से चल दूँगा।"

"सत्य?"

"हाँ देवी! मेरा मन अब कन्नौज मे रहने को नही चाहता। यहाँ आया था देवी को अपनाने। उसमे सफल नहीं हो सका। देवी के लिए ही राज्य-सभा की चाटुकारी करने की नीचता स्वीकार की थी। अब इसमे प्रयोजन नहीं रहा। मुझसे व्यर्थ में चारणो का कार्य नही हो सकता। मै उत्सव की अन्तिम रात, इस नाटक के समाप्त होते ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

"सत्य?"

"कवि स्थिर-प्रज्ञ व्यक्ति है।"

"तो कवि क्या रथ मे प्रस्थान करेगे अथवा पैदल?"

"यह प्रश्न किसलिए है?"

"कदाचित् कन्नौज की एक दुखिया अबला चोरी-चोरी आपके रथ

मे आपके साथ जाने की इच्छा रखती हो?"

"सत्य! तब तो मै रथ का प्रबन्ध कर लूँगा। परन्तु यह 'कदाचित्' का शब्द मिटाकर 'निश्चय से' का शब्द प्रयुक्त हो जाय, तो मैं एक बार तो अपने जीवन से भी खेलकर उस देवी को यहाँ से ले चलने के लिए तैयार हो जाऊँगा।"

"यदि यह सम्भव हो गया तो यह देवी जीवन-पर्यन्त आपकी आभारी रहेगी।"

"मै देवी की सेवा करने मे अपनी पूर्ण शक्ति लगा दूँगा।"

"तो बात निश्चित रही। जैसे कवि इस कन्नौज की परतन्त्रतापूर्ण वायु से घबरा रहा है, वैसे ही वह देवी भी इस वायु-मण्डल से घृणा कर रही है। परन्तु एक वचन आपको देना होगा?"

"क्या?"

"उस क्षण तक, जब तक आप कन्नौज-राज्य की सीमा से पार नहीं निकल जाते, किसी को भी आप यह नहीं बतायेंगे कि आप कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं और आपके साथ कौन जा रही है। एक ब्राह्मण अपनी बहिन को ससुराल छोड़ने जा रहा है, यही विख्यात होना चाहिए।

"साथ ही जाने से पूर्व किसी को यह सन्देह नहीं होना चाहिए कि कवि नगर छोड़ रहा है और कन्नौज की एक देवी को साथ लेजा रहा है।"

"मुझे सब-कुछ स्वीकार है।"

"तो ठीक है। नाटक के एक दिन पूर्व मैं इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में कवि से मिलूँगी।"

"तो देवी! मेरे साथ मेरे गृह पर रहने का वचन देती हैं?"

"कैसा छोटा मन है कवि तुम्हारा! स्त्रियो की सेवा करते समय उनसे शर्त नहीं की जाती। कर्म करो और फल मिलता है। कर्म का मूल्य पाना मनुष्य के अपने वश की बात नही। इस पर भी कोई कर्म निष्फल नहीं जाता।"

झे कुछ विदित नहीं। मैं प्रत्येक प्रकार की सम्भावना पर विचार
पश्चात् प्रमाण ढूँढना चाहता था; परन्तु इस विषय में किसी
वाले ने वास्तविक व्यक्ति को, जिससे रहस्योद्घाटन हो सकता
कर दिया है।

छी बात है महाराज ! अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं आपके
घ्न नही डालना चाहता।"

हीं, महामात्य ! ठहरो।" महाराज ने यह कहकर ताली बजाई।
बाहर से एक प्रतिहार आया। महाराज ने आज्ञा दी कि सब
ो यहाँ लाया जाए।

ार ने महाराज की आज्ञा सुन भय से काँपते हुए कहा, "महा-
नको तो प्राण-दण्ड की आज्ञा हो चुकी है और उन्हे दण्ड देने
निक नदी-तट पर ले गए हैं।"

सने प्राण-दण्ड दिया है?" महाराज ने आश्चर्यचकित हो

इ तो मैं नही जानता महाराज ! कुछ श्रमण कह रहे थे कि सभी
को प्राण-दण्ड हुआ है। उन्होने वधिको को बुलाया और
ो कहा कि उन्हे गगा-तट पर ले जाया जाए और वहाँ जाकर
दिया जाए।"

वद्ध'न इससे घबरा उठा। पद्मराज क्रोध से लाल-पीला होने
नसाग तथा अन्य बौद्ध प्रमुख व्यक्ति आश्चर्य मे एक-दूसरे का
लगे। महाराज ने आज्ञा दी, "तुरन्त भागकर जाओ और
वापिस लेकर आओ।"

ने कहा, "महाराज ! उन निर्दोषो का जीवन इस प्रकार
श्रीमान् स्वयं रथ पर जाएँ तो यह अन्याय होता-होता रुक

न उठा और महामात्य तथा ह्वेनसाग को अपने रथ मे
ह गगा-तट पर जा पहुँचा। वहाँ प्राण-दण्ड का आयोजन

हो रहा था। लगभग बीस श्रमण उच्च स्वर में 'शान्तं पापं ! शान्त प
की रट लगा रहे थे और एक श्रमण के कहने पर हत्यारे एक-एक ब्र
को आगे कर खड्ग के नीचे कर रहे थे और खट से उसका सिर ध
पृथक् किया जा रहा था।

इस घोर अन्याय को होता देख हर्षवर्द्धन कॉप उठा और
इस कृत्य को तुरन्त बन्द करने की आज्ञा दे दी।

: ६ :

जब महाराज ने घटना-स्थल पर पहुँच कर हत्याकाण्ड रोका
तक पाँच सौ ब्राह्मणों मे से लगभग पच्चीस प्रमुख ब्राह्मणो की हत्य
जा चुकी थी। शेष ब्राह्मणों को हर्षवर्द्धन ने मुक्त करने की आज्ञा दे

पद्मराज जानना चाहता था कि किन-किनका जीवनान्त हो
है। इस कारण उसने उस श्रमण को, जो ब्राह्मणों को हत्यारे के
आगे कर रहा था, बुलाकर पूछा, "भन्ते ! किन-किन को हत्या-
मिल चुका है ?"

"श्रीमान् ! नाम तो मैं नही जानता। जहाँ सभा बैठी थी, व
एक व्यक्ति ने बाहर आकर कहा कि सभी दोषी सिद्ध हो चुके है
सबको प्राण-दण्ड दे दिया जाए। अतएव मैं यह कार्य करवाने
यहाँ आ गया।"

महामात्य आचार्य वाराहमित्र, अग्निमित्र और पत्रलता के
में जानना चाहता था। उसने एक ब्राह्मण से इनके विषय मे
तो उसने बताया कि सभी प्रमुख ब्राह्मणों की हत्या की जा चुकी है।

"पत्रलता को जानते हो ?" महामात्य ने पूछा।

"नहीं श्रीमान् ! हाँ एक स्त्री हममे थी। सबसे पहले उसी
चढाने के लिए लाया गया था, परन्तु उसने सैनिको को चकमा
मे छलांग लगा दी। कुछ सैनिक उसे पकडने के लिए उसके
परन्तु वह पकड़ी नहीं जा सकी। कदाचित वह नदी मे डूब ग

: १३ :

पत्रलता प्रायः नित्य मलिन्द, महाराज हर्ष और महारानी मृणालिनी से मिलती रहती थी। मलिन्द वीणा-वादन करती थी। पत्रलता उसे पान खिलाती थी। जिस दिन भी वह जाती थी, वह कुछ लिखकर उसको देने के लिए साथ ले जाती थी और कुछ लिखा हुआ उससे ले आती थी।

दोनो मे यह पत्र-व्यवहार इस विषय पर चलता रहा कि मलिन्द महाराज से विवाह कर ले तो महाराज उसे पटरानी घोषित कर देंगे और उसकी पुत्र-सन्तान के होने पर, उसे राजगद्दी पर बैठाएँगे। मलिन्द का सदैव स्पष्ट उत्तर यह रहता था कि वह विष खाकर जीवन देना स्वीकार कर लेगी, परन्तु यह विवाह नहीं करेगी।

पश्चात् पत्रलता ने पूछा कि वह कहाँ जाना पसन्द करेगी। क्या उसके पिता को सूचित कर दिया जाय? क्या उनके पास इतनी शक्ति है कि सूचित करने पर वे उसे छुडा सकेंगे? मलिन्द ने उत्तर मे कहा कि वह अपने गुरु अग्निमित्र के पुत्र, पुरुरवा से प्रेम करती है, पत्रलता उसे मुक्त कराकर उनके पास भेज दे तो जीवन-पर्यन्त उसकी आभारी रहेगी।

महाराज हर्षवर्द्धन के साथ पत्रलता के वार्तालाप का भाव यह था कि महाराज मलिन्द के साथ उत्कट प्रेम करने लगे थे। वे मृणालिनी को छोड मलिन्द को पटरानी बनाने को तैयार हो गए थे और उसके पिता तुवर को अमात्य पद पर नियुक्त करने का वचन देते थे। वे मलिन्द के लिए एक पृथक् राज्य-प्रासाद, अति विशाल सुसज्जित और अत्यन्त सुखकारक बनाकर देने को तैयार थे और उसके पुत्र को राजगद्दी देने को तैयार थे।

पत्रलता मलिन्द का उत्तर महाराज के पास लाती थी। मलिन्द का उत्तर इस प्रकार था कि पहिले उसे बन्धनों से मुक्त किया जाए, बन्दी की अवस्था मे वह विवाह कदापि स्वीकार नहीं करेगी। मुक्त करके उसके पिता को कन्नौज बुलाया जाए, उनसे क्षमा मॉगी जाए और पश्चात्

ही वह इस प्रस्ताव पर विचार करेगी।

महाराज हर्षवर्द्धन यह समझते थे कि इस प्रकार तो पक्षी उड़ जाएगा और वे हाथ मलते रह जाएँगे। उनका कहना था कि पहले विवाह हो जाए और पश्चात् वे मलिन्द की प्रत्येक बात मानने को तैयार हो जाएँगे।

मलिन्द ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। उसका कहना था कि यदि विवश कर उससे विवाह किया गया तो यह उसके साथ बलात्कार होगा।

इस प्रकार मलिन्द के विषय मे बातचीत हो रही थी कि एकाएक पत्रलता की बाण से भेंट हुई और पत्रलता ने जब यह जाना कि बाण कन्नौज से भाग रहा है तो उसने मलिन्द को उसके साथ भगाने का निश्चय कर लिया। पत्रलता ने बाण से इस प्रकार बात की थी, जिससे बाण यह समझा था कि पत्रलता उसके साथ भाग रही है और इस सब का रहस्य कन्नौज राज्य की सीमा पार जाकर खुलेगा। उसने बहुत विचारोपरान्त एक योजना बना डाली।

अगले दिन वह मलिन्द से मिलने गई तो अपनी योजना के अनुसार एक पत्र लिखकर ले गई, जो उसने जाकर मलिन्द को दे दिया। इसमें उसने लिखा—

"प्रिय राजकुमारी जी! मैं अभी तक यह प्रयत्न कर रही थी कि आप कन्नौज की महारानी बन जायें। मैंने महाराज को वचन दिया था कि यदि आपको स्वतन्त्र कर दिया गया तो आपको मैं कन्नौज में रहने को तैयार कर लूँगी। पश्चात् आपके पूज्य पिताजी को बुलाकर विवाह का प्रबन्ध भी कदाचित् हो जाएगा। महाराज ने मेरा विश्वास नहीं किया और विवाह हो जाने से पूर्व आपको मुक्त करने को तैयार नही हुए।

"अब इन प्रयत्नो के विफल हो जाने पर मैंने आपके यहाँ से भागने की एक योजना बना डाली है। योजना बहुत ही सावधानी से बनाई है। इस पर भी एक मनुष्य द्वारा बनाई जाने के कारण यह असफल भी हो

सकती है। असफल हो जाने की सम्भावना और उसके परिणाम समझ-कर ही राजकुमारी जी इसके लिए तैयार हो। इस योजना का विवरण मै अभी नही लिख सकती। यदि राजकुमारी अपने जीवन की होड़ लगाकर मुक्त होना चाहती हैं, तो स्वीकृति दे। योजना कार्यान्वित होने के काल के एक घडी पूर्व राजकुमारी को करने योग्य निर्देश दूँगी। राजकुमारी उस पर चलेंगी तो पूर्ण आशा है कि वे भागने मे सफल हो जाएँगी।"

उस दिन पत्रलता ने मलिन्द को पत्र दिया तो उसने उसे पढकर, बिना कुछ भी अधिक विचार किए 'हाँ' कह दिया। इसके पश्चात् पत्रलता ने मलिन्द को यह लिखा कि वह सदैव प्रसन्न रहना आरम्भ कर दे और चाय-चेटियो से मेल-जोल रखना आरम्भ कर दे। साथ ही वह महाराज के लिए प्रशंसात्मक शब्दों का प्रयोग आरम्भ कर दे।

विजयोत्सव के उपलक्ष मे चाय-चेटियो को पुरस्कार दे, यदि महा-राज मिलने का यत्न करे तो इन्कार न करे और शिष्टता की सीमा के भीतर रहकर महाराज से व्यवहार रखे, जिससे महाराज के मन मे आशा का अंकुर जम जाए। शेष का प्रवन्ध वह स्वय कर लेगी।

मलिन्द को यह बताकर पत्रलता महाराज से मिलने गई और महा-राज से उसने कहा, "महाराज! आपके लिए एक शुभ समाचार है। राजकुमारी ने यह इच्छा प्रकट की है कि यदि आप उससे विवाह करना चाहते हैं, तो आप स्वयं उससे मिल ले।"

महाराज ने प्रसन्न होकर कहा, "यह सत्य ही शुभ समाचार है; परन्तु एक बात है। क्या वह मेरा अपमान तो नही करेगी?"

"महाराज!" पत्रलता ने कहा, "मैने उसको बहुत समझाया है; यदि महाराज उसको पत्र लिखेंगे तो वह उसका उत्तर देगी। जहाँ तक मै समझ सकी हूँ, महाराज का तेज इतना है कि कोई भी स्त्री उसको अधिक काल तक सहन नही कर सकती। यदि महाराज ठीक ढंग से चले तो कोई कारण नही कि शीघ्र ही कुछ निर्णय न हो जाए।"

इस नई परिस्थिति से महाराज गम्भीर हो विचार करने लगे। उनको

विदित था कि उनकी बहिन राज्यश्री ने देवगुप्त की हत्या का प्रयत्न किया था। क्या उनके साथ भी कोई ऐसा प्रयत्न तो न होगा ? एक बात वे समझते थे कि देवगुप्त ने राज्यश्री के साथ विना उससे विवाह किए सम्बन्ध उत्पन्न करना चाहा था। राज्यश्री उस समय विधवा हो चुकी थी और नवीन विवाह कर भी नहीं सकती थी। वे ऐसी कोई बात विवशतापूर्वक करने को तैयार नहीं हैं। इस पर भी इस विषय में सावधान होना उचित मान उन्होंने यह संशय पत्रलता के सम्मुख रख दिया। उन्होने कहा, "अभी तो जो व्यवहार मलिन्द का मेरे साथ रहा है, उससे यह भी तो सम्भव है कि वह मुझे अपने आगार मे बुलवा कर मेरे ऊपर कोई घातक आक्रमण करने का प्रयत्न करे।"

"महाराज! इस विषय मे मैं क्या कह सकती हूँ। हाँ मै इतना जानती हूँ कि वह कई दिनों से आपके विषय मे कई प्रश्न पूछने लगी है। बातों में आपकी विजय-यात्रा का भी उल्लेख आया था। आपकी उदारता और विद्वानों के प्रति आपके अनुराग की भी बात हुई थी। मुझको तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मन मे परिवर्तन आरम्भ हो गया है।"

"तो मैं उसको पत्र लिखूँ अथवा प्रतिहार के हाथ सन्देश भेजूँ ?"

"महाराज! सन्देश भेजिए। प्रतिहार के स्थान चाय-चेटियो की नायिका इसके लिए उपयुक्त रहेगी।"

महाराज ने पत्रलता की राय के अनुसार चाय-चेटियों की नायिका दीप्ति के हाथ सन्देश भेज दिया कि वे राजकुमारी मलिन्द से मिलकर कुछ निवेदन करना चाहते हैं, उनको इसके लिए अवसर दिया जाए।

राजकुमारी इस सन्देश से आश्चर्यचकित हुई, पश्चात् इसमे भी पत्रलता की योजना का हाथ समझ उसने दीप्ति को सन्देश दे दिया, "महाराज से मेरा प्रणाम देकर कहना कि मुझे महाराज के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी। परन्तु शिष्टता की सीमा का पालन करना अत्यावश्यक है। यदि महाराज ने कुछ भी अनीति की तो मै प्राणान्त कर लूँगी।"

यह सूचना महाराज के पास पहुँची तो वे स्वय मलिन्द के सम्मुख उपस्थित हो गए। मलिन्द प्रत्येक बात पत्रलता के सकेत पर कर रही थी। यद्यपि वह समझती थी कि इतनी चायचेटियो के रहते, किस प्रकार वह मुक्त हो सकेगी, इस पर भी इस समय सिवाय पत्रलता पर विश्वास रख कार्य करने के अन्य कोई चारा न था।

अतएव जब महाराज आए तो उसने उनका पूजागृह में स्वागत किया। उनको उच्च आसन पर बैठाकर स्वयं सामने खडी हो गई। महाराज हर्षवर्द्धन सामने खड़ी मलिन्द के सौन्दर्य को देख मुग्ध हो उसको देखने लगे। यद्यपि मलिन्द ने कुछ भी शृंगार नही किया हुआ था, इस पर भी वह अद्वितीय सुन्दरी प्रतीत हो रही थी। महाराज को इस प्रकार अपनी ओर घूरते देख मलिन्द ने उनका ध्यान भग करने के लिए कहा, "महाराज ने दर्शन देने की कृपा किस अर्थ की?"

"मैंने अपना आशय देवी पत्रलता के द्वारा भेज दिया था। राजकुमारी ने इसका उत्तर आशाजनक नही भेजा। इस कारण मैंने यही उचित समझा कि स्वयं उपस्थित होकर निवेदन करूँ।

"जब से मैने राजकुमारी को देखा है, मै उनसे विवाह के लिए लालायित हो रहा हूँ। देवी! मै विश्वास दिलाता हूँ कि मै तुमसे उत्कट प्रेम करने लगा हूँ। एक क्षण के लिए भी मुझे तुम विस्मरण नहीं हो पातीं। मैं राजकुमारी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझ पर कृपा करे। मैं अत्यन्त आभारी हूँगा। इससे मेरा कल्याण होगा और साथ ही मेरे राज्य और देश का भी।"

"मै महाराज के मनोभावो को समझती हूँ; परन्तु मेरा निवेदन है कि यह समस्या इतनी सुगम नहीं, जितनी महाराज समझते है। बन्दी किए जाने से पूर्व मै किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती थी। यही कारण था कि देवी पत्रलता के सब सन्देशो को मैं अस्वीकार करती रही थी। मुझको महाराज के प्रासाद मे आए एक मास से ऊपर हो चुका है। इतने काल मे मेरे प्रेमी ने मुझे छुड़ाने का कुछ भी उपक्रम किया प्रतीत

नहीं होता। इस कारण मैं विचार करती हूँ कि जो मेरी रक्षा नही कर सकता, वह मेरा स्वामी कैसे बन सकता है !

"मुझको यह ज्ञान नहीं था कि मैं अति सुन्दर हूँ और वास्तव में मेरी रक्षा करनी अति दुस्तर है। पत्रलता ने कई प्रमाण और उदाहरण देकर मुझे समझाया है कि मुझमे वास्तव मे विशेष सौन्दर्य है, इस कारण मेरे सौन्दर्य की रक्षा का भार भी किसी विशेष व्यक्ति के पास रहना चाहिए।

"इस पर भी मै यह देखना चाहती हूँ कि मेरे साथ बन्दियो जैसा व्यवहार तो उचित नहीं। कदाचित् यह मुझ पर अविश्वास के कारण है। आज मैं एक बात विचार कर रही हूँ। मै आपके मन पर इस बात का विश्वास बैठा दूँ कि मै स्वेच्छा से भी यहाँ रह सकती हूँ। तब तो मै बन्दी नहीं रहूँगी। इस पूर्ण प्रक्रिया मे श्रीगणेश तो आपको ही करना चाहिए। आप मुझसे मिलने का अवसर निकालिए। यदि आप मेरे मन मे कुछ भी अनुराग उत्पन्न कर सके, तो फिर मैं अपने को आपकी बन्दी न समझ, आपके प्रेम-बन्धन मे बँधी हुई समझने लगूँगी। पश्चात् ही मै आपके साथ विवाह के प्रस्ताव पर विचार कर सकती हूँ।"

"यह कार्य तो सुगम है। मैं अपने को सौभाग्यवान् मानूँगा, यदि राजकुमारी मुझे प्रतिदिन कुछ समय देकर मुझे सेवा का अवसर देगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मै राजकुमारी को विश्वास दिला सकूँगा कि मैं उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर ही नही हूँ, प्रत्युत् उसकी रक्षा करने मे भी समर्थ हूँ।"

इस वार्तालाप के पश्चात् महाराज को समझ आया कि राजकुमारी के इस मनोपरिवर्तन मे पत्रलता का बहुत बड़ा हाथ है। इस कारण उसने अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए पत्रलता को वस्त्र-भूषणादि पुरस्कार मे दिए और साथ ही राजकुमारी मलिन्द को भी अपनी प्रथम भेट एक मणि-माणिक्य-जड़ित माला भेज दी।

: १४ :

उत्सव आरम्भ हुआ और प्रत्येक कार्य बडी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। कन्नौज-राज्य की प्रजा, जो लक्ष-लक्ष सख्या में इन उत्सवो में उपस्थित होकर भाग लेती रही थी, अत्यन्त उत्साहित प्रतीत होती थी। मनोरजन आदि सम्पूर्ण कार्यक्रम सफल हुए और प्रजागणो ने पागलो की भॉति प्रसन्नतापूर्वक इनमे भाग लिया।

सार्वजनिक सभा मे हर्षवर्द्धन ने अपनी विजय का विवरण दिया। उसने कहा, "इस समय हम ब्रह्मपुत्र नदी से लेकर सिन्धु-तट तक सब राज्यो से मैत्री की सन्धि किये हुए हैं और सब राज्य हमे अपना ज्येष्ठ समझते हैं तथा हमे कर देते है। इस प्रकार हमारा राज्य पूर्ण भारत-खण्ड मे विस्तृत हो गया है।

"हमने अगणित धन-सम्पदा इस विजय-यात्रा मे एकत्रित की है। उसका एक भाग तो हम इस आनन्दोत्सव मे जनता के लिए व्यय कर रहे है। यह व्यय किया जा रहा धन, उस प्राप्त धन का एक छोटा-सा अंश-मात्र है। शेष धन हमारे कोप में है, जिसका मूल्याकन करोडो मुद्राओ के तुल्य होगा। इस पर भी हम समझते है कि यह धन हमारी प्रजा का है और हमें इसे प्रजा में ही बॉट देना चाहिए। इस कारण हम घोषणा करते हैं कि आगामी मकर-सक्रान्ति के दिन यह धन हम प्रजा मे वितरित कर देगे। हम पूर्ण राज्य-भर के नागरिको मे यह घोषणा करते हैं कि जिसको जो कुछ भी चाहिए, उस दिन प्रयागराज, त्रिवेणी मे उपस्थित हो। हम सबको सामर्थ्यानुसार देगे।"

इस घोषणा को सुन प्रजागण महाराज की जय-जयकार करने लगे। इसी दिन विशेष सभा मे बाणभट्ट ने महाराज की प्रशसा मे उनको 'परमेश्वर, महाराजाधिराज, पुरुषोत्तम, सकल राजचक्र चूडामणि, सर्व-देवावतारभिवैकत्र' की उपाधि दी और महाराज की समर यात्रा के विषय मे कहा, "हूण हरिण केसरी, सिन्धुराजज्वरो, गुर्जर प्रजागरो, गान्धाराधिप गन्धद्विप पाकल, लाटपाट वपाटश्चरो, मालव लक्ष्मीलता परशुः"

(हूण रूपी हिरणो के लिए सिंह, सिन्धुराज के लिए ज्वर, गुर्जर प्रदेश वालो के लिए नींद भंग करने वाले, गान्धारराज-रूपी पदगन्धी हाथी के लिए घातक महामारी, लाटो की चचलता अथवा पटुता को हरने वाले और मालव देश-रूपी लता की श्री नष्ट करने वाले परशु, महाराज हर्षवर्द्धन हैं।)

हर्षवर्द्धन इन प्रशंसा-सूचक शब्दो को सुन मन में बहुत प्रसन्न हुआ और इसके लिए उसने बाण को सवा लक्ष स्वर्ण उपहार मे दिए।

उत्सव की तीनो रात्रि बाण के तीन नाटक होने वाले थे। नाटक के लिए मञ्च राज्य-प्रासाद के एक प्रागण में खड़ा किया गया था। बाण को, सवा लक्ष स्वर्ण पुरस्कार मिलने की घटना से, उसकी प्रशंसा बहुत बढ गई थी। इस प्रशसा के कारण प्रजा बाण के दर्शनो के लिए व्याकुल हो उठी। इस कारण अन्तिम नाटक के दिन जन-साधारण को भी राज्य-प्रासाद के उस प्रागण मे आने की स्वीकृति मिल गई।

अन्तिम दिन हर्षवर्द्धन ने पत्रलता को बुला भेजा और कहा, "देवी ! हमारी यह उत्कट अभिलाषा है कि यदि देवी मलिन्द स्वीकार करे, तो इस अन्तिम नाटक के उपरान्त हम यह घोषणा करवा दे कि देवपुत्र तुवर की कन्या कुमारी मलिन्द के साथ हमारा विवाह निश्चित हो रहा है।"

"महाराज ! मुझको कविवर बाणभट्ट के नाटको मे व्यस्तता रही है। इस कारण मै राजकुमारी से मिलने जाकर भी उनकी मानसिक अवस्था का अनुमान भली भाति नहीं लगा सकी। श्रीमान् तो अवश्य मिले होंगे। राजकुमारी का इस विषय मे क्या विचार है ?"

"मै चाहता हूँ कि देवी इस स्वीकृति मे साक्षी रहे। इस कारण मैने उल्लेख नहीं किया। चाय-चेटियो की नायिका दीप्ति राजकुमारी से मिलती रहती है। इस पर भी मै समझता हूँ कि तुम उससे मिलकर निर्णय करो।"

"अच्छी बात है। मैं राजकुमारी जी से मिलने जा रही हूँ और

जो-कुछ भी निश्चित होगा, श्रीमान् महाराज की सेवा मे निवेदन कर दूँगी।"

जब पत्रलता महाराज के आगारो मे से निकल कर मलिन्द के कक्ष की ओर जाने लगी, तो महारानी मृणालिनी की एक दासी ने उसके साथ-साथ चलते हुए कहा, "देवी! महारानी जी को कुछ पानो की आवश्यकता है। क्या अभी चल सकती हैं?"

पत्रलता उस दासी का मुख देखने लगी, तो उसको दासी की आँख मे एक चमक दिखाई दी। वह खडी हो गई और विचार करने लगी। पश्चात् उसने कहा, "मुझे महारानी जी की सेवा करने मे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।"

"तो चलिए मेरे साथ। महारानी जी देवी की प्रतीक्षा कर रही है।"

पत्रलता दासी के साथ सीधी महारानी के निजी आगार मे जा पहुँची। महारानी ने दासी को बाहर जाने का आदेश दिया। दासी के जाने के पश्चात् पत्रलता ने पूछा, "महारानी जी क्या चाहती हैं? आजकल इस आनन्दोत्सव के कार्य मे भाग लेने के कारण मै पान नहीं लगाती।"

"मुझको पान की आवश्यकता नही। मुझको चिन्ता इस बात की है कि महाराज मलिन्द से विवाह करने मे सफल हो रहे प्रतीत होते है।"

"कुछ-कुछ मुझको भी ऐसा ही भास हो रहा है। महाराज इस विषय में आज नाटक के उपरान्त जन-साधारण मे कुछ घोषणा भी करना चाहते हैं।"

"परन्तु देवी! तुम तो कहती थी कि मलिन्द महाराज से विवाह के लिए कदापि तैयार नही होगी।"

"वह मेरा अनुमान था, महारानी जी! ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा अनुमान असत्य सिद्ध हो रहा है।"

"क्या इसमे अब कुछ नहीं हो सकता?"

पत्रलता ने कुछ क्षण गम्भीरतापूर्वक सोचते हुए कहा, "यत्न तो

अभी भी किया जा सकता है। इस पर भी मेरा महारानी जी से निवेदन है कि महारानी जी को महाराज के विवाह मे आपत्ति करने मे कोई कारण नहीं होना चाहिए। महारानी जी के कोई सन्तान नही। इससे राज्य को हानि होने की सम्भावना है। कदाचित् राजकुमारी मलिन्द राज्य को कोई उत्तराधिकारी दे सके।"

"मैने महाराज के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था कि मेरी छोटी बहिन से उनका विवाह हो सकता है। मेरी बहिन मुझसे कहीं अधिक सुन्दर है।"

"तो महारानी जी! आप उन्हे बुला क्यो नहीं लेतीं? उनके यहाँ आने से कार्य सुगम हो सकता है।"

"मेरी यही योजना थी; परन्तु इसमे समय लगेगा। शीघ्रता भी की जाय, तो इसमे एक मास तो लग ही सकता है।"

पत्रलता पुनः गम्भीर हो गई। कुछ देर तक सोचने के पश्चात् उसने कहा, "महारानी जी! मै यत्न कर सकती हूँ कि महाराज अपने विवाह की घोषणा कुछ काल के लिए स्थगित कर दे। वे अपने निर्णय के पूर्व महारानी जी की बहिन को भी देख ले।"

"मै देवी पत्रलता की सदैव आभारी रहूँगी।"

"इसके लिए महारानी जी! यदि मेरी कुछ सहायता कर दे, तो मेरा कार्य सुगम हो जायगा।"

"क्या सहायता चाहती हो, देवी!"

"अपना निजी रथ, बिना किसी भी व्यक्ति की जानकारी के आज रात के लिए मुझे मिल जाना चाहिए।"

"परन्तु देवी के पास विरोचना देवी की पालकी जो है?"

"आजकल उत्सव के कारण वह पालकी महामात्य के मेहमानो की सेवा मे लगी हुई है। साथ ही मुझे नगर से बाहर दूर कही जाना है।"

"कहाँ ले जाओगी रथ को?"

"यहाँ से पाँच कोस के अन्तर पर एक दीर्घिका है। उसके तट पर

एक महाकाल भैरव का मन्दिर है। वहाँ आज अनुष्ठान के लिए जाना है। यदि आज मैं राजकुमारी मलिन्द से भेंट करने गई, तो निश्चित इसमें विलम्ब हो जायगा और मेरा अनुष्ठान सम्पन्न नही हो सकेगा।"

"सुना है, महाकाल नर-मास खाता है और मद्य पीता है।"

"कालभैरव सम्पूर्ण संसार को खा रहा है। नर तथा पशु में उसे कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।"

महारानी कुछ क्षण तक विचार करती रही। पश्चात् बोली, "रथ किस समय और कहाँ चाहिए?"

"रात्रि के दूसरे प्रहर के आरम्भ होते ही महारानी जी के पिछवाडे वाले प्रागण में। सारथि को मेरा नाम न बताया जाय। न ही वह मुझे उस समय देखने अथवा मुझसे बात करने का यत्न करे। मै उस समय अर्ध-समाधिस्थ अवस्था मे हूँगी और किसी बात का उत्तर नही दे सकूँगी। मै वहाँ पहुँचूँगी और सीधी रथ मे जा बैठूँगी। सारथि को मेरे बैठते ही रथ हाँककर उत्तर के मार्ग से नगर के बाहर हो, हरिद्वार के मार्ग पर चल पडना चाहिए। नगर से पाँच कोस के अन्तर पर एक पुरानी दीर्घिका है। वहाँ एक कालभैरव का मन्दिर है। उसके सामने रथ खडा कर दिया जाय। मै उतर जाऊँगी और पश्चात् रथ वहाँ से सीधा नगर को वापिस लौट आए।

"यदि कालभैरव प्रसन्न हो गए, तो निश्चित् ही मलिन्द की मति मे परिवर्तन हो सकेगा।"

महारानी गम्भीर विचार मे बैठी रही। इस पर पत्रलता ने कह दिया, "यदि मैं आज मन्दिर मे जा सकी, तो निस्सन्देह आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।"

"कौन-सी मनोकामना?"

"यही कि महाराज तथा मलिन्द के विवाह की घोषणा एक मास के लिए रुक जाय।"

"क्या देवी मेरी सन्तान के लिए प्रयत्न नहीं कर सकतीं?"

"यह भी हो सकता है, परन्तु इसके लिए मुझको गुरुजी से कहना होगा। मेरा विचार है कि पहिले यह घोषणा स्थगित कराने का यत्न किया जाए। इस काल मे यदि गुरुजी आ गए, तो इस विषय पर विचार कर लिया जायगा। तब तक महारानी जी अपनी बहिन को बुलाने का यत्न करें।"

"परन्तु महाराज तो आज सायंकाल घोषणा करना चाहते है।"

"महाराज से कह दिया जायगा कि वे घोषणा कल सेना के सम्मुख करे। इसको रोकने का प्रयत्न तो हो जायगा और कल के लिए मै आज अनुष्ठान करूँगी।"

"अच्छी बात है। एक प्रहर रात गए तुम मेरे आगारो के पिछवाडे वाले प्रागण मे रथ को खडा पाओगी।"

"मुझे पूर्ण आशा है कि कल घोषणा रोकने मे मैं सफल हो सकूँगी।"

"तो ठीक है। देवता के सामने मेरी ओर से यह वचन देना कि अपनी मनोकामना सिद्ध होने पर मै स्वयं वहाँ अनुष्ठान करने पहुँचूँगी।"

"यह भी तो गुरुजी महाराज की कृपा पर निर्भर है।"

इतना कह पत्रलता उठ खडी हुई और प्रणाम कर जाने लगी। कुछ पग जाकर पुनः खड़ी हो उसने कहा, "सारथि को यह आदेश होना चाहिए कि वह मेरे से बात करने का यत्न न करे और उसको मेरे पहुँचने का स्थान भली भाँति बता दिया जाय, जिससे मार्ग मे मुझसे पूछने की आवश्यकता न पडे।"

"ऐसा ही होगा।"

पत्रलता इस प्रबन्ध से अति प्रसन्न हो, राजकुमारी मलिन्द के आगारो मे जा पहुँची। मलिन्द वाराह-मूर्ति के सम्मुख बैठी चिन्तन कर रही थी। पत्रलता गई तो उसका कुम्हलाया हुआ मुख खिल उठा। उसने पत्रलता से गले मिलकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। पत्रलता उसे संकेत से पिछले आगार मे ले गई और पश्चात् धीरे-धीरे कहने लगी,

"योजना पूर्ण हो गई है, राजकुमारी जी ! इसमें एक त्रुटि रह गई थी और वह अभी-अभी पूर्ण कर आई हूँ। मैंने अपने विचार से यह योजना त्रुटि-रहित बनाने की चेष्टा की है और मैं समझती हूँ कि आप इसमें सफल भी होगी। आगे भगवान् की इच्छा पर निर्भर है।

"साय होने से दो घडी पश्चात् नगर में दीपावली की शोभा को देखने के लिए आप प्रासाद की छत पर जाना चाहेगी; परन्तु वहाँ आपके स्थान आपकी दासी ही आपके वस्त्र पहने जायगी। उसके साथ आपकी दो अन्य दासियाँ दासियो के वस्त्र पहिनकर रहेगी। आप दासियो के से, वस्त्र पहिने हुए और उस पर मेरी यह लाल रंग की चादर ओढे, अपनी एक अन्य दासी के साथ आज रात नाटक देखने के लिए चली जायँगी। आप अपनी दासी की बाँह-मे-बाँह डालकर जायँ, जिससे देखने वाला यही समझे कि आप भी एक दासी-मात्र हैं।

"ठीक एक प्रहर पश्चात् आप महारानी के आगारो के पिछवाडे चली जायँ। वहाँ एक रथ खडा होगा। आपको उस रथ पर जाकर चुपचाप बैठ जाना है। आपका पूर्ण शरीर और मुख मेरी इस चादर से ढका होना चाहिए। सारथि को यह बता दिया गया है कि पत्रलता कहीं जा रही है। उसको यह भी बताया गया है कि पत्रलता अपने जाप मे लगी है और उससे किसी प्रकार की बातचीत नहीं करनी। वह आपसे कुछ नहीं पूछेगा। आपके बैठते ही वह नगर के उत्तर द्वार की ओर से निकल, हरिद्वार के मार्ग पर चल देगा। नगर से पाँच कोस के अन्तर पर एक दीर्घिका है और उसके पास ही महाकाल भैरव का मन्दिर है। रथ वहाँ जाकर ठहर जायगा और आप उसमे से उतर पडेगी। आप निर्भीकता से मन्दिर में प्रवेश कर जायँ। रथ आपको छोड़ नगर वापिस आ जाएगा।

"मन्दिर के अन्दर अन्धेरा होगा और आप उसमे छिप जायँ। रथ के वापिस चल पडने पर आप मन्दिर के द्वार पर, एक ओर पीपल के वृक्ष के नीचे खडी हो, एक अन्य रथ की प्रतीक्षा करे। उस रथ के आने पर आप उसमे चढ़ जाएँ। उसमे मेरे प्रेमी बाणभट्ट होंगे। वे

समझेंगे कि मै उनकी प्रतीक्षा मे हूँ। आपके रथ मे बैठते ही वह रथ भी राज्य की सीमा की ओर चल देगा और दिन निकलने तक राज्य की सीमा के पार हो जाएगा। तब आप कविवर को अपना परिचय दे दीजिएगा। वह आपको इच्छित स्थान तक पहुँचा देगा, अन्यथा आप स्वयं भी वहाँ से जा सकेंगी।

"कवि जी से कहियेगा कि मै उनकी कृपा के लिए जीवन-पर्यन्त आभारी रहूँगी। मेरी इच्छा है कि वे आपको किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ दे और मेरी वे नैमषारण्य मे जाकर प्रतीक्षा करे।

"भट्ट जी अति भद्र प्राणी है। एक बार राजकुमारी उनके रथ मे जा बैठीं तो फिर उनको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वे अपने जीवन के मोल पर भी आपकी रक्षा करेंगे।

"यदि भय मे कोई कारण है तो उस दीर्घिका तक पहुँचने मे ही है। उसके लिए राजकुमारी अपने साथ एक कटार अवश्य रख लें।

"कदाचित् दीर्घिका वाले मन्दिर मे पूजा चल रही होगी। राजकुमारी जी ने द्वार लाघ अन्धेरे मे छिप जाना है। इस पर भी यदि पूजा करने वालो मे से किसी ने आपको देख लिया तो आप निस्संकोच रूप मे कह दे कि पत्रलता के कहने पर वहाँ आई है और पत्रलता की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"देवी पत्रलता मेरे साथ नहीं चलेगी क्या?"

"नहीं, मै यहाँ से राजकुमारी के भागने के लिए प्रबन्ध करने का कार्य करूँगी।"

: १५ :

यह सब प्रबन्ध कर पत्रलता बाणभट्ट के गृह पर जा पहुँची। बाण-भट्ट भी अपनी तैयारी पूर्ण कर चुका था। पत्रलता को आया देख वह लपक कर उसके पास आया और उसे नमस्कार कर पूछने लगा, "ठीक है न?"

"हाँ कवि! सब प्रबन्ध हो गया है। मध्य-रात्रि तीन घड़ी रहते

उत्सव से खिसक कर आपको चल देना है। यहाँ से आपको सीधा रथ में बैठकर, दीर्घिका वाले मन्दिर पर पहुँच जाना चाहिए। रथ अत्यन्त वेग से जाना चाहिए और दो घडी-भर मे मन्दिर में पहुँच जाना चाहिए। यदि मार्ग में आपको कोई रथ मिले तो उससे किसी प्रकार की पूछगीछ न करिएगा। कदाचित् जिस रथ पर मैं जाऊँगी, वह रथ वापिस लौट रहा होगा।

"आपका, रथ मे काल-भैरव के मन्दिर पर पहुँचते ही, मै आपके रथ मे बैठ जाऊँगी। आपने तुरन्त उत्तर की ओर चल देना है। सूर्य निकलने से पूर्व ही सीमा पार कर लेनी चाहिए। सीमा पार कर हम अपना भावी कार्यक्रम बना सकेंगे।"

"अपना पूर्ण धन मैने महेश्वर सेट्ठी के पास जमा करा कर डेढ़ लक्ष स्वर्ण की हुडी ले ली है। उन्होने लिख दिया है कि कौशाम्बी मे उनकी दुकान से हुडी देखते ही मुझे धन दे दिया जाए। सीमा पार कर हमे कौशाम्बी जाना है। वहाँ से धन प्राप्त कर हम तुषार शैलभू मे एक सुन्दर छोटा-सा मकान बनवाकर रहेंगे।"

"इस विषय पर सीमा पार कर ही विचार करेंगे।"

"तो क्या तुम अभी ही काल-भैरव मन्दिर मे जा रही हो?"

"हाँ, आज अमावस की रात्रि है। अघोरी बाबा से अपना भविष्य जानने का यत्न करूँगी। परन्तु कवि भीतर नही आएगा। मै उसको मन्दिर के बाहर पीपल के वृक्ष के नीचे ही खडी मिलूँगी।"

"इसमे क्या कारण है? क्या मुझको अघोरी बाबा से आशीर्वाद लेने की आवश्यकता नही?"

"यह बात नहीं। मैं उनको बताना नहीं चाहती कि मै कवि से विवाह करने का विचार रखती हूँ। उन्होने कहा है कि यह इस जन्म में सम्भव नही। अतएव उनको बताने से वे मेरे उत्साह को भंग भी कर सकते हैं।"

बाण चुप कर गया और पत्रलता यह कह कर कि वह काल-भैरव

मन्दिर के बाहर उसकी प्रतीक्षा करेगी, चली गई।

वाण आज अपना अन्तिम नाटक खेल रहा था। नाटक था ज्ञान तथा कर्म। एक पण्डित के दो जुड़वा पुत्र थे। एक का नाम था ज्ञान और दूसरे का नाम था कर्म। ज्ञान अति विद्वान और विचारशील था और कर्म पहलवान और दृढ विचारो वाला था। पण्डित जी दोनो को पढाते थे। ज्ञान तुरन्त समझ जाता था और समझकर शंका समाधान करने के लिए प्रश्न-पर-प्रश्न करने लगता था। कर्म बात को समझ पाठ-शाला से बाहर आकर डण्ड पेलने और घी-दूध पीने लग जाता था।

पिता ने पढाया कि प्रकृति त्रिगुणात्मक और अष्टधा है। तीन गुण हैं सत्, रज, तम। आठ रूप है आदि प्रकृति, महातत्त्व, अहंकार तथा पाँच तन्मात्रा।

पण्डित जी ने कह दिया कि इनके अतिरिक्त आत्मा है और पर-मात्मा है। इस पर ज्ञान पूछने लगा, "परन्तु पिताजी! आत्मा की क्या आवश्यकता है? जब मन और इन्द्रियाँ प्रकृति का विकार है, तो प्रकृति से भिन्न आत्मा को मानने की क्या आवश्यकता है?"

"आवश्यकता का मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ? यह तो बनाने वाले को पता होगा।"

"बनाने वाला कौन है?"

"परमात्मा।"

"उसने सृष्टि क्यो बनाई है?"

"सृष्टि बनी तो प्रकृति के गुणाधीन।"

"तो फिर परमात्मा की आवश्यकता क्या रही?"

"यही तो मै कह रहा हूँ कि आवश्यकता को हम कैसे जान सकते हैं। यह तब जानी जा सकती है, जब हम प्रलय के उपरान्त, जो कुछ उस समय उपस्थित हो, उसको देख आजकी भाँति युक्ति करने की शक्ति रखते हो। आज जब सब-कुछ बना हुआ हमारे सामने उपस्थित है, हम नहीं कह सकते कि उस समय किस बात का अभाव था। यह अभाव

जानने से ही बनाने वाले की आवश्यकता का पता लग सकता है।"

"तो इस समय इस पर क्यो विचार किया जाता है?"

"इस कारण कि जब हम सृष्टि की उत्पत्ति और इसके कार्य करने पर विचार करते हैं, तो हमको कोई उसका निर्माता और सचालक मानना पड़ता है।"

"अर्थात् यदि मैं परमात्मा न मानूँ तो मेरी सृष्टि नहीं चल सकती?"

"नहीं।"

"यह असत्य है।"

कर्म अपने पिता और भाई ज्ञान मे यह विवाद सुन रहा था। जब ज्ञान ने कहा कि यह असत्य है तो कर्म ने एक घूसा ज्ञान की पीठ पर दे मारा। ज्ञान इससे तिलमिला उठा और अपनी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछने लगा, "कर्म! यह तुमने क्या किया है?"

"पिताजी को असत्यवादी कहने का दण्ड दिया है।"

"पर देखो न कर्म!......।"

कर्म ने उसे आगे बोलने नही दिया। उसकी बात बाच मे ही काटकर कहने लगा, "देखो ज्ञान! तुम मन मे कुछ भी विचार करो, परन्तु पिताजी को झूठा नहीं कह सकते।"

"पर मैं तो शास्त्र को झूठा......।"

"बस-बस चुप रहो। शास्त्र में लिखा है परमात्मा है। पिताजी ने कहा है परमात्मा है। तो फिर परमात्मा अवश्य है।"

"पर मैं कहता हूँ कि ऐसा मानने की आवश्यकता ही क्या है?"

"मानने में हानि भी क्या है?"

"मै तो व्यर्थ की बात मानने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"मेरा मुक्का भी व्यर्थ था क्या?"

"उससे पीडा हुई है।"

"पर जैसे यह मुक्का व्यर्थ नहीं था, वैसे ही परमात्मा व्यर्थ नहीं है।"

"यह कहाँ की युक्ति है ?"

इस प्रकार नाटक चलता गया। ज्ञान प्रत्येक बात का विश्लेषण करने लगता। कर्म सदैव विचार करता था कि क्या करना है और पश्चात् उसे कर देता।

ज्ञान की दृष्टि एक लड़की पर पड़ी। वह उसके सौन्दर्य को देख उस पर मोहित हो गया। उसने उस लड़की से कहा, "प्रमदा ! तुम बहुत सुन्दर हो। तुम्हारे इस पंचभौतिक शरीर मे तेज का समावेश कुछ अधिक है, अर्थात् तुम प्रकृति के रजोगुण की महान् स्वामिन् हो। देखो प्रमदा ! प्रकृति के तीन गुण हैं। सत्, रज, तम्। तेज और तम् मिल कर पंच महाभूतो की सृष्टि होती है और उन पंच महाभूतो मे तुम मे तेज की मात्रा अधिक है। यही कारण है कि तुम चंचल हो, गौर वर्ण हो। तुममें रक्त का संचार अधिक है। तुम्हारा शरीर हलका-फुलका है।"

जब ज्ञान उसके शरीर का वर्णन कर रहा था, वह एक उड़ती हुई तितली को पकड़ने को लपकी। तितली पकड़, उसे अपने हाथ की हथेली पर रख पूछने लगी, "ज्ञान ! इसमे प्रकृति का कौन-सा गुण अधिक है ?"

ज्ञान तितली को देख कर कहता है, "इसमे भी रजोगुण और तेजस् अहंकार का समावेश अधिक है।"

"तो यह तितली और मैं एक समान हो गए ?"

"हाँ, आधारभूत दोनो मे समानता है।"

इस समय प्रमदा तितली को उड़ा देती है और कहती है, "वह गया तुम्हारा तेज-पुंज और यह गई मैं।" ज्ञान तितली को पकड़ने के लिए लपकता है और प्रमदा मंच पर से चली जाती है। ज्ञान तितली को पकड़ कर, उसकी वैसी ही विवेचना करने लग जाता है, जैसे वह प्रमदा को देख कर कर रहा था।

प्रमदा और कर्म का साक्षात्कार होता है। कर्म उसे देख उस पर मोहित हो जाता है और उसे कहता है, "सुन्दरी ! तुम अनुपम हो।"

"तो।"

"मैं एक विद्वान ब्राह्मण हूँ और धन से सम्पन्न हूँ। तुमको सुखी रखूँगा।"

"तुम मुझको क्यों सुखी रखोगे?"

"इसलिए कि मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा।"

"तुम मुझसे प्रेम करोगे?"

"बहुत।"

"तो मैं तुमसे विवाह करूँगी।"

दोनों पण्डित जी के पास जाते हैं। ज्ञान वहाँ बैठा हुआ तितली की विश्लेषणात्मक विवेचना कर रहा है। इन दोनों को देख ज्ञान कहता है, "पिताजी! मैंने कहा था कि इस लड़की में तेज की मात्रा अधिक है। इससे यह रुष्ट हो चली गई थी।"

पण्डित जी प्रमदा से पूछते हैं, "देवी! किस अर्थ आई हो?"

"आपके सुपुत्र कर्म ने मुझसे प्रेम करने का और मुझे सदैव सुखी रखने का वचन दिया है। मैं इससे विवाह करने की स्वीकृति माँगने आई हूँ।"

"परन्तु वह तो पहलवान है। खाने और व्यायाम करने के अतिरिक्त और कुछ करना जानता ही नहीं।"

"परन्तु पण्डित जी! प्रेम तो करेगा ही। आपके दूसरे पुत्र की भाँति मेरे शरीर का विश्लेषण कर मुझमें तेज अंश की प्राचुर्यता ही सिद्ध करने में नहीं लगा रहेगा। आपका यह पुत्र कर्म करना तो जानता है। उसके साथ रहकर मैं भूखी नहीं रह सकती।"

"तुम्हारी यह धारणा ही तो असत्य है। तनिक इससे पूछो कि इसने अभी तक क्या कमाया है?"

प्रमदा प्रश्न भरी दृष्टि से कर्म की ओर देखती है। कर्म अपने पाँव तले से मिट्टी खिसकती अनुभव करता है। पश्चात् वह कहता है, "पिता जी! ज्ञान से ही पूछ लें कि उसने क्या कुछ कमाया है?"

पण्डित जी निरुत्तर हो जाते हैं। इस पर प्रमदा कहती है,

"पण्डित जी ! आप स्वीकृति दीजिए। मै इन्हे काम पर लगा दूँगी।"

इस पर ज्ञान कहता है, "पिताजी ! मै कर्म से बड़ा हूँ और संसार के गुण-दोषो को समझता हूँ। मैं इस सुन्दरी के गुण-दोष जानता हूँ। इस कारण इससे मेरा विवाह होना चाहिए।"

इस पर कर्म पूछता है, "ज्ञान ! कितने बड़े हो मुझसे ?"

"पिताजी कहते थे, एक घडी-भर।"

"बस ! पर खडे होकर देख लो। मैं तुमसे कितना ऊँचा हूँ।"

"पर तुम बुद्धि नही रखते। तुम्हे यह भी पता नहीं कि किस समय क्या भोजन करना चाहिए।"

"परन्तु मैं एक बात कर सकता हूँ, जो तुम नही कर सकते।"

"क्या ?"

"मैं प्रमदा का अपहरण कर सकता हूँ। मैं ऐसा कर उससे विवाह कर लूँगा। तुमसे यह नही हो सकेगा।"

"मैं भी तो अपहरण कर सकता हूँ।"

"तो करके दिखाओ।"

"चलो प्रमदा, मेरे साथ।" ज्ञान प्रमदा से कहता है।

"क्यो चलूँ ?" प्रमदा पूछती है।

"मैं तुम्हारा अपहरण करता हूँ।"

"तो कर लो।"

ज्ञान प्रमदा की बाँह पकड़कर उसको ले जाना चाहता है; परन्तु तुरन्त ही छोड़कर विस्मय मे प्रमदा का मुख देखने लगता है।

"क्यों, क्या हुआ है ?" प्रमदा पूछती है।

"तुम अत्यन्त ही कोमल हो। तुममे पृथ्वी का अंश बहुत कम है। वायु विशेष है।"

"तो फिर ?"

"तुम अस्वस्थ रहा करोगी। तुमको घी और अन्न अधिक मात्रा में खाना चाहिए। घी और अन्न श्रीखण्ड प्रदेश मे अच्छा मिलेगा, परन्तु

मेरा गृह तो मगध प्रदेश मे है।"

"तो फिर तुम मेरा अपहरण मत करो।"

"तुम ठीक कहती हो, परन्तु तुम अत्यन्त सुन्दर जो हो।"

पिता और कर्म हँसते हैं। कर्म प्रमदा की बाँह पकड़ता है और कहता है, "चलो प्रमदा, मेरे साथ।"

"कहाँ?"

"विवाह रचाने।"

"पिताजी से पूछ तो लो।"

"विवाह के पश्चात् पूछ लेगे। वे तो पिता ही है, स्वीकृति दे देगे।"

दोनो मंच से बाहर हो जाते हैं।

ज्ञान दोनो को जाता हुआ अवाक् मुख देखता रह जाता है।

पण्डित जी पूछते हैं, "ज्ञान बेटा! क्या देख रहे हो?"

"यह मूर्ख कर्म अपना जीवन नष्ट तो करेगा ही, साथ ही प्रमदा को गड्ढे मे गिरा देगा।"

"तो फिर क्या किया जाए?"

"उनको समझाना चाहिए। पिताजी! मूर्खों को पथ दिखाना विद्वानो का कर्तव्य है।"

"परन्तु पथ दिखाने के लिए कर्म करना पडता है। अतएव विद्वानो को कर्म तो करना ही पड़ेगा।"

"परन्तु मैं तो अभी विचार ही रहा था कि प्रमदा को, विवाह के उपरान्त कहाँ, किस देश में रखना उचित रहेगा कि वह उसे ले भागा है।"

"ठीक है, परन्तु तुमने विचार करने मे विलम्ब जो कर दिया था।"

"परन्तु प्रमदा को इतनी शीघ्रता नहीं करनी चाहिए थी।"

"अब क्या हो सकता है?"

दोनो मंच पर से चले जाते हैं।

अगले दृश्य मे प्रमदा और कर्म दोनो पति-पत्नी के रूप मे एक गृह मे दिखाई देते है। कर्म पीठ पर गठरी रखते हुए गृह मे आता है। उस गठरी मे आभूषण एवं वस्त्र हैं। प्रमदा उन्हे देखती है और कहती है, "आप तो गाय खरीदने गए थे, जिसका दूध पीकर मैं और मेरा होने वाला बच्चा, दोनो स्वस्थ हो जाते।"

"हाँ, गया तो गाय खरीदने था, परन्तु मार्ग मे जौहरी की दुकान पर दृष्टि पड़ गई। मैंने सोचा कि यह कठी तुम्हारे गौर वर्णीय कठ पर बहुत ही सुन्दर दिखाई देगी। सो यह ले ली। पश्चात् धन इतना कम बचा कि गाय क्रय नहीं कर सकता था। इस कारण शेष के कपडे बनवा लाया। विचार आया कि इनकी भी तो आवश्यकता पडेगी।"

"परन्तु अब मुझे भूख लगी है। मेरे पेट मे बच्चा भी तो भूखा है।"

"अच्छा तो अभी बाजार जाता हूँ और कुछ दूध तथा अन्न ले आता हूँ।"

"हाँ, शीघ्र जाओ।"

कर्म जाता है और पण्डित जी तथा ज्ञान आ पहुँचते हैं। ज्ञान पूछता है, "भाभी! तुम कुछ उदास प्रतीत होती हो?"

"हाँ, तुम्हारा भैया गाय खरीदने गया था और खरीद लाया है यह आभूषण और वस्त्र। मुझे लगी है भूख। बताओ इन कपडो से भूख मिटेगी? यही विचार कर रही थी।"

"तो कम अब कहाँ है?"

"बाजार से दूध और अन्न खरीदने गया है।"

इस समय कर्म वापिस आ जाता है। प्रमदा प्रश्न-भरी दृष्टि मे उसकी ओर देखती है। कर्म कहता है, "धन तो सारा आभूषण और वस्त्र खरीदने मे व्यय हो गया। दूध और अन्न के लिए मेरे पास धन नहीं। हलवाई और दुकानदार विना मूल्य के कुछ देता नही।"

"तो?"

"तुम्हारे पास कुछ रजत हो तो दे दो।"

"मेरे पास तो कुछ नहीं है।"

"तो फिर खाने के लिए कहाँ से लाऊँ ?"

"तो ये आभूषण और वस्त्र बेचकर ले आओ।"

"इससे तो बहुत हानि होगी। यह कंठी साठ रजत की मिली है। अब यह कठिनाई से तीस-पैंतीस रजत मे बिकेगी।"

"तो क्या करूँ ? भूख जो लगी है। मुझसे इस अवस्था मे भूखा नहीं रहा जाता।"

"तो जाता हूँ।"

कर्म कंठी उठाकर ले जाता है। परन्तु पण्डित जी उसे पुकारते हैं, "ठहरो कर्म !"

"क्या है पिताजी ?"

"प्रमदा ! चलो मेरे साथ। इस मूर्ख कर्मयोगी को ज्ञान की आवश्यकता है और ज्ञानयोगी को कर्म की। क्यो ज्ञान ! अब क्या करना चाहिए ?"

"ठीक है पिताजी ! भगवान् करे आपका पौत्र हो और सब प्रकार से सबल, सुन्दर और योग्य हो।"

यह नाटक का अन्त था।

नाटक समाप्त हुआ तो जनता बाणभट्ट के दर्शनो के लिए लालायित हो उठी। महाराज हर्षवर्द्धन और महाप्रभु साथ-साथ ही बैठे थे। अवलोकितेश्वर जी ने कहा, "क्या सुन्दर रचना की है बाण कवि ने ! जनता का दर्शनो की माँग करना उचित ही है।"

"परन्तु वह है कहाँ ?"

"नाटककार उसे ढूँढ रहे प्रतीत होते हैं।"

महाराज ने समीप खडे प्रतिहार को कहा, "जाकर बाण कवि से कहो कि शीघ्र मच पर आकर दर्शको की लालसा पूरी करे।"

प्रतिहार मंच के पीछे बाण को बुलाने चला गया। महारानी

ने कहा, "भगवान् वासुदेव के गीता मे दिए गए उपदेश की व्याख्या ही इस नाटक मे है। कर्महीन मनुष्य श्री को नहीं पा सकता और केवल कर्मयोगी इसको पाकर अपने पास सुरक्षित नही रख सकता। ज्ञान और कर्म, जिसका दूसरा नाम पुरुषार्थ है, का समन्वय ससार मे सफलता लाने वाला होता है।"

इस पर अवलोकितेश्वर जी ने कह दिया, "यह महायान की हीन-यान पर श्रेष्ठता प्रकट करता है।"

इस पर महारानी मृणालिनी हँस पडी।

बाण भट्ट को काफी ढूँढा गया, परन्तु वह नही मिला। दर्शकों को निराश होना पडा।

षष्टम् परिच्छेद

: १ :

शकारादित्य ने नालन्द मे एक साधारण विहार की स्थापना की थी। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह के समीप, नालन्द गॉव एक पहाडी पर था। वहॉ के विहार मे नवयुवक भिक्षुओं को शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था।

जब महात्मा बुद्ध अपनी विचारधारा का प्रचार विद्वत्-समाज मे नहीं कर सके, तब उन्होंने देश की जन-साधारण की नित्य बोली जाने वाली भाषा मे उसका प्रचार करना आरम्भ कर दिया। यह भाषा पाली थी। इस समय तक पाली एक गॅवारू भाषा मानी जाती थी। इसका प्रचलन ग्राम-देहातो मे तथा अनपढ जनता के दिन-प्रतिदिन के कार्य के लिए होता था।

इसके साथ ही वेद, पुराण, उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थ, जो केवल संस्कृत भाषा मे ही मिलते थे, को पढना भ्रममूलक और अशुद्ध विचारधारा वाला मान त्याज्य कह दिया गया। भिक्षुओं के लिए ससार एक त्याग के योग्य स्थान होने से पढना-लिखना अनावश्यक समझा गया। परिणामस्वरूप चैत्य-विहार आलस्य और प्रमाद के अड्डे बन गए।

बौद्ध-प्रचार के विस्तृत होने पर ब्राह्मणो ने इस विचारधारा का खण्डन आरम्भ कर दिया। बौद्धो को उनकी युक्तियो का उत्तर देने के लिए साहित्य, पुराणादि ग्रन्थो का पटन-पाठन करना पडा। इस समय बौद्ध-चैत्यो मे युवा भिक्षु एवं भिक्षुणियो को पढ़ाने का प्रबन्ध होने लगा।

यह पठन-पाठन का कार्य महाराज अशोक के काल में विस्तार पा गया। इस काल मे नालन्द-चैत्य मे पढ़ने-पढ़ाने का प्रबन्ध हुआ। इस पर भी जो कुछ इस काल मे लिखा गया, वह पाली भाषा मे था और यह सत्य ही प्रतीत होता है कि इस काल के, पाली भाषा मे बौद्ध-साहित्य को लिखने वाले प्रायः संस्कृत-साहित्य से अनभिज्ञ ही थे। यही कारण है कि जातको मे प्रायः पौराणिक गाथाएँ अति विकृत रूप मे लिखी गई और सीता को राम की बहिन इत्यादि भ्रान्तिकारक कथन जातको मे घुस गए।

अशोक काल के पश्चात् देश मे अव्यवस्था फैल गई। विदेशियो के आक्रमण आरम्भ हो गए। ज्ञान-विज्ञान और साहित्य की प्रगति रुक गई।

ब्राह्मण, जो लिखने और पढ़ाने मे अपना उत्साह सस्कृत-साहित्य से पाते थे, वे अशोक के काल मे हीन तथा दीन कर दिये गए। जो कुछ साहित्य पाली भाषा मे बौद्ध-भिक्षुओ ने लिखा, वह न केवल अशुद्ध और निम्न-कोटि का था, प्रत्युत् वह देश और जाति की दासता की शृङ्खलताओं मे सुख-चैन अनुभव करने की प्रेरणा देने वाला सिद्ध हुआ।

गुप्त काल मे देश का पुनरुद्धार हुआ। इस परिवार के राजा ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानो को प्रोत्साहन देने वाले बन गए। परिणाम यह हुआ कि भारत-इतिहास का यह काल कला, साहित्य और ज्ञान के लिए स्वर्ण-युग बन गया। जनता की दृष्टि जातको से हटकर पुनः वेद, ब्राह्मण आदि ग्रन्थो की ओर आकर्षित होने लगी। यही काल था, जब कालिदास इत्यादि कवियो का देश मे प्रादुर्भाव हुआ। शंकर और कुमारिल इसी काल में वैदिक मीमासा की धूम मचाने वाले उत्पन्न हुए और पुनः भारत की सभ्यता एक ओर जावा, सुमात्रा और कदाचित् जापान, चीन और पाताल (अमेरिका) इत्यादि देशो मे और दूसरी ओर ईरान, अरब, मिश्र, रोम मे फैलने लगी।

इस काल में नालन्द केवल बौद्ध-साहित्य के पठन-पाठन का स्थान

न रह कर भारतीय संस्कृति के विस्तार का केन्द्र बन गया। नालन्द में संस्कृत के पठन-पाठन का भी प्रबन्ध हो गया और प्राचीन साहित्य का अध्ययन भी आरम्भ हो गया।

इस ज्ञान के आश्रय बौद्ध सम्प्रदाय ने भी नवीन रूप धारण किया। यह रूप महायान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महायान हीनयान से दो बातो मे विलक्षण था। एक तो महायान में यह माना गया कि निर्वाण-प्राप्ति ससार के त्याग न करने पर भी हो सकती है। सासारिक कार्यों मे लीन रहते हुए भी और संसार का भोग करते हुए भी भगवान् तथागत् द्वारा प्रतिपादित जीवन-चर्या चल सकती है। दूसरी विलक्षणता यह थी कि महात्मा बुद्ध के, इस अन्तिम जन्म से पूर्व, कई जन्म मान लिये गए और इन जन्मो की गाथाएँ प्रचलित कर दी गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्यों ने अन्य अवतारो की परम्परा मे अन्तिम अवतार सम्पूर्ण कलाओ से पूर्ण भगवान् बुद्ध को मान लिया।

बौद्ध-महायान विचारधारा का विस्तार नालन्द में ही हुआ। गुप्त-काल के पश्चात् नालन्द केवल बौद्ध-चैत्य ही नहीं रहा था, प्रत्युत् एक विशाल विश्वविद्यालय बन गया था। इससे नालन्द की ख्याति इतनी बढ़ी कि विदेशो से भी विद्यार्थी यहाँ आने आरम्भ हो गए। ऐसा अनुमान था कि उस काल मे प्रति सौ विद्यार्थियो के पीछे बीस से अधिक विद्यार्थी विदेशीय होते थे।

इस काल मे, जिसका हम इतिहास लिख रहे हैं, नालन्द मे सैकड़ों की संख्या मे चीन देश से आए विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य से इस विश्वविद्यालय के लिए धन आता था और लगभग तीस सहस्र विद्यार्थी यहाँ भोजन, वस्त्र और शिक्षा निःशुल्क पाते थे। विदेशी विद्यार्थियो को भी यहाँ वे सब सुविधाएँ प्राप्त थीं, जो भारत के विद्यार्थियों को थीं।

जब हर्षवर्द्धन कन्नौज के राजसिंहासन पर आसीन हो, भारत के पश्चिमोत्तरी देशो की विजय-समर पर गया हुआ था, तब वह नालन्द मे

एक विवाद का विषय बन गया था। यह माना जाता था कि महाराज हर्षवर्द्धन बौद्ध-विचारधारा का अनुयायी है। यह सब को ज्ञात था कि स्थानेश्वर और कन्नौज मे बौद्ध-चैत्य देश के अन्य राज्यो से अधिक धन-धान्य से पूर्ण है। महाप्रभु बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर जी महाराज का यह प्रताप माना जा रहा था कि हर्षवर्द्धन दो राज्यो का अधिष्ठाता होकर तथा शक्तिशाली बनकर भी किसी पड़ौसी राज्य पर आक्रमण नहीं कर रहा है।

इस कारण जब यह समाचार मिला कि हर्षवर्द्धन की सेना श्रीकंठ राज्य की सीमा पार कर प्रमथस राज्य की सीमाओ पर पहुँच, उस राज्य से सन्धि कर गाधार की ओर चल पड़ी है, तो नालन्द के बौद्ध-पण्डितो मे यह एक विवाद का विषय बन गया। नालन्द मे छोटी-छोटी अनेकों गोष्ठियाँ बन गई, जो महाराज हर्षवर्द्धन की इस यात्रा पर टीका-टिप्पणी, समालोचना आदि करने लगी।

इन सब गोष्ठियो मे चीन का एक विद्यार्थी ह्वेन-साग महाराज हर्षवर्द्धन के पक्ष की पुष्टि कर रहा था। इस पुष्टि के कारण ह्वेन-साग की ख्याति बढ़ रही थी। इस चर्चा को सुन एक दिन नालन्द विश्व-विद्यालय के मुख्याचार्य शीलभद्र ने इस विषय पर वाद-विवाद रख दिया। ह्वेन-साग का पक्ष था कि एक राजा के लिए, दुष्टो के दमन तथा धर्म तथा सघ की जय कराने के लिए, युद्ध किसी प्रकार भी भगवान् तथागत् से प्रतिपादित सिद्धान्तो के विपरीत नही। जब वह युक्ति करता था, तो इसके विपक्ष के लोग कहते थे कि यही बात तो भगवान् कृष्ण ने अपने उपदेश भगवद्गीता मे कही है। तब ह्वेन-साग कह देता कि भगवान् कृष्ण भी भगवान् बुद्ध की भाँति निर्वाण-पद पर पहुँचा हुआ व्यक्ति था। अतएव दोनो के विचार और प्रचार मे समानता विस्मय-जनक नहीं होनी चाहिए।

विवाद खूब तीव्र चल रहा था। महात्मा बुद्ध की अपनी लिखी कोई प्रमाणित पुस्तक नहीं थी। भगवान् तथागत् के शिष्यों द्वारा

संकलित भगवान् के प्रवचन ही थे, जो पक्ष-विपक्ष के विद्वान् उपस्थित करते थे। भगवान् के शिष्य अनेक थे और भगवान् के प्रवचन भी अनेक थे। वे भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे दिये गए थे। अतएव उन शिष्यो द्वारा प्रचारित प्रवचन भिन्न-भिन्न अर्थवाचक हो गए थे। यही मुख्य कारण था महायान और हीनयानियो मे विवाद छिड़ने का।

ह्वेन-साग द्वारा महाराज हर्षवर्द्धन के समर को धर्म-युद्ध का नाम दिये जाने से एक बात अवश्य हुई कि ह्वेन-साग की ख्याति अत्यन्त बढ़ गई।

: २ :

नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित महायान ही ह्वेन-साग का प्रिय विषय बन गया। यूँ तो यह स्पष्ट ही था कि भगवान् बुद्ध के मत मे भगवान् कृष्ण का गीता मे दिया हुआ मत मिलकर ही महायान-पथ बना है। इस पर भी रूढिवादी बौद्ध मानते थे कि बौद्ध-धर्म के सार्वभौमिक विस्तार के लिए महायान ही स्वीकार करना होगा। उनको यदि आपत्ति थी तो यह कि महायान को भगवान् बुद्ध के नाम के साथ यदि न जोडा गया, तो भगवान् बुद्ध की महिमा कम पड जायगी।

ह्वेन-साग का कहना था कि महायान को भी भगवान् तथागत् के नाम से ही प्रचारित करना चाहिए। इस प्रकार महायान शीघ्रता से संसार मे फैलेगा। अतएव उसका पक्ष यह था कि हर्षवर्द्धन ने किंचित् मात्र भी भगवान् बुद्ध से प्रतिपादित धर्म का विरोध नहीं किया; भगवान् बुद्ध बौद्ध-धर्म के महायान पथ का ही प्रचार करते थे।

जिन दिनो यह वादविवाद नालन्द विश्वविद्यालय मे चल रहा था, उन दिनो हर्ष अपनी समर यात्रा से लौट आया था और कन्नौज मे विजयोत्सव सम्पन्न हो रहा था। इस उत्सव पर की गई घोषणा कि महाराज अपनी समर-यात्रा पर एकत्रित पूर्ण धन तथा अपनी पूर्ण सम्पत्ति मकर सक्रान्ति को प्रयागराज में त्रिवेणी पर दान में दे देंगे, पूर्ण भारत में

गूँज उठी। परिणाम यह हुआ कि देश भर के भिक्षु-भिक्षुणियाँ, ब्राह्मण, निर्धन, अपाहिज आदि प्रयागराज की ओर चल पड़े। प्रत्येक के मन मे महाराज से कुछ प्राप्त करने की लालसा जाग्रत हो उठी थी।

महाराज की यह घोषणा नालन्द विश्वविद्यालय मे भी पहुँची और इस पर भी विवाद चल पड़ा। प्रश्न यह था कि महाराज के मन मे क्या बात थी, जिससे उन्होने यह करने का निश्चय किया है। हीनयान वालो का कहना था कि महाराज हर्षवर्द्धन अपनी अन्तरात्मा मे यह अनुभव करते हैं कि उनकी समर-यात्रा एक अधर्म का कार्य था। इस अधर्म कार्य का प्रायश्चित् करने के लिए, वे उसके द्वारा प्राप्त पूर्ण धन दान मे देने की इच्छा करने लगे हैं।

महायान के पक्ष के लोग इसी बात को दूसरे शब्दो में कहते थे। वे कहते थे कि संसार मे रहने वाले जीव धनोपार्जन करते समय, धर्म-अधर्म मे भेदभाव नही कर सकते। अतएव धन का सदुपयोग ही धनोपार्जन मे सन्देहकारक उपायो के फल का निराकरण कर सकता है और धन का सबसे बढ़िया उपयोग दान करना है।

आर्य विचार धारा ऐसी नही थी। जब महाराज की घोषणा पर चर्चा चल पड़ी तो पद्मराज इस योजना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। प्राचीन काल मे अश्वमेध यज्ञ होते थे और ऐसे अवसरो पर राजा-महाराजा अपना सर्वस्व दान में दे देते थे, परन्तु इसलिए नही कि उनको अपने अर्जित धन सम्पदा के श्रेष्ठ होने मे सन्देह होता था। वे तो यह समझ कर दान देते थे कि उनकी कमाई धर्म और न्याय युक्त है और धर्म से अर्जित धन को धर्म-कार्यों मे व्यय करना है। इसके अतिरिक्त दान लेने के अधिकारी पर भी विचार-विनिमय होता था। ब्राह्मण जो विद्यादान का कार्य करता हो, अथवा कोई अंगहीन होने के कारण निर्धन हो, ऐसे लोग दान पाने की अधिकारी माने जाते थे।

इसके अतिरिक्त राज्य की अवस्था इतनी सुदृढ़ नहीं थी, जितनी कि चक्रवर्ती राज्य की होनी चाहिए थी। ऐसी अवस्था मे सर्वस्व दान तो

उचित प्रतीत नहीं होता था।

इस पर भी पद्मराज यह विचार करता था कि उसको महाराज के इस कार्य पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस कारण वह चुप ही था।

विजयोत्सव की अन्तिम रात्रि की घटना ने महाराज को चकित कर दिया। अगले दिन बहुत प्रातःकाल दीप्ति, जो राजकुमारी मलिन्द की रक्षा में नियुक्त चाय-चेटियो की मुखिया थी, महाराज से मिलने आई। उसने अन्तःपुर मे, जहाँ महाराज उस समय थे, सूचना भेजी तो महाराज ने उसे भीतर बुला लिया। महाराज तथा महारानी, दोनो वही बैठे थे।

दीप्ति ने झुककर प्रणाम किया और कहा, "महाराज भारी अपराध हो गया है।"

"क्यो क्या हुआ है ?"

"राजकुमारी मलिन्द लापता हैं।"

"कब से ?" महाराज ने उद्विग्न होकर पूछा।

"महाराज! नित्य की भाँति मैं प्रातःकाल ही राजकुमारी को नमस्कार करने गई थी। उनकी शैया खाली देख मैं उनकी दासियो से पूछने लगी तो वे रोने लगी। उनका कहना है कि राजकुमारी रात को एक प्रहर गए प्रासाद की छत पर, नगर मे हो रही दीपावली की शोभा देखने के लिए चढ़ी थीं। उनके साथ दो दासियाँ थीं। राजकुमारी ने उनमें से एक के कपडे पहिन लिए और दूसरी को साथ लेकर नाटक देखने चली गई।

चेटियो ने दोनो को दासी समझ रोका नहीं। नाटक देखते-देखते राजकुमारी भीड मे विलीन हो गई और दासी जब राजकुमारी को नहीं पा सकी तो वापिस लौट आई। तब से राजकुमारी नहीं लौटीं।"

यह कथा सुन महाराज कितने ही काल तक स्तब्ध बैठे रहे। पश्चात् यह विचार कर कि राजकुमारी अवश्य अभी तक नगर मे ही कहीं छिपी

बैठी होगी, उन्होंने राज्य-प्रासाद के रक्षक तथा नगरपाल को बुला भेजा। उनको यह आज्ञा दे दी कि देवपुत्र तुवर की लड़की मलिन्द नगर अथवा राज्य-प्रासाद मे कही छिपी है, उसको ढूँढना चाहिए।

दोनो को आदेश देकर महाराज ने महामात्य को बुला भेजा और उनके गुप्तचर विभाग को यह समाचार दे दिया। महामात्य ने भी खोज का वचन दिया।

महामात्य मन-ही-मन मलिन्द के भाग जाने से प्रसन्न था, परन्तु वह जिस चतुराई से भागी थी, उसकी जॉच करना चाहता था। वह इस घटना को इस प्रकार समझा था कि राज्य-प्रासाद मे ऐसा कोई व्यक्ति है, जिसने मलिन्द को भाग जाने मे सहायता दी है। महामात्य उस व्यक्ति को पकड़ना चाहता था, जिससे राज्य-प्रासाद के नियम भंग करने वाले को उचित दण्ड दिया जा सके।

इस विचार से उसने सबसे पहिले पत्रलता से यथा-सम्भव पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का विचार किया। पत्रलता अभी आचार्य जी के घर पर ही रहती थी। इस कारण महामात्य राज्य-प्रासाद से सीधा आचार्य जी के गृह पर पहुँच गया।

वह अभी आचार्यजी के घर के बाहर पहुँचा ही था कि पत्रलता भी एक रथ में वहाँ पहुँच गई। महामात्य को, पत्रलता को इतने सवेरे कहीं से आता देख, उस पर सन्देह हो गया। इस कारण उसने पत्रलता से इतने प्रातः कहीं बाहर जाने के विषय में पूछना आरम्भ कर दिया।

उसने पूछा, "पत्रलता! कहाँ से आ रही हो?"

"अघोरी बाबा ने दीर्घिका वाले मन्दिर मे बुलाया था। मैं वहाँ गई थी। वहाँ से लौटने लगी तो यह रथ गॉव से नगर को आता मिल गया। इसको भाड़े पर कर अभी-अभी-यहाँ पहुँची हूँ।"

इतना कह पत्रलता ने घूमकर सारथि को दो रजत भाड़ा देकर विदा कर दिया। महामात्य और पत्रलता आचार्य जी के गृह मे प्रवेश कर गए। महामात्य ने पूछा, "तुम काल-भैरव के मन्दिर मे कब गई थी।"

"एक प्रहर रात गए पर यहाँ से चली गई थी और मध्यरात्रि से पूर्व ही वहाँ जा पहुँची थी।"

"किस प्रकार गई थीं? क्या पैदल ही गई थीं?"

"नहीं, महारानी जी ने वहाँ पहुँचाने के लिए रथ दे दिया था।"

"क्यो, उनको क्या आवश्यकता पड़ गई थी कि तुम्हे वहाँ भेजती?"

"पिताजी! महारानी जी के रहस्य को मै कैसे बता सकती हूँ।"

"पत्रलता!" महामात्य ने कुछ कठोर स्वर मे कहा, "यहाँ एक भयानक घटना घट गई है। मुझको भय है कि उस घटना मे तुम्हारा हाथ है। यदि तुम स्पष्ट नहीं बताओगी तो मेरे सन्देह की पुष्टि करोगी।"

पत्रलता ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "क्या घटना हो गई है?"

"पहले तुम बताओ कि महारानी ने तुम्हे वहाँ क्यो भेजा था?"

"मै अपनी इच्छा से जा रही थी। महारानी जी मेरे द्वारा राजकुमारी मलिन्द को कुछ सन्देश भेजना चाहती थीं। मैंने कह दिया कि मुझे नगर के बाहर पाँच कोस पर जाना है। अतएव मेरे पास समय नही कि मै सन्देश लेकर जा सकूँ। उन्होने मुझसे पूछा कि मुझे वहाँ क्या काम है। मैंने कहा कि आज अमावस की रात्रि है और वहाँ अघोरी बाबा पूजा के लिए आएँगे; मुझे उनसे अपने भविष्य के जीवन के विपय मे पूछना है। यदि आज नही गई तो फिर उनसे एक मास पश्चात् ही भेंट हो सकती है, इस कारण मेरा वहाँ जाना आवश्यक है। इस पर उन्होंने मुझे कह दिया कि यदि मैं उनका सन्देश मलिन्द के पास ले गई, तो वे मुझे अपना रथ दे देंगी।

"मै महारानी जी के रथ पर यहाँ से गई थी और वहाँ पहुँच मैंने रथ वापिस भेज दिया था। मेरा अनुमान था कि मैं पाँच कोस आसानी से पैदल वापिस आ सकूँगी। जब मैं लौट रही थी, तो मुझे मार्ग मे यह रथ आता हुआ मिल गया। मैंने इसे भाडे पर कर लिया और यहाँ चली आई हूँ।"

पत्रलता की कहानी इस प्रकार बनी थी कि महामात्य को कुछ

विशेष सन्देह उस पर नहीं रहा। इस पर भी उसने पूछा, "क्या भविष्यवाणी की है अघोरी बाबा ने तुम्हारे विषय मे?"

"भट्टजी मुझसे विवाह का आग्रह कर रहे है। एक बार अघोरी बाबा ने कहा था कि उनसे मेरा विवाह नही हो सकता। अतएव इस विषय मे काल-भैरव का आदेश लेने गई थी। वह आदेश यही है कि उनसे मेरा विवाह नहीं होगा। अतः अपने भाग्य पर सन्तोष कर चली आई हूँ।"

"तो तुम्हारा किसी अन्य स्थान पर विवाह होगा?"

"नही, मै कुँवारी ही रहूँगी।"

"तो अब भट्ट को क्या कहोगी?"

"आज मध्याह्न के समय उनके पास जाऊँगी और न कर दूँगी।"

"बहुत विश्वास है अघोरी बाबा के ज्योतिष पर?"

"यह ज्योतिष नहीं पिताजी! यह तो सिद्धि कही जाती है, जिससे कोई व्यक्ति दूर भविष्य को देख सकता है।"

इस समय बाण के घर का सेवक आया और कहने लगा, "देवी! स्वामी रात्रि नाटक खेलने गए थे और अभी तक वापिस नही आए।"

महामात्य इस सूचना पर चौंक उठा। उसने पूछा, "कल किस समय गए थे?"

"सायकाल। वे रथ पर राज्य-प्रासाद गए थे।"

महामात्य को सन्देह हो गया कि बाणभट्ट राजकुमारी को ले भागा है। इस कारण मलिन्द के भाग जाने का समाचार देकर उसने पत्रलता से पूछा, "पत्रलता! इन दोनो मे क्या सम्बन्ध हो सकता है?"

"जहाँ तक मेरा ज्ञान है, कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। वे दोनो कभी परस्पर नही मिले। एक-दूसरे को जानते तक नहीं। कवि को तो राजकुमारी का यहाँ बन्दी होने का भी ज्ञान नहीं था। इस पर भी जाँच तो होनी ही चाहिए। मुझे कवि कल तीसरे प्रहर मिले थे और विवाह के लिए प्रस्ताव कर रहे थे। मैने कहा था कि मैं अघोरी बाबा के पास

अपना भविष्य पढ़ाने जा रही हूँ। यदि उनकी सम्मति हुई, तो मै विवाह की स्वीकृति दे दूँगी। उस समय तक कवि से मलिन्द के विषय मे कुछ बात नहीं हुई थी।"

महामात्य आचार्य जी के घर से सीधा राज्य-प्रासाद मे जा पहुँचा। वहाँ महाराज से मिलकर उसने निवेदन कर दिया, "श्रीमान्! कल रात्रि महारानी जी का रथ नगर से बाहर दीर्घिका की ओर गया था। उनसे पूछिए कि किस कारण से गया था। यह सूचना यदि मुझे मेरे गृह पर मिल जाय, तो मैं राजकुमारी के विषय मे कुछ पता कर सकूँगा।"

महामात्य वहाँ से लौटते समय महारानी के रथ के सारथि के पास जा पहुँचा। सारथि का गृह राज्य-प्रासाद के पिछवाड़े मे अन्य सारथियो के साथ था। वहाँ जाकर उस सारथि का पता किया गया, जो रात्रि वहाँ से अनुपस्थित था। उसको ढूँढकर महामात्य ने पूछा कि वह रात्रि कहाँ और किसके साथ गया था। सारथि ने बताया, "देवी पत्रलता को लेकर हरिद्वार के मार्ग पर, पाँच कोस के अन्तर पर दीर्घिका तक गया था और देवी को वहाँ कालभैरव के मन्दिर पर छोड़कर चला आया था।" सारथि ने महामात्य के पूछने पर यह भी बताया कि देवी पत्र-लता किस प्रकार के वस्त्र पहिने हुए थी और मार्ग-भर वे जप करती हुई गई थीं। इसी कारण वह उनसे कोई बात नहीं कर सका।

इस प्रकार खोज चलती रही। दो दिन की खोज के पश्चात् पता चला कि एक रथ राज्य-सीमा पार कर कौशाम्बी की ओर अमावस की रात्रि को भागता हुआ गया था। उसमे दो व्यक्ति बैठे थे। प्रातःकाल के घुसमुसे प्रकाश मे पुरुष का हुलिया बाण कवि जैसा प्रतीत हुआ। स्त्री मुख, सिर लपेटे बैठी थी। रथ पर बैठे पुरुष से पूछने पर पता चला था कि वह अपनी भगिनी को साथ ले जा रहा है।

: ३ :

मकर-संक्रान्ति के समय प्रयाग संगम पर बाँस के डण्डों से घेरा हुआ

एक वर्गाकार अहाता तैयार किया गया, जो तीन सौ गज लम्बा-चौड़ा था। इस अहाते के भीतर घास-फूस के बहुत से घर बनवाये गए थे और इनमे दान दिया जाने वाला सम्पूर्ण कोष भर दिया गया था। इस कोष मे सोना-चाँदी, अनमोल मोती, लाल, इन्द्रनील, महानील इत्यादि रत्न थे। इनके अतिरिक्त रेशमी, सूती वस्त्रो के भण्डार भी थे।

दान लेने वालो मे श्रवण, ब्राह्मण, निरग्रन्थ, निर्धन, अनाथ, असहाय व्यक्ति पूर्ण भारत-खण्ड से वहाँ पर पहुँचे हुए थे। नालन्द विश्वविद्यालय से वहाँ के मुख्याधिष्ठाता शीलभद्र, एक सौ प्रमुख विद्यार्थियो-सहित, जिनमे ह्वेन-साग भी था, इस उत्सव मे सम्मिलित हुए थे।

उत्सव मे भिन्न-भिन्न देवताओ की मूर्तियाँ स्थापित की गई। प्रथम दिवस भगवान् बुद्ध की, दूसरे दिन भगवान् सूर्य की, तीसरे दिन महादेव की पूजा की गई। इन तीन दिनो भारी मात्रा में दान दिया गया। पहिले दिन भगवान् बुद्ध की मूर्ति स्थापित होने पर सबसे अधिक दान दिया गया।

चौथे दिन दस सहस्र बौद्ध पण्डितो और भिक्षुको को प्रति व्यक्ति एक सौ स्वर्ण, एक मोती तथा वस्त्र एव अन्य कई प्रकार के खाद्य-पेय आदि पदार्थ दिये गए।

इसके पश्चात् निरन्तर बीस दिन तक ब्राह्मणो को दान दिया गया। फिर दस दिन तक अन्य धर्मावलम्बियो को दान दिया गया।

इस प्रकार पाँच वर्ष मे जितना धन-माल कोष मे एकत्रित हुआ था, वह सब सम्राट् हर्ष ने दान में वितरण कर दिया। अन्त मे हर्ष-वर्द्धन ने अपने पहिनने के लिए, अपनी बहिन से भिक्षा मे वस्त्र माँग कर पहिन लिए और अपने वस्त्र भी दान मे दे दिए।

जहाँ इस महान् त्याग की प्रशसात्मक चर्चा पूर्ण देश-भर मे हुई, वहाँ यह भी विख्यात् हो गया कि दान देते समय यद्यपि सभी धर्मावलम्बियों को ध्यान मे रखा गया, इस पर भी प्रथम स्थान बौद्ध मतावलम्बियो को

मिला और पूजा में प्रथम स्थान महात्मा बुद्ध को दिया गया।

इस महादान-उत्सव के समय महाराज का मन्त्रि-मण्डल भी महाराज के साथ था। समय-समय पर मन्त्रि-मण्डल की बैठक होती रहती थी। इस पर भी महाराज इस उत्सव मे पूर्ण कार्य बौद्ध गुरुओ के आदेश पर कर रहे थे। मन्त्रि-मण्डल तो प्रायः बौद्ध सम्प्रदाय के बनाए कार्यक्रम पर छाप लगाने का कार्य करता था।

महामात्य का परिवार, जिसमे पत्रलता भी थी, प्रयाग-सगम पर मकर-सक्रान्ति के स्नानार्थ पहुँचा हुआ था। दिन-भर जो कुछ महाराज करते थे, उसकी चर्चा पूर्ण उत्सव मे होती थी। महामात्य का परिवार इस चर्चा से अछूता नही रह सकता था। महामात्य स्वय इस चर्चा से पृथक् रहते थे।

उत्सव के दसवे दिन महामात्य मन्त्रि-मण्डल से अति उद्विग्न होकर आए थे। वे आकर अपने शिविर के पृथक् आगार मे लेट गए, तो पत्र-लता इस चिन्ता, क्रोध तथा उद्विग्नता का कारण जानने उनके पास जा पहुँची। पत्रलता के वहाँ पहुँचने पर महामात्य ने प्रश्न-भरी दृष्टि में उसके मुख पर देखा तो पत्रलता ने कहा, "मैं समझती हूँ कि मुझे अपने पान लगाने का धन्धा पुनः आरम्भ करना पड़ेगा।"

"क्यो?" महामात्य ने त्योरी चढाकर पूछा।

"आपको पान खाने की आवश्यकता रहने लग गई है। आप उद्विग्न प्रतीत हो रहे हैं न?"

महामात्य मुस्कराया और बोला, "मेरी पुत्री पत्रलता मेरी बहुत चिन्ता करती है।"

"क्या करूँ, आपने अपनी दूसरी पुत्री विवाह कर बहुत दूर भेज दी है न। वह होती तो मेरी आधी चिन्ता कम हो जाती।"

"यह राज्य-कार्य ऐसा ही है पत्रलता! वायु हमारी विपरीत दिशा की ओर बह रही है। इस कारण मार्ग चलने मे अधिक बल लगाना पड़ रहा है और कभी-कभी आगे चलने के स्थान वायु हमे पीछे ही धकेल देती है।"

"तो आज वायु का वेग अति तीव्र हो गया है ?"

"हाँ। हमारे विपुल प्रयत्न से दस वर्ष में निर्माण की हुई सेना का आज अन्तिम संस्कार होने वाला था। बौद्ध पण्डितो ने महाराज को यह सम्मति दी थी कि महाराज अशोक की भाँति हमारे महाराज भी सेना का विघटन कर दे। सेना की पूर्ण सामग्री अश्व, रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि भी दान मे दे दे।

"नियमानुकूल महाराज ने यह प्रस्ताव मन्त्रि-मण्डल मे रखा। मैंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। मेरे विरोध का आधार यह था कि सेना राज्य का मुख्य स्तम्भ है, इसको निःशेष करने से राज्य ही समाप्त हो जायगा। इसको पुनः सगठित करने की असम्भावना पर भी विचार प्रकट किए। इस पर भी महाराज अपने विचारों पर डटे रहे। अन्त मे मुझे कहना पड़ा कि यह राज्य महाराज की सम्पत्ति नहीं। महाराज तो केवल मात्र इसके सरक्षक हैं। यह प्रजा की धरोहर, बिना प्रजा की सम्मति के, किसी को दी नही जा सकती।

"इस पर महाराज के माथे पर त्योरी चढ़ गई। वास्तव मे जो कुछ भी महाराज ने इन दिनो दान-दक्षिणा मे दिया है, वह भी महाराज की निजी वस्तु नही थी। यह राज्य की सम्पत्ति थी। महाराज यदि चाहते तो अपने निजी कोष में से इच्छानुसार दान दे सकते थे, परन्तु राज्य-कोष से नहीं दे सकते थे। इस पर भी मैं इतने दिन तक चुप रहा। मैं समझता था कि यदि राज्य और सेना रही, तो इतना-कुछ पुनः एकत्रित हो सकता है। आज जब सेना के विघटन का प्रश्न उपस्थित हुआ, तो विवश मुझे यह कटु सत्य महाराज को कहना पड़ा कि राज्य उनका नही, प्रजा का है। परिस्थिति उस समय इतनी भयानक हो उठी थी कि मुझे कदाचित् प्राण-दण्ड ही दे दिया जाता। महारानी मृणालिनी ने कह दिया कि मेरा दृष्टिकोण भी विचारणीय है, राज्य किसी एक व्यक्ति की धरोहर नही; यदि महाराज यह समझते हैं कि मेरा विचार गलत है, तो अन्य विद्वानो को बुलाकर सम्मति ले सकते है।

"महारानी का दूसरे विद्वानो से मतलब बौद्ध विद्वानो से था। महाराज उनसे तो पहले ही राय कर आए थे। अतएव वे मान गए और उसी समय वह चीनी ह्वेन-साग और उसके प्रशसकों की एक टोली मन्त्रि-मण्डल की बैठक मे आ गई।

"मै इस परिस्थिति को अशुद्ध मानता था। किसी धर्म-विशेष के गुरुओ को मन्त्रि-मण्डल मे राय देने की अनुमति कभी नही होनी चाहिए थी। महाराज अशोक मौर्य ने भी यही भूल की थी। उसका परिणाम तो बहुत ही भयकर हुआ था। पश्चात् महाराज गृहवर्मन ने भी यही किया और उसके परिणाम से तुम अवगत ही हो। अब हमारे महाराज हर्षवर्द्धन पुष्यभूति ने भी इस दिशा मे पग उठाया है।

"धर्मगुरुओ के प्रमुख वक्ता ह्वेन-साग थे। वह चीनी यात्री सस्कृत का विद्वान है और वाग्शक्ति का स्वामी है। उसकी प्रेरणात्मक शक्ति को सब लोग जानते हैं। परन्तु उसकी धारणा देश की वर्तमान परिस्थिति और यहाँ के प्रचलन से सर्वथा भिन्न है। इस पर भी आज की समस्या में वह मेरे दृष्टिकोण को समझ सका है।

"उसका कहना था कि देश की पूर्ण प्रजा महाराज के इस त्याग को प्रशसा की दृष्टि से देखती है और महाराज के बौद्ध सिद्धान्तो का समर्थन करती है। जब मैंने उसके इस कथन को चुनौती दी तो अन्य उपस्थित लोग मेरा मुख देखने लगे। पश्चात् उस विदेशी महाशय ने कहा कि जैसे पकती दाल मे से एक दाना देख कर दाल के पकने का अनुमान लगाया जाता है, उसी प्रकार कोई भी बीस यात्रियो को बुलवाकर, इसका निर्णय कर लिया जाए।

"मैंने कहा भी कि यहाँ तो केवल दान पाने वाले ही एकत्रित हुए हैं। प्रजा का वह अश, जो कर देकर इस दान से हुए घाटे को पूरा करने वाला है, वह तो यहाँ आया नहीं, अतएव इन भिक्षुओ का मत देश का मत नही हो सकता।

"इस पर भी महाराज ने प्रतिहारो को आज्ञा दी कि त्रिवेणी घाट पर

स्नान करते हुए किन्हीं पचास व्यक्तियों को पकड़कर ले आया जाय।

"पचास व्यक्ति पकड़कर वहाँ उपस्थित किए गए। महाराज ने उनको कहा, 'मेरे कुछ सम्मतिदाताओं ने सम्मति दी है कि मै सेना का विघटन कर सैनिक सामग्री भी आप लोगो मे वितरित कर दूँ। आप लोग स्वतन्त्रता तथा निर्भीकता से बताइए कि आप इस प्रस्ताव को कैसे पसन्द करेंगे?'

"भाग्य से एक तिलक और यज्ञोपवीत धारी ब्राह्मण भी उनमे था। उसने आगे बढकर कहा, 'महाराज! हमने आपसे बहुत धन-सम्पदा पाई है। आशा है कि दो-तीन वर्ष तक तो हमे हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं रहेगी। परन्तु महाराज! यदि आपने सेना का विघटन कर दिया तो आपका राज्य तो रहेगा नही। हमको विश्वास है कि एक ही वर्ष मे हूण और गाधार हू-हू करते हुए भारत भूमि पर छा जायँगे और पश्चात् यह धन-सम्पदा और अश्व, रथ आदि जो हमें आप देंगे, वे हमसे छीन लेंगे। इससे हमे क्या लाभ होगा?

'हम तो महाराज की जय-जयकार करते है कि महाराज का राज्य बना रहे और उनमें यह दान-दक्षिणा देने की सामर्थ्य बनी रहे; परन्तु सेना विघटन के पश्चात् हम कितनी भी प्रार्थना अथवा जय-जयकार करेंगे, यह कुछ नहीं रहेगा।

'यद्यपि महाराज! हमारे बौद्ध-बन्धुओ को इस दान-दक्षिणा का विशेप भाग मिला है, इस पर भी मेरा यही उनसे निवेदन है कि स्वर्ण का अण्डा देने वाली मुर्गी ही समाप्त हो गई तो पश्चात् स्वर्ण-अण्डा कैसे मिलेगा?'

"ह्वेन-साग इस पण्डित की युक्ति से चकित रह गया। इस पर भी उसने उस ब्राह्मण से प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिए। उसने पूछा, 'क्या सेना राज्य है और प्रजा राज्य नहीं?'

"ब्राह्मण का उत्तर था, 'महापण्डित! क्या टागे, पेट, नाक, कान इत्यादि अंग शरीर नहीं? ये सब अंग, आकार और तोल मे भुजाओ

से अधिक होते हुए भी शरीर की रक्षा वैसे नही कर सकते, जैसे ये दुबली-पतली बॉहे कर सकती हैं। सेना, राज्य न होते हुए भी, राज्य का आवश्यक तथा अनिवार्य भाग है। इसके कट जाने से भुजाओं के कट जाने के समान शरीर की भॉति राज्य भी दासता तथा नाश को प्राप्त होगा।'

"ह्वेन-साग भी इस साधारण ब्राह्मण की युक्ति के सम्मुख नहीं ठहर सका और उसने महाराज को सम्मति दी कि सेना का विघटन न किया जाए। इस पर भी महाराज ने उन पचास व्यक्तियों की सम्मति ली। सौभाग्य से उस ब्राह्मण की युक्ति का सब पर प्रभाव पड़ चुका था और केवल दो बौद्ध-भिक्षुओं को छोड़ सबने उस ब्राह्मण का समर्थन किया।

"बौद्धों का यह प्रयास आज तो विफल गया है, परन्तु इसका परिणाम यह हुआ है कि ह्वेन-साग महाराज के प्रमुख सम्मतिदाताओं मे आ गया है और उसको विशेष निमन्त्रण देकर मन्त्रि-मण्डल की बैठक मे सम्मिलित होने का प्रस्ताव कर दिया गया है।

"ह्वेन-साग ने उस ब्राह्मण को पृथक् बुलाकर पूछा, 'तुमको दान मे क्या कुछ मिला है?'

'कुछ नहीं। मै दान लेने के लिए इस स्थान पर नहीं आया।'

'तो किस लिए आए हो?'

'इस वर्ष महाकुम्भ का समागम है और इस समय त्रिवेणी के पवित्र स्थान पर बैठ भगवत् भजन करने चला आया हूँ।'

'तो तुमने यह क्यों कहा कि इतना कुछ मिला है कि कई वर्ष तक दान लेने की आवश्यकता न रहेगी।'

'इस कथन का कुछ उद्देश्य था। साथ ही मै केवल अपनी बात ही तो नही कर रहा था। मैं तो यहाँ दान लेने आई जनता की बात कह रहा था।'

'तो तुम कल आना। महाराज तुमको पुरस्कृत करेंगे।'

'वह पुरस्कार तुम मेरे स्थान पर ले लेना। मै कदाचित् कल यहाँ नहीं रहूँगा।' "

: ४ :

पत्रलता ने महामात्य से पूछा, "आपने उस ब्राह्मण का नाम-धाम नही पूछा ? वह अवश्य कोई योग्य निष्ठावान ब्राह्मण प्रतीत होता है।"

महामात्य ने हँसकर कहा, "तुमने मुझे छेन-साग की तरह साधारण बुद्धि का समझ लिया है, पत्रलता ! मैने अपना एक गुप्तचर उसके पीछे लगा दिया। वह उसके ठहरने के स्थान तक गया और उसके नाम-धाम का पता लगा आया है। उसका नाम पुरुरवा है। वह गगा-पार एकान्त मे एक केवट के झोपडे मे रहता है।"

"पुरुरवा।" पत्रलता को स्मरण हो आया कि मलिन्द का प्रेमी भी पुरुरवा था। कहीं यह वही व्यक्ति न हो। मलिन्द अवश्य उसके पास गई होगी। कदाचित् विवाह हो चुका हो और वह उसके साथ ही यहाँ आई हो।

पत्रलता को गम्भीर, विचार-मग्न देख महामात्य ने पूछा, "क्या विचार कर रही हो, पत्रलता ?"

"मै इस ब्राह्मण से मिलने जा रही हूँ। कदाचित् मै इसे जानती हूँ, परन्तु उससे मिलने के पश्चात् ही आपको बताऊँगी कि यह वही है अथवा कोई अन्य।"

महामात्य पत्रलता का मुख देखता रह गया और पत्रलता उठकर शिविर से बाहर निकल, उसी समय पुरुरवा से मिलने चली गई। महा-मात्य भी तुरन्त उठ खडा हुआ और उसने अपना एक गुप्तचर उसकी रक्षार्थ उसके पीछे-पीछे भेज दिया। इस समय अँधेरा हो रहा था और उन्हे गगा-पार जाना था।

नदी पार करने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। किनारे पर छोटी-छोटी कई नौकाएँ बँधी थी। पत्रलता ने एक नाव खोल ली और उसे स्वयं ही खेती हुई नदी पार कर गई।

नदी पार कर केवटो की बस्ती मे पहुँच पत्रलता को पुरुरवा के ठहरने का स्थान पता करने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। उस बस्ती मे

एक ही ब्राह्मण टिका था और वह भी दान-दक्षिणा लेने नहीं जाता था। त्रिवेणी पर एकत्रित हुई जनता मे से कदाचित् कोई ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने महाराज से दान न लिया हो। इस कारण पुरुरवा अपनी बस्ती मे सर्वप्रसिद्ध हो चुका था।

पत्रलता कुटिया के बाहर पहुँची तो अँधेरा हो चुका था। पत्रलता ने कुटिया में झाँककर देखा। उसका अनुमान सत्य निकला। उसने देखा कि मलिन्द अपने पतिदेव को भोजन करा रही है।

उसने आवाज दी, "क्या एक अतिथि को भोजन मिल सकेगा, देवी?"

"निस्सन्देह।" मलिन्द ने उत्तर दिया, "अतिथि कौन वर्ण का है?" पत्रलता को, अँधेरे के कारण न पहिचान कर मलिन्द ने पूछा।

"जन्म से वर्णसंकर, व्यवसाय से शूद्र और योग्यता से ब्राह्मण।"

"हम व्यवसाय से ही वर्ण मानते हैं। अतिथि बाहर बैठे। अभी पण्डित जी भोजन कर ले, तो मिल सकेगा।"

पत्रलता बाहर ही द्वार पर बैठ गई। कुटिया के भीतर प्रकाश हो रहा था। पत्रलता पण्डित जी की ओर देख रही थी। उसने देखा कि पुरुरवा एक ओजस्वी युवक है। वह पलथी मारे कुशासन पर बैठा, बायाँ हाथ बाएँ घुटने पर रखे, दाहिने हाथ से भोजन कर रहा था। भोजन बहुत ही साधारण था। भात था, दाल थी और आम की चटनी थी और बस।

पण्डित जी ने भोजन समाप्त किया और उठकर कुटिया से बाहर आकर हाथ धो कुल्ला किया। बाहर पत्रलता को बैठे देखकर उसने अपनी पत्नी को पुकारा और कहा, "देवी! बाहर अतिथि प्रतीक्षा कर रहा है। इसको भोजन परस दो।"

इसके पश्चात् उसने पत्रलता को सम्बोधन कर कहा, "बहिन! क्षमा करना। मै भोजन समाप्त कर रहा था। यदि कुछ पहिले आतीं, तो तुम्हारा अधिकार भोजन पाने का पहिले होता।"

"कुछ हानि नहीं हुई पण्डित जी!"

इस समय मलिन्द बाहर आई और बोली, "आओ बहिन! भीतर आ जाओ।"

पत्रलता उठकर भीतर प्रकाश मे आई। मलिन्द ने उसे प्रकाश में देखा, तो एक क्षण तक देखती रह गई। पश्चात् उसने कहा, "पत्रलता! तुम?" और वह उससे गले मिलने लगी।

पण्डित दोनो को इस प्रकार मिलते देख, उनको विस्मय मे देखने लगा। जब दोनो मिल चुकीं और बैठ गईं तो मलिन्द ने उससे पूछा, "बहिन! तुमने अपने को शूद्र क्यो कहा?"

"ताम्बूलिन का कार्य जो करती हूँ।"

"मैं तो तुम्हे क्षत्रिय वर्ण की समझती हूँ। तुमने जो कुछ मेरे लिए किया है, वह भला मैं जीवन-भर कैसे भूल सकती हूँ?"

"क्या किया था मैने?" पत्रलता ने मुस्कराते हुए पूछा।

इस समय मलिन्द ने अपने और पत्रलता, दोनो के लिए पत्तल बिछा लिया और उसमे दाल-भात, चटनी रखकर दोनो ने खाना आरम्भ कर दिया। खाना आरम्भ कर मलिन्द ने कहा, "तुम जैसी शूद्र के साथ खाने मे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

"पत्रलता बहिन! बहुत ही अच्छा हुआ है, जो तुम मिल गई हो। मै, वहाँ से निकलने के पश्चात्, मेरे साथ घटित वृत्तान्त तुम्हें बताने के लिए लालायित हो रही थी। मैं नहीं जानती थी कि तुमसे कैसे सम्बन्ध रख सकती हूँ। मुझको यह भी विदित नहीं था कि तुम इस उत्सव में आई हो। मुझको तो विश्वास हो रहा था कि महाराज ने तुम्हे यदि फाँसी पर नहीं लटकवाया तो कम-से-कम बन्दी अवश्य बना डाला होगा।

"जब मै तुम्हारे कहने के अनुसार महारानी जी के आगारो के पिछ-वाडे पहुँची तो अपने साथ वाली दासी को मैने कह दिया कि वह जाकर नाटक देखे। मेरे रथ मे बैठते ही रथ तीव्र गति से नगर के उत्तर की ओर चल दिया। हम दो घडी-भर मे दीर्घिका के तट पर जा पहुँचे

मन्दिर के बाहर पहुँच रथ खडा हुआ तो मैं उतर पडी। मेरे उतरते ही रथ पुनः तीव्र गति से वापिस चल पडा। रथ के शब्द से मन्दिर मे से दो भयंकर प्राणी, एक स्त्री तथा एक पुरुष बाहर निकल आए। अमावस की रात मे भी वे मुझे देख अट्टहास करने लगे। स्त्री ने मेरे समीप आकर पूछा, 'क्यो आई हो यहाँ?'

"मैने डरते हुए उत्तर दिया, 'मै देवी पत्रलता के कहने पर आई हूँ।'

'और उसके प्रेमी कवि की प्रतीक्षा कर रही हो?'

'हाँ।' मैंने उनके ज्ञान पर विस्मित होकर कहा। तुमने बताया नही था कि वे सब-कुछ जानते होगे।

"इस पर उस पुरुष ने कहा, 'कब तक यहाँ खडी रहोगी। अभी कवि के आने मे आधा प्रहर है।'

'मुझको पीपल के वृक्ष के नीचे खडे रहने की आज्ञा है।'

'आज्ञा।' यह कहकर दोनो पुनः हँस पडे। पश्चात् उस स्त्री ने कहा, 'यहाँ अँधेरे मे खडे रहने मे तुम्हे भय नहीं लगेगा?'

'जो मरने के लिए तैयार हो, वह और किससे भय खायगा?'

"इस पर वे पुनः हँस पडे और मुझसे बोले, 'भीतर चलकर भगवान् के दर्शन करो और उनसे आशीर्वाद लो।'

"इसके पश्चात् वे भीतर चले गए और मै, मानो बँधी हुई उनके पीछे-पीछे चलती हुई, कालभैरव की विकराल मूर्ति के सामने जा खडी हुई। वे तो बैठ गए और मैं खड़ी रही। कुछ काल पश्चात् मूर्ति के पीछे से शब्द हुआ, 'भक्तिनी! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।'

"मैं विस्मय मे देखती रह गई। वही ध्वनि आगे कहने लगी, 'तुम्हारा भाग्य पण्डित पुरुरवा से जुड़ा हुआ है। जाओ, बाहर कवि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।'

"इस कथन-मात्र से मेरा शरीर, जो पहले बँधा-सा प्रतीत होता था, अब ढीला पड गया। मैं प्रणाम कर बाहर आई। मेरे पीपल वृक्ष के नीचे पहुँचते ही कवि का रथ आया। मैं उस पर सवार हो गई। रथ

चल पड़ा। कन्नौज की सीमा पार करते समय अभी अँधेरा पूरी तरह दूर नही हुआ था। कवि ने प्रहरियो के पूछने पर कहा कि वह अपनी भगिनी को ससुराल पहुँचाने जा रहा है।

"सीमा पार कर समीप ही एक गाँव में हमने प्रवेश किया और कवि ने घोड़ो को विश्राम देने के लिए उन्हे खोल दिया। वहाँ एक चैत्य मे पहुँच स्नानादि से निवृत्त हो, हम भोजन करने बैठे। इस समय तक काफी प्रकाश हो चुका था। हमको ठहरने के लिए एक आगार मिल गया था। कवि ने मुझे देखा, तो आश्चर्य-चकित देखता रह गया। वह इतना डोल गया था कि कठिनाई से एक खम्भे का आश्रय लेकर, उसने अपने-आपको गिरने से बचाया। मै उसको देखकर मुस्करा रही थी। बहुत कठिनाई से उसने अपने मुख से स्वर निकाला। उसने पूछा, 'तुम कौन हो और देवी पत्रलता कहाँ है?'

'वह कन्नौज मे है। मुझको उसी ने भेजा है। आप अपनी भगिनी को ससुराल छोड़ने जा रहे हैं न?'

'पर तुम हो कौन?'

'मैं देवपुत्र तुवर की कुँवारी लड़की मलिन्द हूँ। महाराज हर्षवर्द्धन ने मुझे कन्नौज मे बन्दी बनाकर रखा हुआ था। वे मुझे विवश कर मुझसे विवाह करना चाहते थे। पत्रलता देवी की सहायता से मै भागने मे सफल हुई हूँ।'

"इस समय तक कवि ने अपने मस्तिष्क पर नियन्त्रण पा लिया था। उसने खम्भे का आश्रय छोड़ सीधा खड़े होकर कहा, 'तो क्या तुम्हारे कन्नौज राज्य से भागने मे मैं एक अचेतन साधन बन गया हूँ? तुम बहुत सुन्दर हो, परन्तु राजकुमारी! मेरी साधना तो पत्रलता है और उसके न आने से मुझे अत्यन्त निराशा हुई है। मै तो ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि इस आघात के पश्चात् मेरे लिए जीना असम्भव हो जायगा।

'देवी! देखा नहीं, मैं तो यही चक्कर खाकर गिरने वाला था। अब

समझता हूँ कि वह पुण्य-कार्य जो देवी पत्रलता ने मेरे हाथों सौंपा है, पूर्ण कर दूँ। यह मेरा उसके प्रति प्रेमोपहार होगा। शीघ्र तैयार हो जाओ, कहाँ जाना है तुमको?'

'मै अपने पिता के पास नही जाऊँगी। मेरी सगाई मेरी स्वीकृति से आचार्य अग्निमित्र के सुपुत्र पण्डित पुरुरवा से हो चुकी है। वे इस समय मिहिर नाम के गॉव मे बाण गगा के तट पर रहते है। वहाँ उनका गुरुकुल है। यहाँ से पचास कोस और आगे जाना होगा।'

'वे तुमको इस प्रकार स्वीकार कर लेंगे।'

'मुझे पूर्ण आशा है। यदि यह आशा फलीभूत न हुई, तो वहीं अपने प्राणान्त कर लूँगी।'

"इसके पश्चात् हमने मध्याह्न तक विश्राम किया और पुनः चल पडे। उस रात सायंकाल हम एक अन्य चैत्य मे रहे और अगले दिन मध्याह्न से पूर्व हम आश्रम मे पहुँच गए। मैंने अपने स्वसुर के चरणों मे सिर रख, अपनी पूर्ण कथा वर्णन कर दी। वे कुछ काल तक विचार कर बोले कि मै उन्हे तो प्रातःकाल की उषा के समान सुन्दर और स्वच्छ प्रतीत हुई हूँ। इस पर भी मै अपने होने वाले पतिदेव से पूछ लूँ। यदि वह आपत्ति न करेगा, तो हम दोनो का तुरन्त विवाह हो जाएगा।

"पण्डित जी तुरन्त मान गए। हमारे विवाह-काल तक कवि वहीं थे। उन्होने विवाह के पश्चात् मेरे स्वसुर से कहा, 'मैं देवी मलिन्द को अपनी बहिन घोषित कर यहाँ लाया हूँ। अतः उसके विवाह पर भाई की ओर से कुछ भेट करना मेरा अधिकार है। अतएव यह तुच्छ भेंट मै इसके प्रति आदर और स्नेह रूप मे देता हूँ।'

"इतना कह उन्होने एक हुडी डेढ लाख स्वर्ण की, जो कौशाम्बी के एक सेठ के नाम थी, मेरे हाथ पर रख दी। मै उस पर डेढ लाख लिखा देख अवाक् मुख देखती रही। मैने कहा, 'मै अपने को इतने की अधिकारिणी नही मानती। इसे तुडवा कर कुछ मुझे भेजना चाहं, तो भेज दीजिएगा!'

'नही देवी ! इसमे मेरे काम के लिए अब कुछ भी नहीं है। यह भगवान ने तुम्हारे लिए ही दिया है।'

''पश्चात् वे हुंडी के पीछे पावती लिख कर चले गये। वे बता नहीं गये कि वे कहाँ जा रहे हैं।''

: ५ :

बाण की निराशा का ज्ञान प्राप्त कर पत्रलता को भी दुःख हुआ। इस पर भी वह गृहस्थ मे प्रवेश करने के लिए अपने मन को तैयार नहीं कर सकी।

महामात्य को जब इस सम्पूर्ण घटना का पता चला तो उसे पत्रलता के व्यवहार, मलिन्द को भगाने मे उसके हाथ पर विस्मय हुआ। उसे पत्रलता के, बाण के साथ विवाह के लिये तैयार न होने पर और भी आश्चर्य हुआ, परन्तु वह समझता था कि यदि बाणभट्ट का पता चल गया तो वह पत्रलता को प्रेरणा दे सकेगा कि वह उससे विवाह स्वीकार कर ले। इसलिए उसने अपने गुप्तचरों को बाण की खोज मे भेज दिया। इतना निश्चित हो चुका था कि बाण अपने गाँव नही लौटा।

इस समय एक अन्य घटना-घटी। ह्वेनसाग महाराज हर्षवर्द्धन के साथ कन्नौज चलने को तैयार हो गया और यह घोषणा कर दी गई कि कन्नौज मे एक महान् सर्वधर्म-सम्मेलन होगा, जिसमे सब धर्मावलम्बियो को विचार-विनिमय का अवसर दिया जाएगा। महायानियो की ओर से ह्वेनसाग पक्ष का समर्थन करेंगे।

महामात्य, ह्वेनसाग की वाक्शक्ति से परिचित था; परन्तु वह यह भी देख चुका था कि उसकी युक्ति मे कहाँ शिथिलता है। इस कारण वह अनुभव करता था कि ह्वेनसाग की पराजय मे महाराज को अत्यन्त दुःख होगा और वे ह्वेनसाग की विजय घोषित करने की चेष्टा करेंगे, जिसके परिणामस्वरूप झगड़ा हो जायेगा।

कन्नौज पहुँचने पर इस धर्म-सभा की घोषणा कर दी गई इस

घोषणा की व्याख्या करते समय राज्य की ओर से यह कह दिया गया कि सभा बीस दिन तक चलेगी और बीस दिन तक निरन्तर भिन्न-भिन्न धार्मिक विषयो पर वादविवाद होगा। इस वादविवाद मे ह्वेनसाग मध्यस्थ रहेगा।

यह एक ओर चिन्ता का विषय बन गया। प्रयागराज मे महादानोत्सव के अवसर पर भगवान् बुद्ध को ब्राह्मण देवताओ से श्रेष्ठ पदवी देना, बौद्ध-चैत्यो और सम्प्रदायो को सबसे अधिक दान देना और पश्चात् बौद्ध विद्वानो की अन्य मतावलम्बियो से अधिक मान-प्रतिष्ठा करना ब्राह्मणो तथा अन्य मतावलम्बियो के लिए रोष का कारण बन चुका था। अब ह्वेनसाग को मध्यस्थ मान, उनके ही मत वालो से वाद-विवाद का निमन्त्रण ब्राह्मणो को भला प्रतीत नहीं हुआ।

निश्चित् तिथि से पूर्व ही भारत के विद्वान् एकत्रित हो गए और राजकीय धर्म-सभा से पूर्व अपने-अपने मत वाले परस्पर विचार-विनिमय करने लगे। लगभग तीनसौ ब्राह्मण, वेद-वेदागो के ज्ञाता और दर्शन शास्त्रो के प्रकाण्ड विद्वान् सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए आये। इनके अतिरिक्त जैनमतावलवी तथा हीनयान और महायानवादी भी सहस्रो की सख्या मे उपस्थित थे। विरले अनीश्वरवादी भी आये थे।

ब्राह्मणो ने अपनी गोष्ठी अलग बुला ली और उसमे यह निश्चय किया गया कि महाराज से यह निवेदन किया जाए कि ह्वेनसाग, जो स्वय एक पक्ष की ओर से विवाद करेगा, को मध्यस्थ न बना कर किसी अन्य निष्पक्ष व्यक्ति को मध्यस्थ बनाया जाए। जैन धर्मावलम्बियो ने भी इसी प्रकार अपना निश्चय प्रकट करने का विचार कर लिया।

ब्राह्मणो के नेता आचार्य वाराह मित्र और जैनियो के आचार्य भृगु देव, दोनो महाराज के समक्ष उपस्थित होकर कहने लगे, "महाराज! यह धर्म-चर्चा का आयोजन कर श्रीमान् ने एक बहुत बडा धर्म-कार्य किया है। हम अपने मत के, भारत-भर के विद्वानो की ओर से महाराज को, इस आयोजन के लिए धन्यवाद देते हैं। साथ ही एक अन्य निवेदन

भी करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो कहे।"

"हाँ हाँ, कहिये।"

"ह्वेनसाग हमारे ग्रन्थो का ज्ञाता नही। वह दर्शनो से अनभिज्ञ होने के कारण युक्ति करने के ढग से परिचित नही। हाँ, वह भाषा का विद्वान् अवश्य है। अतएव उसकी अध्यक्षता मे इस वादविवाद मे सम्मिलित होना, अन्धे के सामने रुदन करने के समान है। इस कारण हमारा यह निवेदन है कि मध्यस्थ किसी निष्पक्ष तथा दर्शन शास्त्र के ज्ञाता व्यक्ति को बनाना चाहिए।"

"कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है आज ससार मे, जो विद्वान् भी हो और किसी भी मत से सम्बन्ध न रखता हो?"

"एक है महाराज! मिहिर के आचार्य अग्निमित्र मध्यस्थ बनाए जाने के योग्य हैं। वे जहाँ वैदिक ग्रन्थो के प्रकाण्ड विद्वान् हैं, वहाँ जैन और बौद्ध ग्रन्थो के ज्ञाता भी हैं।"

"ठीक है, परन्तु वे भी तो वैष्णव मतानुयायी हैं।"

"इस पर भी महाराज! वे विद्वान् हैं, धर्म-शास्त्र और न्याय के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। उनसे हम अन्याय की अथवा पक्षपात की आशा नहीं रख सकते।"

महाराज ने कहा, "देखिए आचार्य जी! सभा का अध्यक्ष तो ह्वेनसाग ही होगा। इस प्रकार हम देश-विदेश मे अपनी न्यायप्रियता की धाक जमा सकेंगे।"

"महाराज! धाक जम सकेगी अथवा नही, यह सन्देहात्मक बात है, परन्तु न्याय नहीं होगा यह निश्चित् बात है।"

"क्यो न्याय नहीं होगा? हमने आदेश दिया है कि ह्वेनसाग इस धर्म-सभा का अध्यक्ष होगा। इस पर भी सब को अपनी-अपनी बात कहने का पूर्ण अधिकार होगा।"

इसके पश्चात् कहने को कुछ रहा नहीं था। दोनो नेता निराश हो लौट गए। पश्चात् दोनो अपने-अपने मतानुयायियो के साथ बैठकर

विचार-विनिमय करने लगे। जैनियो ने यह निश्चय किया कि वे इस वादविवाद मे भाग नहीं लेंगे। अतः वे अपने बिस्तर उठाकर, अगले दिन अपने-अपने स्थानो को लौटने लगे। ब्राह्मणों की मण्डली मे इस विषय पर मतभेद हो गया।

आचार्य वाराह मित्र और पत्रलता एवं महामात्य की सम्मति यह थी कि वे विद्वानो को कह दे कि वे भी वादविवाद मे भाग नहीं लेंगे। आचार्य जी ने यह सम्मति ब्राह्मणों के समक्ष रख दी। दूसरा पक्ष था कि वादविवाद मे भाग अवश्य लिया जाए और अपना विचार एव मत सभा मे रखा जाए। इस पक्ष के नेता अग्निमित्र थे। उनका कहना था कि पक्ष का समर्थन कमसे कम एक बार अवश्य हो जाए।

आचार्य जी का यह भी कहना था कि इस प्रकार वादविवाद मे भाग न लेने से तो सिद्धान्तो और धर्म के नियमो की हीनता प्रकट होगी। इस प्रकार हम ऋषि-ऋण से मुक्त नही हो सकेंगे।

दिन-भर के वाद-विवाद से यह निश्चय हुआ कि पहले दिन सब ब्राह्मण-दल पूर्ण रूप से तैयार होकर सभा मे उपस्थित हो और वैदिक मत, जहाँ-जहाँ बौद्ध मत से भिन्न है, सभा मे प्रतिपादित करे तथा पश्चात् बिना किसी प्रकार का, सभा तथा अध्यक्ष से निर्णय माँगे, वहाँ से चला आए।

यह भी निश्चय हुआ कि बारी-बारी से दो अथवा तीन-तीन ब्राह्मण सभा मे नित्य उपस्थित हुआ करे और जो-कुछ भी वैदिक धर्म पर आक्षेप हो, उसका विचार-विनिमय ब्राह्मण अपनी सभा मे किया करे। इस प्रकार ब्राह्मणों की अपनी सभा नित्य सायंकाल हुआ करे।

परन्तु सभी को अत्यन्त निराशा हुई, जब कि पहले ही दिन अबौद्धो को, जिनमें ब्राह्मण भी सम्मिलित थे, सभा मण्डप मे प्रवेश करने ही नहीं दिया गया।

धर्म-महासभा के लिए घास-फूस के दो विशाल भवन बनवाए गए थे। इन प्रत्येक भवन मे एक-एक सहस्र के लगभग व्यक्तियो के बैठने का

प्रबन्ध किया गया था। सभा-मण्डप मे महात्मा बुद्ध की मूर्ति के लिए एक बहुमूल्य सिंहासन निर्माण किया गया था। गंगा-तट पर पश्चिम् की ओर एक विशाल संघाराम बनवाया गया था और उसके पूर्व में तैंतीस गज़ ऊँची एक भव्य लाट बनाई गई थी। इस लाट के मध्य में मनुष्य आकार की एक स्वर्ण की बुद्ध-प्रतिमा स्थापित की गई थी।

. बौद्ध धर्म के तीन सहस्र के लगभग विदग्ध आचार्य आए हुए थे। इनके अतिरिक्त एक सहस्र नालन्द विश्वविद्यालय के आचार्य तथा प्रमुख विद्यार्थी भी उपस्थित थे। इन बौद्ध आचार्यों में हीनयान तथा महायान दोनो मतों के लोग थे।

सभा का कार्यक्रम इक्कीस दिन चलना था।

: ६ :

धर्म सभा का कार्य भगवान् बुद्ध की एक भव्य सवारी से आरम्भ हुआ। सम्राट् हर्ष के अस्थायी प्रासाद से भगवान् बुद्ध की मनुष्य-आकार की स्वर्ण-मूर्ति को लाया गया और उसको एक हाथी पर बैठाकर, हाथी के माथे पर और शरीर पर चित्रकारी कर, घुमाया गया। हाथी पर स्वर्ण-रजत की जाजम डालकर, ऊपर गंगा-यमुनी हौदा रख, उस पर बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गयी।

भगवान् बुद्ध की मूर्ति के एक ओर हर्षवर्द्धन इन्द्र के रूप मे, हाथ में चँवर लिए, बुद्ध की मूर्ति पर हिलाते-झुलाते हुए बैठे थे। मूर्ति की दूसरी ओर कामरूप के भास्करवर्मन्, ब्रह्मा के रूप और वेश में चँवर झुला रहे थे।

भगवान् बुद्ध की मूर्ति के पीछे दो हाथियो पर हीरे-मोतियों से तथा स्वर्ण-रजत पुष्पों से भरे हुए पिटार थे और ये हीरे-मोती इत्यादि भगवान् बुद्ध की मूर्ति पर न्योछावर किए जा रहे थे।

भगवान् बुद्ध की मूर्ति वाले हाथी के आगे हाथियो पर गायक वृन्द गाते बजाते और संगीत लहराते हुए बैठे थे। मूर्ति के पीछे ह्वेनसांग

और प्रमुख परिचायक गण हाथियो पर सवार थे। इनके पश्चात् राज्य के मित्र, अन्य देशो के राजे-महाराजे और सामन्त अपने-अपने हाथियो पर सवार थे।

हाथियो के साथ दो पंक्तियो मे दोनो ओर विभिन्न देशो के प्रमुख पुरोहित और पण्डित थे, जो सवारी के साथ बढते हुए बुद्ध की स्तुति-गान कर रहे थे।

सवारी जब सभा-भवन मे पहुँची, तो सब लोग हाथियो पर से उतर पडे और भगवान् बुद्ध की मूर्ति को हर्षवर्द्धन अपने कन्धो पर उठाकर राज्य-सभा-भवन मे ले गया। वहाँ मूर्ति को बहुमूल्य सिहासन पर आसीन कर दिया गया।

इस समय हर्षवर्द्धन और ह्वेन-साग ने भगवान् की मूर्ति के सम्मुख उपहार चढ़ाए तथा सैकडो और सहस्रो रत्नो से जडित वस्त्र मूर्ति के अर्पण किए।

जो लोग बौद्ध-धर्म मे आस्था नहीं रखते थे, उन्हे भवन के प्रवेश-द्वार पर बैठने को कहा गया। उनमे से किसी को भीतर प्रवेश नही मिला।

पश्चात् ह्वेन-साग को एक उच्च मञ्च पर बैठाया गया और उसे सभा का प्रधान एवं वक्ता घोषित किया गया।

इसके पश्चात् ह्वेन-साग ने नालन्द के एक श्रमण द्वारा यह घोषणा करवा दी कि जो विद्वान् चाहे, महायान-धर्म के विषय में ह्वेन-साग से तर्क-वितर्क कर सकता है। यह सूचना लकडी के एक तख्ते पर लिखवा कर सभा-भवन के बाहर भी टँगवा दी गई। साथ ही ह्वेन-साग की ओर से यह लिख दिया गया कि, 'यदि कोई उसके तर्क के विरुद्ध किसी प्रकार असत्यता प्रमाणित कर सकेगा अथवा उसे विवाद मे उलझा सकेगा, वह विरोधी के अनुरोध पर अपना सिर तक कटवा देगा।'

प्रथम दिवस की सभा मे प्रमुख प्रवक्ता ह्वेन-साग था, जिसने महायान-धर्म के सिद्धान्तो की व्याख्या और उसकी महानता सिद्ध करने का यत्न किया।

: ७ :

ब्राह्मण वर्ग, हर्षवर्द्धन की घोषणा कि सब धर्मानुयायियों में धर्म-चर्चा होगी, पर विश्वास कर दूर-दूर से यात्रा कर आया था। उनका विचार था कि सम्राट् यद्यपि बौद्ध-धर्म को श्रेष्ठ मानता है, तथापि दूसरे धर्मों का विरोध नही करता, परन्तु यह धारणा कि बौद्धों के साथ पक्ष-पात किया जाता है, जो प्रयाग-संगम पर अबौद्धो के साथ व्यवहार से बनी थी, इस महाधर्म-सम्मेलन में और भी पुष्ट हो गई।

इस धर्म-सम्मेलन में तो बौद्ध-धर्म के लिए पक्षपात नग्न रूप धारण कर सामने आया। ब्राह्मण वर्ग को, जो बौद्ध-धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे, सभा-मण्डप में प्रवेश करने ही नही दिया गया। अतएव वे बाहर से ही लौट गए। ब्राह्मणों में वे लोग, जो हठधर्मी-पूर्वक सभा-मण्डप में जाकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना चाहते थे, इस व्यवहार से अति लज्जित हुए।

ह्वेन-साग का महायान न केवल यह था कि महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तो और शिक्षा को गृहस्थी तथा राजा-महाराजा भी ग्रहण कर सकते हैं, प्रत्युत् यह भी था कि भगवान् बुद्ध राम, कृष्ण, नरसिंह, वाराह इत्यादि अवतारो की भाँति एक अवतार थे और अपने से पूर्व हुए सभी अवतारो से श्रेष्ठ थे। ह्वेन-साग के महायान मे यह भी माना गया कि राम, कृष्ण, शिवादि की भाँति भगवान् बुद्ध की उपासना से भी निर्वाण-प्राप्ति हो सकती है।

वस्तु-स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए आचार्य अग्निमित्र ने यह प्रस्ताव आचार्य वाराहमित्र के सम्मुख रखा कि ब्राह्मणों की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली जाए, जिसे महाराजा हर्षवर्धन, ह्वेन-साग तथा अन्य प्रमुख लोगों को भेज दिया जाए एवं सर्वसाधारण मे वितरित कर दिया जाए। विज्ञप्ति मे हर्षवर्द्धन के निरपेक्ष होने के ढोंग को प्रकाश मे लाया जाय तथा यह भी विख्यात किया जाए कि वैदिक-वैष्णव जनता द्वारा वचना

से महात्मा बुद्ध को एक महान् व्यक्ति मनाने का प्रयास ही महायान है। महायान के द्वारा बौद्ध-धर्म को, जिसको भारत के विद्वान् अस्वीकार कर चुके हैं, एक नया रूप देकर भोली-भाली जनता के गले में उतारने का प्रयास किया जा रहा है।

बौद्ध-धर्म वास्तव मे निरीश्वरवाद और अनात्मवाद का दूसरा नाम है। अब महात्मा बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार घोषित कर यह प्रयत्न किया जा रहा है कि भारतीय जनता बुद्ध की भी वैसी ही महिमा का गान करे, जैसी ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा राम, कृष्ण आदि की करती है।

बौद्ध-धर्म के अनुयायी महाराज अशोकवर्धन ने, जहाँ मौर्य वश का नाश किया था, वहाँ पूर्ण जनता को नपु सक और पगु बनाकर विदेशी-आक्रणकारियो की दया पर छोड दिया था। अब उसकी पुनरावृत्ति की जा रही है।

वेदो में लिखित जीवन-मीमासा यथायोग्य व्यवहार की समर्थक है। इसमे दुष्टो के साथ क्रूर व्यवहार और श्रेष्ठजनो के साथ मानवता का व्यवहार उपयुक्त माना गया है। शान्ति का व्यवहार पशुओ के साथ उचित नही।

इस प्रकार इस विज्ञप्ति मे वैदिक पक्ष की संक्षेप मे व्याख्या कर महायान तथा हीनयान के झगडे को ढोग बताया जाए और यह प्रकट किया जाए कि दोनो मे सिद्धान्तात्मक ऐक्य है।

आचार्य वाराहमित्र ने इस विज्ञप्ति की स्वीकृति दे दी, पत्रलता, जो उस समय वहाँ उपस्थित थी, कहने लगी, "श्रीमान्! यह सब-कुछ निष्फल जायगा। पूर्ण बौद्ध-जनता इस सवारी के साथ होगी। इससे हीन पक्ष वाले जो महाप्रभु अवलोकितेश्वर जी को महात्मा बुद्ध का स्थानापन्न मानते हैं, क्रोध और निराशा से जल-भुन जायँगे।

"महाप्रभु का मान ह्वेन-साग से कहीं ऊँचा माना जाता है। उनको बुद्ध का अवतार समझा जाता है। इस पर ह्वेन-साग की इतनी

मान-प्रतिष्ठा हीनयान के मानने वाले सहन नही कर रहे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उनका यह क्रोध किसी-न-किसी रूप मे अवश्य प्रकट होगा। कदाचित् वे कुछ गडबड करने का प्रयत्न करे।

"ऐसे अवसर पर यदि आपकी विज्ञप्ति निकली और यदि कुछ गड-बड़ हुई, तो इसका सारा दोष आप लोगो के ऊपर पड सकता है।"

पत्रलता के इस भय की सम्भावना बताने पर आचार्य जी गम्भीर विचार मे पड गए। कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त उन्होने पूछा, "पत्रलता! इस विषय मे तुम्हारा विचार कि हीनयानी कुछ गडबड करेंगे, कैसे बन गया?"

"मै आज महारानी मृणालिनी से मिलने गई थी। वहाँ यह चर्चा थी कि महाप्रभु कुछ श्रवणो के साथ बार-बार गुप्त गोष्ठियाँ कर रहे है। यह मेरा अनुमान है कि उन गुप्त-समाओ का उद्देश्य उत्सव मे किसी प्रकार की गडबड करने का है।"

"यह अनुमान तो बहुत दूर की बात है। मुझको विश्वास नही होता कि अवलोकितेश्वर जी इस प्रकार की मूर्खता करेंगे।"

"आपने उन्हे बुद्धिमान कब से समझा है?"

"बुद्धिमान न सही। इतनी नीचता का कार्य वे नही कर सकते कि उत्सव मे बाधा खडी हो जाय।"

"मेरा तो यह कहना है कि इन मूर्खों की मण्डली मे किसी प्रकार भी बात करनी भिडो के छत्ते मे हाथ डालने के समान होगा।"

अभी यह विचार-विनिमय हो ही रहा था कि सूचना मिली कि सभा-मण्डप मे, जो घास-फूस का बना हुआ था, आग लग गई है। सब आश्चर्यचकित एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

: ८ :

आग बुझाने का यत्न किया गया और महाराज हर्षवर्द्धन स्वयं आग बुझाने वालो को उत्साहित करने के लिए घटना-स्थल पर जा पहुँचे।

आग बुझ गई और भगवान् बुद्ध की मूर्ति इस आग मे जल जाने से बच गई। यह देखने के लिए कि आग से कितनी हानि हुई है, महाराज मण्डपों के बीच मे बनी लाट पर चढकर देखने लगे।

जब महाराज लाट के नीचे उतर रहे थे तो सहसा एक व्यक्ति हाथ मे कटार लिये, उन पर आक्रमण करने के लिए झपटा। हर्षवर्द्धन इस आकस्मिक आक्रमण से बचने के लिए पीछे हटकर, कुछ सीटियाॅ ऊपर चढ गया। पश्चात् झपटकर उसने आक्रमणकारी को पकड लिया।

आक्रमण करने वाले को बन्दी बना लिया गया और पश्चात् जब उस पर न्याय करने के लिए उसे धर्म-सम्मेलन प्रबन्ध-समिति के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उसने कह दिया कि वह ब्राह्मणो के उकसाने पर आक्रमण कर बैठा था।

इस षड्यन्त्र की छानबीन करने के लिए लगभग पाच सौ ब्राह्मणों को पकड लिया गया। इन पकडे हुओ मे आचार्य वाराहमित्र, आचार्य अग्निमित्र तथा अन्य सभी प्रमुख विद्वान् भी थे। पत्रलता भी आचार्य जी के गृह पर ब्राह्मणो को समझाती हुई पकड ली गई।

उसी रात ह्वेनसाग तथा अन्य बौद्ध-मण्डल के लोग इन ब्राह्मणो का न्याय करने और इनको दण्ड देने के विषय मे विचार-विनिमय करने के लिए एकत्रित हुए। इनमे महाराज हर्षवर्द्धन भी सम्मिलित हुए। उत्सव की सफलता से उत्साहित महायानी बौद्ध, अहिसा-हिसा का विचार छोड, भारत को विद्वान् ब्राह्मणो से रहित करने के स्वप्न देखने लगे।

पत्रलता और आचार्य वाराहमित्र के पकडे जाने का समाचार महामात्य पद्मराज को मिला तो वह भी चिन्ता अनुभव करता हुआ महाराज से मिलने जा पहुँचा। इस धर्म महासम्मेलन मे महामात्य ने सक्रिय भाग नहीं लिया था। महामात्य होने के नाते वह अतिथियां के स्वागत, खान-पान और ठहरने के प्रबन्ध मे लगा हुआ था, परन्तु धर्म-सम्मेलन मे जो कुछ हो रहा था, उस ओर उसकी किञ्चित्मात्र भी रुचि नहीं थी।

महाराज के अस्थाई प्रवास मे जब महामात्य पहुँचा तो उसको प्रतिहारो से पता चला कि भीतर बौद्ध-मण्डल की बैठक यह विचार करने के लिए हो रही है कि बन्दी ब्राह्मणो को क्या दण्ड दिया जाए।

महामात्य भी उस बैठक मे उपस्थित हुआ। उसे देख ह्वेनसाग ने उससे पूछा, "महामात्य! यह राज्य मे क्या हो रहा है?"

"अनर्थ श्रीमान्।"

"और महामात्य इसको रोकने के लिए क्या कर रहे हैं?"

"शक्तिहीन हो मुख देख रहा हूँ।"

"किसने शक्तिहीन किया है?"

"जिसने यह धर्म-सम्मेलन का प्रबन्ध अपने हाथ मे लिया हुआ है।"

"किसने लिया है?"

"यह तो महाराज ही बता सकेंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि इस आयोजन का और इससे पूर्व त्रिवेणी पर दान-महोत्सव का प्रबन्ध मेरी सम्मति से नही हुआ।"

इस समय महाराज हर्षवर्द्धन ने बात को बदलते हुए पूछा, "महामात्य इस गोष्ठी मे किस प्रयोजन से आए है?"

"तो महाराज! यहाँ कोई गोष्ठी हो रही है? क्या यह कोई गुप्त-गोष्ठी है?"

"महामात्य इन सबके एकत्रित होने का प्रयोजन समझते हैं?"

"मैं तो समझा था कि महाराज का जीवन बच जाने पर महाराज को बधाई देने तथा भगवान् तथागत् का धन्यवाद करने के लिए ये सब महानुभाव एकत्रित हुए है। मैं तो इसी प्रयोजन से आया था।"

"अब तो महामात्य की बधाई बासी हो गई है। भगवान् तथागत् की कृपा से जहाँ भवन की अग्नि बुझ गई है, वहाँ हत्या करने वाला पकड लिया गया है। उसने सभी षड्यन्त्रकारियो के नाम बता दिए हैं।"

"तब तो ठीक है महाराज! इस सेवक को अभी-अभी अधूरी घटना की सूचना मिली है और वह भी एक दूसरे ढंग से। मैं अपने अधूरे और

श्रीमान् से भिन्न ज्ञान रखने के लिए क्षमा चाहता हूँ। तो महाराज! आपकी इस गोष्ठी मे बाधा न पडे, अतः जाने के लिए आज्ञा चाहता हूँ।

"साथ ही महाराज से एक बात जानना चाहता हूँ कि हत्यारा कौन से बन्दीगृह मे भेजा गया है?"

"क्यो?"

"मैं नगरपाल को उसकी जॉच करने के लिए नियुक्त करना चाहता हूँ।"

"हमने जॉच कर ली है। हत्यारे को क्षमा कर दिया गया है और वास्तविक दोषियो को पकड़कर यहाँ मँगवा लिया गया है। उनके दण्ड का हम विधान कर रहे हैं।"

"बहुत अच्छा महाराज! मै इसका एक अर्थ समझा हूँ कि अब महाराज को पद्मराज की महामात्य के कार्य के लिए आवश्यकता नही रही। आपको अपने धार्मिक आयोजनो मे तो कदाचित् राज्याधिकारियो की आवश्यकता नही होनी चाहिए थी, परन्तु महाराज की हत्या का प्रयत्न और फिर उसके साथियों के विषय मे जॉच तथा दण्ड-विधान तो शुद्ध राज्य-कार्य है। अब यह कार्य भी आपने तथा साधु-सन्त-महात्माओ ने अपने ऊपर ले लिया है। मुझे आशा है कि इससे देश का कल्याण पूर्ण होगा।"

इस पर ह्वेनसाग ने कहा, "महामात्य की बात मैं समझता हूँ। महामात्य ब्राह्मण हैं और वे जन्म से ब्राह्मणो की बुद्धि और ज्ञान पर अधिकार मानते है। हम ऐसा नहीं मानते। हम जन्म से किसी का कुछ भी अधिकार नहीं समझते। भला आप में ऐसी कौनसी विशेषता है कि केवल आप ही राज्य को चौपट होने से बचा सकते है?"

"मैं समझता हूँ कि ह्वेनसाग मेरे कथन का अर्थ नहीं समझे। मैंने यह नही कहा कि वे राज्य का प्रबन्ध कर नही सकते। मैंने तो यह कहा है कि राज्य-कार्य साधु-सन्त महात्मा नहीं कर सकते।

"अब सुन लीजिये। जिस व्यक्ति ने महाराज पर कटार से आक्रमण

किया था, वह जिन लोगो के सिखाने से ऐसा कार्य करने आया था, उनका नाम नहीं बता सका। उसने असत्य भाषण कर उन व्यक्तियों का नाम ले दिया है, जिनके विरुद्ध हमारे सन्तजी हैं। उनको न तो महाराज से किसी प्रकार का द्वेष है और न ही कोई कारण है कि द्वेष हो।"

"तो महामात्य जानते हैं कि किसने उसे हत्या करने के लिए भेजा था?"

"यही जानने के लिए तो जॉच करना चाहता था। मैं समझता हूँ कि जिसने महाराज को यह सम्मति दी है कि उसे क्षमाकर तुरन्त मुक्त कर दिया जाए, कदाचित् वही व्यक्ति है, जिसने उसे महाराज की हत्या करने के लिए भेजा था।

"यह भी हो सकता है कि उसने वास्तविक दोषियों को बचाने के लिए झूठ-मूठ के कुछ लोगों को पकड़वा दिया हो और इस भय से कि हत्यारे से कहीं कुछ रहस्योद्घाटन न हो जाए, उसको क्षमा दिलवाकर यहाँ से भगा देने मे इतनी शीघ्रता की हो।"

महाराज हर्षवर्द्धन महामात्य के इस कथन से गम्भीर विचार मे पड गए। उनकी बुद्धि मे कुछ-कुछ बात समझ आने लगी थी। इस पर भी वे चुप रहे। पद्मराज ने आगे कहा, "महाराज! पिछले अठारह दिन तक वाद-विवाद चलता रहा है महायान वादियों का हीनयानियो के साथ। ब्राह्मण वर्ग को तो मण्डप मे प्रवेश तक करने नहीं दिया गया। उनसे न तो किसी ने कोई विवाद किया और न ही उनके विरुद्ध किसी ने कुछ कहा। तो ब्राह्मणो को रुष्ट होने मे कोई कारण नहीं है। रुष्ट होने मे कारण हीनयान वालो को है। उनको बुलाकर उनका भारी अपमान किया गया है। हीनयान सम्प्रदाय वालो के बोधिसत्त्व जी को पीछे कर एक विदेशी विद्यार्थी को विजयी घोषित कर सम्मानित किया गया है। इससे क्या यह सम्भव नही कि यह हत्या का आयोजन हीनयान वालों ने किया हो?"

"महामात्य इस विषय में क्या जानते हैं?"